☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्रीरतनमुनि
पण्डित श्रीशोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ अर्थसहयोगी
सेठ श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग

☐ प्रकाशनतिथि
महावीर जयंती, वीरनिर्वाणसंवत् २५०८
वि. सं. २०३९, ई. सन् १९८२

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन ३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, केसरगंज, अजमेर

☐ मूल्य : २१) रुपये

संशोधित परिवर्धित मूल्य
संशोधित परिवर्धित मूल्य

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Fourth Anga

SAMAVĀYĀNGA

[Original, Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Sri Vardhamana Sthanakvasi Jain Sramana Sanghiya Yuvacharya
Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Pt. Hiralalji Shastri

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

- **Board of Editors**
  Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalalji 'Kamal'
  Sri Devendra Muni Shastri
  Sri Ratan Muni
  Pt. Shobhachandra Bharill

- **Managing Editor**
  Srichand Surana 'Saras'

- **Promotor**
  Munisri Vinayakumar 'Bhima'
  Sri Mahendramuni 'Dinakar'

- **Financial Assistance**
  Sri Premrajji Bhanwarlalji Shrishrimal, Durg.

- **Date of Publication**
  Mahavira Jayanti, Vir-nirvana Samvat 2508
  Vikram Samvat 2039, April 1982

- **Publishers**
  Sri Agam Prakashana Samiti
  Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [INDIA]
  Pin 305901

- **Printer**
  Satishchandra Shukla
  Vedic Yantralaya
  Kesarganj, Ajmer

[illegible] 25/

समर्पण

जिनकी अनिर्वचनीय शान्त मुख-मुद्रा ही भव्य जीवों को परम शान्ति और निश्रेयस का संदेश संभलाती थी,

जिनके संयम-जीवन में अनुपम सरलता, सात्त्विकता, सौम्यता, निरहंकारता और विनम्रता ओतप्रोत हो चुकी थी,

जो अपनी परमोदार वृत्ति एवं प्राणी-मात्र के प्रति अनन्य वत्सलता के फल-स्वरूप जैन-जैनेतर धर्मप्रेमी जनता में समान रूप से समादरणीय, श्रद्धेय और महनीय थे,

जिनके परोक्ष शुभाशीर्वाद के फलस्वरूप आगमप्रकाशन का यह भगीरथ अनुष्ठान सत्वर गति से सम्पन्न हो रहा है,

जिनका मेरे व्यक्तित्व-निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनके असीम उपकारों का मैं सदैव ऋणी हूं,

उन श्रमणसंघ के मरुधरामंत्री परम-पूज्य ज्येष्ठ गुरुभ्राता प्रवर्त्तकवर—

मुनिश्री हजारीमलजी महाराज के

कर-कमलों में सादर समर्पित।

मधुकर मुनि

विशिष्ट अर्थसहयोगी

तिंवरी मरुधरा का छोटा-सा ग्राम होने पर भी जैनजगत् में अपना एक महत्व रखता है। यही वह ग्राम है जहाँ की पुण्यभूमि में अ. भा. श्रमणसंघ के वर्त्तमान युवाचार्य, जैन संघ की विशिष्ट विभूति विद्वद्रत्न मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज का जन्म हुआ। और यही वह ग्राम है जिसकी ख्याति में श्रीश्रीमाल-परिवार चार चांद लगा रहा है।

श्रीश्रीमालजी का मूल प्रतिष्ठान 'श्रीरावतमल हनुतमल' है। इस विशाल परिवार ने दुर्ग (मध्यप्रदेश) को अपनी कर्मभूमि बनाया है।

स्व. श्री रावतमलजी सा. के तीन सुपुत्र थे—श्री हनुतमलजी, श्री दीपचंदजी और श्री प्रेमराजजी। आज इन त्रिपुटी में से श्रीमान् सेठ प्रेमराजजी समाज के सद्भाग्य से हमारे बीच विद्यमान हैं। स्व. हनुतमलजी सा. के सुपुत्र श्री भंवरलालजी सा. हैं और उनके भी तीन सुपुत्र—प्रवीणकुमारजी, प्रदीपकुमारजी और प्रफुल्लकुमारजी हैं।

स्व. श्री दीपचंदजी सा. के सुपुत्र श्री नेमिचंदजी के दो पुत्र सुरेशकुमारजी और रमेशकुमारजी हैं।

श्रीमान् प्रेमराजजी सा. के तीन सुपुत्र श्री मोहनलालजी, श्री शायरमलजी और श्री ताराचंदजी हैं। इनमें से श्रीमोहनलालजी के सुपुत्र मदनलालजी, राजेन्द्रकुमारजी, अनिलकुमारजी और सुनीलकुमारजी हैं। श्री ताराचंदजी के भी पन्नालालजी, श्रीपालजी, हरीशकुमारजी और आनन्दकुमारजी, ये चार सुपुत्र हैं। इस प्रकार सेठ प्रेमराजजी साहब का भरा-पूरा विशाल परिवार है।

श्रीश्रीमाल-परिवार केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं, यश-कीर्ति एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी विराट् है। दुर्ग नगर की धार्मिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों में, परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण प्रभाव रखने वाला है। नगर में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। सार्वजनिक सेवा का कोई भी क्षेत्र इस परिवार के सहयोग से अछूता नहीं है।

वयोवृद्ध धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् प्रेमराजजी सा. सदैव धार्मिक कार्यों की अभिवृद्धि हेतु तत्पर रहते हैं। आप अनेक ट्रस्टों के स्वामी हैं और विभिन्न संस्थाओं के संरक्षक हैं।

श्रीमान् भंवरलालजी सा. श्री व. स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ के अध्यक्ष एवं नगर की अनेक संस्थाओं के ट्रस्टी तथा सक्रिय प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। आप श्री आगम-प्रकाशनसमिति के उपाध्यक्ष पद पर आसीन रह चुके हैं। 'राम-प्रसन्न-ज्ञानप्रसार केन्द्र' के मुख्य ट्रस्टी हैं।

श्रीश्रीमाल-परिवार की उदारता की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करने वाली बात यह है कि इस परिवार से संबंधित नौ व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं तो नौ ही सार्वजनिक संस्थाएँ भी चल रही हैं। प्रतिष्ठान और संस्थाएँ इस प्रकार हैं—

व्यापारिक प्रतिष्ठान	दुर्ग में संचालित संस्थाएँ
१. प्रेम एण्ड कम्पनी	१. श्री प्रेमजयमाला ट्रस्ट, (रजिस्टर्ड)
२. प्रकाश एण्ड कम्पनी	२. श्री प्रेम पुण्यार्थ फंड
३. प्रदीप एण्ड कम्पनी	३. श्री आयंबिल एकासना ट्रस्ट
४. हुलास एण्ड कम्पनी	४. श्री आयंबिल वर्षगांठनिधि ट्रस्ट
५. रमेश एण्ड कम्पनी	५. श्री नीवीतपनिधि ट्रस्ट
६. जय ज्वेलर्स	६. श्री प्रेमजयमाला ज्ञानभवन
७. जय ट्रेडर्स	७. श्री प्रेमजयमाला होम्योपैथिक औषधालय (रजि.)
८. सहेली वस्त्रालय	८. श्री आचार्य श्री जयमल जैन वाचनालय एवं ग्रन्थालय
९. मे. शायरमल जैन	९. श्री सार्वजनिक प्याऊ, राममंदिर दुर्ग,

अपनी कर्मभूमि दुर्ग में इन संस्थाओं की स्थापना करने के साथ ही आपने अपनी जन्मभूमि को भुलाया नहीं है। तिवरी में भी आपके आर्थिक अनुदान और सत्प्रेरणा से अनेक पारमार्थिक कार्य योजनाबद्ध स्थायी रूप से चल रहे हैं।

सेठ प्रेमराजजी सा. एवं उनके समग्र परिवार में अत्यन्त विनम्रता, सरलता, सात्त्विकता और मिलनसारी के सहज सद्गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार श्रीश्रीमाल-परिवार एक आदर्श परिवार है, समाज का गौरव है। युवाचार्य श्रीमधुकर मुनिजी म. सा. के प्रति परिवार की अनन्य निष्ठा और गहरी श्रद्धा है। □□

प्रकाशकीय

कुछ ही समय पूर्व तृतीय अंग स्थानाङ्गसूत्र का विमोचन हुआ था। उससे पूर्व आचारांग, उपासकदशा, ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृद्दशा और अनुत्तरोपपातिकदशा प्रकाशित हो चुके हैं। सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतस्कन्ध मुद्रित हो चुका है। सूत्रकृतांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध और विपाकश्रुत मुद्रणाधीन हैं। भगवतीसूत्र विशालतम अंग है। वह कई भागों में प्रकाशित हो सकेगा। उसके प्रथम भाग की पाण्डुलिपि भी मुद्रण के लिए प्रेस को प्रेषित कर दी गई है। इस प्रकार ग्यारह अंगों में केवल प्रश्नव्याकरण ही शेष रह जाता है, जो शीघ्र सम्पादित होकर समिति-कार्यालय में आ जाएगा, ऐसी आशा है। इनके मुद्रित हो जाने पर अंगशास्त्रों के मुद्रण का कार्य सम्पन्न हो जाएगा।

आगमप्रेमी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि प्रकाशन-कार्य अंगों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उपांगों तथा मूल सूत्रों पर भी निरन्तर कार्य हो रहा है। प्रथम उपांग औपपातिकसूत्र तथा मूलसूत्रों में नन्दीसूत्र प्रकाशन के लिए तैयार हैं और शेष का सम्पादन हो रहा है। आशा है ये सब भी यथासंभव शीघ्र पाठकों के हाथों में पहुँच सकेंगे।

प्रस्तुत आगम का सम्पादन भी दिवंगत पं. हीरालालजी शास्त्री ने किया है और युवाचार्य विद्वद्वर्य श्री मधुकर मुनिजी म. सा. तथा पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने उसका निरीक्षण-परीक्षण किया है। समिति के अर्थदाताओं तथा अन्य पदाधिकारियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष सहकार की बदौलत ही यह महान् धर्मप्रभावना का पावन कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो रहा है। इन सभी महानुभावों के हम अतीव आभारी हैं।

प्रस्तुत आगम के विशिष्ट अर्थसहयोगी श्रीमान् सेठ प्रेमराजजी भंवरलालजी सा. श्रीश्रीमाल, दुर्ग (म. प्र.) निवासी हैं। आपका परिचय अन्यत्र दिया जा रहा है। आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हम अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

साहित्यवाचस्पति विद्वद्वर श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री ने प्रस्तुत शास्त्र की विस्तृत भूमिका लिखने का प्रबल पुरुषार्थ किया है। इससे उनके विशाल अध्ययन का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही पाठक को विचार की एक नवीन दिशा भी मिलती है। वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धक श्री सतीशचन्द्रजी शुक्ल से मुद्रणकार्य में स्नेहपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इन सभी के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

हमने पहले भी निवेदन किया था और यहाँ पुनः उसे दोहराना आवश्यक अनुभव करते हैं कि वीतराग-वाणी का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो और जनसामान्य को जैनधर्म के विश्व-हितकारी तात्त्विक, धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त हो सके, इसी उदात्त भावना से यह उपक्रम किया गया है। यही कारण है कि प्रकाशित आगमों का मूल्य लागत से भी कम रक्खा जा रहा है। यहाँ कि बत्तीसी के अग्रिम होने वाले सज्जनों को एक हजार और संस्थाओं को केवल सात सौ रुपये में सम्पूर्ण बत्तीसी—जिसके चालीस से भी अधिक भाग होने वाले हैं, दी जा रही है। फिर भी अग्रिम ग्राहकों की सन्तोषजनक संख्या नहीं हुई है। इससे आगम जैसी अनमोल निधि के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट होता है। आशा है इन पंक्तियों को पढ़नेवाले धर्मप्रेमी पाठक इस ओर लक्ष्य देकर प्रयास करेंगे और समिति के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होकर पुण्य के भागी बनेंगे।

रतनचंद मोदी	जतनराज महता	चांदमल विनायकिया
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामंत्री	मंत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

क्र.	नाम	पद	स्थान
१.	श्रीमान् सेठ मोहनमलजी चोरड़िया	अध्यक्ष	मद्रास
२.	श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३.	श्रीमान् कँवरलालजी बैताला	उपाध्यक्ष	गोहाटी
४.	श्रीमान् दौलतराजजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
५.	श्रीमान् रतनचन्दजी चोरड़िया	उपाध्यक्ष	मद्रास
६.	श्रीमान् खूबचन्दजी गादिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
७.	श्रीमान् जतनराजजी मेहता	महामन्त्री	मेड़ता सिटी
८.	श्रीमान् चाँदमलजी विनायकिया	मन्त्री	ब्यावर
९.	श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
१०.	श्रीमान् चाँदमलजी चौपड़ा	सहमन्त्री	ब्यावर
११.	श्रीमान् जौहरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१२.	श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया	कोपाध्यक्ष	मद्रास
१३.	श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य	नागौर
१४.	श्रीमान् जी. सायरमलजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
१५.	श्रीमान् जेठमलजी चोरड़िया	सदस्य	बैंगलौर
१६.	श्रीमान् मोहनसिंहजी लोढा	सदस्य	ब्यावर
१७.	श्रीमान् बादलचन्दजी मेहता	सदस्य	इन्दौर
१८.	श्रीमान् मांगीलालजी सुराणा	सदस्य	सिकन्दराबाद
१९.	श्रीमान् माणकचन्दजी बैताला	सदस्य	बागलकोट
२०.	श्रीमान् भंवरलालजी गोठी	सदस्य	मद्रास
२१.	श्रीमान् भंवरलालजी श्रीश्रीमाल	सदस्य	दुर्ग
२२.	श्रीमान् सुगनचन्दजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२३.	श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२४.	श्रीमान् खींवराजजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२५.	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी जैन	सदस्य	भरतपुर
२६.	श्रीमान् भंवरलालजी मूथा	सदस्य	जयपुर
२७.	श्रीमान् जालमसिंहजी मेड़तवाल	(परामर्शदाता)	ब्यावर

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिकों—द्रष्टाओं/चिन्तकों, ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनों तथा पद्धतियों पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामों से विश्रुत है।

जैन दर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारों—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णतः निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियों का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी; वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिवोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यतः सर्वज्ञ के वचनों/वाणी का संकलन नहीं किया जाता, वह विखरे सुमनों की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, संघीय जीवन पद्धति में धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्म प्रवर्तक/अरिहंत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्हीं के अतिशय सम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर संकलित कर 'आगम" या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनों की मुक्त वृष्टि जब मालारूप में ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा में "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहंतों के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशांग में समाहित होते हैं और द्वादशांग/आचारांग-सूत्रकृतांग आदि के अंग-उपांग आदि अनेक भदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशांगी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशांगी में भी बारहवाँ अंग विशाल एवं समग्रश्रुत ज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यतः एकादशांग का अध्ययन साधकों के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, लिखने के साधनों का विकास भी अल्पतम था, तब आगमों/शास्त्रों/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कंठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवतः इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दों का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमों का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य; गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणों के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एवं जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एवं संजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमों को लिपि-बद्ध किया गया। जिनवाणी को

पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुतः आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी; पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नहीं होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की पावन धारा संकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने इस दिशा में क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धांतिक विग्रह, तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमों की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठकों को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासों से आगमों की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश में आईं और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासुजनों को सुविधा हुई। फलतः आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमों के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानों की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा में अनेक समर्थ श्रमणों, पुरुषार्थी विद्वानों का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हों, पर विस्मरणीय तो कदापि नहीं, स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखों के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप में उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्रा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरों का नामोल्लेख अवश्य करना चाहूँगा।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन में पूर्ण कर एक अद्‌भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एवं आगम ज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रातःस्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य में आगमों का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलांक की टीकाओं से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह संस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी हैं, अब तक उपलब्ध संस्करणों में प्रायः शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठों में व वृत्ति में कहीं-कहीं अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो हैं ही। चूंकि गुरुदेवश्री स्वयं आगमों के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हें आगमों के अनेक गूढ़ार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अतः वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमों का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एवं जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तड़प कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियों के कारण उनका यह स्वप्न-संकल्प साकार नहीं हो सका, फिर भी मेरे मन में प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल में आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म दिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरों ने आगमों की हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि में सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान में लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम सम्पादन की दिशा में बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानों ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस में व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान में आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्य श्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय में काफी मतभेद की गुंजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमों में उनकी कार्यशैली की विशदता एवं मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्री बेचरदास जी दोशी, विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमों के आधुनिक सम्पादन की दिशा में स्वयं भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहंगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज प्रायः सभी विद्वानों की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कहीं आगमों का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कहीं आगमों की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगम ज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमों का एक ऐसा संस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, संक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही आगम-संस्करण चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी,

सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलाल जी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन संन्तुष्ट नहीं होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भंडारी श्री पदमचन्दजी म० एवं प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०; स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुंवरजी म० की सुशिष्याएं महासती दिव्यप्रभाजी, एम.ए., पी-एच. डी.; महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व. पं. श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एवं श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियों का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवा भाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व. श्रावक चिमनसिंहजी लोढ़ा, स्व. श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप में हो आता है जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नों से आगम समिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। दो वर्ष के इस अल्पकाल में ही दस आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियों की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनिजनों के सद्भाव-सहकार के बल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ············

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

□□

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'हंतव्वं' ति मन्नसि,
तुमंसि नामव सच्चे जं 'अज्जावेयव्वं' ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परितावेयव्वं' ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परिघेतव्वं' ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं' ति मन्नसि ।

—**आचाराङ्ग**

तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइए ।

—आचाराङ्ग

प्रस्तावना

समवायांग सूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

नाम-बोध

श्रमण भगवान् महावीर की विमल वाणी का संकलन-आकलन सर्वप्रथम उन के प्रधान शिष्य गणधरों ने किया। वह संकलन-आकलन अंग सूत्रों के रूप में विश्रुत है। अंग बारह हैं:—आयार, सूयगड, ठाण, समवाय, विवाहपण्णत्ति, नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरोववाइयदसा, पण्हावागरण, विवागसुय और दिट्ठिवाअ।[1] वर्तमान समय में बारहवाँ अंग दृष्टिवाद अनुपलब्ध है। शेष ग्यारह अंगों में समवाय का चतुर्थ स्थान है। आगम साहित्य में इसका अनूठा स्थान है। जीवविज्ञान, परमाणुविज्ञान, सृष्टिविद्या, अध्यात्मविद्या, तत्त्वविद्या, इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों का यह अनुपम कोष है। आचार्य अभयदेव ने लिखा है—प्रस्तुत आगम में जीव, अजीव प्रभृति पदार्थों का परिच्छेद या समवतार है। अतः इस आगम का नाम समवाय या समवाओ है।[2] सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लिखा है कि इस में जीव आदि पदार्थों का सादृश्य-सामान्य से निर्णय लिया गया है। अतः इस का नाम "समवाय" है।[3]

विषय-वस्तु

आचार्य देववाचक ने[4] समवायांग की विषय-सूची दी है, वह इस प्रकार है—

(१) जीव, अजीव, लोक, अलोक, एवं स्वसमय, पर-समय का—समवतार।

(२) एक से लेकर सौ तक की संख्या का विकास।

(३) द्वादशांग गणिपिटक का परिचय।

---

१. समवायांग, द्वादशांगाधिकार।

२. समिति-सम्यक् अवेत्याधिक्येन अयनमयः—परिच्छेदो, जीवा-जीवादिविविधपदार्थसार्थस्य यस्मिन्नसौ समवायः, समवयन्ति वा—समवसरन्ति सम्मिलन्ति नानाविधा आत्मादयो भावा अभिधेयतया यस्मिन्नसौ समवाय इति!

—समवायांगवृत्ति, पत्र १

३. सं—संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयंते ज्ञायन्ते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायांगम्।

—गोम्मटसार जीवकाण्ड, जीवप्रबोधिनी टीका, गा. ३५६

४. से किं तं समवाए ? समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति। ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ। लोए समासिज्जइ अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समासिज्जइ। समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाणसयं निवड्ढियाणं भावाणं पन्नवणा आघविज्जइ। दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ।

नन्दीसूत्र—८३

प्रस्तुत आगम में[5] समवाय की भी विषय-सूची दी गई है। वह इस प्रकार है—

(१) जीव, अजीव, लोक, अलोक, स्व-समय और पर-समय का समवतार (२) एक से सौ संख्या तक के विषयों का विकास (३) द्वादशांगी गणिपिटक का वर्णन, (४) आहार (५) उच्छ्वास (६) लेश्या (७) आवास (८) उपपात (९) च्यवन (१०) अवगाह (११) वेदना (१२) विधान (१३) उपयोग (१४) योग (१५) इन्द्रिय (१६) कषाय (१७) योनि (१८) कुलकर (१९) तीर्थंकर (२०) गणधर (२१) चक्रवर्ती (२२) बलदेव-वासुदेव।

दोनों आगमों में आयी हुयी विषय सूचियों का गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि नन्दीसूत्र में जो आगम-विषयों की सूची आयी है, वह बहुत ही संक्षिप्त है। और समवायांग में जो विषय-सूची है, वह बहुत ही विस्तृत है। नन्दी और समवायांग में सौ तक एकोत्तरिका वृद्धि होती है, ऐसा स्पष्ट संकेत किया गया है, किन्तु उन में अनेकोत्तरिका वृद्धि का निर्देश नहीं है, नन्दीचूर्णि में जिनदास गणि महत्तर ने, नन्दी हरिभद्रीया वृत्ति में आचार्य हरिभद्र ने, और नन्दी की वृत्ति में, आचार्य मलयगिरि ने अनेकोत्तरिका वृद्धि का कोई भी संकेत नहीं किया है। आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति में अनेकोत्तरिका वृद्धि का उल्लेख किया है। आचार्य अभयदेव के मत के अनुसार सौ तक एकोत्तरिका वृद्धि होती है। और उस के पश्चात् अनेकोत्तरिका वृद्धि होती है।[6] विज्ञों का ऐसा अभिमत है कि वृत्तिकार ने समवायांग के विवरण के आधार पर यह उल्लेख नहीं किया है। अपितु समवायांग में जो पाठ प्राप्त है, उसी के आधार से उन्होंने यह वर्णन किया है।

यह सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि नन्दीसूत्र में समवायांग का जो परिचय दिया गया है, क्या उस परिचय से वर्तमान में समुपलब्ध समवायांग पृथक् है? या—जो वर्तमान में समवायांग है, वह देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की वाचना का नहीं है। यदि होता तो दोनों विवरणों में अन्तर क्यों होता? समाधान है—नन्दी में समवायांग का जो विवरण है उस में अन्तिम वर्णन द्वादशांगी का है। परन्तु वर्तमान में जो समवायांग है, उसमें द्वादशांगी से आगे अनेक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इसलिये नन्दीगत समवायांग के विवरण से वह आकार की दृष्टि से पृथक् है। हमने स्थानांग सूत्र की प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया है कि आगमों की श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् पांच वाचनाएं हुयी। आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत आगम की वृत्ति में प्रस्तुत आगम की बृहद् वाचना का उल्लेख किया है। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि नन्दी में समवाय का जो परिचय देववाचक ने दिया है वह लघुवाचना की दृष्टि से दिया हो।

समवायांग के परिवर्धित आकार को लेकर कुछ मनीषियों ने दो अनुमान किये हैं। वे दोनों अनुमान कहाँ तक सत्य-तथ्य पर आधृत हैं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मेरी दृष्टि से यदि समवायांग पृथक् वाचना का होता तो इस सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य में कहीं न कहीं कुछ अनुश्रुतियां अवश्य मिलतीं। पर समवायांग के सम्बन्ध में कोई भी अनुश्रुति नहीं है। उदाहरण के रूप में ज्योतिषकरण्ड ग्रन्थ माथुरी वाचना का है, पर समवायांग के सम्बन्ध में ऐसा कुछ भी नहीं है। अतः विज्ञों का प्रथम अनुमान केवल अनुमान ही है। उस के पीछे वास्तविकता का अभाव है। दूसरे अनुमान के सम्बन्ध में भी यह नम्र निवेदन है कि भगवती सूत्र[7] में कुलकरों और तीर्थंकरों आदि के पूर्ण विवरण के सम्बन्ध में समवायांग के अन्तिम भाग का अवलोकन

---

५. समवायांग, प्रकीर्णक

६. च चब्दस्य चान्यत्र सम्बन्धादेकोत्तरिका अनेकोत्तरिका च तत्र शतं यावदेकोत्तरिका परतोऽनेकोत्तरिकेति।

—समवायांग वृत्ति, पत्र १०५

७ भगवतीसूत्र, शतक ५, उ. ५, पृ. ८३६ —भाग २ सैलाना (म. प्र.)

करने का संकेत किया गया है। इसी तरह स्थानांग में भी बलदेव और वासुदेव के पूर्ण विवरण के लिये समवायांग के अन्तिम भाग को अवलोकन करने हेतु सूचन किया है।[८] इस विचार-चर्चा में यह स्पष्ट है कि समवायांग में जो परिशिष्ट विभाग है, वह विभाग देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण ने समवायांग में जोड़ा है।

यह शोधार्थी के लिये अन्वेषणीय है कि नन्दी और समवायांग इन दोनों आगमों के संकलनकर्ता देवर्द्धि गणिक्षमाश्रमण हैं, तो फिर उन्होंने दोनों आगमों में जो विवरण दिया है, उस में एकरूपता क्यों न रखी? दो प्रकार के विवरण क्यों दिये? समाधान है कि अनेक वाचनाएं समय-समय पर हुयी हैं। अनेक वाचनाएं होने से बहुविध पाठ भी मिलते हैं। संभव है कि ये वाचनान्तर-व्याख्यांश अथवा परिशिष्ट मिलाने से हुये हों। विज्ञों ने यह कल्पना की है कि समवायांग में द्वादशांगी का जो उत्तरवर्ती भाग है, वह भाग उस का परिशिष्ट विभाग है। परिशिष्ट विभाग का विवरण नन्दीसूत्र की सूची में नहीं दिया गया है। इसलिये समवायांग की सूची विस्तृत हो गयी है। समवायांग के परिशिष्ट भाग में ग्यारह पदों का जो संक्षेप है, वह किस दृष्टि से इस में संकलन किया गया है, यह आगममर्मज्ञों के लिये चिन्तनीय है।

समवायांग का वर्तमान में उपलब्ध पाठ १६६७ श्लोक परिमाण है। इस में संख्या क्रम से पृथ्वी, आकाश, पाताल, तीनों लोकों के जीव आदि समस्त तत्त्वों का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से एक से लेकर कोटानुकोटि संख्या का परिचय प्रदान किया गया है। इस में आध्यात्मिक तत्त्वों, तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती और वासुदेवों से सम्बन्धित वर्णन के साथ भूगोल, खगोल, आदि की सामग्री का संकलन भी किया गया है। स्थानांग के समान ही समवायांग में भी संख्या के क्रम से वर्णन है। दोनों आगमों की शैली समान है। समान होने पर भी स्थानांग में एक से लेकर दश तक की संख्या का निरूपण है। जब कि समवायांग में एक से लेकर कोटाकोटी संख्या वाले विषयों का प्रतिपादन है। स्थानांग की तरह समवायांग की प्रकरण-संख्या निश्चित नहीं है। यही कारण है कि आचार्य देववाचक ने समवायांग का परिचय देते हुये एक ही अध्ययन का सूचन किया है। यह कोष शैली अत्यन्त प्राचीन है। स्मरण करने की दृष्टि से यह शैली अत्यन्त उपयोगी रही है। यह शैली अन्य आगमों में भी दृष्टिगोचर होती है। उत्तराध्ययन सूत्र के इकतीसवें अध्ययन में चारित्र विधि में एक से लेकर तेतीस तक की संख्या में वस्तुओं की परिगणना की गयी है। अविवेकपूर्वक प्रवृत्तियां कौन सी हैं? उन से किस प्रकार बचा जा सकता है और किस प्रकार विवेकपूर्वक प्रवृत्ति की जा सकती है, आदि।

शैली

स्थानांग और समवायांग की प्रस्तुत कोष शैली बौद्ध परम्परा में और वैदिक परम्परा में भी प्राप्त है! बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय, पुग्गलपञ्ञति, महाव्युत्पत्ति एवं धर्मसंग्रह में इसी तरह विचारों का संकलन किया गया है।

महाभारत के वनपर्व के १३४ वें अध्याय में नन्दी और अष्टावक्र का संवाद है। उस में दोनों पक्ष वाले एक से लेकर तेरह तक वस्तुओं की परिगणना करते है। प्राचीन युग में लेखन सामग्री की दुर्लभता थी। मुद्रण का तो पूर्ण अभाव ही था। इसलिये स्मृति की सरलता के लिये संख्याप्रधान शैली अपनाई गयी थी।

समवायांग में संग्रहप्रधान कोष-शैली होते हुये भी कई स्थानों पर यह शैली आदि से अन्त तक एक-

---

८. एवं जहा समवाए निरवसेसं......।

—स्थानाङ्ग ९। सूत्र ६७२, मुनि कन्हैयालालजी 'कमल'

रूपता को लिये हुये नहीं है। उदाहरण के रूप में अनेक स्थानों पर व्यक्तियों के चरित्र आ गये हैं। पर्वतों के वर्णन आ गये हैं तथा संवाद आदि भी। प्रस्तुत आगम में एक संख्यक प्रथम सूत्र के अन्त में यह कथन किया गया है। कितने ही जीव एक भव में सिद्धि को वरण करेगें। उस के पश्चात् दो से लेकर तेतीस संख्या तक यह प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद कोई कथन नहीं है। जिससे जिज्ञासु के अन्तर्मानस में यह प्रश्न उद्‌बुद्ध होता है कि चौंतीस भव या उस से अधिक भव वाले सिद्धि प्राप्त करेंगे या नहीं ? इस का कोई समाधान नहीं है।

हमारी दृष्टि से आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय आगमों के संकलन करते हुये ध्यान न रहा हो, या कुछ पाठ विस्मृत हो गये हों। जिस की पूर्ति उन्होंने अनन्त संसार न बढ़ जाये, इस भय से न की हो।

यह बात हम पूर्व ही बता चुके हैं कि संख्या की दृष्टि से प्रस्तुत आगम में विषयों का प्रतिपादन हुआ है। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि उस विषय के पश्चात् दूसरा विषय उसी के अनुरूप हो। प्रत्येक विषय संख्या दृष्टि से अपने आप में परिपूर्ण है तथापि आचार्य अभयदेव ने अपनी वृत्ति में एक विषय का दूसरे विषय के साथ सम्बन्ध संस्थापित करने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं पर उन्हें पूर्ण सफलता मिली है तो कहीं-कहीं पर ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्तिकार ने अपनी ओर से हठात् सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः इस प्रकार की शैली में एक सूत्र का दूसरे सूत्र से सम्बन्ध हो, यह आवश्यक नहीं। संख्या की दृष्टि से जो भी विषय सामने आया, उस का इस आगम में संकलन किया गया।

चतुष्टय की दृष्टि से वर्णन

समवायांग में द्रव्य की दृष्टि से जीव, पुद्‌गल धर्म, अधर्म, आकाश, आदि का निरूपण किया गया है। क्षेत्र की दृष्टि से लोक, अलोक, सिद्धशिला, आदि पर प्रकाश डाला गया है। काल की दृष्टि से समय, आवलिका, मुहूर्त आदि से लेकर पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, और पुद्‌गल—परावर्तन, एवं चार गति के जीवों की स्थिति आदि पर चिन्तन किया गया है। भाव की दृष्टि से ज्ञान, दर्शन चारित्र एवं वीर्य, आदि जीव के भावों का वर्णन है। और वर्ण, गन्ध, रस, संस्थान, स्पर्श, आदि अजीव भावों का वर्णन भी किया गया है।

प्रथम समवाय : विश्लेषण

समवायांग के प्रथम समवाय में जीव, अजीव आदि तत्त्वों का प्रतिपादन करते हुये आत्मा, अनात्मा, दण्ड, अदण्ड, क्रिया, अक्रिया, लोक, अलोक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, आदि को संग्रह नय की दृष्टि से एक-एक बताया गया है। उस के पश्चात् एक लाख योजन की लम्बाई-चौडाई वाले जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्ध विमान आदि का उल्लेख है। एक सागर की स्थिति वाले नारक, देव आदि का विवरण दिया गया है।

प्रथम समवाय में बहुत ही संक्षेप में शास्त्रकार ने जैन दर्शन के मूलभूत तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। भारतीय दर्शनों में सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न आत्मा का रहा है। अन्य दार्शनिकों ने भी आत्मा के सम्बन्ध में चिन्तन किया किन्तु उनका चिन्तन गहराई को लिये हुये नहीं था। विभिन्न दार्शनिकों के विभिन्न मत थे। कितने ही दार्शनिक आत्मा को कूटस्थ नित्य मानते हैं तो कितने ही दार्शनिक आत्मा को अनित्य मानते हैं। कितने ही दार्शनिक आत्मा को व्यापक मानते हैं तो कितने ही दार्शनिक आत्मा को अंगुष्ठप्रमाण या तण्डुलप्रमाण मानते हैं। जैन दर्शन ने अनेकान्त दृष्टि से आत्मा का निरूपण किया है। वह जीव को परिणामी नित्य मानता है। द्रव्य की दृष्टि से जीव नित्य है, तो पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। यहाँ पर प्रस्तुत एक स्थानक समवाय में, आत्मा

अनन्त होने पर भी सभी आत्माएँ असंख्यात प्रदेशी होने से और चेतनत्व की अपेक्षा से एक सदृश है। सभी आत्माएँ स्वदेहपरिमाण है। अतएव यहाँ आत्मा को एक कहा है। सर्वप्रथम आत्म तत्त्व का ज्ञान आवश्यक होने से स्थानांग और समवायांग दोनों ही आगमों में प्रथम आत्मा की चर्चा की है।

आत्मा को जानने के साथ ही अनात्मा को जानना भी आवश्यक है। अनात्मा को ही अजीव कहा गया है। अजीव के सम्बन्ध से ही आत्मा विकृत होता है। उसमें विभाव परिणति होती है। अतः अजीव तत्त्व के ज्ञान की भी आवश्यकता है। अचेतनत्व सामान्य की अपेक्षा से अजीव एक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल, ये सभी अजीव हैं। इन से आत्मा का अनुग्रह या उपघात नहीं होता। आत्मा का उपघात करने वाला पुद्गल द्रव्य है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, वचन, आदि पुद्गल हैं। ये चेतन के संसर्ग से चेतनायमान होते हैं। विश्व में रूप, रस, गन्ध, और स्पर्शवाले जितने भी पदार्थ हैं, वे सभी पौद्गलिक हैं। शब्द, प्रकाश, छाया, अन्धकार, सर्दी-गर्मी सभी पुद्गल स्कन्धों की अवस्थाएँ हैं। और वही आसक्ति का मूल केन्द्र है। शरीर के किसी भी स्नायु-संस्थान के विकृत होने पर उसका ज्ञान-विकास रुक जाता है। तथापि यह सत्य है कि आत्मा का सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अस्तित्त्व है। वह तैल व बत्ती से भिन्न ज्योति की तरह है। जिस शक्ति से शरीर चिन्मय हो रहा है, वह अन्तःज्योति शरीर से भिन्न है। आत्मा सूक्ष्म कार्मण शरीर के कारण स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर दूसरे स्थूल शरीर को धारण करता है। इसलिये आत्मा और अनात्मा का ज्ञान साधना के लिये आवश्यक है। इसी तरह दण्ड, अदण्ड, क्रिया, अक्रिया आदि की चर्चा भी मुमुक्षुओं के लिए उपयोगी है।

भारतीय चिन्तन में लोकवाद की चर्चा बड़े विस्तार के साथ हुयी है। विश्व के सभी द्रव्यों का आधार "लोक" है।[८] लोक में अनन्त जीव भी हैं तो अजीव भी। धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जहाँ रहते हैं, वह लोक है।[९] लोक को समग्र भाव से, सन्तति की दृष्टि से निहारें तो वह अनादि अनन्त है। न कोई द्रव्य नष्ट हो सकता और न कोई असत् से सत् बनता है। जो द्रव्यसंख्या है, उसमें एक परमाणु की भी अभिवृद्धि कोई नहीं कर सकता है। प्रतिसमय विनष्ट होने वाले द्रव्यगत पर्यायों की दृष्टि से लोक सान्त है। द्रव्य दृष्टि से लोक शाश्वत है। पर्याय दृष्टि से अशाश्वत है। कार्यों की उत्पत्ति में काल एक साधारण निमित्त है, जो प्रत्येक परिणमनशील द्रव्य के परिणाम में सहायक होता है। वह भी अपने आप में अन्य द्रव्यों की भाँति परिणमनशील है। आकाश के जितने हिस्से तक छहों द्रव्य पाये जाते हैं, वह लोक है। और उससे परे केवल आकाशमात्र अलोक है। क्योंकि जीव और पुद्गल की गति और स्थिति में धर्म और अधर्म द्रव्य साधारण निमित्त होते हैं। जहाँ तक धर्म और अधर्म द्रव्य का सद्भाव है, वहाँ तक जीव और पुद्गल की गति और अवस्थिति सम्भव है। एतदर्थ ही आकाश के उस पुरुषाकार मध्यभाग को लोक कहा है जो धर्म, अधर्म द्रव्य के बराबर है। धर्म, अधर्म, लोक के मापदण्ड के सदृश है। इसीलिये लोक की तरह अलोक भी एक है। जैन आगम साहित्य में जीव और अजीव का जैसा स्पष्ट वर्णन है वैसा बौद्ध साहित्य में नहीं है। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय में लोक अनन्त है? या सान्त है? इस प्रश्न के उत्तर को तथागत बुद्ध ने अव्याकृत कहकर टालने का प्रयास किया है। उन्होंने लोक के सम्बन्ध में इतना ही कहा—रूप, रस, आदि पाँच काम गुण से युक्त हैं। जो मानव इन पाँच कामगुणों का परित्याग करता है, वही लोक के अन्त में विचरण करता है।

---

८. भायणं सव्वदव्याणं—उत्तराध्ययन २८/९

९. उत्तराध्ययन, सूत्र २८/७

पुण्य और पाप ये दोनों शब्द भारतीय साहित्य में अत्यधिक विश्रुत हैं। शुभ कर्म पुण्य है, अशुभ कर्म पाप हैं। पुण्य से जीव को सुख का और पाप से दुःख का अनुभव होता है। पुण्य और पाप इन दोनों के द्रव्य और भाव ये दो प्रकार हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को सुखानुभूति होती है वह द्रव्य कर्म है और जीव के दया, करुणा, दान, भावना, आदि शुभ परिणाम भाव पुण्य हैं। उसी तरह जिस कर्म के उदय से जीव को दुःख का अनुभव होता है, वह द्रव्य पाप है। और जीव के अशुभ परिणाम भावपाप हैं। सांख्यकारिका[10] में भी पुण्य से ऊर्ध्वगमन और पाप से अधोगमन बताया है। जैनाचार्यों ने भी शुभ अध्यवसाय का फल स्वर्ग और अशुभ अध्यवसाय का फल नरक है[11] कहा है।

पुण्य और पाप की भाँति बन्ध और मोक्ष की चर्चा भी भारतीय साहित्य में विस्तार के साथ मिलती है। दो पदार्थों का विशिष्ट सम्बन्ध बन्ध कहलाता है। यों बन्ध को यहाँ पर एक कहा है। पर उस के दो प्रकार हैं। एक भाव बन्ध और दूसरा द्रव्य बन्ध। जिन राग, द्वेष और मोह प्रभृति विकारी भावों से कर्म का बन्ध होता है वे भाव भावबन्ध कहलाते हैं। और कर्म-पुद्गलों का आत्मप्रदेशों से सम्बन्ध होना द्रव्यबन्ध है। द्रव्यबन्ध आत्मा और पुद्गल का सम्बन्ध है। यह पूर्ण सत्य है कि दो द्रव्यों का संयोग हो सकता हैं पर तादात्म्य नहीं। दो मिलकर एक से प्रतीत हो सकते हैं पर एक की सत्ता समाप्त होकर एक शेष नहीं रह सकता।

आचार्य उमास्वाति[12] ने लिखा है कि योग के कारण समस्त आत्मप्रदेशों के साथ सूक्ष्म कर्म-पुद्गल एक क्षेत्रावग्राही हो जाते हैं। अर्थात् जिस क्षेत्र में आत्मप्रदेश हैं उसी क्षेत्र में रहे हुए कर्म-पुद्गल जीव के साथ बद्ध हो जाते हैं। इसे प्रदेशबन्ध कहते हैं। आत्मा और कर्मशरीर का एक क्षेत्रावगाह के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का कोई रासायनिक-मिश्रण नहीं होता। प्राचीन कर्म-पुद्गलों से नवीन कर्म-पुद्गलों का रासायनिक मिश्रण होता है, पर आत्म-प्रदेशों से नहीं। जीव के रागादि भावों से आत्मप्रदेशों में एक प्रकम्पन होता है। उससे कर्म-योग्य पुद्गल आकर्षित होते हैं। इस योग से उन कर्म वर्गणाओं में प्रकृति, यानि एक विशेष प्रकार का स्वभाव उत्पन्न होता है। यदि वे कर्मपुद्गल ज्ञान में विघ्न उत्पन्न करने वाली क्रिया से आकर्षित होते हैं तो उन में ज्ञान के आच्छादन करने का स्वभाव पड़ेगा। यदि रागादि कषाओं से आकर्षित किये जायेंगे तो वे कषायों की तीव्रता और मन्दता के अनुसार उस कर्म-पुद्गल में फल देने की प्रकृति उत्पन्न होती है। प्रदेशबन्ध और प्रकृति-बन्ध योग से होता है। और स्थिति और अनुभाग-बन्ध कषाय से होता है।

कर्मबन्ध से पूर्णतया मुक्त होना मोक्ष है। मोक्ष का सीधा और सरल अर्थ है-छूटना ! अनादिकाल से जिन कर्मबन्धनों से आत्मा जकड़ा हुआ था, वे बन्धन कट जाने से आत्मा पूर्णस्वतन्त्र हो जाता है। उसे मुक्ति कहते हैं। बौद्ध-परम्परा में मोक्ष के अर्थ में "निर्वाण" शब्द का प्रयोग हुआ है। उन्होंने क्लेशों के बुझने के अर्थ में आत्मा का बुझना मान लिया है, जिस से निर्वाण का सही स्वरूप ओझल हो गया है। कर्मों को नष्ट करने का इतना ही अर्थ है कि कर्मपुद्गल आत्मा से पृथक् हो जाते हैं। उन कर्मों का अत्यन्त विनाश नहीं होता।[13] किसी भी सत् का अत्यन्त विनाश तीनों-कालों में नहीं होता। पर्यायान्तर होना ही नाश कहा गया है। जो कर्म-

---

१०. —धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण। सांख्य—४४

११. —क-प्रवचनसार १, ९, ११, १२, १३, २, ८९. ख-समयसार—१५५-१६१

१२. नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः
—तत्त्वार्थसूत्र ८/१४

१३. जीवाद् विश्लेषणं भेदः सतो नात्यन्तसंक्षयः —आप्तपरीक्षा—११५

पुद्गल आत्मा के साथ सम्पृक्त होने से आत्मगुणों का हनन करते थे, जिस से वे कर्मत्व पर्याय से युक्त थे, वह कर्मत्व पर्याय नष्ट हो जाती है। जैसे कर्मबन्धन से मुक्त होकर—आत्मा शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही कर्म पुद्गल भी कर्मत्व—पर्याय से मुक्त हो जाता है। जैन दृष्टि से आत्मा और कर्म पुद्गल का सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष है।

बन्ध और मोक्ष के पश्चात् एक आश्रव और एक संवर का उल्लेख किया है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये आश्रव हैं। जिन भावों से कर्मों का आश्रव होता है, वह भावाश्रव है और कर्म द्रव्य का आना द्रव्याश्रव है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि पुद्गलों में कर्मत्व पर्याय का विकसित होना द्रव्याश्रव है। सामान्य रूप से आश्रव के दो प्रकार हैं—एक साम्परायिक आश्रव, जो कषायानुरञ्जित योग से होने वाले बन्ध का कारण होकर संसार की अभिवृद्धि करता है। दूसरा ईर्यापथ आश्रव जो केवल योग से होने वाला है। इस में कषायाभाव होने से स्थिति एवं विपाक रूप बन्धन नहीं होता। यह आश्रव वीतराग जीवन्मुक्त महात्माओं को ही होता है। कषाय और योग प्रत्येक संसारी आत्मा में रहा हुआ है। जिस से सप्त कर्मो का प्रतिसमय आश्रव होता रहता है। परभव में शरीर आदि की प्राप्ति के लिये आयु:कर्म का आश्रव वर्तमान आयु के त्रिभाग में होता है, अथवा नौवें भाग में होता है, या सत्तावीसवें भाग में होता है अथवा अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर।

आश्रव से विपरीत संवर है। जिन कारणों से कर्मों का बन्ध होता है, उन का निरोध कर देना 'संवर' हैं। मुख्य रूप से आश्रव योग से होता है। अतः योग की निवृत्ति ही संवर है।

तथागत बुद्ध ने संवर का उल्लेख किया है। उन्होंने विभाग कर इस प्रकार प्रतिपादन किया है—(१) संवर से इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है और इन्द्रियों का संवर होने से वह गुप्तेन्द्रिय बनता है, जिस से इन्द्रिय-जन्य आश्रव नहीं होता। (२) प्रतिसेवना—भोजन, पान, वस्त्र, चिकित्सा, आदि न करने पर मन प्रसन्न नहीं रहता और मन प्रसन्न न रहने से कर्मबन्ध होता है। अतः मन को प्रसन्न रखने के लिये इन का उपयोग करना चाहिये जिस से आश्रव का निरोध हो। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि भोगोपभोग की दृष्टि से उसका उपयोग किया जाये तो वह आश्रव का कारण है। (३) अधिवासना—किसी में शारीरिक कष्ट सहन करने की क्षमता है। उसे शारीरिक कष्ट पसन्द है। तो उसे कष्ट सहन से आश्रव-निरोध होता है। (४) परिवर्जन—क्रूर हाथी, घोड़ा, आदि पशु, सर्प बिच्छू आदि जन्तु, गर्त कण्टक स्थान, पाप मित्र ये सभी दु:ख के कारण हैं। उन दु:ख के कारणों को त्यागने से आश्रव का निरोध होता है। (५) विनोदना-हिंसावितर्क, पापवितर्क, काम-वितर्क, आदि बन्धक वितर्कों की भंजना न करने से तज्जन्य आश्रव का निरुन्धन होता है। (६) भावना—शुभ भावना से आश्रव का निरुन्धन होता है। यदि शुभ भावना न की जायेगी तो अशुभ भावनाएँ उद्बुद्ध होंगी। अतः अशुभ भावना का निरोध करने हेतु शुभ भावना भाना आश्रव के निरुन्धन का कारण है।

—अंगुत्तर निकाय ६। ५८

आश्रव और संवर के पश्चात्—वेदना और निर्जरा का उल्लेख है। कर्मों का अनुभव करना "वेदन" है। वह दो प्रकार का है। अबाधाकाल की स्थिति पूर्ण होने पर यथाकाल वेदन करना और कितने ही कर्म, जो कालान्तर में उदय में आने योग्य हैं, उन्हें जीव अपने अध्यवसाय विशेष से स्थिति का परिपाक होने के पूर्व ही उदयावलि में खींच लाता है, यह उदीरणा है। उदीरणा के द्वारा खींच कर लाये हुये कर्म का वेदन करना यह दूसरा प्रकार

---

१. सोवक्कमाउया पुण, सेसतिभागे अहव नवमभागे। सत्तावीसइमे वा, अंतमुहुत्तं तिमवावि।

—संग्रहणी सूत्र गा, ३०२

हैं। बौद्धों ने आश्रव का कारण अविद्या बताया है। अविद्या का निरोध करना ही आश्रव का निरोध करना है। उन्होंने आश्रव के कामाश्रव और भवाश्रव और अविद्याश्रव ऐसे तीन भेद किये हैं। —अंगुत्तरनिकाय ३,५८,६,६३

वेदना के पश्चात् निर्जरा का उल्लेख है। निर्जरा का अर्थ है संचित कर्मों का नाश होना।[१४] आचार्य हेमचन्द्र ने[१५] लिखा है कि भवभ्रमण के बीजभूत कर्म है। उन कर्मो का आत्म-प्रदेशों से पृथक् हो जाना "निर्जरा" है। वह निर्जरा दो प्रकार की है—सकामनिर्जरा और अकामनिर्जरा। प्रयत्न और ज्ञानपूर्वक तप आदि क्रियाओं के द्वारा कर्मो का नष्ट होना सकामनिर्जरा है। सकामनिर्जरा में आत्मा और मोक्ष का विवेक होता है, जिस से ऐसी अल्पतम निर्जरा भी विराट् फल प्रदान करने वाली होती है।[१६] अज्ञानी जीव जितने कर्मो को करोड़ों वर्षो में नहीं खपा सकता, उतने कर्म ज्ञानी एक श्वासोच्छ्वास जितने अल्प समय में खपा देता है। अकाम निर्जरा वह है—कर्म की स्थिति पूर्ण होने पर कर्म का वेदन हो जाने पर उनका पृथक् हो जाना। परतन्त्रता के कारण भोग उपभोग का निरोध होने से भी अकामनिर्जरा होती है। जैसे नारकी या तिर्यञ्च गतियों में जीव असह्य वेदनाएँ, घोरातिघोर यातनाएँ छेदन-भेदन को सहन करता है। और मानव जीवन में भी मजबूरी से अनिच्छतापूर्वक कष्टों को सहन करता है। वह दो प्रकार की है। एक औपक्रमिक या अविपाक निर्जरा, दूसरी अनौपक्रमिक या सविपाक निर्जरा। तप आदि से कर्मो को बलात् उदय में लाकर बिना फल दिये झड़ा देना अविपाक निर्जरा है। स्वाभाविक रूप से प्रतिसमय कर्मों का फल देकर झड़ते जाना सविपाक निर्जरा है। प्रति-पल-प्रतिक्षण प्रत्येक प्राणी को सविपाक निर्जरा होती रहती है। पुराने कर्मो के स्थान को नूतन कर्म ग्रहण करते रहते हैं। तप रूपी अग्नि से—कर्मों को फल देने से पूर्व ही भस्म कर देना औपक्रमिक निर्जरा है। कर्मो का विपाक-फल टल नहीं सकता "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" यह नियम प्रदेशोदय पर तो लागू होता है पर विपाकोदय पर नहीं। प्रस्तुत कथन प्रवाहपतित साधारण सांसारिक आत्माओं पर लागू होता है। पुरुषार्थी साधक ध्यान रूपी अग्नि में समस्त कर्मों को एक क्षण में भस्म कर देते हैं। इस प्रकार प्रथम समवाय में जैन दर्शन के मुख्य तत्व आत्मा, अनात्मा, बन्ध, बन्ध के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारण आदि पर प्रकाश डाला है। आत्मा के साथ अनात्मा का जो निरूपण किया गया है, वह इसलिये आवश्यक है कि अजीव-पौद्गलिक कर्मों के कारण आत्मा स्व-स्वरूप से च्युत हो रहा हैं। संग्रह नय की अपेक्षा से शास्त्रकार ने गुरुगम्भीर-रहस्यों को इस में व्यक्त किया है।

द्वितीय समवाय : विश्लेषण

दूसरे समवाय में दो प्रकार के दण्ड, दो प्रकार के बन्ध, दो राशि, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे, नारकीय और देवों की दो पल्योपम और दो सागरोपम की स्थिति, दो भव करके मोक्ष जाने वाले भवसिद्धिक जीवों का वर्णन है। इस में सर्वप्रथम दण्ड का वर्णन है। अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड, ये दण्ड के दो प्रकार हैं। स्वयं के शरीर की रक्षा के लिये कुटुम्ब, परिवार, समाज, देश, और राष्ट्र के पालन-पोषण के लिये जो हिंसादि रूप पाप प्रवृत्ति की जाती है, वह अर्थदण्ड है। अर्थदण्ड में आरंभ करने की भावना मुख्य नहीं होती। कर्तव्य से उत्प्रेरित होकर प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये आरम्भ किया जाता है। अनर्थ-दण्ड का अर्थ है—बिना किसी प्रयोजन के—निरर्थक पाप करना। अर्थ और अनर्थ दण्ड को नापने का थर्मामीटर

१४ क—राजवार्तिक ७।१४।४०।१७
ख—द्रव्यसंग्रह ३६।१५०
ग—भावनाशतक ६७

१५ योगशास्त्र ४।८६

१६ क—महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक १०१
ख— प्रवचनसार ४।३८

विवेक है। कितने ही कार्य परिस्थिति-विशेष से अर्थ रूप होते हैं। परिस्थिति परिवर्तन होने पर वे ही कार्य अनर्थ रूप भी हो जाते है। आचार्य उमास्वाति[१७] ने अर्थ और अनर्थ शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—जिससे उपभोग, परिभोग होता है वह श्रावक के लिये अर्थ है और उस से भिन्न जिस में उपभोग-परिभोग नहीं होता है, वह अनर्थदण्ड है। आचार्य अभयदेव[१८] ने लिखा है कि अर्थ का अभिप्राय "प्रयोजन" है। गृहस्थ अपने खेत, घर, धान्य, धन की रक्षा या शरीर पालन प्रभृति प्रवृत्तियाँ करता है। उन सभी प्रवृत्तियों में आरम्भ के द्वारा प्राणियों का उपमर्दन होता है। वह अर्थदण्ड है। दण्ड, निग्रह, यातना और विनाश ये चारों शब्द एकार्थक हैं। अर्थदण्ड के विपरीत केवल प्रमाद, कुतूहल, अविवेक पूर्वक निष्प्रयोजन निरर्थक प्राणियों का विघात करना अनर्थदण्ड है। साधक अनर्थदण्ड से बचता है।

अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड के पश्चात् जीवराशि और अजीवराशि का कथन किया गया है। टीकाकार आचार्य अभयदेव[१९] ने टीका में प्रस्तुत विषय को प्रज्ञापना सूत्र से उसके भेद और प्रभेदों को समझने का सूचन किया है। हम यहाँ पर उतने विस्तार में न जाकर पाठकों को वह स्थल देखने का संकेत करते हुये यह बताना चाहेंगे कि भगवान् महावीर के समय जीव और अजीव तत्त्वों की संख्या के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद थे। एक ओर उपनिषदों का अभिमत था कि सम्पूर्ण-विश्व एक ही तत्त्व का परिणाम है तो दूसरी ओर सांख्य के अभिमत से जीव और अजीव एक है। बौद्धों का मन्तव्य है कि अनेक चित्त और अनेक रूप हैं। इस दृष्टि से जैन दर्शन का मन्तव्य आवश्यक था। अन्य दर्शनों में केवल संख्या का निरूपण है। जब कि प्रज्ञापना सूत्र में अनेक दृष्टियों से चिन्तन किया गया है। जिस तरह से जीवों पर चिन्तन है, उसी तरह से अजीव के सम्बन्ध में भी चिन्तन है। यहाँ तो केवल अति संक्षेप में सूचना दी गई है।[२०]

बन्ध के दो प्रकार बताये हैं, रागबन्ध और द्वेषबन्ध। यह बन्ध केवल मोहनीय कर्म को लक्ष्य में लेकर के बताया गया है। राग में माया और लोभ का समावेश है और द्वेष में क्रोध और मान का समावेश है। अंगुत्तर निकाय में तीन प्रकार का समुदाय माना है लोभ से, द्वेष से और मोह से। उन सभी में मोह अधिक प्रबल हैं।[२१] इस प्रकार दो राशि का उल्लेख है। यह विशाल संसार दो तत्त्वों से निर्मित है। सृष्टि का यह विशाल रथ उन्हीं दो चक्रों पर चल रहा है। एक तत्व है चेतन और दूसरा तत्त्व है जड़। जीव और अजीव ये दोनों संसार नाटक के सूत्रधार हैं। वस्तुतः इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया ही संसार है। जिस दिन ये दोनों साथी बिछुड़ जाते हैं उस दिन संसार समाप्त हो जाता है। एक जीव की दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध का विच्छेद होता है पर सभी जीवों की अपेक्षा से नहीं। अतः राशि के दो प्रकार बताये हैं। द्वितीय स्थान में दो की संख्या को लेकर चिन्तन है। इसमें से बहुत सारे सूत्र ज्यों के त्यों स्थानांग में भी प्राप्त हैं।

तृतीय समवाय : विश्लेषण

तृतीय स्थान में तीन दण्ड, तीन गुप्ति, तीन शल्य, तीन गौरव, तीन विराधना, मृगाशिर पुष्य, आदि के तीन तारे, नरक, और देवों की तीन पल्योपम, व तीन सागरोपम की स्थिति तथा कितने ही भवसिद्धिक जीव तीन भव करके मुक्त होंगे, आदि का निरूपण है।

प्रस्तुत समवाय में तीन दण्ड का उल्लेख है। दुष्प्रवृत्ति में संलग्न मन, वचन और काय, ये तीन दण्ड हैं।

१७—उपभोगपरिभोगौ अस्याऽगारिणोऽर्थः। तद्व्यतिरिक्तोऽनर्थः। —तत्त्वार्थभाष्य ७-१६

१८—उपासकदशांग, १-टीका

१९. समवायांग सूत्र १४९, अभयदेव वृत्ति

२०. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ. २३९ से २४१

२१. अंगुत्तरनिकाय ३, ९७ तथा ६।३९

इन से चारित्र रूप ऐश्वर्य का तिरस्कार होता है। आत्मा दण्डित होता है। इसलिये इन्हें दण्ड कहा है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति जो संसाराभिमुख है, वह दण्ड हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को अपने मार्ग में स्थापित करना गुप्ति है।[२२] गुप्ति के तीन प्रकार हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मनोगुप्ति का अर्थ है संरम्भ समारम्भ, और आरम्भ में प्रवृत्त मन को रोकना।[२३] अपर शब्दों में कहा जाये तो राग-द्वेष आदि कषायों से मन को निवृत्त करना मनोगुप्ति है। असत्य भाषण आदि से निवृत्त होना या मौन धारण करना, वचनगुप्ति है।[२४] असत्य कठोर आत्मश्लाघी वचनों से दूसरों के मन का घात होता है अतः ऐसे वचन का निरोध करना चाहिए।[२५] अज्ञानवश शारीरिक क्रियाओं द्वारा बहुत से जीवों का घात होता है। अतः अकुशल कायिक प्रवृत्तियों का विरोध करना कायगुप्ति है।[२६]

साधना की प्रगति में शल्य बाधक है। शल्य अन्दर ही अन्दर कष्ट देता है। वैसे ही माया, निदान, और मिथ्यादर्शन ये साधना को विकृत करते हैं। साधक को इन से बचना चाहिये। अभिमान और लोभ से आत्मा भारी बनता है और अपने आप को गौरवशाली मानता है। पर वह अभिमान से उत्तप्त हुए चित्त की एक विकृत स्थिति है। साधना की दृष्टि से वह गौरव नहीं, रौरव है। इसलिये साधक को तीनों प्रकार के गौरव से बचने का संकेत किया है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये—तीनों मोक्ष-मार्ग हैं। इन्हें रत्नत्रय भी कहा गया है। यहां पर ज्ञान से सम्यग्ज्ञान को लिया गया है जो सम्यग्दर्शन पूर्वक होता है। जीव मिथ्याज्ञान के कारण अपने स्वरूप को विस्मृत होकर, पर द्रव्य में आत्म बुद्धि करता है। उस का समस्त क्रियाकलाप शरीराश्रित होता है। लौकिक यश, लाभ, आदि की दृष्टि से वह धर्म का आचरण करता है। उस में स्व और पर का विवेक नहीं होता है। किन्तु सम्यग्दर्शन द्वारा साधक को स्व और पर का यथार्थ परिज्ञान हो जाता है।[२७] वह संशय, विपर्यय, और अनध्यवसाय—इन तीन दोषों को दूर कर आत्म-स्वरूप को जानता है।[२८] आत्मस्वरूप को जानना ही निश्चय दृष्टि से सम्यग्ज्ञान है।[२९]

जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष तत्त्व के प्रति श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से यथार्थ, अयथार्थ का बोध उत्पन्न होता है। रागादि कषाय परिणामों के परिमार्जन के लिये अहिंसा, सत्य, आदि व्रतों का पालन "सम्यग्-चारित्र" है। इन तीनों की विराधना करने से साधक साधना से च्युत होता है। इस प्रकार तृतीय स्थान में तीन संख्या को लेकर अनेक तथ्य उद्घाटित किये गये हैं।

---

२२. (क) उत्तराध्ययन अं. २४, गा. २६
 (ख) सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति :—तत्त्वार्थसूत्र ९/४
 (ग) ज्ञानार्णव १८/४
 (घ) आर्हत् दर्शन दीपिका ५/६४२
 (ङ) गोपनं गुप्तिः—मनः प्रभृतीनां कुशलानां प्रवर्तनमकुशलानां च निवर्त्तनमिति
२३. रागादिणियत्ती मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ति—मूलाराधना ६/११८७
२४. योगशास्त्र १/४२
२५. उत्तराध्ययन २४/२४-२५
२६. उत्तराध्ययन २४/२५
२७. स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्। —प्रमेयरत्नमाला-१
२८. तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
 संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे ॥—छहढाला ४/६
२९. छहढाला ३/२।

चतुर्थ समवाय : विश्लेषण

चतुर्थ स्थानक समवाय में चार कपाय, चार ध्यान, चार विकथाएं, चार संज्ञाएं, चार प्रकार के वन्ध, अनुराधा, पूर्वापाढ़ा के तारों, नारकीय, व देवों की चार पल्योपम व सागरोपम स्थिति का उल्लेख करते हुये कितने ही जीवों के चार भव कर मोक्ष जाने का वर्णन है।

आत्मा के परिणामों को जो कलुपित करता है, वह कपाय है। कपाय से आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप नष्ट होता है। कपाय आत्मधन को लूटने वाले तस्कर हैं। वे आत्मा में छिपे हुए दोप हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कपाय के चार प्रकार हैं। इन्हें चण्डाल चौकड़ी कहा जाता है। कपाय से मुक्त होना ही सच्ची मुक्ति है। 'कपायमुक्तिः किल मुक्तिरेव।' कपाय के अनेक भेद-प्रभेद हैं। कपाय कर्मजनित और साथ ही कर्मजनक वैकारिक प्रवृत्ति है। उस प्रवृत्ति का परित्याग कर आत्मस्वरूप में रमण करना, यह साधक का लक्ष्य होना चाहिये।

कपाय के पश्चात् चार ध्यान का उल्लेख है। ध्यान का अर्थ है—चित्त को किसी विपय पर केन्द्रित करना।[३०] चित्त को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना अत्यन्त कठिन है। वह अन्तमुहूर्त से अधिक एकाग्र नहीं रह सकता।[३१] आचार्य शुभचन्द्र ने लिखा है—जव साधक ध्यान में तन्मय हो जाता है तव उस में द्वैतज्ञान नहीं रहता। वह समस्त राग-द्वेष से ऊपर उठकर आत्मा स्व-रूप में ही निमग्न हो जाता है।[३२] उसे तत्त्वानुशासन[३३] में समरसी भाव, और ज्ञानार्णव[३४] में सवीर्य ध्यान कहा है। ध्यान के लिये मुख्य रूप से तीन वातें अपेक्षित हैं—ध्याता, ध्येय और ध्यान।[३५] ध्यान करने वाला ध्याता है। जिसका ध्यान किया जाता है, वह—ध्येय है और ध्याता का ध्येय में स्थिर हो जाना "ध्यान" है।[३५] ध्यान-साधना के लिये परिग्रह का त्याग, कपायों का निग्रह, व्रतों का धारण और इन्द्रिय-विजय करना आवश्यक है। स्थानांग[३६], भगवती[३७], आवश्यकनिर्युक्ति[३८], आदि में समवायांग की तरह ही—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद प्रतिपादित किये गये हैं। इनमें प्रारम्भ के दो ध्यान अप्रशस्त हैं, और अन्तिम दो प्रशस्त हैं। योगग्रन्थों में अन्य दृष्टियों से ध्यान के भेद-प्रभेदों की चर्चा है। पर हम यहाँ उन भेद-प्रभेदों की चर्चा न कर आगम में आये हुए चार ध्यानों पर ही संक्षेप में चिन्तन करेंगे। आर्ति नाम दुःख या पीडा का है उसमें से जो उत्पन्न हो वह आर्त

---

३०. क—आवश्यक निर्युक्ति १४५९
ख—ध्यानशतक-२,
ग—नव पदार्थ-पृ० ६६८
३१. क—ध्यानशतक ३,
ख—तत्त्वार्थसूत्र ९/२८
ग—योगप्रदीप १५/३३
३२. योगप्रदीप १३८
३३. तत्त्वानुशासन ६०-६१
३४. ज्ञानार्णव, अध्याय २८
३५. योगशास्त्र ७/१
३५. तत्त्वानुशासन ६७
३६. स्थानांग ४/२४७
३७. भगवती श. २५ उद्दे. ७
३८. आवश्यकनिर्युक्ति, १४५८

है अर्थात् दुःख के निमित्त से या दुःख में होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान है।[39] यह ध्यान मनोज्ञ वस्तु के वियोग और अमनोज्ञ वस्तु के संयोग से होता है। राग भाव से मन में एक उन्मत्तता उत्पन्न होती है। फलतः अवांछनीय वस्तु की उपलब्धि और वांछनीय की अनुपलब्धि होने पर जीव दुःखी होता है। अनिष्ट संयोग, इष्ट-वियोग, रोग चिन्ता, या रोगार्त और भोगार्त्त ये चार आर्त्तध्यान के भेद[40] हैं। इस ध्यान से जीव तिर्यञ्च गति को प्राप्त होता है। ऐसे ध्यानी का मन आत्मा से हटकर सांसारिक वस्तुओं में केन्द्रित होता है। **रौद्रध्यान** वह है जिसमें जीव स्वभाव से सभी प्रकार के पापाचार करने में समुद्यत होता है। क्रूर अथवा कठोर भाववाले प्राणी को रुद्र कहते हैं। वह निर्दयी वनकर क्रूर कार्यों का कर्त्ता वनता है। इसलिये उसे रौद्र ध्यान कहा है। इस ध्यान में हिंसा, झूठ, चोरी, धन रक्षा व छेदन-भेदन आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का चिन्तन होता है इस ध्यान के हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, संरक्षानन्द, ये चार प्रकार हैं।[41] इसीलिये इन दोनों ध्यानों को हेय और अशुभ माना गया है। **धर्मध्यान**—आत्मविकास का प्रथम चरण है। इस ध्यान में साधक आत्मचिन्तन में प्रवृत्त होता है। ज्ञानसार[42] में वताया गया है कि शास्त्रवाक्यों के अर्थ, धर्ममार्गणाएँ, व्रत, गुप्ति, समिति, आदि की भावनाओं का—चिन्तन करना धर्मध्यान है। इस ध्यान के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वैराग्य[43] अपेक्षित है। इनसे सहज रूप से मन स्थिर हो जाता है। आचार्य शुभचन्द्र ने धर्मध्यान की सिद्धि के लिये मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य इन चार भावनाओं के चिन्तन पर भी वल दिया है।[44] जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण[45] ने स्पष्ट किया है कि धर्मध्यान का सम्यग् आराधन एकान्त-शान्त स्थान में हो सकता है। ध्यान का आसन सुख-कारक हो, जिससे ध्यान की मर्यादा स्थिर रह सके। यह ध्यान पद्मासन से वैठकर, खड़े होकर या लेट कर भी किया जा सकता है। मानसिक चंचलता के कारण कभी-कभी साधक का मन ध्यान में स्थिर नहीं होता। इसलिये शास्त्र में धर्मध्यान के चार आलम्वन वताये हैं।[46] (१) **आज्ञा विचय**—सर्वज्ञ के वचनों में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं है।[47] इसलिये आप्त वचनों का आलम्वन लेना। यहाँ "विचय" शब्द का अर्थ "चिन्तन" है। (२) **अपायविचय**—कर्म नष्ट करने के लिये और आत्म तत्त्व की उपलब्धि के लिये चिन्तन करना। (३) **विपाकविचय**—कर्मों के शुभ-अशुभ फल के सम्बन्ध में चिन्तन करना अथवा कर्म के प्रभाव से प्रतिक्षण उदित होने वाली प्रक्रियाओं के सम्वन्ध में विचार करना। (४) **संस्थानविचय**—यह जगत् उत्पाद व्यय और ध्रौव्य युक्त है। द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से उसमें उत्पाद और व्यय होता है। संसार के नित्य-अनित्य स्वरूप का चिन्तन होने से वैराग्य भावना सुदृढ़ होती है, जिससे साधक आत्म-स्वरूप का अनुभव

---

३९. स्थानांग ४/२४७

४०. क—स्थानांग ४/२४७ ख—आवश्यक अध्ययन-४

४१. क—तत्त्वार्थ सूत्र ९/३६
ख—ज्ञानार्णव २४/३

४२. ज्ञानसार, १६

४३. ध्यानशतक ३०-३४

४४. चतस्रो भावना धन्याः, पुराणपुरुषाश्रिताः।
मैत्र्यादयश्चिरं चित्ते विधेया धर्मसिद्धये ॥
—ज्ञानार्णव २५/४

४५. ध्यानशतक, श्लोक ३८,३९,

४६. क—स्थानाङ्ग, ख—योगशास्त्र १०/७, ग—ज्ञानार्णव ३०/५, घ—तत्त्वानुशासन ९/८

४७. योगशास्त्र १०-८, ९ ! ख—ज्ञानार्णव-३८

करने का प्रयत्न करता है। आचार्य हेमचन्द्र,[48] योगीन्दुदेव,[49] अमितगति,[50] आचार्य हरिभद्र[51] उपाध्याय यशोविजय आदि ने धर्मध्यान के चार ध्येय बताये हैं। वे ये हैं :—(१) पिण्डस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत। पिण्डस्थ ध्यान का अर्थ शरीर के विभिन्न भागों पर मन को केन्द्रित करना। पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तत्त्ववती, इन पाँच धारणाओं के माध्यम से साधक उत्तरोत्तर आत्म-केन्द्र में ध्यानस्थ होता है। चतुर्विध धारणाओं से युक्त पिण्डस्थ ध्यान का अभ्यास करने से मन स्थिर होता है। जिससे शरीर और कर्म के सम्बन्ध को भिन्न रूप से देखा जाता है। कर्म नष्ट कर शुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन इसमें होता है। दूसरा पदस्थ ध्यान अर्थात् अपनी रुचि के अनुसार मन्त्राक्षर पदों का अवलम्बन लेकर किया जाने वाला ध्यान है। इस ध्यान में मुख्य रूप से शब्द आलम्बन होता है। अक्षर पर ध्यान करने से आचार्य शुभचन्द्र[52] ने इसे वर्णमात्रिका ध्यान भी कहा है। इस ध्यान में नाभि-कमल, हृदयकमल और मुखकमल की कमनीय कल्पना की जाती है। नाभिकमल में सोलह पत्रों वाले कमल पर सोलह स्वरों का ध्यान किया जाता है। हृदयकमल में कणिका व पत्रों सहित चौबीस दल वाले कमल की कल्पना कर उस पर क, ख, आदि पच्चीस वर्णो का ध्यान किया जाता है। उसी तरह मुख-कमल पर आठ वर्णों का ध्यान किया जाता है। मन्त्रों और वर्णों में श्रेष्ठ ध्यान 'अर्हन्' का माना गया है, जो रेफ से युक्तकला व बिन्दु से आक्रान्त अनाहत सहित-मन्त्रराज है।[53] इस मन्त्रराज पर ध्यान किया जाता है। इनके अतिरिक्त अनेक विधियों का निरूपण योगशास्त्र व ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों में विस्तार के साथ है। इस ध्यान में साधक इन्द्रिय-लोलुपता से मुक्त होकर मन को अधिक विशुद्ध एवं एकाग्र बनाने का प्रयत्न करता है। तीसरा ध्यान "रूपस्थ" है इसमें राग-द्वेष आदि विकारों से रहित, समस्त सद्गुणों से युक्त, सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु का ध्यान किया जाता है। इस ध्यान में अर्हन्त के स्वरूप का अवलम्बन लेकर ध्यान का अभ्यास किया जाता है।[54] ध्यान का चौथा प्रकार "रूपातीत" ध्यान है। रूपातीत ध्यान का अर्थ है रूप, रंग से अतीत, निरञ्जन-निराकार ज्ञानमय आनन्द स्वरूप का स्मरण करना।[55] इस ध्यान में ध्याता और ध्येय में कोई अन्तर नहीं रहता। इसलिये इस अवस्था-विशेष को आचार्य हेमचन्द्र ने समरसी भाव कहा है।[56] इन चारों धर्मध्यान के प्रकारों में क्रमशः शरीर, अक्षर, सर्वज्ञ व निरञ्जन सिद्ध का चिन्तन किया जाता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ा जाता है। यह ध्यान सभी प्राणी नहीं कर सकते। साधक ही इस ध्यान के अधिकारी हैं। धर्मध्यान से मन में स्थैर्य, पवित्रता आ जाने से वह साधक आगे चलकर शुक्लध्यान का भी अधिकारी बन सकता है।

ध्यान का चौथा प्रकार "शुक्ल" ध्यान है। यह आत्मा की अत्यन्त विशुद्ध अवस्था है। श्रुत के आधार से मन की आत्यन्तिक स्थिरता और योग का निरोध शुक्ल ध्यान है। यह ध्यान कषायों के उपशान्त होने पर होता है। यह ध्यान वही साधक कर सकता है जो समताभाव में लीन हो,[57] और वज्र ऋषभ नाराच संहनन

---

४८. योगशास्त्र ७/८

४९. योगसार-९८

५०. योगसार प्राभृत

५१. योगशतक

५२. ज्ञानार्णव—३५-१,२,

५३. ज्ञानार्णव—३५/७-८।

५४. अर्हतो रूपमालम्ब्य ध्यानं रूपस्थमुच्यते —योगशास्त्र ९/७

५५. क—ज्ञानार्णव ३७-१६
    ख—योगशास्त्र १०/१

५६. योगशास्त्र १०/३,४

५७. योगशतक ९०

वाला हो।[५८] शुक्ल ध्यान के (१) पृथक्त्व-श्रुत-सविचार (२) एकत्व श्रुत अविचार (३) सूक्ष्म क्रियाप्रतिपत्ति (४) उत्सन्न क्रियाप्रतिपत्ति, इन प्रकारों में योग की दृष्टि से एकाग्रता की तरतमता बतलाई गयी है।[५९] मन, वचन, और काया का निरुन्धन एक साथ नहीं किया जाता। प्रथम दो प्रकार छद्मस्थ साधकों के लिये हैं और शेष दो प्रकार केवल ज्ञानी के लिये।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **पृथक्त्व श्रुत सविचार**—इस ध्यान में किसी एक द्रव्य में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य आदि पर्यायों का चिन्तन श्रुत को आधार बनाकर किया जाता है। ध्याता कभी अर्थ का चिन्तन करता है, कभी शब्द का चिन्तन करता है। इसी तरह मन, वचन, और काय के योगों में संक्रमण करता रहता है। एक शब्द से दूसरे शब्द पर, एक योग से दूसरे योग पर जाने के कारण ही यह ध्यान "सविचार" कहलाता है।[६१] (२) **एकत्वश्रुत अविचार**—श्रुत के आधार से अर्थ, व्यञ्जन, योग के संक्रमण से रहित एक पर्याय विषयक ध्यान। पहले ध्यान की तरह इसमें आलम्बन का परिवर्तन नहीं होता। एक ही पर्याय को ध्येय बनाया जाता है। इसमें समस्त कषाय शान्त हो जाते हैं। और आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय को नष्ट कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।[६२] (३) **सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति**—तेरहवें गुणस्थानवर्ती—अरिहन्त की आयु यदि केवल अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहती है और नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होती है, तब उन्हें समस्थितिक करने के लिये समुद्घात होता है। उससे आयुकर्म की स्थिति के बराबर सभी कर्मों की स्थिति हो जाती हैं। उस के पश्चात् बादरकाय योग का आलम्बन लेकर बादर मनोयोग एवं बादर वचन योग का निरोध किया जाता है। उस के पश्चात् सूक्ष्म काययोग का अवलम्बन लेकर बादर काययोग का निरोध किया जाता है। उस के बाद सूक्ष्मकाययोग का अवलम्बन लेकर सूक्ष्ममनोयोग और सूक्ष्मवचनयोग का निरोध किया जाता है। इस अवस्था में जो ध्यान प्रक्रिया होती है, वह सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान कहलाता है।[६३] इस ध्यान में मनोयोग और वचनयोग का पूर्ण रूप से निरोध हो जाने पर भी सूक्ष्म काययोग की श्वासोच्छ्वास आदि क्रिया ही अवशेष रहती है। (४) **उत्सन्न क्रियाप्रतिपाति**—इस ध्यान में जो सूक्ष्म क्रियाएं अवशिष्ट थीं, वह भी निवृत्त हो जाती हैं। पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतने समय में केवली भगवान् शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं। अघातिया कर्मों को नष्ट कर पूर्ण रूप से मुक्त हो जाते हैं।[६४]

ध्यान के पश्चात् चार विकथाओं का उल्लेख है। संयम बाधक वार्त्तालाप विकथा है। धर्मकथा से निर्जरा होती है तो विकथा से कर्मबन्धन। इसलिये उसे आश्रव में स्थान दिया गया है। भाषासमिति के साधक को विकथा का वर्जन करना चाहिए।[६५] जैन परम्परा में ही नहीं, बौद्ध परम्परा में भी विकथा को तिरच्छान कथा कहा है और उनके अनेक भेद बताये हैं—राजकथा, चोरकथा, महामात्यकथा, सेनाकथा, भयकथा, युद्धकथा, अन्नकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, मालाकथा, गन्धकथा, ज्ञातिकथा, यानकथा, ग्रामकथा, निगमकथा,

---

५८. योगशास्त्र ११/२
५९. स्थानांगसूत्र स्था. ४
६०. ज्ञानार्णव—४२-१५-१६
६१. क—योगशतक ११/५
    ख—ध्यानशतक ७/७/७८
६२. क—योगशास्त्र ११/१२ ख—ज्ञानार्णव ३९-२६
६३. क—योगशास्त्र ११—५३ से ५५
६४. ज्ञानार्णव ३९—४७,४९
६५. क—उत्तराध्ययन, अ. ३४ गा. ९ ख—आवश्यकसूत्र अ. ४

नगरकथा, जनपदकथा, स्त्रीकथा आदि।[66] प्रस्तुत समवाय में चार विकथाओं का उल्लेख है। स्थानांग[67] में एक-एक विकथा के चार-चार प्रकार भी बताये हैं। और सातवें स्थान में[68] सात विकथाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

विकथाओं के पश्चात् चार संज्ञाओं का उल्लेख है। सामान्यत: अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। दूसरे शब्दों में आसक्ति संज्ञा है। यहां पर संज्ञा के चार भेदों का निरूपण है। स्थानांग सूत्र में एक-एक संज्ञा के उत्पन्न होने के चार-चार कारण भी बताये हैं। दशवें स्थान[69] में संज्ञा के दश प्रकार भी बताये हैं। बन्ध के चार प्रकारों के सम्बन्ध में हम पूर्व लिख ही चुके हैं। इस तरह चतुर्थ समवाय में चिन्तन की विपुल सामग्री विद्यमान है।

पांचवां समवाय : एक विश्लेषण—

पांचवें समवाय में पांच क्रिया, पांच महाव्रत, पांच कामगुण, पांच आश्रवद्वार पांच संवरद्वार, पांच निर्जरास्थान, पांच समिति, पांच अस्तिकाय, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा धनिष्टा नक्षत्रों के पांच-पांच तारे, नारकों और देवों की पांच पल्योपम, और पांच सागरोपम की स्थिति तथा पांच भव कर मोक्ष जाने वाले भवसिद्धिक जीवों का उल्लेख है।

सर्वप्रथम क्रियाओं का उल्लेख है। क्रिया का अर्थ "करण" और व्यापार" है। कर्म-बन्ध में कारण बनने वाली चेष्टाएं "क्रिया" है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि मन, वचन और काया के दुष्ट व्यापार-विशेष को क्रिया कहते हैं। क्रिया कर्म-बन्ध की मूल है। वह संसार-जन्ममरण की जननी है। जिससे कर्म का आश्रव होता है, ऐसी प्रवृत्ति क्रिया कहलाती है। स्थानांग सूत्र[70] में भी क्रिया के जीव-क्रिया, अजीव क्रिया और फिर जीव-अजीव क्रिया के भेद-प्रभेदों की चर्चा है। यहाँ पर मुख्य रूप से पांच क्रियाओं का उल्लेख है। प्रज्ञापना-सूत्र में[71] पच्चीस क्रियाओं का भी वर्णन मिलता है। जिज्ञासु को वे प्रकरण देखने चाहिये। क्रियाओं से मुक्त होने के लिये महाव्रतों का निरूपण है।

महाव्रत श्रमणाचार का मूल है। आगम साहित्य में महाव्रतों के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण किया गया है। आगमों में महाव्रतों की तीन परम्पराएं मिलती हैं। आचारांग[72] में अहिंसा, सत्य, बहिद्धादान इन तीन महाव्रतों का उल्लेख प्राप्त होता है। स्थानांग,[73] उत्तराध्ययन[74] और दीघनिकाय[75] में चार याम का वर्णन है। वे ये हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य और बहिद्धादान। बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर चातुर्याम का उल्लेख हुआ है। प्रश्नव्याकरण के संवर प्रकरण में महाव्रतों की चर्चा है। दशवैकालिक सूत्र[77] में प्रत्येक महाव्रत का विस्तृत

---

६६. अंगुत्तरनिकाय १०-६९
६७. स्थानांगसूत्र, चतुर्थ स्थान, सूत्र २८२
६८. स्थानांग, स्था. ४: सूत्र ५६९
६९. स्थानांग, स्था. १० सूत्र-७५१
७०. स्थानांग सूत्र—२१, ५२
७१. प्रज्ञापनासूत्र—२२
७२. आचारांग ८।१५
७३. स्थानाङ्ग २६६
७४. उत्तराध्ययन २३।२३
७५. दीघनिकाय
७६. प्रश्नव्याकरण, सूत्र—६/१०
७७. दशवैकालिक, सूत्र, अ. ४

विश्लेषण किया किया गया है। भगवती सूत्र[७८] में प्रत्याख्यान के स्वरूप को वताने के लिये महाव्रतों का उल्लेख है। तत्वार्थसूत्र[७९] और उस के व्याख्यासाहित्य में भी महाव्रतों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। जिसे जैन साहित्य में महाव्रत कहा है उसे ही बौद्ध साहित्य में[८०] दश कुशलधर्म कहा है। उन्होंने दश कुशल धर्मों का समावेश इस प्रकार किया है—

महाव्रत	कुशलधर्म
(१) अहिंसा	(१) प्राणातिपात एवं (९) व्यापाद से विरति
(२) सत्य	(४) मृषावाद (५) पिशुनवचन (६) परुषवचन (७) संप्रलाप से विरति
(३) अचौर्य	(२) अदत्तादान से विरति
(४) ब्रह्मचर्य	(३) काम में मिथ्याचार से विरति
(५) अपरिग्रह	(८) अमिथ्या विरति।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच महाव्रत असंयम के स्रोत को रोककर संयम के द्वार को उद्घाटित करते हैं। हिंसादि पापों का जीवन भर के लिये तीन करण और तीन योग मे त्याग किया जाता है। महाव्रतों में सावद्य योगों का पूर्ण रूप से त्याग होता है। महाव्रतों का पालन करना तीक्ष्ण तलवार की धार पर चलने के सदृश है। जो संयमी होता है वह इन्द्रियों के कामगुणों से वचता है। आश्रवद्वारों का निरोध कर संवर और निर्जरा से कर्मों को नष्ट करने का प्रयत्न करता है।

इस के पश्चात् शास्त्रकार ने पांच समितियों का उल्लेख किया है। सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहा गया हैं।[८१] मुमुक्षुओं की शुभ योगों में प्रवृत्ति होती है। उसे भी समिति कहा है।[८२] ईर्यासमिति आदि पांच को इसीलिये समिति संज्ञा दी है। उसके पश्चात् पंच अस्तिकाय का निरूपण किया गया है। पंचास्तिकाय जैन-दर्शन की अपनी देन है। किसी भी दर्शन ने गति और स्थिति के माध्यम के रूप में भिन्न द्रव्य नहीं माना है। वैशेषिक दर्शन ने उत्क्षेपण आदि को द्रव्य न मानकर कर्म माना है। जैनदर्शन ने गति के लिये धर्मास्तिकाय और स्थिति के लिये अधर्मास्तिकाय स्वतन्त्र द्रव्य माने हैं। जैनदर्शन की आकाश विषयक मान्यता भी अन्य दर्शनों से विशेषता लिये हुये है। अन्य दर्शनों ने लोकाकाश को अवश्य माना है पर अलोकाकाश को नहीं माना। अलोकाकाश की मान्यता जैनदर्शन की अपनी विशेषता है। पुद्गल द्रव्य की मान्यता भी विलक्षणता लिये हुये है। वैशेषिक आदि दर्शन पृथ्वी आदि द्रव्यों के पृथक्-पृथक् जातीय परमाणु मानते हैं। किन्तु जैनदर्शन पृथ्वी आदि का एक पुद्गल द्रव्य में ही समावेश करता है। प्रत्येक पुद्गल परमाणु में स्पर्श, रस, गन्ध और रूप रहते हैं। इसी प्रकार इनकी पृथक्-पृथक् जातियां नहीं, अपितु एक ही जाति है। पृथ्वी का परमाणु पानी के रूप में वदल सकता है और पानी का परमाणु अग्नि में परिणत हो सकता है। साथ ही जैनदर्शन ने शब्द को भी पौद्गलिक माना है। जीव के सम्बन्ध में भी जैनदर्शन की अपनी विशेष मान्यता है। वह संसारी आत्मा को स्वदेह-परिमाण मानता है। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी दर्शन ने आत्मा को स्वदेह-परिमाण नहीं माना है।

इस तरह पांचवें समवाय में जैनदर्शन सम्बन्धी विविध पहलुओं पर चिन्तन किया गया है।

---

७८. भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्दे. २, पृ. १३५

७९. तत्वार्थ सूत्र—अ. ७

८०. मज्झिमनिकाय—सम्मादिट्ठी सुत्तन्त ११९

८१. उत्तराध्ययन २४/ गाथा—२६।

८१. स्थानांग स्था. ८, सूत्र ६०३ की टीका

छठा समवाय : एक विश्लेषण

छठे समवाय में छह लेश्या, षट् जीवनिकाय, छह बाह्य तप, छह आभ्यन्तर तप, छह छाद्मस्थिक समुद्-घात, छह अर्थावग्रह, कृत्तिका और आश्लेषा, नक्षत्रों के छह-छह तारे, नारक व देवों की छह पल्योपम तथा छह सागरोपम की स्थिति का वर्णन किया गया है और कितने ही जीव छह भव ग्रहण करके मुक्त होंगे, यह बतलाया गया है।

इस समवाय में सर्वप्रथम लेश्या का उल्लेख है। स्थानांग,[८३] उत्तराध्ययन[८४] और प्रज्ञापना[८५] में लेश्या के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। आगमयुग के पश्चात् दार्शनिक युग के साहित्य में भी लेश्या के सम्बन्ध में व्यापक रूप से चिन्तन किया गया है। आधुनिक युग के वैज्ञानिक भी आभामण्डल के रूप में इस पर चिन्तन कर रहे हैं। सामान्य रूप से मन आदि योगों से अनुरञ्जित तथा विशेष रूप से कषायानुरञ्जित आत्म-परिणामों से जीव एक विशिष्ट पर्यावरण समुत्पन्न करता है। वह पर्यावरण ही लेश्या है। उत्तराध्ययन में लेश्या के पूर्व कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् कर्म लेश्या। कर्म-बन्ध के हेतु रागादिभाव कर्म लेश्या है। यों लेश्याएं भाव और द्रव्य के रूप से दो प्रकार की हैं। कितने ही आचार्य कषायानुरञ्जित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इस दृष्टि से लेश्या छद्मस्थ व्यक्ति को ही हो सकती है पर शुक्ल लेश्या तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली में भी होती है। अतः कोई-कोई योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। कषाय से उस में तीव्रता आदि का सन्निवेश होता है। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने स्पष्ट कहा है कि लेश्याओं के द्वारा आत्मा पर कर्मों का संश्लेष होता है। द्रव्य लेश्या के सम्बन्ध में चिन्तकों के विभिन्न मत रहे हैं। कितने ही विज्ञों के मत से लेश्या द्रव्य कर्म-परमाणु से बना हुआ है। पर वह आठ कर्म अणुओं से भिन्न है। दूसरे विज्ञों के मत से लेश्या द्रव्य बध्यमान कर्म प्रवाह रूप हैं। तीसरे अभिमत के अनुसार वह स्वतन्त्र द्रव्य है।

प्रस्तुत समवाय में छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तपों का भी उल्लेख है। प्रथम बाह्य तप में **अनशन** तप है, जो अन्य तपों से अधिक कठोर है। अनशन से शारीरिक, मानसिक विशुद्धि होती है। यह अग्निस्नान की तरह कर्म-मल को दूर कर आत्मा रूपी स्वर्ण को चमकाता है। दूसरा बाह्यतप **ऊनोदरी** है। उसे अवमौदर्य भी कहा है। द्रव्य ऊनोदरी में आहार की मात्रा कम की जाती है और भाव ऊनोदरी में कषाय की मात्रा कम की जाती है। द्रव्य ऊनोदरी से शरीर स्वस्थ रहता है और भाव ऊनोदरी से आन्तरिक गुणों का विकास होता है। विविध प्रकार के अभिग्रह करके आहार की गवेषणा करना **भिक्षाचरी** है। भिक्षाचरी के अनेक भेद-प्रभेदों का उल्लेख है।[८७] भिक्षु को अनेक दोषों को टाल कर भिक्षा ग्रहण करनी होती है।[८८] जिस से भोजन में प्रीति उत्पन्न होती हो, वह रस है। मधुर आदि रसों से भोजन में सरसता आती है। रस उत्तेजना उत्पन्न करने वाले होते हैं। साधक आवश्यकतानुसार आहार ग्रहण करता है किन्तु स्वाद के लिये नहीं! स्वाद के लिये आहार को चूसना, चबाना दोष है। उन रस के दोषों से बचना रसपरित्याग है। शरीर को कष्ट देना **कायक्लेश** है। साधक

---

८३. स्थानांग सूत्र—सू. २२१, १३२, १५१, ५०४, ३१९

८४. उत्तराध्ययनसूत्र—अ. ३४

८५. प्रज्ञापना सूत्र—पद १७

८६. लेश्याभिरात्मनि कर्माणि संश्लिष्यन्त—आवश्यकचूर्णि

८७. क—उत्तराध्ययन ३०/२५
ख—स्थानांग—६

८८. क—पिण्ड नियुक्ति ९२ से ९६
ख—उत्तराध्ययन २४/१२

आत्मा और शरीर को पृथक् मानता है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है कि यह शरीर अन्य हैं, आत्मा अन्य है। साधक इस प्रकार की तत्वबुद्धि से दुःख और क्लेश को देने वाली शरीर की ममता का त्याग करता है।[८९] स्थानांग में कायोत्सर्ग करना, उत्कटुक आसन से ध्यान करना, प्रतिमा धारण करना, आदि कायक्लेश के अनेक प्रकार बताये हैं।[९०] यों कायक्लेश के प्रकारान्तर से चौदह भेद भी बताये हैं।[९१] परभाव में लीन आत्मा को स्वभाव में लीन बनाने की प्रक्रिया **प्रतिसंलीनता** है। भगवती में[९२] इसके इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता, कपाय प्रतिसंलीनता योगप्रति-संलीनता और विविक्त शयनासनसेवना, ये चार भेद किये हैं। ये छह बाह्यतप हैं।

छह आभ्यन्तर तपों में प्रथम **प्रायश्चित्त** है। आचार्य अकलंक के अनुसार अपराध का नाम "प्रायः" है। और "चित्त" का अर्थ शोधन है। जिस क्रिया से अपराध की शुद्धि हो, वह प्रायश्चित्त है।[९४] "प्रायश्चित्त" से पाप का छेदन होता है। वह पाप को दूर करता है।[९५] प्रायश्चित्त और दण्ड में अन्तर है। प्रायश्चित्त स्वेच्छा से ग्रहण किया जाता है। दण्ड में पाप के प्रति ग्लानि नहीं होती, वह विवशता से लिया जाता है। स्थानांग में प्राय-श्चित्त के दश प्रकार बताये हैं। **विनय** दूसरा आभ्यन्तर तप है। यह आत्मिक गुण है। विनय शब्द तीन अर्थों को अपने में समेटे हुए है। अनुशासन, आत्मसंयम-सदाचर, नम्रता ! विनय से अष्ट कर्म दूर होते हैं। प्रवचन-सारोद्धार में लिखा है कि क्लेश समुत्पन्न करने वाले अष्टकर्म-शत्रु को जो दूर करता है, वह विनय है।[९६] भगवती[९७] स्थानांग[९८] औपपातिक[९९] में विनय के ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, मनोविनय, वचनविनय, कायविनय, लोकोपचार विनय, ये सात प्रकार बताये हैं। विनय चापलूसी नहीं, सद्‌गुणों के प्रति सहज सम्मान है। वैयावृत्त्य तप धर्मसाधना में प्रवृत्ति करने वाली वस्तुओं से सेवा करना है। भगवती[१००] में वैयावृत्य के दश प्रकार बताये हैं। सत् शास्त्रों का विधि सहित अध्ययन करना स्वाध्याय तप है।[१०१] आत्मचिन्तन, मनन भी स्वाध्याय है। शरीर के लिये भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार बुद्धि के विकास के लिये अध्ययन आवश्यक है। वैदिक-महर्पियों ने[१०२] भी 'तपो हि स्वाध्यायः' कहा है और यह प्रेरणा दी है कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो।[१०३] आचार्य पतंजलि कहते हैं—स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होने लगता है। स्वाध्याय के वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, और धर्मकथा, ये पांच प्रकार बताये हैं।[१०४] मन की एकाग्र अवस्था

---

८९. आवश्यक निर्युक्ति, १५४७
९०. स्थानांग सूत्र,स्था. ७, सू-५५४
९१. उववाईसूत्र-समवसरण अधिकार
९२. भगवती २५/७
९३. उत्तराध्ययन, सूत्र अ. ३०
९४. तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक ९/२२/१
९५. पंचाशक सटीक विवरण १६/३
९६. प्रवचन सारोद्धारवृत्ति—
९७. भगवती २५/७
९८. स्थानांग—स्था. ७
९९. औपपातिक—तपवर्णन
१००. क—भगवती सूत्र—३५/७
ख—स्थानांग—१०
१०१. स्थानांग अभयदेववृत्ति ५-३-४६५
१०२. तैत्तिरीय आरण्यक २/१४
१०३. तैत्तिरीय उपनिषद्—१-११-१
१०४. क—भगवती २५/७
ख—स्थानांग—५

ध्यान है। ध्यान में आत्मा परवस्तु से हटकर स्व-स्वरूप में लीन होता है। व्युत्सर्ग—विशिष्ट उत्सर्ग व्युत्सर्ग है। आचार्य अकलंक[१०५] ने व्युत्सर्ग की परिभाषा करते हुये लिखा है—निःसंगता, अनासक्ति, निर्भयता, और जीवन की लालसा का त्याग, व्युत्सर्ग है। आत्मसाधना के लिये अपने आप को उत्सर्ग करने की विधि व्युत्सर्ग है। व्युत्सर्ग के गणव्युत्सर्ग, शरीरव्युत्सर्ग उपधिव्युत्सर्ग और भक्तपान व्युत्सर्ग ये चार भेद हैं।[१०६] शरीर-व्युत्सर्ग का नाम ही कायोत्सर्ग है। भगवान् महावीर ने साधक को 'अभिक्खणं काउस्सग्गकारी' अभीक्ष्ण-पुनः पुनः कायोत्सर्ग करने वाला कहा है। जो साधक कायोत्सर्ग में सिद्ध हो जाता है, वह सम्पूर्ण व्युत्सर्ग तप में सिद्ध हो जाता है। बाह्य और आभ्यन्तर तप के द्वारा शास्त्रकार ने जैन धर्म के तप के स्वरूप को उजागर किया है। इस प्रकार छठे समवाय में विविध विषयों का निरूपण है।

सातवां समवाय : एक विश्लेषण

सातवें स्थान में सात प्रकार के भय, सात प्रकार के समुद्घात, भगवान् महावीर का सात हाथ ऊँचा शरीर, जम्बूद्वीप में सात वर्षधर पर्वत, सात द्वीप, बारहवें गुणस्थान में सात कर्मों का वेदन, मघा, कृतिका, अनुराधा, धनिष्ठा, नक्षत्रों के सात-सात तारे, व नक्षत्र बताये हैं। नारकों और देवों की सात पल्योपम तथा सात सागरोपम स्थिति का उल्लेख है। इस में सर्वप्रथम सात भय का वर्णन है। इहलोक भय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, आजीविका भय, मरणभय, और अश्लोकभय। अतीतकाल में विजातीय जीवों का भय अधिक था। पर आज वैज्ञानिक खलनायकों ने मानव के अन्तर्मानस में इतना अधिक भय का संचार कर दिया है कि बड़े-बड़े राष्ट्रनायकों के हृदय भी धड़क रहे हैं कि कब अणुबम, उद्‌जन बम का विस्फोट हो जाये, या तृतीय विश्वयुद्ध हो जाय! जैन आगम साहित्य में जिस तरह भयस्थान का उल्लेख हुआ है, उसी तरह बौद्ध साहित्य में भय-स्थानों का उल्लेख है।[१०७] वहाँ जाति-जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अग्नि, उदक, राज, चोर, आत्मानुवाद—स्वयं के दुराचार का विचार, परानुवादभय—दूसरे मुझे दुराचारी कहेंगे, आदि विविध भयों के भेद बताये हैं। इस तरह सातवें स्थान में वर्णन है।

आठवां समवाय : एक विश्लेषण

आठवें समवाय में आठ मदस्थान, आठ प्रवचनमाता, वाणव्यन्तर देवों के आठ योजन ऊँचे चैत्य वृक्ष आदि, केवली समुद्घात के आठ समय, भगवान् पार्श्व के आठ गणधर, चन्द्रमा के आठ नक्षत्र, नारकों और देवों की आठ पल्योपम व सागरोपम की स्थिति व आठ भव करके मोक्ष जाने वालों का वर्णन है।

सर्वप्रथम इस में जातिमद, कुलमद आदि मदों का वर्णन है। समवायांग की तरह स्थानांग[१०८] में भी आठ मदों का उल्लेख आया है। आवश्यक-सूत्र में साधक को यह संकेत किया गया है कि आठ मद से वह निवृत्त होवे। सूत्रकृतांग[१०९] में—स्पष्ट निर्देश है कि अहंकार से व्यक्ति दूसरों की अवज्ञा करता है, जिस से उसे संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है। भगवान् महावीर के जीव ने मरीचि के भव में जाति और कुल मद किया था। फलस्वरूप उन्हें देवानन्दा की कुक्षि में आना पड़ा। अतः मदस्थानों से बचना चाहिये। अंगुत्तरनिकाय में[११०]

---

१०५. तत्त्वार्थ राजवार्तिक ९/२६/१०
१०६. भगवती २५/७
१०७. अंगुत्तरनिकाय ४/११९/५-७
१०८. स्थानांग स्था० ८ सूत्र—
१०९. सूत्रकृतांग—१/२/१—२
११०. अंगुत्तरनिकाय—३/३९

तीन प्रकार के मद बताये हैं—यौवन, आरोग्य और जीवितमद। मद के पश्चात् अष्टप्रवचन माताओं का वर्णन है। उत्तराध्ययन का चौवीसवां अध्ययन, प्रवचनमाता के नाम से ही विश्रुत है। भगवती सूत्र[111] और स्थानांग[112] में भी इन्हें प्रवचनमाता कहा है। इन अष्ट प्रवचन माताओं में सम्पूर्ण द्वादशांगी समाविष्ट है।[113] ये प्रवचनमाताएँ चारित्ररूपा हैं। चारित्र विना ज्ञान, दर्शन के नहीं होता।[114] द्वादशांगी में ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ही विस्तृत वर्णन है। अतः द्वादशांगी प्रवचन माता का विराट् रूप है। लौकिक जीवन में माता की गरिमा अपूर्व है। वैसे ही यह अष्ट प्रवचनमाताएँ अध्यात्म जगत् की जगदम्बा हैं।[115] लौकिक जीवन में माता का जितना उपकार है उस से भी अनन्त गुणित उपकार आध्यात्मिक जीवन में इन अष्ट प्रवचनमाताओं का है। इन का सविधि पालन कर साधक कर्मो से मुक्त होता है। आधुनिक इतिहासकार भगवान् पार्श्व को एक ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं।[116] भगवान् पार्श्व के आठ प्रमुख शिष्यों के नामों का भी इस में उल्लेख हुआ है। इस तरह आठवें समवाय में चिन्तनप्रधान सामग्री का संकलन हुआ है।

नौवा समवाय : एक विश्लेषण

नौवें समवाय में नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, नव ब्रह्मचर्य अध्ययन, भगवान् पार्श्व नव हाथ ऊँचे थे, अभिजित नक्षत्र आदि, रत्नप्रभा, वाणव्यन्तर देवों की सौधर्म सभा नौ योजन की ऊँची, दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियां, नारक व देवों की नौ पल्योपम और नौ सागरोपम की स्थिति, तथा नौ भव कर के मोक्ष जाने वालों का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों का उल्लेख है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जिन उपायों और साधनों को भगवान् ने समाधि और मुक्ति कहा है, लोक भाषा में उन्हीं को वाड़ कहा है। वागवान अपने वाग में पौधों की रक्षा के लिए कांटों की वाड वनाता है वैसे ही साधना के क्षेत्र में ब्रह्मचर्य रूप पौधे की रक्षा के लिए वाड की नितान्त आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य की महिमा और गरिमा अपूर्व है। 'तं बंभं भगवन्त'[117] जैसे सभी श्रमणों में तीर्थंकर श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य महान् है। जिस साधक ने एक ब्रह्मचर्य की पूर्ण आराधना करली, उस ने सभी व्रतों की आराधना कर ली। एक विद्वान् ने **"वस्तीन्द्रियमनसामुपशमो ब्रह्मचर्यम्"** लिखा है। जननेन्द्रिय, इन्द्रियसमूह और मन की शान्ति को ब्रह्मचर्य कहा जाता है। ब्रह्म शब्द के तीन मुख्य अर्थ हैं—वीर्य, आत्मा और विद्या। चर्य शब्द के भी तीन अर्थ हैं—चर्या, रक्षण और रमण! इस तरह ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ हैं। ब्रह्मचर्य से आत्म स्वरूप में लीन वना जाता है। आत्म-स्वरूप में लीन होकर ज्ञानार्जन किया जाता है। ब्रह्मचर्य से आत्मशुद्धि होती है। आचार्य पतंजलि ने लिखा है—**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां आत्मलाभः**[118] ब्रह्मचर्य की पूर्ण साधना करने से अपूर्व मानसिक शक्ति और शरीरवल प्राप्त होता है। अथर्ववेद[119] के अनुसार ब्रह्मचर्य से तेज, धृति, साहस और विद्या की प्राप्ति होती है। इस तरह आत्मिक, मानसिक और शारीरिक तीनों प्रकार के विकास ब्रह्मचर्य से होते हैं। ब्रह्मचर्य के समाधिस्थान और असमाधिस्थान का सुन्दर वर्णन उत्तराध्ययन[120]

१११—भगवती सूत्र—२५। ६। पृ-७२
११२—स्थानांग सूत्र—स्था. ८
११३—उत्तराध्ययन—अ. २४। ३
११४—उत्तराध्ययन—अ. २८। २९
११५—नन्दीसूत्र स्थविरावली गाथा—१
११६—भगवान् पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन लेखक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
११७—प्रश्नव्याकरण सूत्र-संवरद्वार
११८—पातंजल योगदर्शन-२-३८
११९—अथर्ववेद—१५।५।१७
१२०—उत्तराध्ययन—अ. १६

में है और बौद्ध ग्रन्थों में भी इस से मिलता-जुलता वर्णन[121] है। यह वर्णन ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। भगवान् पार्श्व का शरीर नौ हाथ ऊँचा था। यह ऐतिहासिक वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। इस तरह नवमें समवाय में विषयों का निरूपण है।

दशवां समवाय: एक विश्लेषण

दशवें समवाय में श्रमण के दशधर्म, चित्तसमाधि के दश स्थान, सुमेरु पर्वत मूल में दश हजार योजन विष्कंभ वाला है, भगवान् अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव, बलदेव दश धनुष ऊँचे थे, दश ज्ञानवृद्धिकारक नक्षत्र, दश कल्पवृक्ष, नारकों व देवों की दश हजार दश पल्योपम व दश सागरोपम की स्थिति और दश भव ग्रहण कर मोक्ष जाने वाले जीवों का कथन है।

प्रस्तुत समवाय में सर्वप्रथम श्रमणधर्म का उल्लेख है। केवल वेश-परिवर्तन से कोई श्रमण नहीं बनता। श्रमण बनता है सद्गुणों को धारण करने से। यहाँ शास्त्रकार ने श्रमण के वास्तविक जीवन का उल्लेख किया है। श्रमण का जीवन इन दशविध सद्गुणों की सुवास से सुवासित होना चाहिये। जो साधक इन धर्मों को धारण करता है उसी का चित्त समाधि को प्राप्त हो सकता है। यहां पर दश प्रकार की चित्त-समाधि का उल्लेख हुआ है। दशाश्रुतस्कन्ध में[122] भी समाधि स्थान का उल्लेख हुआ है। जिस से मानसिक स्वस्थता का अनुभव हो, वह समाधि है और जिस से मन में खिन्नता का अनुभव हो, वह असमाधि है। यहाँ दश समाधिस्थान बताये हैं तो दशवैकालिक[123] में चार समाधिस्थान कहे गए हैं—विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपःसमाधि और आचारसमाधि। यहाँ जो समाधि के दश भेद हैं उन का समावेश आचारसमाधि में हो सकता है। सूत्रकृतांगसूत्र[124] के समाधि नामक अध्ययन में निर्युक्तिकार भद्रबाहु[125] ने संक्षेप में दर्शन, ज्ञान, तप, और चारित्र, ये समाधि बतायी हैं। समाधि शब्द बौद्ध-परम्परा में भी अनेक बार व्यवहृत हुआ है। वहाँ समाधि का अर्थ "चित्त" की एकाग्रता अर्थात् चित्त को एक आलम्बन में स्थापित करना है।[126] बुद्ध के अष्टांग मार्ग में समाधि आठवाँ मार्ग[127] है। योग-परम्परा के ग्रन्थों में समाधि का विस्तार से निरूपण हुआ है। आचार्य पतंजलि[128] ने तृतीय विभूति पाद में ध्यान, धारणा के साथ समाधि का उल्लेख किया है। अष्टांग योग[129] में समाधि अन्तिम है। तप, स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग में लिया है। क्रियायोग से इन्द्रियों का दमन होता है। अभ्यास और वैराग्य के सतत अभ्यास से साधक समाधियोग को प्राप्त करता है। समाधिशतक आचार्य पूज्यपाद[130] की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। उस में ध्यान और समाधि के द्वारा आत्मतत्त्व को पहचानने के उपाय हैं। इस तरह दशवें समवाय में महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन है।

121—अंगुत्तर निकाय—७।४७
122. दशाश्रुतस्कन्ध—अ. ५
123. दशवैकालिक—अ. ९ उद्दे ४
124. सूत्रकृतांग सूत्र—१।१०
125. क—सूत्रकृतांग निर्युक्ति गाथा—१०६
ख—उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा ३८४
126. विशुद्धि मार्ग ३।२-३
127. विशुद्धि मार्ग—भाग-२, परिच्छेद १६ पृ. १२१
128. पातंजल योगदर्शन—विभूति पाद
129. पातंजल योगदर्शन—२-२९
130. यह ग्रन्थ हिन्दी, अंग्रेजी और मराठी भाषा में अनेक स्थलों से प्रकाशित है, इस पर अनेक वृत्तियाँ भी हैं।

ग्यारहवां समवाय : एक अनुशीलन

ग्यारहवें समवाय में ग्यारह उपासक प्रतिमाएँ, भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर, मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे, ग्रैवेयक, तथा नारकों व देवों की ग्यारह पल्योपम, व ग्यारह सागरोपम की स्थिति तथा ग्यारह भव कर मोक्ष में जाने वालों का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में सर्वप्रथम श्रावक-प्रतिमाओं का उल्लेख है। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा-विशेष, व्रत-विशेष, तप-विशेष, और अभिग्रह-विशेष[131]। श्रावक द्वादश व्रतों को ग्रहण करने के पश्चात् प्रतिमाओं को धारण करता है। प्रतिमाओं की संख्या, क्रम, व नामों के सम्बन्ध में श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में स्वल्प अन्तर दिखायी देता है। पर वह अन्तर नगण्य है। समवायांग की तरह उपासकदशांग[132] व दशाश्रुत-स्कन्ध[133] में भी इनके नाम मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं—१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ पौषधोपवास, ५ नियम, ६ ब्रह्मचर्य, ७ सचित्त-त्याग, ८ आरम्भ त्याग, ९ प्रेष्य परित्याग, १० उद्दिष्ट त्याग और ११ श्रमणभूत! आचार्य हरिभद्र[134] ने पाँचवीं प्रतिमा का नियम के स्थान पर केवल 'स्थान" का उल्लेख किया है। दिगम्बर परम्परा के वसुनन्दी श्रावकाचार[135] प्रभृति ग्रन्थों में दर्शन, व्रत, सामायिक, पौषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग एवं उद्दिष्टत्याग इन ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन है। स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा[136] में सम्यग्दृष्टिनामक एक और प्रतिमा मिलाकर बारह प्रतिमाओं का उल्लेख है। दोनों ही परम्पराओं में प्रथम चार प्रतिमाओं के नाम एक सदृश हैं। सचित्तत्याग का क्रम दिगम्बर परम्परा में पाँचवां है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा में सातवाँ है। दिगम्बर परम्परा में रात्रिभुक्तित्याग को एक स्वतन्त्र प्रतिमा गिना है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा में पाँचवीं प्रतिमा—नियम में उसका समावेश हो जाता है। दिगम्बर परम्परा में अनुमति त्याग का दशवीं प्रतिमा के रूप में उल्लेख है, श्वेताम्बर परम्परा में उद्दिष्ट त्याग में इस का समावेश हो जाता है। क्योंकि इस प्रतिमा में श्रावक उद्दिष्ट भक्त ग्रहण न करने के साथ अन्य आरम्भ का भी समर्थन नहीं करता। श्वेताम्बर परम्परा में जो श्रमणभूत प्रतिमा है, उसे दिगम्बर परम्परा में उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा कहा है। क्योंकि इस में श्रावकाचार श्रमण के सदृश होता है।

चिन्तनीय है कि आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में व्रत और उसके अतिचारों का निरूपण किया है। पर उन्होंने प्रतिमाओं के सम्वन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। तत्त्वार्थ सूत्र के सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर टीकाकारों ने प्रतिमाओं का कोई उल्लेख नहीं किया है। इसी तरह दिगम्बर परम्परा के पूज्यपाद[137]

---

१३१ (क) प्रतिमा प्रतिपत्ति : प्रतिज्ञेति यावत्—स्थानाङ्गवृत्ति पत्र ६१

(ख) प्रतिमा-प्रतिज्ञा अभिग्रहः—वही पत्र १८४

(ग) जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा—पृ. १५२, श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

१३२. उपासक दशांग अ. १

१३३. दशाश्रुत स्कन्ध-६-७

१३४. विंशतिर्विंशिका-१०।१

१३६. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा—३०५-३०६

१३७. तत्त्वार्थसूत्र-सर्वार्थसिद्धि—

अंकलंक,[138] विद्यानन्दी,[139] शिवकोटि,[140] रविषेण,[141] जटासिंह नन्दी,[142] जिनसेन[143] पद्मनन्दी[144] देवसेन,[145] अमृतचन्द्र[146] आदि ने श्रावकों के व्रतों के सम्बन्ध में अवश्य लिखा है, पर प्रतिमाओं के सम्बन्ध में वे मौन रहे हैं। दूसरी परम्परा ऐसे आचार्यो की है जिन्होंने केवल प्रतिमाओं का उल्लेख ही नहीं किया है किन्तु उनके स्वरूप का विस्तार से विवेचन भी किया है। उनमें आचार्य समन्तभद्र,[147] सोमदेव,[148] अमितगति,[149] वसुनन्दी,[150] पण्डित आशाधर,[151] मेधावी,[152] सकलकीर्ति,[153] आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

जिस श्रावक को नवतत्त्व की अच्छी तरह से जानकारी हो, वह प्रतिमा धारण कर सकता है। नवतत्त्व की बिना जानकारी के प्रतिमाओं का सही पालन नहीं हो सकता। कितने ही विचारकों का यह अभिमत है कि प्रथम प्रतिमा में एक दिन उपवास और दूसरे दिन पारणा, द्वितीय प्रतिमा में बेले-बेले पारणा इसी तरह तेले-तेले, चोले-चोले से लेकर ग्यारह तक तप कर पारणा किया जाये। पर उन विचारकों का कथन किसी आगम और परवर्ती ग्रन्थों से प्रामाणित नहीं है। उपासकदशांग सूत्र में आनन्द आदि श्रावकों ने प्रतिमाओं के आराधन के समय तप अवश्य किया था। पर इतना ही तप करना चाहिये, इसका स्पष्ट निर्देश नहीं है। कितने ही विचारक यह भी मानते हैं कि वर्तमान में कोई भी श्रावक प्रतिमाओं की आराधना नहीं कर सकता। जैसे भिक्षु प्रतिमाओं का विच्छेद हो गया वैसे ही श्रावक प्रतिमाओं का विच्छेद हो गया है। उन विचारकों की बात चिन्तनीय है। प्रतिमाओं के साथ अनशन तप की अनिवार्य शर्त ही संभवतः इस विचार का आधार हो। दिगम्बर परम्परा के अनुसार श्रावक-प्रतिमाओं का पालन याज्जीवन किया जाता है, श्वेताम्बर परम्परा में उनकी कालमर्यादा एक, दो यावत् ग्यारह मास की नियत है। दि. परम्परा में आज भी प्रतिमाधारी श्रावक हैं।

इस तरह ग्यारहवें समवाय में विविध-विषयों पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

---

१३८. तत्त्वार्थ राजवार्तिक—
१३९. तत्त्वार्थसूत्र श्लोकवार्तिक—
१४०. रत्नमाला।
१४१. पद्मचरित
१४२. वरांगचरित।
१४३. हरिवंशपुराण
१४४. पंचविंशतिका
१४५. भावसंग्रह (प्राकृत)
१४६. पुरुषार्थसिद्धयुपाय
१४७. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
१४८. उपासकाध्ययन
१४९. श्रावकाचार
१५०. श्रावकाचार
१५१. सागारधर्मामृत
१५२. धर्मसंग्रह श्रावकाचार
१५३. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

बारहवां समवाय : एक अनुशीलन

बारहवें समवाय में बारह भिक्षु प्रतिमाएँ, बारह संभोग, कृतिकर्म के बारह आवर्त्त, विजया राजधानी का बारह लाख योजन का आयाम विष्कम्भ बताया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम राम की उम्र बारह सौ वर्ष की बतायी है। रात्रि-मान तथा सर्वार्थसिद्ध विमान से ऊपर ईषत् प्राग्भार पृथ्वी तथा नारकीय और देवों की तरह बारह पल्योपम व बारह सागर की स्थिति व बारह भव करके मोक्ष जानेवाले जीवों का उल्लेख है।

प्रस्तुत समवाय में सर्वप्रथम बारह भिक्षुप्रतिमाओं का उल्लेख है। यों स्थानांगसूत्र[155] में अनेक दृष्टियों से प्रतिमाओं के उल्लेख हुये हैं—जैसे समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा। समाधि प्रतिमा के भी दो भेद किये हैं—श्रुत समाधि, और चारित्र समाधि, उपधान प्रतिमा में भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। इसी तरह विवेकप्रतिमा और व्युत्सर्गप्रतिमा का भी उल्लेख हुआ है। भद्रा, सुभद्रा, प्रतिमाओं का भी वर्णन है। महाभद्रा, सर्वतोभद्रा विविध प्रतिमाओं के उल्लेख हैं। और उनके विविध भेद-प्रभेद हैं। परन्तु यहाँ पर भिक्षु की जो बारह प्रतिमाएँ बतायी हैं, उन्हें विशिष्ट संहनन एवं श्रुत के धारी भिक्षु ही धारण कर सकते हैं।

संभोग शब्द का प्रयोग यहाँ पारिभाषिक अर्थ में समान समाचारीवाले श्रमणों का साथ मिलकर के खान-पान, वस्त्र-पात्र, आदान-प्रदान, दीक्षा-पर्याय के अनुसार विनय-वैयावृत्त्य करना, संभोग है। प्रस्तुत समवाय में संभोग सम्बन्धी जो दो गाथाएं दी गयी हैं वे निशीथ भाष्य[156] में प्राप्त होती हैं। उन का वहाँ पर विस्तार से विवेचन किया गया है। संभोग के बारह प्रकारों में प्रथम प्रकार है—उपधि। वस्त्र-पात्र रूप उपधि जब तक विशुद्ध रूप से ली जाती है, वहाँ तक सांभोगिक-श्रमणों के साथ उस का सांभोगिक सम्बन्ध रह-सकता है। यदि वह दोषयुक्त ग्रहण करता है और कहने पर उसका प्रायश्चित्त लेता है, तो संभोगार्ह है। तीन बार भूल करने तक वह संभोगार्ह रहता है। यदि चतुर्थ बार ग्रहण करता है तो उसे समुदाय से पृथक् करना चाहिये, भले ही उस ने प्रायश्चित्त लिया हो। उसी प्रकार समुदाय से जो पृथक् हो, ऐसे विसंभोगिक पार्श्वस्थ या संयति के साथ शुद्ध या अशुद्ध उपधि की एषणा करने वाले को तीन बार-उसे प्रायश्चित्त दिया जा सकता है, इससे आगे उसे विसंभोगार्ह गिनना। इसी प्रकार उपधि के ग्रहण की तरह उपधि के परिकर्म और परिभोग के सम्बन्ध में भी सांभोगिक और विसांभोगिक व्यवस्था समझनी चाहिये। दूसरा संभोग श्रुत है। सांभोगिक या दूसरे गच्छ से उपसंपन्न हुये श्रमण को विधिपूर्वक जो वाचना दी जाये, उसकी परिगणना शुद्ध में होती है। जो श्रुत की वाचना अविधिपूर्वक साम्भोगिक या उपसंपन्न या अनुपसंपन्न आदि को देता हो तो तीन बार उसे क्षमा दी जा सकती है। उस के पश्चात् यदि वह प्रायश्चित्त भी लेता है तो भी उसे विसंभोगार्ह ही समझना चाहिये। जब तक श्रमण निर्दोष भक्तपान ग्रहण करने की मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह सांभोगिक है। उपधि की भाँति ही इस की भी व्यवस्था है। उपधि में परिकर्म और परिभोग है तो यहाँ पर भोजन और दान है। चतुर्थ संभोग का नाम अंजलिप्रग्रह है। सांभोगिक और संविग्न असंभोगियों के साथ हाथ जोड़ कर नमस्कार करना उचित है पर पार्श्वस्थ को इस प्रकार करना विहित नहीं है। इस प्रकार करने वाले को तीन बार क्षमा किया जा सकता है। दान, निकाचना, अभ्युत्थान, कृतिकर्म, वैयावृत्त्य करण, समवसरण, संनिषद्या कथाप्रबन्ध आदि अन्य संभोग शब्दों की व्याख्या विवेचन में सम्पादक ने अच्छी, की है। अतः मूल सूत्र का अवलोकन करें।

---

१५४. जैन आचारः सिद्धान्त और स्वरूप—पृष्ठ-३४५ से ३६०—श्रीदेवेन्द्रमुनि शास्त्री

१५५. स्थानांग सूत्र-सू. ८४, २५१, ३५२, १५१, २३७, आदि

१५६. क—निशीथ भाष्य—उद्दे. ५, गाथा ४९, ५०

ख—व्यवहारभाष्य—उद्दे. ५ गाथा-४७

इस के आगे कृतिकर्म के वारह आवर्त्त वताये गये हैं। किन्तु विवेचन में जैसा चाहिये वैसा विषय को स्पष्ट नहीं किया जा सका है। प्रस्तुत गाथा आवश्यकनिर्युक्ति[१५७] में इसी प्रकार आयी है, निर्युक्ति में विषय को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है और कहा गया है कि पच्चीस आवश्यक से परिशुद्ध यदि वन्दना की जाये तो वंदनकर्त्ता परिनिर्वाण को प्राप्त होता है या विमानवासी देव होता है। सद्गुरु की वन्दना "इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह, मे मिउग्गहं निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो मे किलामो अप्पकिलंताणं वहुसुभेणं मे दिवसो। वइक्कंतो ? जत्ता मे, जवणिज्जं च मे ?" के पाठ से दो वार की जाती है। 'इच्छामि खमासमणो' से 'मे मिउग्गहं' तक के पाठ का अर्थ है—मैं पाप से मुक्त होकर आपको वन्दन करना चाहता हूँ। अतः आप परिमित—अवग्रह यानी स्थान दीजिये। यह पाठ अवग्रह की याचना की क्रिया का सूचक है। प्रस्तुत पाठ में "अणुजाणह" इस पद तक एक वार अपने शरीर को अर्ध अवनत करना होता है। यह एक अवनत है और पूर्ववत् पुनः वन्दन किया जाये तव दूसरा अवनत होता है। इस प्रकार कृतिकर्म में दो नमस्कार होते हैं। दीक्षा ग्रहण करते समय या जन्म ग्रहण करते समय वालक की ऐसी मुद्रा होती है—वह दोनों हाथ सिर पर रखा हुआ होता है। उसे यथाजात कहते हैं। वन्दन करते समय भी यथाजात मुद्रा होनी चाहिये। अवग्रह में प्रवेश करने की अनुज्ञा प्राप्त होने पर उभड़क आसन से बैठकर दोनों हाथ गुरु की दिशा में लम्बे कर के दोनों हाथों से गुरु के चरणों का स्पर्श करे। "अहोकायं" इस पाठ में "अ" अक्षर मन्द स्वर में कहे। वहाँ से हाथ लेकर पुनः अपने मस्तिष्क के मध्यभाग को स्पर्श करता हुआ "हो" अक्षर का उच्च स्वर से उच्चारण करना। इस प्रकार "अहो" शब्द के उच्चारण करने में एक आवर्त्त हुआ। उसी प्रकार—"कायं" शब्दोच्चार में भी एक आवर्त्त करना। उसी तरह "काय-संफासं" में काय के उच्चारण में एक आवर्त्तन करना। इस प्रकार ये तीन आवर्त्तन हुए। उस के पश्चात् "जत्ता मे" में "ज" अक्षर का मन्दोच्चार कर गुरु के चरण को कर से स्पर्श करना चाहिये। और "त्ता" का मध्यम उच्चारण करते समय गुरुचरण से दोनों हाथ हटाकर—"अधर" में रखना चाहिये। और "मे" अक्षर उच्च स्वर से बोलते हुये मस्तिष्क के मध्यभाग को हाथ से स्पर्श करना चाहिये। यह एक आवर्त्त हुआ। इसी प्रकार "ज" "व" "णि" इन तीन अक्षरों का उच्चारण करते समय और "जं" "च" "मे" इन तीन अक्षरों को वोलते हुये तीसरा आवर्त्तन करना। इस प्रकार एक वन्दन करने में सभी आवर्त्त मिलकर छह आवर्त्त होते हैं। द्वितीय वार वन्दन में भी छह आवर्त्त होते हैं। इस तरह कृतिकर्म के वारह आवर्त्त होते हैं।

अवग्रह में प्रवेश करने के पश्चात् क्षामणा करते समय शिष्य और आचार्य दोनों के मिलकर दो शिरोनमन होते हैं और इसी प्रकार दूसरी वन्दना के प्रसंग पर दो शिरोनमन होते हैं। इस तरह चार शिरोनमन हुए। शिष्य जव वन्दन करता है तव मन, वचन और काया को संयम में रखना चाहिये। ये तीन गुप्ति हैं। प्रथम वन्दन के समय अवग्रह-याचना कर प्रवेश करना और इसी प्रकार द्वितीय वन्दन के समय भी। इस तरह ये दो प्रवेश होते हैं। आवश्यकीय कर के अवग्रह से प्रथम वन्दन करने के पश्चात् वाहर जाना यह निष्क्रमण है। यह एक ही है। दूसरे वन्दन में वाहर न जाकर गुरु के चरणारविन्दों में रहकर के ही सूत्र समाप्ति करनी होती है। ये वन्दन के पच्चीस आवश्यक हैं[१५८]।

इस तरह प्रस्तुत समवाय में भी पूर्व समवायों की तरह ज्ञानवर्धक सामग्री का सुन्दर संकलन है।

१५७—आवश्यकनिर्युक्ति गाथा—१२०२

१५८—स्थानांग-समवायांग पृ. ८१० से ८१२ —पं. दलसुख मालवणिया

तेरहवां व चौदहवां समवाय : एक विश्लेषण

तेरहवें समवाय में तेरह क्रिया-स्थान, सौधर्म, ईशानकल्प में तेरह विमान प्रस्तट, प्राणायु नामक बारहवें पूर्व में तेरह वस्तुनामक अधिकार, गर्भज तिर्यंच, पंचेन्द्रिय में तेरह प्रकार के योग, सूर्य मण्डल, तथा नारकीय व देवों की तेरह पल्योपम व तेरह सागरोपम स्थिति का निरूपण है। क्रिया आदि के सम्बन्ध में पूर्व पृष्ठों पर विस्तार के साथ लिखा जा चुका है।

चौदहवें समवाय में चौदह भूतग्राम, चौदह पूर्व, चौदह हजार भगवान् महावीर के श्रमण, चौदह जीवस्थान, चक्रवर्ती के चौदह रत्न, चौदह महानदियां, नारक व देवों की चौदह पल्योपम व चौदह सागरोपम की स्थिति के साथ चौदह भव कर मोक्ष जाने वाले जीवों का वर्णन है।

यहाँ पर सर्वप्रथम चौदह भूतग्राम का उल्लेख हुआ है। भूत अर्थात् जीव और ग्राम का अर्थ है समूह अर्थात् जीवों के समूह को भूतग्राम कहते हैं। समवायांग की तरह भगवती सूत्र[१५९] में भी इन भेदों का उल्लेख हुआ है। इन में सात अपर्याप्त हैं और सात पर्याप्त हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ हैं। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों में चार पर्याप्तियाँ होती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संमूर्च्छिम मनुष्य में पांच पर्याप्तियां होती हैं। संज्ञी तिर्यञ्च मनुष्य नारक और देव में छह पर्याप्तियाँ होती हैं। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियां संभव हैं, उन्हें जब तक पूर्ण न कर ले तब तक वह जीव की अपर्याप्त अवस्था है और उन्हें पूर्ण कर लेना पर्याप्त अवस्था है। इस तरह पर्याप्त और अपर्याप्त के मिलाकर चौदह प्रकार किये गये हैं। इस के बाद चौदह पूर्वों का उल्लेख है। पूर्व श्रुत, विज्ञान का असीम कोष है। पर अत्यन्त परिताप है कि वह कोष श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् भयंकर द्वादश-वर्षीय दुष्काल के कारण, तथा स्मृति दौर्बल्य आदि के कारण नष्ट हो गया। इस के पश्चात् चौदह जीवस्थानों का उल्लेख है। जीवस्थान को ही समयसार[१६०] में प्राकृत पंचसंग्रह[१६१] व कर्मग्रन्थ[१६२] में 'गुणस्थान' कहा है। आचार्य नेमिचन्द्र[१६३] ने जीवों को गुण कहा है। चौदह जीवस्थान कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम, आदि भावाभावजनित अवस्थाओं से निष्पन्न होते हैं। परिणाम और परिणामी का अभेदोपचार करने से जीवस्थान को गुणस्थान कहा है। गोम्मटसार[१६४] में गुणस्थान को जीव-समास भी कहा है। षट्खण्डागम धवलावृत्ति[१६५] में लिखा है कि जीव गुणों में रहता है, अतः उसे जीवसमास कहते हैं। कर्म के उदय से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वह औदयिक हैं। कर्म के उपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वह औपशमिक हैं। कर्म के क्षयोपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वह क्षायोपशमिक हैं। कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले गुण क्षायिक हैं। कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम के विना जो गुण स्वभावतः पाये जाते हैं, वे पारिणामिक हैं। इन गुणों के कारण जीव को भी गुण कहा गया है। जीवस्थान को समवायांग के बाद के साहित्य में गुणस्थान कहा गया है। आचार्य नेमिचन्द्र[१६६]

---

१५९. भगवती सूत्र-शतक २५ उद्देश-१, पृ. ३५०

१६०. समयसार गाथा ५५

१६१. प्राकृतपंचसंग्रह १/३-५

१६२. कर्मग्रन्थ ४/१

१६३. गोम्मटसार गाथा ७

१६४. गोम्मटसार गाथा १०

१६५. षड्खण्डागम धवलावृत्ति, प्रथम खण्ड २-१६-६१

१६६. गोम्मटसार गाथा ३

ने संक्षेप और ओघ ये दो गुणस्थान के पर्यायवाची माने हैं। कर्मग्रन्थ[१६७] में जिन्हें चौदह जीवस्थान बताया है, उन्हें समवाय में चौदह भूतग्राम की संज्ञा दी गयी है। जिन्हें कर्मग्रन्थ में गुणस्थान कहा है, उन्हें समवाय में जीवस्थान कहा है। इस प्रकार कर्मग्रन्थ और समवाय में संज्ञाभेद है, अर्थभेद नहीं है। समवायांग में जीवस्थानों की रचना का आधार कर्म-विशुद्धि बताया है। आचार्य अभयदेव[१६८] ने गुणस्थानों को मोहनीय कर्मों की विशुद्धि से निष्पन्न बताया है। नेमिचन्द्र[१६९] ने लिखा है—प्रथम चार गुणस्थान दर्शन मोह के उदय आदि से होते हैं और आगे के आठ गुणस्थान चारित्र मोह के क्षयोपशम आदि से निष्पन्न होते हैं। शेष दो योग के भावाभाव के कारण। यहां पर संक्षेप में गुणस्थानों का स्वरूप उजागर हुआ है। इस तरह चौदहवें समवाय में बहुत ही उपयोगी सामग्री का संयोजन है।

पन्द्रहवां व सोलहवां समवाय : एक विश्लेषण

पन्द्रहवें समवाय में पन्द्रह परम अधार्मिक देव, नमि अर्हत् की पन्द्रह धनुष की ऊंचाई, राहु के दो प्रकार, चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्त तक छह नक्षत्रों का रहना, चैत्र और आश्विन माह में पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त के दिन व रात्रि होना, विद्यानुवाद पूर्व के पन्द्रह अर्थाधिकार, मानव के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग तथा नारकों व देवों की पन्द्रह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

सोलहवें समवाय में सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन कहे हैं। अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय हैं। मेरुपर्वत के सोलह नाम, भगवान् पार्श्व के सोलह हजार श्रमण, आत्मप्रवाद पूर्व के सोलह अधिकार, चमरचंचा और बलीचंचा राजधानी का सोलह हजार योजन का आयाम विष्कम्भ, नारकों व देवों के सोलह पल्योपम तथा सोलह सागरोपम की स्थिति और सोलह भव कर मोक्ष जानेवाले जीवों का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में द्वितीय अंग सूत्रकृतांग के अध्ययनों की जानकारी दी गयी है। सूत्रकृतांग का दार्शनिक आगम की दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान है। जिस में परमत का खण्डन और स्वमत का मण्डन किया गया है। सूत्रकृतांग की तुलना बौद्धपरम्परा के अभिधम्म पिटक से की जा सकती है। जिस में बुद्ध ने अपने युग में प्रचलित बासठ मतों का खण्डन कर स्वमत की संस्थापना की है। वैसे ही सूत्रकृतांग में ३६३ अन्य यूथिक मतों का खण्डन कर स्वमत की संस्थापना की है। प्रस्तुत समवाय में ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान् पार्श्व के सोलह हजार श्रमणों का उल्लेख हुआ है। इस तरह प्रस्तुत समवाय का अलग-थलग महत्त्व है।

सत्तरहवां व अठारहवां समवाय : एक विश्लेषण

सत्तरहवें समवाय में सत्तरह प्रकार का संयम और असंयम, मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई आदि, सत्तरह प्रकार के मरण, दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में सत्तरह कर्मप्रकृतियों का बन्ध तथा नारकीय और देवों की सत्तरह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन कर सत्तरह भव करके मोक्ष में जाने वाले जीवों का वर्णन है।

सर्वप्रथम संयम और असंयम की चर्चा है। आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर संयम और असंयम

---

१६७. कर्मग्रन्थ ४-२।

१६८. समवायांग वृत्ति पत्र-२६।

१६९. गोम्मटसार गाथा १२, १३।

की चर्चा हुयी है। स्थानांग सूत्र[170] में विभिन्न स्थानों पर संयम, असंयम के भेद प्रतिपादित किये हैं। वस्तुतः यतनापूर्वक प्रवृत्ति करना, अयतनापूर्वक कोई भी प्रवृत्ति नहीं करना अथवा प्रवृत्तिमात्र से निवृत्त होना तथा अपनी इन्द्रियों एवं मन पर नियन्त्रण करना संयम कहलाता है। संयम के चार प्रकार—मन, वचन, काय, और उपकरण संयम। संयम के पाँच, सात, आठ, दश प्रकार भी हैं। उसी तरह असंयम के भी प्रकार हैं। संयम के प्रकारान्तर से सराग संयम, और वीतराग संयम, ये दो भेद भी हैं। उन सभी प्रकार के संयमों का विभिन्न दृष्टियों से निरूपण हुआ है। संयम साधना का प्राण है। संयम ऐसा सुरीला संगीत है जिसकी सुरीली स्वर-लहरियां से साधक का जीवन परमानन्द को प्राप्त करता है। प्रस्तुत समवाय में मरण के सत्तरह भेद बताये हैं। जो जीव जन्म लेता है, वह अवश्य ही मृत्यु को वरण करता है। जो फूल खिला है वह अवश्य मुरझाता है। यह एक ज्वलन्त सत्य है कि मृत्यु अवश्यं-भावी है। सभी महान् दार्शनिकों ने मृत्यु के सम्बन्ध में चिन्तन किया है। स्थानांग[171] में—मरण के बालमरण, पण्डितमरण और बालपण्डित मरण ये तीन भेद किये हैं और तीनों के भी तीन तीन अवान्तर भेद किये हैं। भगवती[172] में आवीचिमरण, अवधिमरण, आत्यन्तिकमरण, बालमरण, पण्डितमरण, ये पाँच प्रकार बताये हैं। उत्तराध्ययन[173] सूत्र में अकाम और सकाम मरण का वर्णन है। यहाँ पर मरण के सत्तरह प्रकार बताये हैं। जिस में सभी प्रकार के मरणों का समावेश हो गया है। इस तरह सत्तरहवें समवाय में विविध विषयों का निरूपण हुआ है।

अठारहवें समवाय में ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार, अर्हन्त अरिष्टनेमि के अठारह हजार श्रमण, तथा सक्षुद्रक व्यक्त श्रमणों के अठारह स्थान, आचारांग सूत्र के अठारह हजार पद, ब्राह्मीलिपि के अठारह प्रकार, अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व के अठारह अधिकार, पौष व आषाढ़ मास में अठारह मुहूर्त के रात और दिन, नारकों व देवों की अठारह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन और अठारह भव कर मोक्ष में जाने वाले जीवों का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में ब्रह्मचर्य आदि का जो निरूपण है, उसके सम्बन्ध में हम पूर्व पृष्ठों में, चिन्तन कर चुके हैं। इसमें औदारिक आदि शरीरों की अपेक्षा से उस के विभिन्न प्रकार बताये हैं। भगवान् अरिष्टनेमि के अठारह हजार श्रमणों का उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। [174] कर्मयोगी श्रीकृष्ण को इतिहासकारों ने ऐतिहासिक पुरुष माना है। इसलिये उस युग में हुये भगवान् अरिष्टनेमि को भी ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है। ब्राह्मीलिपि के लिए ज्ञातासूत्र की प्रस्तावना देखिए। [175] इस प्रकार अठारहवें समवाय में सामग्री का संकलन हुआ है।

---

१७०. स्थानांग सूत्र—४२९, ३६८, ५२१, ६१४, ७१५, ४३०: ७२, ३१०, ४२८, ५१७, ६४७, ७०९, आदि

१७१. स्थानांगसूत्र—सूत्र २२२

१७२. भगवती सूत्र—शतक-१३, उद्दे ७, सू–४९६

१७३. उत्तराध्ययन सूत्र अ-५

१७४. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण—एक अनुशीलन

१७५. ज्ञातासूत्र की प्रस्तावना, पृष्ठ—२२ से २४ तक

उन्नीसवां और बीसवां समवाय: एक विश्लेषण

उन्नीसवें समवाय में बतलाया है—ज्ञातासूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन, जम्बूद्वीप का सूर्य उन्नीस सौ योजन के क्षेत्र को संतप्त करता है। शुक्र, उन्नीस नक्षत्रों के साथ अस्त होता है। उन्नीस तीर्थंकर अगारवास में रहकर दीक्षित हुये। नारकों व देवों की उन्नीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति। अगार-वास में रहकर उन्नीस तीर्थंकरों ने अनगार धर्म को ग्रहण किया। स्थानांग सूत्र[176] में वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि पार्श्व और महावीर ने कुमारावस्था में दीक्षा ग्रहण की। आचार्य अभयदेव ने कुमारवास का अर्थ किया है—जिन्होंने राज्य नहीं किया। प्रस्तुत सूत्र में भी "अगारवासमज्झे वसित्ता" का अर्थ चिरकाल तक राज्य करने के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की, ऐसा किया है। दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से कुमारवास का अर्थ "कुँवारा" है। और वे पांचों को बालब्रह्मचारी मानते हैं। शेष उन्नीस तीर्थंकरों का राज्याभिषेक हुआ उन में से तीन तीर्थंकर तो चक्रवर्ती भी हुए। निर्युक्तिकार[177] ने यह भी सूचन किया है कि पाँच तीर्थंकरों ने प्रथम वय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी और उन्नीस तीर्थंकरों ने मध्यम वय में। कल्पसूत्र[178] आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार भगवान् महावीर ने विवाह किया था। इसलिये आवश्यकनिर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु भगवान् महावीर को विवाहित मानते हैं। इस तरह उन्नीसवें समवाय में वर्णन है।

बीसवें समवाय में बीस असमाधिस्थान, मुनिसुव्रत अर्हत् की बीस धनुष ऊंचाई, घनोदधि वातवलय बीस हजार योजन मोटे, प्राणत देवेन्द्र के बीस हजार सामानिक देव, प्रत्याख्यान पूर्व के बीस अर्थाधिकार एवं बीस कोटाकोटि सागरोपम का कालचक्र कहा है। किन्हीं नारकों व देवों की स्थिति बीस पल्योपम व सागरोपम की बतायी है। जिन कार्यों को करने से स्वयं को या दूसरों को चित्त में संक्लेश उत्पन्न होता है, वे असमाधि स्थान हैं। समाधि के सम्बन्ध में हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं।

इक्कीसवां व बावीसवां समवाय : एक विश्लेषण

इक्कीसवें समवाय में इक्कीस शबल दोष, सात प्रकृतियों के क्षपक नियट्टि-बादर गुण० में मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का सत्त्व कहा है। अवसर्पिणी को पांचवें, छठे, आरे तथा उत्सर्पिणी के प्रथम और द्वितीय आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के हैं। और नारकों व देवों की इक्कीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति बतायी है। यहां पर शबल का अर्थ है—कर्बुरित, मलीन, या धब्बों से विकृत जो कार्य चारित्र को मलीन बनाते हों, वे शबल हैं। दशाश्रुतस्कन्ध में भी इन दोषों का निरूपण है। इस प्रकार इक्कीसवें समवाय में दोषों से बचने का संकेत है और कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी है।

बाईसवें समवाय में बाईस परीषह, दृष्टिवाद के बाईस सूत्र, पुद्गल के बाईस प्रकार तथा नारकों व देवों की बाईस पल्योपम, व बाईस सागरोपम स्थिति का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में परीषह के बाईस प्रकार बताये हैं। भगवती सूत्र[179] और उत्तराध्ययन सूत्र[180] में परीषह का विस्तार से निरूपण है। परीषह एक कसौटी है। बीज को अंकुरित होने में जल के साथ चिलचिलाती

---

१७६. स्थानांग सूत्र, सूत्र ४७१

१७७. आवश्यकनिर्युक्ति—गाथा २४३, ४४५, २४८, ४४८

१७८. कल्पसूत्र—

१७९. भगवती सूत्र—शतक ८०, उद्दे ०८, पृ. १६१

१८०. उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २

धूप की भी आवश्यकता होती है। इसी तरह साधना में निखार लाने के लिये परीषह की उष्णता भी आवश्यक है। परीषह आने पर साधक घबराता नहीं है। पर वह सोचता है कि अपने आप को परखने का मुझे सुनहरा अवसर मिला है। उत्तराध्ययननिर्युक्ति [१८१] के अनुसार परीषह अध्ययन, कर्मप्रवाद पूर्व के सत्तरहवें प्राभृत से उद्धृत हैं। तत्त्वार्थसूत्र [१८२] में भी परीषहों का निरूपण किया गया है।

तेईसवां और चौवीसवां समवाय : एक विश्लेषण

तेईसवें समवाय में निरूपित है—तेईस सूत्रकृतांग के अध्ययन, जम्बूद्वीप के इक्कीस तीर्थंकरों को सूर्योदय के समय केवलज्ञान समुत्पन्न होना, भगवान् ऋषभदेव को छोड़कर तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में ग्यारह अंग के ज्ञाता थे। ऋषभ का जीव चतुर्दश पूर्व का ज्ञाता था। तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में माण्डलिक राजा थे। ऋषभ चक्रवर्ती थे। नारकों व देवों की तेईस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति बतायी गई है। यहाँ पर सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह, और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन मिला कर कुल तेईस अध्ययनों का निरूपण किया है। प्रस्तुत समवाय में तेईस तीर्थंकरों को सूर्योदय के समय केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात कही है। आवश्यक-निर्युक्ति [१८३] में प्रथम तेईस तीर्थंकरों को पूर्वाह्न में और महावीर को पश्चिमाह्न में केवलज्ञान हुआ, ऐसा लिखा है। टीकाकार ने एक मत यह भी दिया है कि बाईस तीर्थंकरों को दिन के पूर्व भाग में और मल्ली भगवती और श्रमण भगवान् महावीर को दिन के अन्तिम भाग में केवलज्ञान हुआ। दिगम्बर ग्रन्थों में किस समय किस को केवलज्ञान हुआ, इस सम्बन्ध में मतभेद है। आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के जीव को बारह अंगों का ज्ञान था, [१८४] यह स्पष्ट संकेत हैं। दिगम्बर परम्परा का अभिमत है कि ऋषभ के जीव को ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का ज्ञान था। इस तरह तेईसवें समवाय में सामग्री का चयन हुआ है।

चौवीसवें समवाय में निरूपित है—चौवीस तीर्थंकर, क्षुल्लक हिमवन्त, और शिखरीपर्वत की जीवाएँ, चौवीस अहमिन्द्र, चौवीस अंगुल वाली उत्तरायणगत सूर्य की पौरुषी छाया, गङ्गा सिन्धु महानदियों का उद्गम-स्थल पर चौवीस कोस का विस्तार, नारकों व देवों की चौवीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति।

पच्चीसवां समवाय : एक विश्लेषण

पच्चीसवें समवाय में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के पंचयाम यानी पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ कही गयी हैं। मल्ली भगवती पच्चीस धनुष ऊँची थी। वैताढ्य पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा है और पच्चीस कोस भूमि में गहरा है। दूसरे नरक के पच्चीस लाख नारकावास हैं। आचारांग सूत्र के पच्चीस अध्ययन हैं। अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय नाम कर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियाँ बाँधते हैं। लोकबिन्दुसार पूर्व के पच्चीस अर्थाधिकार हैं। नारकों और देवों की पच्चीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति है। यहाँ पर सर्वप्रथम पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ बतायी हैं।

भावना साधना के लिये आवश्यक है। उसमें अपार बल और असीमित शक्ति होती है। भावना के बल से असाध्य भी साध्य हो जाता है। जिन चेष्टाओं और संकल्पों से मानसिक विचारों को भावित या वासित किया

---

१८१. क—उत्ताध्ययन निर्युक्ति गाथा ६९
ख—उत्तराध्ययन चूर्णि पृ. ७
१८२. तत्त्वार्थ सूत्र अ. ८ सू ९ से १७
१८३. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २७५
१८४. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २५८

जाये, वह भावना है।[185] आचार्य पतंजलि ने भावना और जप में अभेद माना है।[186] भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा है[187] कि जिसकी भावना शुद्ध है, वह जल में नौका के सदृश है। वह तट को प्राप्त कर सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। भावना के अनेक प्रकार हो सकते हैं—ज्ञान, दर्शन और चारित्र, भक्ति प्रभृति! जितनी भी श्रेष्ठ चेष्टाओं से आत्मा को भावित किया जाये वे सभी भावनाएं हैं। तथापि भावना के अनेक वर्गीकरण मिलते हैं। पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ हैं।[188] जो महाव्रतों की स्थिरता के लिये हैं।[189] प्रत्येक महाव्रत की पांच-पांच-भावनाएँ हैं। आगम साहित्य आचारांग तथा प्रश्नव्याकरण में भावनाओं के जो नाम आये हैं, वे नाम समवायांग में कुछ पृथक्ता लिये हुये हैं। आचारांग[190] में (१) ईर्यासमिति (२) मनपरिज्ञा (३) वचन परिज्ञा (४) आदान निक्षेपण समिति (५) आलोकित पानभोजन, ये अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएं हैं। प्रश्नव्याकरण[191] में अहिंसा महाव्रत की (१) ईर्यासमिति (२) अपापमन (३) अपापवचन (४) एषणा समिति (५) आदान निक्षेपण समिति, जब कि प्रस्तुत समवाय में अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार आयी हैं—(१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) वचनगुप्ति (४) आलोक भाजन भोजन, (५) आदान भाण्डमात्र निक्षेपण समिति। आचार्य कुन्दकुन्द[192] ने अहिंसा महाव्रत की भावनाएँ इसी प्रकार बतायी हैं। तत्त्वार्थाधिगम भाष्य में भी (१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति, (३) एषणा समिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) आलोकित पानभोजन समिति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक[193] और सर्वार्थसिद्धि में[194] एषणा समिति के स्थान पर वाक् गुप्ति बतायी है। इसी तरह सत्यमहाव्रत की पांच भावनाएं आचारांग[195] में इस प्रकार हैं—(१) अनुवीचि भाषण, (२) क्रोध प्रत्याख्यान (३) लोभ प्रत्याख्यान (४) भय प्रत्याख्यान (५) हास्य प्रत्याख्यान, प्रश्नव्याकरण में ये ही नाम मिलते हैं। समवायांग में (१) अनुवीचिभाषण (२) क्रोधविवेक (३) लोभविवेक (४) भयविवेक, और (५) हास्यविवेक है। आचारांग[196] और प्रश्नव्याकरण[197] में क्रोध आदि का प्रत्याख्यान बताया है। जब कि समवायांग में विवेक शब्द का उल्लेख है। विवेक से तात्पर्य क्रोध आदि के परिहार से ही है। आचार्य कुन्दकुन्द[198] ने सत्य महाव्रत की पांच भावनाएँ इस प्रकार बतायी हैं (१) अक्रोध (२) अभय (३) अहास्य (४) अलोभ (५) अमोह। उन्होंने श्वेताम्बर परम्परा में आये हुये अनुवीचि भाषण के स्थान पर अमोह भावना का उल्लेख किया

---

१८५. पासनाहचरियं पृष्ठ ४६०
१८६. तज्जपस्तदर्थभावनम्—पातंजलयोगसूत्रम् १/२८
१८७. सूत्रकृतांग १/१५/५
१८८. उत्तराध्ययन, अ. ३१ गा. १७
१८९. तत्त्वार्थ सूत्र ७/३
१९०. आचारांग सूत्र २/३/१५/४०२
१९१. प्रश्नव्याकरण—संवरद्वार
१९२. षट्प्राभृत में चारित्रप्राभृत गा. ३१
१९३. तत्त्वार्थराजवार्तिक ७/४-५, ५३७
१९४. सर्वार्थसिद्धि—७/४ पृ. ३४५
१९५. आचारांग १/३/१५/४०२
१९६. वही
१९७. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
१९८. चारित्रप्राभृत ३२

है। चारित्र प्राभृत की टीका[१९९] में अमोह का अर्थ अनुवीचि भापण कुशलता किया है। अनुवीचि भापणता से तात्पर्य है कि **वीचि वाग्लहरी तामनुकृत्य या भाषा वर्तते सानुवीचिभाषा जिनसूत्रानुसारिणी भाषा अनुवीचि-भाषा पूर्वाचार्यसूत्रपरिपाटीमनुल्लंघ्य भाषणीयमित्यर्थः।** श्वेताम्बर परम्परा में अनुवीचि भापण का अर्थ अनुविचित्य भाषणम् अर्थात् चिन्तनपूर्वक बोलना" किया है। तत्त्वार्थराजवार्तिक[२००] में दोनों ही अर्थों को ग्रहण किया है। अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—(१) अनुवीचिमितावग्रह याचन (२) अनुज्ञापित पान-भोजन (३) अवग्रह का अवधारण (४) अभीक्ष्ण अवग्रह याचन (५) साधर्मिक से अवग्रह याचन प्रश्नव्याकरण में (१) विविक्त वासवसति (२) अभीक्ष्ण अवग्रह याचन (३) शय्या समिति (४) साधारण पिण्डमात्र लाभ (५) विनय प्रयोग, समवायांग सूत्र में ये नाम हैं—(१) अवग्रहानुज्ञापना (२) अवग्रह सीमापरिज्ञान (३) स्वयं ही अवग्रह अनुग्रहणता (४) साधर्मिक अवग्रह अनुज्ञापनता (५) साधारण भक्तपान अनुज्ञाप्य परिभुञ्जनता। आचार्य कुन्दकुन्द ने अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएं इस प्रकार दी हैं—(१) शून्यागारनिवास (२) विमोचितावास (३) परउपरोध न करना (४) एषणाशुद्धि (५) साधर्मिक-अविसंवाद। अचौर्य महाव्रत की पाँचों भावनाएँ दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों से भिन्न है। जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने भावनाओं का निरूपण किया है वैसी ही सर्वार्थसिद्धि में भी बतायी गयी हैं।

आचारांग में ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएं इस प्रकार हैं—(१) स्त्रीकथावर्जन (२) स्त्री के अंग प्रत्यंग अवलोकन का वर्जन (३) पूर्वभुक्त भोग स्मृति का वर्जन (४) अतिमात्र और प्रणीत पान भोजन का परि वर्जन (५) स्त्री आदि से संसक्त शयनासन का वर्जन। प्रश्नव्याकरण में (१) असंसक्त वास वसति, (२) स्त्रीजन कथा-वर्जन (३) स्त्री के अंग प्रत्यंगों और चेष्टाओं के अवलोकन का वर्जन (४) पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति का वर्जन, (५) प्रणीत रस भोजन का वर्जन। समवायांग में (१) स्त्री-पशु और नपुंसक से संसक्त शयन, आसन का वर्जन (२) स्त्रीकथाविवर्जनता (३) स्त्रियों की :इन्द्रियों के अवलोकन का वर्जन (४) पूर्व भुक्त और पूर्व क्रीडित का अस्मरण (५) प्रणीत आहार का विवर्जन। आचार्य कुन्दकुन्द[२०१] ने ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएं ये बताई हैं—(१) महिला अवलोकन विरति (२) पूर्वभुक्त का स्मरण न करना (३) संसक्त वसति विरति (४) स्त्री रागकथा-विरति, (५) पौष्टिक रसविरति। **आचार्य उमास्वाति**[२०२] ने और सर्वार्थसिद्धि में ब्रह्मचर्य की भावनाएं इस प्रकार हैं। (१) स्त्रीरागकथावर्जन (२) मनोहर अंग निरीक्षण विरति (३) पूर्वरतानुस्मरणपरित्याग (४) वृष्येष्टरस-परित्याग (५) स्वशरीरसंस्कारपरित्याग।

अपरिग्रह महाव्रत की भावनाएं आचारांग में इस प्रकार हैं—(१) मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द में समभाव (२) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप में समभाव। (२) मनोज्ञ और अमोज्ञ गन्ध में समभाव। (४) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस में समभाव। (५) मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श में समभाव और यही नाम प्रश्नव्याकरण में ज्यों के त्यों मिलते हैं। समवायांग में इस प्रकार है—(१) श्रोत्रेन्द्रिय रागोपरति (२) चक्षुरिन्द्रियरागोपरति (३) घ्राणेन्द्रियरागोपरति (४) रसनेन्द्रियरागोपरति और (५) स्पर्शेन्द्रियरागोपरति। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपरिग्रह महाव्रत की भावनाओं में आचारांग और प्रश्नव्याकरण का ही अनुसरण किया है। इस प्रकार पंच महाव्रतों

---

१९९. चारित्रप्राभृत २२ की टीका
२००. तत्त्वार्थराजवार्तिक ७/५
२०१. चारित्र प्राभृत गाथा—३४
२०२. तत्त्वार्थ सूत्र—७/७

की भावना के सम्बन्ध में विभिन्न स्थलों पर नाम भेद व क्रमभेद प्राप्त होता है; तथापि आगम और आगमेतर साहित्य का हार्द एक ही है। यहां पर प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के पांच महाव्रतों को लक्ष्य में रखकर पच्चीस भावनाएँ निरूपित की गयी हैं। दूसरे तीर्थंकर से लेकर तेईसवें तीर्थंकर तक के शासन में चार याम थे। उत्तराध्ययन,[२०३] भगवती[२०४] आदि इस बात के साक्ष्य हैं। प्रस्तुत समवाय में वैताढ्य पर्वत को पच्चीस योजन ऊँचा कहा है, पर असावधानी से पच्चीस धनुप छपा है, जो सही नहीं है। इस प्रकार पच्चीसवें समवाय में सामग्री का संकलन है।

छव्वीसवें से उनतीसवां समवाय : एक विश्लेषण

छव्वीसवें समवाय में दशाश्रुत स्कन्ध, कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र के छव्वीस उद्देशन काल कहे हैं। अभव्य जीवों के मोहनीय कर्म की छव्वीस प्रकृतियां, नारकों व देवों के छव्वीस पल्योपम और सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

सत्ताईसवें समवाय में श्रमण के सत्ताईस गुण, नक्षत्र मास के सत्ताईस दिन, वेदक सम्यक्त्व के बन्ध रहित जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस प्रकृतियाँ, श्रावण सुदी सप्तमी के दिन सत्ताईस अंगुल की पौरुषी छाया और नारकों व देवों की सत्ताईस पल्योपम एवं सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

अट्ठाईसवें समवाय में आचारप्रकल्प के अट्ठाईस प्रकार बताये हैं। भवसिद्धिक जीवों में मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ कही गयी हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान के अट्ठाईस प्रकार हैं। ईशान कल्प में अट्ठाईस लाख विमान हैं। देव गति बांधने वाला नामकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधता है। तो नारकीय जीव भी अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधता है। अन्तर शुभ व अशुभ का है। नारकों व देवों की अट्ठाईस पल्योपम और सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

यहाँ पर सर्वप्रथम आचारप्रकल्प के अट्ठाईस प्रकार बताये हैं। आचार्य संघदास गणि[२०५] ने निशीथ के आचार, अग्र, प्रकल्प, चूलिका, ये पर्यायवाची नाम माने हैं। उक्त शास्त्र का सम्बन्ध चरणकरणानुयोग से है। अतः इस का नाम "आचार" है। आचारांग सूत्र के पांच अग्र हैं—चार आचारचूलाएँ और निशीथ। इसीलिये निशीथ का नाम अग्र है।[२०६] निशीथ को नववें पूर्व आचारप्राभृत से रचना की गयी है। इसलिये इस का नाम प्रकल्प है। प्रकल्प का द्वितीय अर्थ "छेदन" करने वाला भी है।[२०७] आगम साहित्य में निशीथ का "आयारपकप्प" नाम मिलता है। अग्र और चूला ये दोनों समान अर्थ वाले शब्द हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान के अट्ठाईस प्रकार बताये गये हैं। नन्दीसूत्र[२०८] में तथा तत्त्वार्थसूत्र,[२०९] तत्त्वार्थभाष्य,[२१०] तत्त्वार्थ-

---

२०३ उत्तराध्ययन सूत्र—अ. २३
२०४ भगवती सूत्र—
२०५. निशीथभाष्य—३
२०६. निशीथ भाष्य—५७
२०७ निशीथ चूर्णि पृ. ३०
२०८. नन्दीसूत्र—सू. ५९—श्री पुण्यविजय जी म. द्वारा सम्पादित
२०९. तत्त्वार्थसूत्र—१/१३, १४
२१०. तत्त्वार्थभाष्य—१/१३, १४

राजवार्तिक,[२११] विशेषावश्यकभाष्य[२१२] आदि में भी ज्ञान की विस्तार से चर्चा की गयी है।[२१३] यहाँ पर केवल सूचन मात्र किया गया है। इस तरह अट्ठाईसवें समवाय में सामग्री का संकलन हुआ है।

उनतीसवें समवाय में पापश्रुत प्रसंग, आषाढ़ मास आदि के उनतीस रात दिन, सम्यग् दृष्टि, तीर्थंकर-नाम सहित उनतीस नामकर्म की प्रकृतियों को बाँधता है। नारकों देवों के उनतीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति आदि का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय में सर्वप्रथम पापश्रुत प्रसंगों का वर्णन किया है। स्थानांग[२१४] में नव पापश्रुत प्रसंग बताये हैं तो समवायांग सूत्र में उनतीस प्रकार बताये हैं। मिथ्या शास्त्र की आराधना भी पाप का निमित्त बन सकती है इसलिये यहां पापश्रुत के प्रसंग बताये हैं। पर संयमी साधक, जो सम्यग्दृष्टि है, उसके लिये पापश्रुत भी सम्यक् श्रुत बन जाता है। आचार्य देववाचक ने कहा है कि **"सम्मदिट्ठिस्स सम्मसुयं, मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छासुयं"** सम्यग्दृष्टि असाधारण संयोगों में या अमुक अपेक्षा की दृष्टि से विवेकपूर्वक इनका अध्ययन करता है। तो ये पापश्रुत प्रसंग नहीं हैं। जैन इतिहास में ऐसे अनेकों प्रभावक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने इन विद्याओं के द्वारा धर्म की प्रभावना भी की है। इस तरह उनतीसवें समवाय में सामग्री का संकलन है।

तीसवें समवाय से पैंतीसवां समवाय : एक विश्लेषण

तीसवें समवाय में मोहनीय कर्म बाँधने के तीस स्थान, मण्डितपुत्र स्थविर की तीस वर्ष श्रमण पर्याय, अहोरात्र के तीस मुहूर्त, अट्ठारहवें अर नामक तीर्थंकर की तीस धनुष की ऊंचाई, सहस्रार देवेन्द्र के तीस हजार सामानिक देव, भगवान् पार्श्व व प्रभु महावीर का तीस वर्ष तक गृहवास में रहना, रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावास, नारकों व देवों की तीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

मोहनीय कर्म के तीस निमित्त जो समवायांग में प्रतिपादित किये गये हैं, उनका दशाश्रुत स्कन्ध[२१५] में विस्तार से निरूपण है। आवश्यकसूत्र[२१६] में भी संक्षेप में सूचन किया गया है। टीकाकारों ने यह बताया है कि मोहनीय शब्द से सामान्य रूप से आठों कर्म समझने चाहिये और विशेष रूप से मोहनीय कर्म! इस समवाय में 'अर' पार्श्व और महावीर के सम्बन्ध में भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन हुआ।

इकतीसवें समवाय में सिद्धत्त्व पर्याय प्राप्त करने के प्रथम समय में होने वाले इकतीस गुण, मन्दर पर्वत, अभिवर्द्धित मास, सूर्यमास, रात्रि और दिन की परिगणना, और नारकों व देवों की इकत्तीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

बत्तीसवें समवाय में बत्तीस योगसंग्रह, बत्तीस देवेन्द्र, कुन्थु अर्हत् के बत्तीस सौ बत्तीस केवली, सौधर्म

---

२११. तत्त्वार्थराजवार्तिक—१/१४/१/५९ आदि
२१२. विशेषावश्यक भाष्य—वृत्ति १००/
२१३. जैनदर्शन स्वरूप और विश्लेषण, पृ. —श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
२१४. स्थानांगसूत्र स्था. ९, सू, ६.७८
२१५. दशाश्रुतस्कन्ध—अ. ६
२१६. आवश्यक सूत्र—अ. ४

कल्प में बत्तीस लाख विमान, रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे, बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधि, तथा नारकों व देवों की बत्तीस सागरोपम व पल्योपम की स्थिति का वर्णन है।

मन, वचन और काया का व्यापार योग कहलाता है। यहाँ पर बत्तीस योगसंग्रह में मन, वचन और काया के प्रशस्त व्यापार को लिया गया है। आवश्यक वृहद्वृत्ति में इस विषय पर चिन्तन किया गया है।

तेतीसवें समवाय में तेतीस आशातनाएँ, असुरेन्द्र की राजधानी में तेतीस मंजिल के विशिष्ट भवन तथा नारकों व देवों की तेतीस सागरोपम व पल्योपम की स्थिति का वर्णन है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि जिन देवों की जितनी सागरोपम की स्थिति बतलायी गयी है, वे उतने ही पक्षों में उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं। और उतने ही हजार वर्ष के बाद उन्हें आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है। प्रस्तुत समवाय में लघुश्रमणों का ज्येष्ठश्रमणों के साथ किस प्रकार का विनय-पूर्वक व्यवहार रहना चाहिये। आशातना आदि से निरन्तर बचना चाहिये। जिस क्रिया के करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ह्रास होता है वह आशातना-अवज्ञा है। तेतीस आशातनाओं का निरूपण दशाश्रुतस्कन्ध[२१८] में विस्तार से आया है।

चौतीसवें समवाय में तीर्थंकरों के चौतीस अतिशय, चक्रवर्ती के चौतीस विजयक्षेत्र, जम्बूद्वीप में चौतीस दीर्घ वैताढ्य, जम्बूद्वीप में उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न हो सकते हैं। तथा असुरेन्द्र के चौतीस लाख तथा पहली, पांचवी, छठी और सातवीं नरक में चौंतीस लाख नारकावास कहे हैं। प्रस्तुत समवाय में अतिशयों का उल्लेख हैं। अतिशयों के सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र [२१९] और अभिधान चिन्तामणि [२२०] आदि ग्रन्थों में चिन्तन किया है। वह चिन्तन वृहद् वाचना के आधार पर है। यहाँ पर चौतीस अतिशयों में से दूसरे अतिशय से पांचवें अतिशय तक जन्मप्रत्ययक हैं। इक्कीस से लेकर चौतीस अतिशय व बारहवाँ अतिशय कर्म के क्षय से होता है। शेष अतिशय देवकृत हैं।

दिगम्बर परम्परा भी चौतीस अतिशय मानती हैं। पर उन अतिशयों में कुछ भिन्नता है। वे दश जन्म प्रत्यय, चौदह देवकृत और दश केवलज्ञान कृत मानते हैं।

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि समवायांग के टीकाकार आचार्य अभयदेव के मत से आहार निहार, ये आंख से अदृश्य होते हैं। ये जन्मकृत अतिशय हैं। जब कि दिगम्बर मतानुसार आहार का अभाव, यह अतिशय माना गया है और वह जन्मकृत नहीं केवलज्ञानकृत है। श्वेताम्बर दृष्टि से भगवान् अर्धमागधी में उपदेश प्रदान करते हैं और वह उपदेश सभी जीवों की भाषा के रूप में परिणत होता है। ये दो अतिशय कर्मक्षयकृत माने गये हैं।

आचार्य अभयदेव और आचार्य हेमचन्द्र के अतिशयवर्णन में विभाजन पद्धति में कुछ अन्तर है। पर भाषा के सम्बन्ध में अभयदेव व हेमचन्द्र दोनों का एक ही मत है। आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि से उन्नीस अतिशय देवकृत हैं जब कि अभयदेव की दृष्टि से पन्द्रह अतिशय देवकृत हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि भगवान का चारों

---

२१७. आवश्यकवृहद् वृत्ति—अ ४, गा ७३ से ७७

२१८. दशाश्रुतस्कन्ध—३ दशा

(ख) तत्र आयः सम्यग्दर्शनाद्यवाप्तिलक्षणस्तस्य शातना खण्डना निरुक्ता आशातना।

२१९. योगशास्त्र पृ. १३०

२२०. अभिधानचिन्तामणि ५६—६३।

(ख) स्थानाङ्ग समवायांग—पं. दलसुख मालवणिया

और मुँह दिखायी देता है। वह देवकृत अतिशय है तो दिगम्बर दृष्टि से केवलज्ञान कृत हैं। तीन कोट की रचना को भी देवकृत अतिशय माना गया है। पर समवायांग में चौतीस अतिशयों में उसका उल्लेख नहीं है। चौतीस अतिशयों का जो विभाजन आचार्यों ने किया है, उस के सम्बन्ध में सबल-तर्क का अभाव है कि अमुक अतिशय अमुक विभाग में क्यों दिया गया है? समवायांग सूत्र के मूल में किसी भी प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। यह भी स्मरण रखना चाहिये। समवायांग की भांति अंगुत्तरनिकाय (५।१२१) में तथागत बुद्ध के पांच अतिशय बताये हैं—वे अर्थज्ञ होते हैं, धर्मज्ञ होते हैं, मर्यादा के ज्ञाता होते हैं, कालज्ञ होते हैं और परिषद् को जानने वाले होते हैं।

पैंतीसवें समवाय से सौवां समवाय : एक विश्लेषण

पैंतीसवें समवाय में पैंतीस सत्य वचन के अतिशय, कुन्थु, अर्हत्, दत्त वासुदेव, नन्दन बलदेव, ये पैंतीस धनुष ऊँचे थे तथा दूसरे और चौथे नरक में पैंतीस लाख नारकावास हैं, यह निरूपण है।

छत्तीसवें समवाय में—उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन, असुरेन्द्र की सुधर्मा-सभा छत्तीस योजन ऊँची भगवान् महावीर की छत्तीस हजार आर्यिकाएँ, और चैत्र और आसौज में छत्तीस अंगुल पौरुषी, आदि का वर्णन है।

सैंतीसवें समवाय में सैंतीस गणधर, सैंतीस गण, अड़तीसवें समवाय में भगवान पार्श्व की अड़तीस हजार श्रमणियाँ, उन्तालीसवें समवाय में भगवान् नमिनाथ के उन्तालीस सौ अवधिज्ञानी, चालीसवें समवाय में भगवान् अरिष्टनेमि की चालीस हजार श्रमणियाँ थी, आदि कथन है। इकतालीसवें समवाय में भगवान् नमिनाथ की ४१ हजार श्रमणियाँ, बयालीसवें समवाय में नामकर्म के ४२ भेद और भगवान् महावीर ४२ वर्ष से कुछ अधिक श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। तेतालीसवें समवाय में कर्मविपाक के ४३ अध्ययन, चवालीसवें समवाय में ऋषिभाषित के ४४ अध्ययन, पैंतालीसवें समवाय में मानव क्षेत्र, सीमंतक नरकावास, उडु विमान और सिद्ध-शिला, इन चारों को ४५ लाख योजन विस्तार वाला बताया है। छियालीसवें समवाय में ब्राह्मीलिपि के ५६ मातृ-काक्षर, सैंतालीसवें समवाय में स्थविर अग्निभूति के ४७ वर्ष तक गृहवास में रहने का वर्णन है। अड़तालीसवें समवाय में भगवान् धर्मनाथ के ४८ गणों, ४८ गणधरों का, उनचासवें समवाय में तेइन्द्रिय जीवों की ४९ अहोरात्र की स्थिति, पचासवें समवाय में भगवान् मुनिसुव्रत की ५० हजार श्रमणियाँ थीं, आदि वर्णन किया गया है। इक्यावनवें समवाय में ९ ब्रह्मचर्य अध्ययन, ५१ उद्देशनकाल और बावनवें समवाय में मोहनीय कर्म के ५२ नाम बताये हैं। त्रेपनवें समवाय में भगवान् महावीर के ५३ साधुओं के एक वर्ष की दीक्षा के बाद अनुत्तर विमान में जाने का वर्णन है। चौवनवें समवाय में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में क्रमशः ५४-५४ उत्तम पुरुष हुए हैं। और भगवान् अरिष्टनेमि ५४ रात्रि तक छद्मस्थ रहे। भगवान् अनन्तनाथ के ५४ गणधर थे। पचपनवें समवाय में भगवती-मल्ली ५५ हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुईं। छप्पनवें समवाय में भगवान् विमल के ५६ गण व ५६ गणधर थे। सत्तावनवें समवाय में मल्ली भगवती के ५७०० मनःपर्यव ज्ञानी थे। अठावनवें समवाय में ज्ञाना-वरणीय, वेदनीय, आयु, नाम और अन्तराय इन पाँच कर्मों की ५८ उत्तर प्रकृतियाँ बताई हैं। उनसठवें समवाय में चन्द्रसंवत्सर की एक ऋतु ५९ अहोरात्रि की होती है। साठवें समवाय में सूर्य का ६ मुहूर्त तक एक मंडल में रहने का उल्लेख है।

इकसठवें समवाय में एक युग के ६१ ऋतु मास बताये हैं। बासठवें समवाय में भगवान् वासुपूज्य के ६२ गण और ६२ गणधर बताये हैं। त्रेसठवें समवाय में भगवान् ऋषभदेव के ६३ लाख पूर्व तक राज्यसिंहासन

पर रहने के पश्चात् दीक्षा लेने का वर्णन है। चौसठवें समवाय में चक्रवर्ती के बहुमूल्य ६४ हारों का उल्लेख है। पैंसठवें समवाय में गणधर मौर्यपुत्र ने ६५ वर्ष तक गृहवास में रह कर दीक्षा ग्रहण की। छयासठवें समवाय में भगवान् श्रेयांस के ६६ गण और ६६ गणधर थे। मतिज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर बताई है। सड़सठवें समवाय में एक युग में नक्षत्रमास की गणना से ६७ मास बताये हैं। ६८ वें समवाय में धातकीखण्ड द्वीप में चक्रवर्ती की ६८ विजय, ६८ राजधानियाँ और उत्कृष्ट ६८ अरिहंत होते हैं तथा भगवान् विमल के ६८ हजार श्रमण थे, यह कहा गया है। उनहत्तरवें समवाय में मानवलोक में मेरु के अतिरिक्त ६९ वर्ष और ६७ वर्षधर पर्वत बताए हैं। सत्तरवें समवाय में एक मास और २० रात्रि व्यतीत होने पर ७० रात्रि अवशेष रहने पर भगवान् महावीर ने वर्षावास किया, इस का वर्णन है। यहाँ पर परम्परा से वर्षावास का अर्थ संवत्सरी किया जाता है।

इकहत्तरवें समवाय में भगवान् अजित, चक्रवर्ती सगर ७१ लाख पूर्व तक गृहवास में रह कर दीक्षित हुये। ७२ वें समवाय में भगवान् महावीर और उन के गणधर अचलभ्राता की ७२ वर्ष की आयु बतायी है। ७२ कलाओं का भी उल्लेख है। तिहत्तरवें समवाय में विजय नामक बलदेव, ७३ लाख की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुये। ७४ वें समवाय में गणधर अग्निभूति ७४ वर्ष की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुये। ७५ वें समवाय में भगवान् सुविधि के ७५ सौ केवली थे। भगवान् शीतल ७५ लाख पूर्व और भगवान् शान्ति ७४ हजार वर्ष गृहवास में रहे। ७६वें समवाय में विद्युत कुमार आदि भवनपति देवों के ७६-७६ भवन बताये गये हैं। सतहत्तरवें समवाय में सम्राट् भरत ७७ लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे। ७७ राजाओं के साथ उन्होंने संयममार्ग ग्रहण किया। ७८ वें समवाय में गणधर अकम्पित ७८ वर्ष की आयु में सिद्ध हुये। ७९ वें समवाय में छठे नरक के मध्यभाग से छट्ठे घनोदधि के नीचे चरमान्त तक ७९ हजार योजन अन्तर है। ८० वें समवाय में त्रिपृष्ठ वासुदेव ८० लाख वर्ष तक सम्राट् पद पर रहे।

८१ वें समवाय में ८१ सौ मन:पर्यवज्ञानी थे। ८२वें समवाय में ८२ रात्रियाँ व्यतीत होने पर श्रमण भगवान् महावीर का जीव गर्भान्तर में संहरण किया गया। ८३ वें समवाय में भगवान् शीतल के ८३ गण और ८३ गणधर थे। ८४ वें समवाय में भगवान् ऋषभदेव की ८४ लाख पूर्व की और भगवान् श्रेयांस की ८४ लाख वर्ष की आयु थी। भगवान् ऋषभ के ८४ गण, ८४ गणधर और ८४ हजार श्रमण थे। ८५वें समवाय में आचारांग के ८५ उद्देशन काल बताये हैं। ८६ वें समवाय में भगवान् सुविधि के ८६ गण और ८६ गणधर बताये हैं। भगवान् सुपार्श्व के ८६ सौ वादी थे। ८७ वें समवाय में ज्ञानावरणीय और अन्तराय कर्म को छोड़ कर शेष ६ कर्मों की ८७ उत्तरप्रकृतियां बतायी हैं। ८८ वें समवाय में प्रत्येक सूर्य और चन्द्र के ८८-८८ महाग्रह बताये हैं। ८९ वें समवाय में तृतीय आरे के ८९ पक्ष अवशेष रहने पर भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष पधारने का उल्लेख है। और भगवान् शान्तिनाथ के ८९ हजार श्रमणियाँ थी। ९० वें समवाय में भगवान् अजित और शान्ति इन दोनों तीर्थंकरों के ९० गण और ९० गणधर थे।

९१ वें समवाय में भगवान् कुन्थु के ९१ हजार अवधिज्ञानी श्रमण थे। ९२ वें समवाय में गणधर इन्द्रभूति ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर मुक्त हुये। ९३ वें समवाय में भगवान् चन्द्रप्रभ के ९३ गण और ९३ गणधर थे। भगवान् शान्तिनाथ के ९३ सौ चतुर्दश पूर्वधर थे। ९४ वें समवाय में भगवान् अजित के ९४ सौ अवधिज्ञानी श्रमण थे। ९५ वें समवाय में भगवान् श्री पार्श्व के ९५ गण और ९५ गणधर थे। भगवान् कुन्थु की ९५ हजार वर्ष की आयु थी। ९६ वें समवाय में प्रत्येक चक्रवर्ती के ९६ करोड़ गाँव होते हैं। ९७ वें समवाय में आठ कर्मों की ९७ उत्तर-प्रकृतियां हैं। ९८ वें समवाय में रेवती व ज्येष्ठा पर्यन्त के १९ नक्षत्रों के ९८वें तारे हैं। ९९

समवाय में मेरु पर्वत भूमि से ९९ हजार योजन ऊँचा है। १०० वें समवाय में भगवान् पार्श्व की और गणधर सुधर्मा की आयु सौ वर्ष की थी, यह निरूपण है।

उपर्युक्त पैंतीसवें समवाय से १०० वें समवाय तक विपुल सामग्री का संकलन हुआ है। उस में से कितनी ही सामग्री पौराणिक विषयों से सम्बन्धित है। भूगोल और खगोल, स्वर्ग और नरक आदि विषयों पर अनेक दृष्टियों से विचार हुआ है। आधुनिक विज्ञान की पहुँच जैन भौगोलिक विराट् क्षेत्रों तक अभी तक नहीं हो पायी है। ज्ञात से अज्ञात अधिक है। अन्वेषणा करने पर अनेक अज्ञात गम्भीर रहस्यों का परिज्ञान हो सकता है। इन समवायों में अनेक रहस्य आधुनिक अन्वेषकों के लिये उद्घाटित हुये हैं। उन रहस्यों को आधुनिक परिपेक्ष्य में खोजना अन्वेषकों का कार्य है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस में चौबीस तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, वलदेव, गणधर, तीर्थंकरों के श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका आदि के सम्वन्ध में भी विपुल सामग्री है। तीर्थंकर जैन शासन के निर्माता हैं। आध्यात्मिक-जगत् के आचारसंहिता के पुरस्कर्ता हैं। उन का जीवन साधकों के लिये सतत मार्गदर्शक रहा है। तीर्थंकरों के विराट् जीवनचरितों का मूल वीज प्रस्तुत समवायांग में है। ये ही वीज अन्य चरित ग्रन्थों में विराट् रूप ले सके हैं। तीर्थंकरों के प्राग् ऐतिहासिक और ऐतिहासिक विषयों पर विपुल सामग्री है। और अन्य विज्ञों के अभिमतों के आलोक में भी उस पर चिन्तन किया जा सकता है। पर प्रस्तावना की पृष्ठमर्यादा को ध्यान में रखते हुये मैं जिज्ञासु पाठकों को इतना सूचन अवश्य करूंगा कि वे मेरे द्वारा लिखित, 'भगवान् ऋषभदेव: एक परिशीलन', 'भगवान् पार्श्व:' एक समीक्षात्मक अध्ययन, 'भगवान् अरिष्टनेमि' 'कर्मयोगी श्री कृष्ण: एक अनुशीलन' और 'भगवन् महावीर: एक अनुशीलन' ग्रन्थों [221] का अवलोकन करें। मैंने तीर्थंकरों के सम्वन्ध में अनेक तथ्य इन ग्रन्थों में दिये हैं। इसी तरह भगवान् महावीर के गणधरों के सम्वन्ध में भी "महावीर अनुशीलन" ग्रन्थ में चिन्तन किया है।

लिपि-विचार

४६ वें समवाय में ब्राह्मीलिपि के उपयोग में आने वाले अक्षरों की संख्या ४६ वतायी है। आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत आगम की वृत्ति में यह स्पष्ट किया है कि ४६ अक्षर "अकार" से लेकर क्ष सहित हकार तक होने चाहिये। उन्होंने ऋ ॠ ऌ ॡ नहीं गिने हैं। शेष अक्षर लिये हैं। अठारहवें समवाय में लिपियों के सम्वन्ध में ब्राह्मीलिपि के नाम वताये हैं। आचार्य अभयदेव ने इन लिपियों के सम्वन्ध में यह स्पष्ट लिखा है कि उन्हें इन लिपियों के सम्वन्ध में किसी भी प्रकार का विवरण प्राप्त नहीं हुआ है इसलिये वे उस का विवरण नहीं दे सके हैं। आधुनिक अन्वेषणा के पश्चात् इस सम्वन्ध में यह कहा जा सकता है कि अशोक के शिलालेखों में जो लिपि प्रयुक्त हुयी है, वह ब्राह्मीलिपि है। यवनों की लिपि यावनीलिपि है, जो आज अर्बी और फ़ारसी आदि के रूप में विश्रुत है। खरोष्टी लिपि गान्धार देश में प्रचलित थी। यह लिपि दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर वाईं ओर लिखी जाती थी। उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश में अशोक के जो दो शिलालेख प्राप्त हुये हैं, उन में प्रस्तुत लिपि का प्रयोग हुआ है। खर और ओष्ट इन दो शब्दों से खरोष्ट वना है। खर गधे को कहते हैं। संभव है कि प्रस्तुत लिपि का मोड़ गधे के होठ की तरह हो। इसलिये इस का नाम खरोष्ठी, खरोष्ठिका अथवा खरोष्ट्रिका पड़ा हो। पांचवीं लिपि का नाम "खर-श्राविता" है। खर के स्वर की तरह जिस लिपि का उच्चारण कर्णकटु हो, जिस के कारण संभवत: उस का नाम "खरश्राविता" पड़ा हो। छट्ठी लिपि का नाम "पकारादिका" है। जिस का प्राकृत

२२१. लेखक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारकगुरु जैनग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

रूप "पह्याराइग्रा" "पग्राराइग्रा" हो सकता है। संभव है कि पकार वहुल होने के कारण या पकार से प्रारम्भ होने के कारण इस का नाम "पकारादिका" पड़ा हो। ग्यारहवीं लिपि का नाम "निह्नविका" है। निह्नव शब्द का प्रयोग जैन परम्परा में "छिपाने" के ग्रर्थ में वहुत विश्रुत रहा है। जो लिपि गुप्त हो, या सांकेतिक हो, वह निह्नविका हो सकती है। वर्तमान में संकेत लिपि का प्रचलन ग्रतिशीघ्र लिपि के रूप में है। प्राचीन युग में इसी तरह कोई सांकेतिक लिपि रही होगी, जो निह्नविका के नाम से विश्रुत हो। वारहवीं लिपि का नाम अंकलिपि है। अंकों से निर्मित लिपि अंकलिपि होनी चाहिये। ग्राचार्य कुमुदेन्दु ने "भू-वलय" ग्रन्थ का उट्टंकन इसी लिपि में किया है। यह ग्रन्थ यलप्पा शास्त्री के पास था, जो विश्वेश्वरम के रहने वाले थे। वह मैंने देहली में सन् १९५४ में देखा था। उस में विविध-विपयों का संकलन-ग्राकलन हुग्रा है, ग्रौर ग्रनेक भापाग्रों का प्रयोग भी! यलप्पा शास्त्री के कहने के ग्रनुसार उस में एक करोड़ श्लोक हैं ग्रौर उसे भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्र वावू ने "विश्व का महान् ग्राश्चर्य" कहा है। तेरहवीं लिपि "गणितलिपि" है। गणितशास्त्र सम्वन्धी संकेतों के ग्राधार पर ग्राधृत होने से लिपि "गणितलिपि" के रूप में विश्रुत रही हो। चौदहवीं लिपि का नाम "गान्धर्व" लिपि है। यह लिपि गन्धर्व जाति की एक विशिष्ट लिपि थी। पन्द्रहवीं लिपि का नाम "भूतलिपि" है। भूतान देश में प्रचलित होने के कारण से यह भूतलिपि कहलाती हो। भूतान को ही वर्तमान में भूटान कहते हैं। ग्रथवा भोट या भोटिया, तथा भूत जाति में प्रचलित लिपि रही हो। संभव है कि पैशाचीभापा की लिपि भूतलिपि कहलाती हो। भूत ग्रौर पिशाच, ये दोनों शब्द एकार्थक से रहे हैं। इसलिये पैशाचीलिपि को भूतलिपि कहा गया हो। जो लिपि बहुत ही सुन्दर व ग्राकर्पक रही होगी, वह सोलहवीं लिपि "ग्रादर्श लिपि" के रूप में उस समय प्रसिद्ध रही होगी। यह लिपि कहाँ पर प्रचलित थी, यह ग्रभी तक लिपिविशेपज्ञ निर्णय नहीं कर सके हैं। सत्तरहवीं लिपि का नाम "माहेश्वरी" लिपि है। माहेश्वरी वैश्यवर्ण में एक जाति है। संभव है कि इस जाति की विशिष्ट लिपि प्राचीनकाल में प्रचलित रही हो, ग्रौर उसे माहेश्वरी लिपि कहा जाता हो। ग्रठारहवीं लिपि ग्राह्मीलिपि है। यह लिपि द्राविड़ों की रही होगी। नाम से स्पष्ट है कि पुलिंदलिपि का सम्वन्ध ग्रादिवासी से रहा हो। मगर ग्रभी तक यह सव ग्रनुमान ही हैं। इनका सही स्वरूप निश्चित करने के लिए ग्रधिक ग्रन्वेपण ग्रपेक्षित है। वौद्ध ग्रन्थ "ललितविस्तरा" में चौंसठ लिपियों के नाम ग्राये हैं। उन नामों के साथ समवायांग में ग्राये हुये लिपियों के वर्णन की तुलना की जी सकती है।

सौंवें समवाय के वाद क्रमश: १५०—२००—२५०—३००—३५०—४००—४५०—५०० यावत् १००० से २००० से १०००० से एक लाख, उस से ८ लाख ग्रौर करोड़ की संख्या वाले विभिन्न विषयों का इन समवायों में संकलन किया गया है।

यहाँ पर हम कुछ प्रमुख विपयों के सम्वन्ध में ही चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं। भगवान् महावीर के तीर्थंकर भव से पूर्व छट्ठे पोट्टिल के भव का वर्णन है। ग्रावश्यक निर्युक्ति[२२२] में प्रभु महावीर के सत्ताईस भवों का सविस्तृत वर्णन है। वहाँ पर नन्दन के जीव ने पोट्टिल के पास दीक्षा ग्रहण की। ग्रौर नन्दन के पहले के भवों में पोट्टिल का उल्लेख नहीं है। ग्रौर न यह उल्लेख ग्रावश्यकचूर्णि, ग्रावश्यक हरिभद्रीया-वृत्ति, ग्रावश्यक मलयगिरि वृत्ति ग्रौर महावीरचरियं ग्रादि में कहीं ग्राया है। ग्राचार्य ग्रभयदेव ने प्रस्तुत ग्रागम की वृत्ति में यह स्पष्ट किया है कि पोट्टिल नामक राजकुमार का एक भव, वहाँ से देव हुए, द्वितीय भव। वहाँ से च्युत होकर क्षत्रानगरी में नन्दन नामक राजपुत्र हुए, यह तृतीय भव। वहाँ से देवलोक

---

२२२. ग्रावश्यक निर्युक्ति—गाथा ४४८

गये, यह चतुर्थ भव। वहाँ से देवानन्दा के गर्भ में आये, यह पाँचवाँ भव। और वहाँ से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में लाये गये, यह छठा भव! इस प्रकार परिगणना करने से पोट्टिल का छठा भव घटित हो सकता है।

समवायांगसूत्र में आये तीर्थंकरों की माताओं के नामों से दिगम्बर परम्परा में उन के नाम कुछ पृथक् रूप से लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—मरुदेवी, विजयसेना, सुसेना, सिद्धार्था, मंगला, सुसीमा, पृथ्वीसेना, लक्ष्मणा, जयरामा, (रामा) सुनन्दा, नन्दा (विष्णुश्री) जायावती (पाटला) जयश्यामा (शर्मा) शर्मा (रेवती) सुप्रभा (सुव्रता) ऐरा, श्रीकान्ता (श्रीमती) मित्रसेना, प्रजावती, (रक्षिता) सोमा (पद्मावती) वपिल्ला (वप्रा) शिवादेवी, वामादेवी, प्रियकारिणी त्रिशला। आवश्यक निर्युक्ति[२२४] में भी उन के नाम प्राप्त हैं।

आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थंकरों के नाम जो समवायांग में आये हैं, वही नाम प्रवचनसार में ज्यों के त्यों मिलते हैं। किन्तु लोकप्रकाश[२२५] में जो नाम आये हैं, वे क्रम की दृष्टि से पृथक् हैं। जिनप्रभसूरि कृत 'प्राकृत दिवाली कल्प' में उल्लिखित नामों और उनके क्रम में अन्तर है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में आगामी चौवीसी के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं :—

(१) श्री महापद्म	(२) सुरदेव	(३) सुपार्श्व
(४) स्वयंप्रभु	(५) सर्वात्मभू	(६) श्रीदेव
(७) कुलपुत्रदेव	(८) उदंकदेव	(९) प्रोष्ठिलदेव
(१०) जयकीर्ति	(११) मुनिसुव्रत	(१२) अरह
(१३) निष्पाप	(१४) निष्कपाय	(१५) विपुल
(१६) निर्मल	(१७) चित्रगुप्त	(१८) समाधिगुप्त
(१९) स्वयंभू	(२०) अनिवृत्त	(२१) जयनाथ
(२२) श्रीविमल	(२३) देवपाल	(२४) अनन्तवीर्य

दिगम्बर ग्रन्थों में अतीत चौवीसी के नाम भी मिलते हैं।[२२६]

प्रस्तुत समवायांग में कुलकरों का उल्लेख हुआ है। स्थानांग सूत्र में अतीत उत्सर्पिणी के दश कुलकरों के नाम आये हैं तो समवायांग में सात नाम हैं और नामों में भेद भी है। कुलकर उस युग के व्यवस्थापक हैं, जब मानव पारिवारिक, सामाजिक, राजशासन और आर्थिक बन्धनों से पूर्णतया मुक्त था। न उसे खाने की चिन्ता थी, न पहनने की ही। वृक्षों से ही उन्हें मनोवाञ्छित वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती थी। वे स्वतन्त्र जीवन जीने वाले थे। स्वभाव की दृष्टि से अत्यन्त अल्पकषायी। उस युग में जंगलों में हाथी, घोड़े, गाय, बैल, पशु थे, पर उन पशुओं का वे उपयोग नहीं करते थे। आर्थिक दृष्टि से न कोई श्रेष्ठी था, न कोई अनुचर ही। आज की भाँति रोगों का त्रास नहीं था। जीवन भर वे वासनाओं से मुक्त रहते थे। जीवन की सान्ध्यवेला में वे भाई-बहन मिटकर पति-पत्नी के रूप में हो जाते थे। और एक पुरुष और स्त्री युगल के रूप में सन्तान को जन्म देते थे। उनका वे ४९ दिन तक पालन-पोषण करतें और मरण-शरण हो जाते थे। उनकी मृत्यु भी उबासी और छींक आते ही बिना कष्ट के हो जाती। इस तरह यौगलिक काल का जीवन था। तीसरे आरे के अन्त

---

२२३. उत्तरपुराण व हरिवंश पुराण देखिये

२२४. आवश्यक निर्युक्ति-गाथा ३८५, ३८६

२२५. लोकप्रकाश सर्ग-३८, श्लोक २९६

२२६. जैन सिद्धान्त संग्रह, पृ. १९

तक तृतीय विभाग में यौगलिक-मर्यादाएँ धीरे-धीरे विनष्ट होने लगती हैं। तृष्णाएँ बढ़ती हैं। और कल्प-वृक्षों की शक्ति क्षीण होने लगती है। उस समय व्यवस्था करने वाले कुछ विशिष्ट व्यक्ति पैदा होते हैं। उन्हें कुलकर की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। प्रथम कुलकर तृतीय आरा के ⅛ पल्य जितना भाग अवशिष्ट रहने पर होते हैं। कुलकरों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में मतभेद रहे हैं।[२२७] अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र "ऋषभ" हुये जो प्रथम तीर्थंकर भी थे। उन के पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए। तीर्थंकर ऋषभ ने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया तो चक्रवर्ती ने राज्य-चक्र का। चतुर्थ आरे में तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और प्रतिवासुदेव आदि महापुरुष उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समवायांग में जिज्ञासु साधकों के लिए और अनुसंधित्सुओं के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन है। वस्तु-विज्ञान, जैन-सिद्धान्त, एवं जैन-इतिहास की दृष्टि से यह आगम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें शताधिक विषय हैं। आधुनिक चिन्तक समवायांग में आये हुए गणधर गौतम की ९२ वर्ष की आयु और गणधर सुधर्मा की १०० वर्ष की आयु पढ़कर यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि समावायांग की रचना भगवान् महावीर के मोक्ष जाने के पश्चात् हुई है। हम उनके तर्क के समाधान में यह नम्र निवेदन करना चाहेंगे कि गणधरों की उम्र आदि विषयों का देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने इसमें संकलन किया है। स्थानाङ्ग की प्रस्तावना में मैंने इस प्रश्न पर विस्तार से चिन्तन भी किया है। यह पूर्ण ऐतिहासिक सत्य है कि यह आगम गणधरकृत हैं।

मुख्य रूप से यह आगम गद्य रूप में है पर कहीं-कहीं बीच-बीच में नामावली व अन्य विवरण सम्बन्धी गाथाएं भी आई हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह आगम महत्त्वपूर्ण है। कहीं-कहीं पर अलंकारों का प्रयोग हुआ है। संख्याओं के सहारे भगवान पार्श्व और उनके पूर्ववर्ती चौदहपूर्वी, अवधिज्ञानी, और विशिष्ट ज्ञानी मुनियों का भी उल्लेख है, जो इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

तुलनात्मक अध्ययन

समवायांग सूत्र में विभिन्न विषयों का जितना अधिक संकलन हुआ है, उतना विषयों की दृष्टि से संकलन अन्य आगमों में कम हुआ है। भगवती सूत्र विषय बहुल है तो आकार की दृष्टि से भी विराट् है। समवायांग सूत्र आकार की दृष्टि से बहुत ही छोटा है। जैसे विष्णु मुनि ने तीन पैर से विराट् विश्व को नाप लिया था, वैसे ही समवायांग की स्थिति है। यदि हम समवायांग सूत्र में आये हुये विषयों की तुलना अन्य आगम साहित्य से करें तो सहज ही यह ज्ञात होगा कि व्यवहार सूत्र में यथार्थ ही कहा गया है कि स्थानांग और समवायांग का ज्ञाता ही आचार्य और उपाध्याय जैसे गौरवपूर्ण पद को धारण कर सकता है क्योंकि स्थानांग और समवायांग में उन सभी विषयों की संक्षेप में चर्चाएं आ गयी हैं, आचार्य व उपाध्याय पद के लिये जिन का जानना अत्यधिक आवश्यक है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि जिनवाणी रूपी विराट् सागर को समवायांग रूपी गागर में भर दिया गया है। यही कारण है कि अन्य आगम साहित्य में इस की स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनाई देती है। अतः हम यहाँ पर बहुत ही संक्षेप में अन्य आगमों के आलोक में समवायांगगत विषयों की तुलना कर रहे हैं।

---

२२७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वितीय वक्षस्कार में पन्द्रह कुलकर, दिगम्बर ग्रन्थ "सिद्धान्त-संग्रह" में चौदह कुलकर कहे गए हैं।

२२८. ठाण-समवायधरे कप्पइ आयरियत्ताए उवज्झायत्ताए गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्ताए। —व्यवहारसूत्र उद्देशक ३

समवायांग और आचारांग

जिनवाणी के जिज्ञासुओं के लिए आचारांग का सर्वाधिक महत्त्व है। वह सबसे प्रथम अंग है—रचना की दृष्टि से और स्थापना की दृष्टि से भी। आचारांग रचनाशैली, भाषाशैली, व विषयवस्तु की दृष्टि से अद्भुत है। आचार और दर्शन दोनों ही दृष्टि से उसका महत्त्व है। हम समवायांग की आचारांग के साथ संक्षेप में तुलना कर रहे हैं।

समवायांग के प्रथम समवाय का तृतीय सूत्र है—एगे दण्डे, आचारांग[२२९] में भी इसका उल्लेख है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'पंच महव्वया पण्णत्ता....' है तो आचारांग[२३०] में भी यह निरूपण है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का तृतीय सूत्र—'पंच कामगुणा पण्णत्ता......' है तो आचारांग[२३१] में भी इसका प्रतिपादन हुआ है।

समवायांग के पाँचवें समवाय में छट्ठा सूत्र—'पंच निजरट्ठाणा पण्णत्ता.......' है तो आचारांग[२३२] में भी यह वर्णन प्राप्त है।

समवायांग के छट्ठे समवाय का द्वितीय सूत्र—'छ जीवनिकाया पण्णत्ता......' है। तो आचारांग[२३३] में भी इसका निरूपण है।

समवायांग के सातवें समवाय का तृतीय सूत्र—'समणे भगवं महावीरे सत्तरयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था.......' है तो आचारांग[२३४] में भी महावीर की अवगाहना का यही वर्णन है।

समवायांग के नवम समवाय का तृतीय सूत्र—"नव बंभचेरा पण्णत्ता......................." है तो आचारांग[२३५] में भी ब्रह्मचर्य का वर्णन प्राप्त है।

समवायांग के पच्चीसवें समवाय का पहला सूत्र—"पुरिम-पच्छिमगाणं तित्थगराणं पंच-जामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ..............." है तो आचारांग[२३६] में भी पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का उल्लेख हुआ है।

समवायांग के तीसवें समवाय में "समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं आगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए..............." तो आचारांग[२३७] में भी भगवान् महावीर की दीक्षा का यही वर्णन है।

---

२२९. आचारांग श्रु. १ अ. १ उ. ४
२३०. आचारांग श्रु. ३ सू. १७९
२३१. आचारांग श्रु. १ अ. २ उ. १ सू. ६५
२३२. आचारांग श्रु. ३ सू. १७९
२३३. आचारांग श्रु. १ अ. १ उ. १ से ७
२३४. आचारांगश्रु. २ अ. १५ उ. १ सू. १६६
२३५. आचारांग—श्रु. १ अ. १ से ९
२३६. आचारांग—श्रु. २ चु. ३ सू १७९
२३७. आचारांग—श्रु. २ चु. ३ सू १७९

समवायांग के एकावनवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पण्णासं अज्जियां साहस्सीओ होत्था..............है तो आचारांग[२३८] में भी मुनिसुव्रत की आर्यिकाओं का वर्णन है।

समवायांग सूत्र के वियासीवें समवाय का द्वितीय सूत्र है 'समणे भगवं महावीरे बासीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए[२३९]...............' तो आचारांग[२४०] में भी भगवान् महावीर के गर्भ-परिवर्तन का उल्लेख है।

समवायांग के बानवें समवाय का प्रथम सूत्र है—बाणउई पडिमाओ पण्णत्ताओ......................तो आचारांग[२४१] में भी बानवें प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है।

समवायांग के सूत्रों के साथ आचारांगगत विषयों का जो साम्य है, वह यहां पर निर्दिष्ट किया गया है।

समवायांग और सूत्रकृतांग

सूत्रकृतांग द्वितीय अंग है। आचारांग में मुख्य रूप से आचार की प्रधानता रही है तो सूत्रकृतांग में दर्शन की प्रधानता है। महावीर युगीन दर्शनों की स्पष्ट झांकी इसमें है। आचारांग की तरह यह भी भाव-भाषा और शैली की दृष्टि से अलग-थलग विलक्षणता लिए हुए है। संक्षेप में यहां प्रस्तुत है समवाययोग के साथ सूत्रकृतांग की तुलना।

समवायांग के प्रथम समवाय का नवम सूत्र है—"एगे धम्मे" तो सूत्रकृतांग[२४२] में भी इस धर्म का उल्लेख है।

समवायांग के प्रथम समवाय का दशवां सूत्र है—'एगे अधम्मे' तो सूत्रकृतांग[२४३] में भी यही वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का ग्यारहवां सूत्र है—"एगे पुण्णे" तो सूत्रकृतांग[२४४] में भी पुण्य का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का बारहवां सूत्र है—"एगे पावे" तो सूत्रकृतांग[२४५] में भी पाप का निरूपण हुआ है।

समवायांग के प्रथम समवाय का तेरहवां सूत्र है "एगे बंधे" तो सूत्रकृतांग[२४६] में भी बन्ध का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का चौदहवां सूत्र है—"एगे मोक्खे" तो सूत्रकृतांग[२४७] में भी मोक्ष का उल्लेख है।

---

२३८. आचारांग—श्रु. १
२३९ आचारांग—श्रु. २ अ. २४
२४०. आचारांग—श्रु. २ अ. २४
२४१. आचारांग—श्रु. २
२४२. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४३. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४४. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४५. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४६. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४७. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५

समवायांग के प्रथम समवाय का पन्द्रहवां सूत्र है—"एगे आसवे" तो सूत्रकृतांग[248] में भी आश्रव का निरूपण है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सोलहवां सूत्र—एगे संवरे" है तो सूत्रकृतांग[249] में भी संवर की प्ररूपणा हुयी है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सत्तरहवां सूत्र "एगा वेयणा" है तो सूत्रकृतांग[250] में भी वेदना का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का अठारहवां सूत्र है—"एगा निज्जरा" तो सूत्रकृतांग[251] में भी निर्जरा का वर्णन है।

समवायांग के द्वितीय समवाय का प्रथम सूत्र—"दो दण्डा पण्णत्ता" है तो सूत्रकृतांग[252] में भी अर्थ-दण्ड और अनर्थदण्ड का वर्णन है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का प्रथम सूत्र—तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता......" है तो सूत्रकृतांग[253] में भी क्रियाओं का वर्णन है।

समवायांग के बावीसवें समवाय का प्रथम सूत्र है—"बावीसं परीसहा पण्णत्ता तो सूत्रकृतांग[254] में भी परीषहों का वर्णन है।

इस तरह समवायांग और सूत्रकृतांग में अनेक विषयों की समानता है।

स्थानाङ्ग और समवायांग ये दोनों आगम एक शैली में निर्मित हैं। अतः दोनों में अत्यधिक विषयसाम्य है। इन दोनों की तुलना स्थानांगसूत्र की प्रस्तावना में की जा चुकी है, अतएव यहाँ उसे नहीं दोहरा रहे हैं। जिज्ञासुजन उस प्रस्तावना का अवलोकन करें।

समवायांग और भगवती

समवायांग और भगवती इन दोनों आगमों में भी अनेक स्थलों पर विषय में सदृशता है। अतः यहां समवायांगगत विषयों का भगवती के साथ तुलनात्मक अध्ययन दे रहे हैं।

समवायांग के प्रथम समवाय का प्रथम सूत्र है—"एगे आया" तो भगवती[255] में भी चैतन्य गुण की दृष्टि से आत्मा एक स्वरूप प्रतिपादित किया है।

समवायांग के प्रथम समवाय का द्वितीय सूत्र है—एगे अणाया" तो भगवती[256] सूत्र में भी अनुपयोग लक्षण की दृष्टि से अनात्मा का एक रूप प्रतिपादित है।

---

२४८. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२४९. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२५०. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२५१. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. ५
२५२. सूत्रकृतांग—श्रु. २ अ. २
२५३. सूत्रकृतांग श्रु. २ अ. २
२५४. सूत्रकृतांग श्रु. २ अ. २
२५५. भगवती—शतक १२ उद्देशक १०
२५६. भगवती शतक १ उ. ४

समवायांग के प्रथम समवाय का चतुर्थ सूत्र है 'एगे अदण्डे' तो भगवती[257] में भी प्रशस्त योगों का प्रवृत्तिरूप व्यापार-अदण्ड को एक बताया है।

समवायांग के प्रथम समवाय का पांचवां सूत्र है—'एगा किरिया' तो भगवती[258] में भी योगों की प्रवृत्ति रूप क्रिया एक है।

समवायांग के प्रथम समवाय का छठा सूत्र है 'एगा अकिरिया' तो भगवती[259] में भी योगनिरोधरूप अक्रिया एक मानी है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सातवाँ सूत्र है 'एगे लोए' तो भगवती[260] में भी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधारभूत लोकाकाश एक प्रतिपादित किया है।

समवायांग के प्रथम समवाय का आठवाँ सूत्र है—'एगे अलोए' तो भगवती[261] में भी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के अभाव रूप अलोकाश का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का छब्बीसवाँ सूत्र है—'इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए..............' तो भगवती[262] में भी रत्नप्रभा नामक पृथ्वी के कुछ नारकों की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

समवायांग सूत्र के प्रथम समवाय का सत्ताईसवाँ सूत्र है—'इमीसे णं.........' तो भगवती[263] भी रत्नप्रभा-नारकों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का उनतीसवां सूत्र है—'असुरकुमाराणं देवाणं.......' तो भगवती[264] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का तीसवाँ है सूत्र—'असुरकुमाराणं.......', तो भगवती[265] में भी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के प्रथम समवाय का इकतीसवाँ सूत्र—'असुरकुमारिंद.........' है तो भगवती[266] में भी असुरकुमारेन्द्र को छोड़कर कुछ भवनपति देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का बत्तीसवां सूत्र है—'असंखिज्जवासाउय.........' तो भगवती[267] में भी असंख्य वर्ष की आयु वाले कुछ गर्भज तिर्यंचों की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

---

२५७. भगवती—शत. ११ उ. ११
२५८. भगवती—श. १ उ. ६
२५९. भगवती—श. २५ उ. ७
२६०. भगवती—श. १२ उ. ७
२६१. भगवती—श. १२ उ. ७
२६२. भगवती—श. १ उ. १
२६३. भगवती—श. १ उ. १
२६४. भगवती—श. १ उ. १
२६५. भगवती—श. १ उ. १
२६६. भगवती—श. १ उ. १
२६७. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के प्रथम समवाय का तेतीसवां सूत्र है—असंखिज्ज वासाउय·······तो भगवती[२६८] में भी असंख्य वर्षों की आयुवाले कुछ गर्भज मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के प्रथम समवाय का चौतीसवाँ सूत्र है—वाणमंतराणं देवाणं·······तो भगवती[२६९] में भी वाणव्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का पैंतीसवाँ सूत्र है 'जोइसियाणं·······तो भगवती[२७०] में भी ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम अधिक लाख वर्ष की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का छत्तीसवाँ सूत्र—'सोहम्मे कप्पे देवाण................' है तो भगवती-सूत्र[२७१] में भी सौधर्मकल्प के देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सैंतीसवाँ सूत्र है—'सोहम्मे कप्पे·······' तो भगवती[२७२] में भी सौधर्म कल्प के कुछ देवों की स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का अड़तीसवाँ सूत्र है—'ईसाणे कप्पे देवाणं·······' तो भगवती[२७३] में भी ईशान कल्प के देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम की कही है।

समवायांग सूत्र के प्रथम समवाय का उनचालीसवाँ सूत्र है—ईसाणे कप्पे देवाणं·······तो भगवती[२७४] सूत्र में भी ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का चालीसवाँ सूत्र है—संतेगइया भवसिद्धिया·······तो भगवती[२७५] में भी इस का वर्णन है।

समवायांग के तृतीय समवाय का तेरहवाँ सूत्र है—इसीसे णं रयणप्पहाए·······है तो भगवती[२७६] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के तृतीय समवाय का चौदहवाँ सूत्र है—दोच्चाए णं पुढवीए ······तो भगवती[२७७] में भी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के तृतीय समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र है—तच्चाए णं पुढवीए···· तो भगवती[२७८] में भी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

---

२६८. भगवती—श. १ उ. १

२६९. भगवती—श. १ उ. १

२७०. भगवती—श. १ उ. १

२७१. भगवती—शत. १ उ. १

२७२. भगवती—श. १ उ. १

२७३. भगवती—श. १ उ. १

२७४. भगवती—श. १ उ. १

२७५. भगवती—श. ६, १२, उ. १०, २

२७५. भगवती—श. १ उ. १

२७७. भगवती—श. १ उ. १

२७८. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के तृतीय समवाय का सोलहवाँ सूत्र है—असुरकुमाराणं देवाणं......इसी तरह भगवती [279] में भी कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही है।

समवायांग सूत्र के तृतीय समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र हैं—असंखिज्जवासाउय......तो भगवती [280] में भी असंख्य वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायांग सूत्र के तृतीय समवाय का अठारहवां सूत्र—असंखिज्जवासाउय......है तो भगवती [281] में भी असंख्य वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के तृतीय समवाय का उन्नीसवां सूत्र है—सोहम्मीसाणेसु......तो भगवती [282] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति यही कही है।

समवायांग के तृतीय समवाय का वीसवाँ सूत्र—सणंकुमार-माहिंदेसु......है तो भगवती[283] में भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवों की स्थिति तीन सागरोपम की कही है।

समवायांग के तृतीय समवाय का इकवीसवाँ सूत्र है—'जे देवा आभंकरं' पभकरं है तो भगवती [284] में आभंकर प्रभंकर देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के तृतीय समवाय का चौवीसवाँ सूत्र—संतेगइया भवसिद्धिया......है तो भगवती [283] में भी कुछ जीव तीन भव कर मुक्त होंगे, ऐसा वर्णन है।

समवायांग के चतुर्थ समवाय का दशवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए......है तो भगवती [286] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चार पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के चतुर्थ समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—तच्चाए णं पुढवीए......है तो भगवती [287] में भी वालुका पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चार सागरोपम की कही है।

समवायांग के चतुर्थ समवाय का बारहवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं......तो भगवती [288] में भी असुरकुमार देवों की चार पल्योपम की स्थिति प्रतिपादित है।

समवायांग सूत्र के चतुर्थ समवाय का तेरहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु......है तो भगवती[289] में भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही हैं।

---

२७९. भगवती—श. १ उ. १
२८०. भगवती—श. १ उ. १
२८१. भगवती—श. १ उ. १
२८२. भगवती—श. १ उ. १
२८३. भगवती—शत. १ उ. १
२८४. भगवती—श. १ उ. १
२८५. भगवती—श. ६, १२ उ. १०, २
२८६. भगवती—श. १ उ. १
२८७. भगवती—श. १ उ. १
२८८. भगवती—श. १ उ. १
२८९. भगवती—श. १ उ १

समवायांग के चौथे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—सणंतकुमार-माहिंदेसु……है तो भगवती में भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कुमार के कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही है।

समवायांग के चतुर्थ समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'जे देवा किट्ठिं सुकिट्ठिं……'—है तो भगवती[291] में भी कृष्टि, सुकृष्टि, आदि वैमानिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम की कही है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का छठा सूत्र—'पंच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता' है तो—भगवती[292] में भी निर्जरा के प्राणातिपातविरति आदि पाँच स्थान बताये हैं।

समवायांग के पाँचवें समवाय का आठवाँ सूत्र—'पंच अत्थिकाया पण्णत्ता……' है तो भगवती[293] में भी धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकाय बताये हैं।

समवायांग के पाँचवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'इमीसे णं रयणप्पहाए……' है तो भगवती[294] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पाँच पल्योपम की कही है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'तच्चाए णं पुढवीए……' है तो भगवती[295] में भी वालुकाप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरकियों की स्थिति पाँच पल्योपम की कही है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराणं देवाणं……' है तो भगवती[296] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति पाँच पल्योपम की कही है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु……है तो भगवती[297] में भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति पाँच पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का अठारहवाँ सूत्र—सणंकुमार-माहिंदेसु……है तो भगवती[298] में भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवों की स्थिति पांच सागरोपम की कही है।

समवायांग के पाँचवें समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—'जे देवा वायं सुवायं……' है तो भगवती[299] में भी वात-सुवात आदि वैमानिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागर की कही है।

समवायांग के छठे समवाय का तृतीय सूत्र है—'छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते……' तो भगवती[300] में भी बाह्यतप के अनशन आदि छः भेद बताये हैं।

२९०. भगवती—श. १ उ. १
२९१. भगवती—श. १ उ. १
२९२. भगवती—श. ७ उ. १०
२९३. भगवती—श. २ उ. १०
२९४. भगवती—श. १ उ. १
२९५. भगवती—श. १ उ. १
२९६. भगवती—श. १ उ. १
२९७. भगवती—श. १ उ. १
२९८. भगवती—श. १ उ. १
२९९. भगवती—श. १ उ. १
३००. भगवती—श. २५ उ. ७

समवायांग के छठे समवाय का चौथा सूत्र है—छव्विहे अब्भितरे तवोकम्मे पण्णत्ते·······तो भगवती[301] में भी छ: आभ्यन्तर तप का वर्णन है।

समवायांग के छठे समवाय का पाँचवाँ सूत्र—छ छाउमत्थिया समुग्घाया·······है तो भगवती[302] में भी छाद्मस्थिकों के छ: समुद्घात बताए हैं।

समवायांग के छठे समवाय का दशवाँ सूत्र—"तच्चाए णं पुढवीए·······" है तो भगवती[303] में भी वालुकाप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति छ: सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के छठे समवाय का ग्यारहवां सूत्र—"असुरकुमाराणं·······" है तो भगवती[304] में भी कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति छ: पल्योपम की प्रतिपादित है।

समवायांग के छठे समवाय का बारहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु·······है तो भगवती[305] में भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति छ: पल्योपम की बतायी है।

समवायांग सूत्र के छठे समवाय का तेरहवाँ सूत्र है—सणंकुमारमाहिंदेसु·······तो भगवती[306] में भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवों की स्थिति छ: पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के छठे समवाय का चौदहवाँ सूत्र है—जे देवा सयंभूरमणं·······तो भगवती[307] में भी स्वयंभू स्वयंभूरमण विमान में उत्पन्न होने वालों की उत्कृष्ट स्थिति छ: सागर की कही है।

समवायांग के छठे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र है—तेणं देवा, छण्हं अद्धमासाणं·······तो भगवती[308] में भी स्वयंभू आदि विमानों के देव छ: पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं, ऐसा वर्णन है।

समवायांग के छठे समवाय का सोलहवाँ सूत्र है—तेसि णं देवाणं·······तो भगवती[309] में भी स्वयंभू यावत् विमानवासी देवों की इच्छा आहार लेने की छ: हजार वर्ष के बाद होती है।

समवायांग सूत्र के सातवें समवाय का तृतीय सूत्र है—"समणे भगवं·······" तो भगवती[310] में भी श्रमण भगवान् महावीर सात हाथ के ऊँचे कहे गए हैं।

समवायांग के सातवें समवाय का बारहवाँ सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए णं·······तो भगवती[311] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सात पल्योपम की प्रतिपादित है।

---

३०१. भगवती श. २५ उ. ७
३०२. भगवती श. १३ उ. १०
३०३. भगवती श. १ उ. १
३०४. भगवती श. १ उ. १
३०५. भगवती श. १ उ. १
३०६. भगवती श. १ उ. १
३०७. भगवती श. १ उ. १
३०८. भगवती श. १ उ. १
३०९. भगवती श. १ उ. १
३१०. भगवती श. १ उ. १
३११. भगवती श. १ उ. १

समवायांग के सातवें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—तच्चाए ण पुढवीए……है तो भगवती[312] में भी वालुकाप्रभा के कुछ नैरयिकों की स्थिति सात सागरोपम की वर्णित है।

समवायांग के सातवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—चउत्थीए णं पुढवीए……है तो भगवती[313] में भी पंक प्रभा नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की कही है।

समवायांग के सातवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं……है तो भगवती[314] में भी कुछ कुमारों की स्थिति सात पल्योपम की वर्णित है।

समवायांग के सातवें समवाय का सोलहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु……है तो भगवती[315] में भी सौधर्म ईशान कल्प की स्थिति सात पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के सातवें समवाय का सत्तरहवां सूत्र—सणंकुमारे कप्पे देवाणं……है तो भगवती[316] में भी सनत्कुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की वतायी है।

समवायांग के सातवें समवाय का अठारहवाँ सूत्र—माहिंदे कप्पे देवाणं……है तो भगवती[317] में भी माहेन्द्र कल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की वतायी है।

समवायांग के सातवें समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—वंभलोए कप्पे……है तो भगवती[318] में भी ब्रह्म लोक के देवों की स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की कही है।

समवायांग के सातवें समवाय का वीसवाँ सूत्र—जे देवा समं समप्पभं……है तो भगवती[319] में भी सम, समप्रभ, महाप्रभ, आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही है।

समवायांग के सातवें समवाय का इक्कीसवाँ सूत्र—ते णं देवा सत्तण्हं……है तो भगवती[320] में भी सनत्कुमारावतंसक विमान में जो देव उत्पन्न होते हैं, वे सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं, ऐसा कथन है।

समवायांग के सातवें समवाय का वावीसवाँ सूत्र है—तेसि णं देवाणं……तो भगवती[321] में भी सनत्कुमारावतंसक देवों की आहार लेने की इच्छा सात हजार वर्ष से होती कही है।

समवायांग के आठवें समवाय का दशवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पभाए……है तो भगवती[322] में भी रत्नाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

---

३१२. भगवती श. १ उ. १
३१३. भगवती श. १ उ. १
३१४. भगतती श. १ उ. १
३१५. भगवती श. १ उ. १
३१६. भगवती श. १ उ. १
३१७. भगवती श. १ उ. १
३१८. भगवती श. १ उ. १
३१९. भगवती श. १ उ. १
३२०. भगवती श. १ उ. १
३२१. भगवती श. १ उ. १
३२२. भगवती श. १ उ. १

समवायांग के आठवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—चउत्थीए पुढवीए……है तो भगवती[323] में भी पंकप्रभा नैरयिकों की स्थिति आठ सागरोपम की है।

समवायांग के आठवें समवाय का बारहवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं……है तो भगवती[324] में भी असुरकुमारों की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

समवायांग के आठवें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु……है तो भगवती[325] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के देवों की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

समवायांग के आठवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—बंभलोए कप्पे…… है तो भगवती[326] में भी ब्रह्मलोक कल्प के देवों की स्थिति आठ सागरोपम की प्रतिपादित है।

समवायांग के आठवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—"जे देवा अच्चि……" है तो भगवती[327] में भी अर्चि, अर्चिमाली आदि की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर की कही है।

समवायांग के आठवें समवाय का सोलहवाँ सूत्र है—ते णं देवा अट्ठण्हं……तो भगवती[328] में भी अर्चि, आदि देव आठ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

समवायांग के आठवें समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—तेसि णं देवाणं अट्ठहिं……है तो भगवती[329] में भी अर्चि, आदि देवों को आहार लेने की इच्छा आठ हजार वर्ष से होती कही है।

समवायांग नवमें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—दंसणावरणिज्जस्स……कम्मस्स है तो भगवती[330] में भी निद्रा, प्रचला, आदि दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ कही हैं।

समवायांग से नवमें समवाय का बारहवाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए……है तो भगवती[331] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति नौ पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के नवमें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—चउत्थीए पुढवीए……है तो भगवती[332] में भी पंकप्रभा के कुछ नैरयिकों की स्थिति नौ सागर की बतायी है।

समवायांग के नवमें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं……है तो भगवती[333] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति नौ पल्योपम की कही है।

---

३२३. भगवती श. १ उ. १
३२४. भगवती श. १ उ. १
३२५. भगवती श. १ उ. १
३२६. भगवती श. १ उ. १
३२७. भगवती श. १ उ. १
३२८. भगवती श. १ उ. १
३२९. भगवती श. १ उ. १
३३०. भगवती श. १ उ. ४
३३१. भगवती श. १ उ. १
३३२. भगवती श. १ उ. १
३३३. भगवती श. १ उ. १

समवायांग के नवम समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु.......है तो भगवती[334] में भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति नौ पल्योपम की कही है।

समवायांग के नवम समवाय का सोलहवाँ सूत्र—वंभलोए कप्पे.......है तो भगवती[335] में भी ब्रह्मलोक कल्प के कुछ देवों की स्थिति नौ सागरोपम की कही है।

समवायांग के नवम समवाय का सत्तरहवां सूत्र—जे देवा पम्हं सुपम्हं.......है तो भगवती[336] में भी पक्ष्म सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के नवम समवाय का अठारहवां सूत्र—ते णं देवा नवण्हं.......है तो भगवती[337] में भी पक्ष्म, आदि देव नौ पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं ऐसा कथन है।

समवायांग के नवम समवाय का उन्नीसवां सूत्र—तेसि णं देवाणं.......है तो भगवती [338] में भी पक्ष्म, सुपक्ष्म आदि देवों को आहार लेने की इच्छा नौ हजार वर्ष से होती कही है।

समवायांग के दशम समवाय का नौवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए.......है तो भगवती[339] में भी रत्नप्रभा नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है।

समवायांग के दशम समवाय का दशम सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए.......है तो भगवती [340] में भी रत्न-प्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति दश पल्योपम की कही है।

समवायांग के दशम समवाय का ग्यारहवां सूत्र—चउत्थीए पुढवीए.......है तो भगवती [341] में पंकप्रभा पृथ्वी में दस/लाख नारकावास कहे हैं, ऐसा वर्णन है।

समवायांग के दशवें समवाय का बारहवां सूत्र—चउत्थीए पुढवीए.......है तो भगवती[342] में भी पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के दशवें समवाय का तेरहवां सूत्र—पंचमीए पुढवीए.......है तो भगवती[343] में भी धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का चौदहवां सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं.......है तो भगवती [344] में भी असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की प्ररूपित है।

---

३३४. भगवती—श. १ उ. १

३३५. भगवती—श. १ उ. १

३३६. भगवती—श. १ उ. १

३३७. भगवती—श. १ उ. १

३३८. भगवती—श. १ उ. १

३३९. भगवती—श. १ उ. १

३४०. भगवती—श. १ उ. १

३४१. भगवती—श. १ उ. १

३४२. भगवती—श. १ उ. १

३४३. भगवती—श. १ उ. १

३४४. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के दशवें समवाय का पन्द्रहवां सूत्र—असुरिंदवज्जाणं ......है तो भगवती[345] में भी असुरेन्द्र को छोड़कर शेष भवनपति देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का सोलहवां सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं......है तो भगवती[346] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का सत्तरहवां सूत्र—बायरवणस्सइकाइए......है तो भगवती[347] में भी प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का अठारहवां सूत्र—वाणमंतराणं देवाणं......है तो भगवती[348] में भी व्यन्तरदेवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की बतायी है।

समवायांग के दशवें समवाय का उन्नीसवां सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु......है तो भगवती[349] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति दश पल्योपम की कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का बीसवां सूत्र—बंभलोए कप्पे......है तो भगवती[350] में भी ब्रह्मलोक देव की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की बतायी है।

समवायांग सूत्र के दशवें समवाय का इक्कीसवां सूत्र—लंतए कप्पे देवाणं......है तो भगवती[351] में भी लान्तक देवों की जघन्य स्थिति दश सागर की बतायी है।

समवायांग के दशवें समवाय का बावीसवां सूत्र—जे देवा घोसं सुघोसं......है तो भगवती[352] में भी घोष, सुघोष आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही है।

समवायांग के दशवें समवाय का तेवीसवां सूत्र—ते णं देवा णं अद्धमासाणं......है तो भगवती[353] में भी घोष यावत् ब्रह्मलोकावतंसक विमान के देव दश पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

समवायांग के दशवें समवाय का चौवीसवां सूत्र—तेसि णं देवाणं......है तो भगवती[354] में भी घोष, यावत् ब्रह्मलोकावतंसक के देवों की आहार लेने की इच्छा दश हजार वर्ष में कही है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का आठवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए......है तो भगवती [355] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही है।

---

३४५. भगवती—श. १ उ. १
३४६. भगवती—श. १ उ. १
३४७. भगवती—श. १ उ. १
३४८. भगवती—श. १ उ. १
३४९. भगवती—श. १ उ. १
३५०. भगवती—श. १ उ. १
३५१. भगवती—श. १ उ. १
३५२. भगवती—श. १ उ. १
३५३. भगवती—श. १ उ. १
३५४. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का नवम सूत्र—पंचमीए पुढवीए...... है तो भगवती[355] में भी धूम-प्रभा के पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का दशवां सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं...... है तो भगवती[357] में भी कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का ग्यारहवां सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु...... है तो भगवती[358] में भी सौधर्म ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की प्ररूपित है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का बारहवां सूत्र—लंतए कप्पे...... है तो भगवती[359] में भी लांतक कल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का तेरहवां सूत्र—जे देवा बंभं सुबंभं...... है तो भगवती[360] में भी ब्रह्म, सुब्रह्म आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का चौदहवां सूत्र—ते णं देवा...... है तो भगवती[361] में भी ब्रह्म यावत् ब्रह्मोत्तरावतंसक देव ग्यारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

समवायांग के ग्यारहवें समवाय का पन्द्रहवां सूत्र—तेसि देवाणं...... है तो भगवती[362] में भी ब्रह्म ब्रह्मोत्तरावतंसक देवों की आहार लेने की इच्छा ग्यारह हजार वर्ष से होती बतलाई है।

समवायांग के बारहवें समवाय का बारहवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए...... है तो भगवती[363] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की कही है।

समवायांग के बारहवें समवाय का तेरहवां सूत्र—पंचमीए पुढवीए...... है तो भगवती[364] में भी धूम-प्रभा पृथ्वी के कुछ नरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के बारहवें समवाय का चौदहवां सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं...... है तो भगवती[365] में कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के बारहवें समवाय का पन्द्रहवां सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु...... है तो भगवती[366] में भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति बारह पल्योपम की बतायी है।

---

३५५. भगवती—श. १ उ. १

३५६. भगवती—श. १ उ. १

३५७. भगवती—श. १ उ. १

३५८. भगवती—श. १ उ. १

३५९. भगवती—श. १ उ. १

३६०. भगवती—श. १ उ. १

३६१. भगवती—श. १ उ. १

३६२. भगवती—श. १ उ. १

३६३. भगवती—श. १ उ. १

३६४. भगवती—श. १ उ. १

३६५. भगवती—श. १ उ. १

३६६. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के वारहवें समवाय का सोलहवां सूत्र—लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं.......है तो भगवती[367] में भी लांतक कल्प के कुछ देवों की स्थिति वारह पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के वारहवें समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—जे देवा माहिंदं.......है तो भगवती[368] में भी माहेन्द्रध्वज, आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति वारह सागरोपम की कही है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का नवमाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए.......है तो भगवती[369] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का दशवाँ सूत्र—पंचमीए पुढवीए.......है तो भगवती[370] में भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह सागरोपम प्रतिपादित है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—असुरकुमारणं देवाणं.......है तो भगवती[371] में भी कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के तेरह समवाय का वारहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु.......है तो भगवती[372] में भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—लंतए कप्पे.......है तो भगवती[373] में भी लांतक कल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरहवें सागरोपम की कही है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—जे देवा वज्जं सुवज्जं.......है तो भगवती[374] में भी वज्र-सुवज्र आदि देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की वतायी है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—ते णं देवा.......है तो भगवती[375] में भी वज्र आदि लोकावतंसक देव तेरह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

समवायांग के चौदहवें समवाय का प्रथम सूत्र—चउद्दस भूयग्गाम।.......है तो भगवती[376] में भी सूक्ष्म-अपर्याप्त पर्याप्त आदि चौदह भूतग्राम वताये हैं।

समवायांग के चौदहवें समवाय का नववाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए....... है तो भगवती[377] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है।

---

३६७. भगवती—श. १ उ. १
३६८. भगवती—श. १ उ. १
३६९. भगवती—श. १ उ. १
३७०. भगवती—श. १ उ. १
३७१. भगवती—श. १ उ. १
३७२. भगवती—श. १ उ. १
३७३. भगवती—श. १ उ. १
३७४. भगवती—श. १ उ. १
३७५. भगवती—श. १ उ. १
३७६. भगवती—श. २५ उ. १
३७७. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के चौदहवें समवाय का दशवाँ सूत्र—पंचमीए पुढवीए....है तो[378] भगवती में भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह सागरोपम की कही है।

समवायांग के चौदहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं.... हैं तो भगवती[379] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के चौदहवें समवाय का बारहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु....है तो भगवती[380] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है।

समवायांग के चौदहवें समवाय का तेरहवें सूत्र—लंतए कप्पे....है तो भगवती[381] में भी लांतक कल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के चौदहवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—महासुक्के कप्पे....है तो भगवती[382] में भी महाशुक्र कल्प के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की बतायी है।

समवायांग के चौदहवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—जे देवा....है तो भगवती[383] में भी श्रीकान्त देवों के चौदह सागर की स्थिति कही है।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का पाँचवाँ सूत्र—चेत्तासोएसु णं मासेसु....है तो भगवती[384] में भी छः नक्षत्र चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्तपर्यन्त योग करते हैं।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का सातवाँ सूत्र—मणूसाणं....है तो भगवती[385] में भी मनुष्य के पन्द्रह योग कहे हैं।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का आठवां सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए....है तो भगवती[386] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का नवमा सूत्र—पंचमीए पुढवीए....है तो भगवती[387] में भी धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही है।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं.... है तो भगवती[388] में कुछ असुर कुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही है।

---

३७८. भगवती—श. १ उ. १
३७९. भगवती—श. १ उ. १
३८०. भगवती—श. १ उ. १
३८१. भगवती—श. १ उ. १
३८२. भगवती—श. १ उ. १
३८३. भगवती—श. १ उ. १
३८४. भगवती—श. ११ उ. ११
३८५. भगवती—श १ उ. १
३८६. भगवती—श. १ उ. १
३८७. भगवती—श. १ उ. १
३८८. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—सोहम्मीसाणेसु····है तो भगवती[389] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही है।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का वारहवां सूत्र—महासुक्के कप्पे····है तो भगवती[390] में भी महाशुक्र कल्प के कुछ देवों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही है।

समवायांग के सोलहवें समवाय का आठवाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए···· है तो भगवती[391] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही है।

समवायांग के सोलहवें समवाय का नवम सूत्र—पंचमीए पुढवीए·······है तो भगवती[392] में भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सोलह सागरोपम की वतायी है।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का छट्ठा सूत्र—"इमीसे णं रयणप्पहाए·······" है तो भगवती[393] में रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूभाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन की ऊंचाई पर जंघाचारण और विद्याचारण मुनियों की तिरछी गति कही है।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का सातवां सूत्र है "चमरस्स णं असुरिंदस्स ·· ····" तो भगवती[394] में भी चमर असुरेन्द्र के तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत की ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की है।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का आठवां सूत्र है "सत्तरसविहे मरणे पण्णत्ते·······" तो भगवती[395] में भी मरण के सत्तरह प्रकार वताये हैं।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए·······है तो भगवती[396] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सत्तरह पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के अठारहवें समवाय का आठवाँ सूत्र—पोसाऽऽ साढेसु·······है तो भगवती[397] में भी पौष और आषाढ़ मास में एक दिन उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का होता है। तथा एक रात्रि अठारह मुहूर्त की होती कही है।

समवायांग के अठारहवें समवाय का नवमा सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए ······है तो भगवती[398] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही है।

---

३८९. भगवती शतक १ उद्देशक १
३९०. भगवती शतक १ उद्देशक १
३९१. भगवती शतक १ उद्देशक १
३९२. भगवती शतक १ उद्देशक १
३९३. भगवती शतक २० उद्देशक ९
३९४. भगवती शतक ३ उद्देशक १
३९५. भगवती शतक १३ उद्देशक ७
३९६. भगवती श. १ उ. १
३९७. भगवती श. ११ उ. १
३९८. भगवती श. १ उ. १

समवायांग के उन्नीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र—जंबुद्दीवे णं दीवे……है तो भगवती[३९९] में भी जम्बूद्वीप में सूर्य ऊँचे तथा नीचे उन्नीस सौ योजन तक ताप पहुँचाते कहे हैं।

समवायांग के उन्नीसवें समवाय का छठा सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए……है तो भगवती[४००] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के वीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र—उस्सप्पिणी ओसप्पिणी……है तो भगवती[४०१] में भी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलकर बीस कोटाकोटि सागरोपम का काल-चक्र कहा है।

समवायांग सूत्र के इक्कीसवें समवाय का पाँचवाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए…… है तो भगवती[४०२] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के बावीसवें समवाय का प्रथम सूत्र—बावीसं परीसहा पण्णत्ता……है तो भगवती[४०३] में भी बावीस परीषहों का उल्लेख है।

समवायांग के बावीसवें समवाय का छठा सूत्र—बावीसविहे पोग्गलपरिणामे……है तो भगवती[४०४] में भी कृष्ण, नील, आदि पुद्गल के बाईस परिणाम कहे हैं।

समवायांग के बावीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए…… है तो भगवती[४०५] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की बावीस पल्योपम की स्थिति बतायी है।

समवायांग के तेवीसवें समवाय का छठा सूत्र—'अहे सत्तमाए पुढवीए……है तो भगवती[४०६] में भी तमस्तमा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेवीस सागरोपम की कही है।

समवायांग के तेवीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र—असुरकुमाराणं देवाणं……है तो भगवती[४०७] में भी असुरकुमार देवों की स्थिति तेवीस पल्योपम की बतायी है।

समवायांग के चौवीसवें समवाय का प्रथम सूत्र है—चउवीसं देवाहिदेवा……तो भगवती[४०८] में भी ऋषभ, अजित, संभव, आदि ये चौवीस देवाधिदेव कहे हैं।

समवायांग के चौवीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए……तो भगवती[४०९] में रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौवीस पल्योपम की बतायी है।

---

३९९. भगवती श. ८ उ. ८
४००. भगवती श. १ उ. १
४०१. भगवती श. ६ उ. ७
४०२. भगवती श. १ उ. १
४०३. भगवती श. ८ उ. ८
४०४. भगवती श. ८ उ. १०
४०५. भगवती श. १ उ. १
४०६. भगवती श. १ उ. १
४०७. भगवती श. १ उ. १
४०८. भगवती—श. २ उ. ८
४०९. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के पच्चीसवें समवाय का दशवाँ सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए ......तो भगवती[410] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही है।

समवायांग के छब्बीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—अभवसिद्धिया.......तो भगवती [411] में भी अभवसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतियाँ सत्ता में कही हैं।

समवायांग के छब्बीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए.......तो भगवती[412] में भी रत्नप्रभा-नैरयिकों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की प्रतिपादित है।

समवायांग के अट्ठाईसवें समवाय का तृतीय सूत्र है—आभिणिवोहियनाणे .....तो भगवती[413] में भी आभिनिवोधिक ज्ञान २८ प्रकार का वताया है।

समवायांग को अट्ठाईसवें समवाय का छठा सूत्र—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए ...... है तो भगवती[414] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के उनतीसवें समवाय का दशवाँ सूत्र है—इमीसे णं.......तो भगवती[415] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की वतायी है।

समवायांग के तीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—समणे भगवं महावीरे.......तो भगवती[416] में भी कहा है कि श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित हुये थे।

समवायांग के इकतीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—अहेसत्तमाए पुढवीए..... " तो भगवती[417] में भी तमस्तमा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इकतीस सागरोपम की वतायी है।

समवायांग के वत्तीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—वत्तीसं देविंदा पण्णत्ता.......तो भगवती[418] में भी भवनपतियों के वीस, ज्योतिष्कों के दो, वैमानिकों के दश, इस तरह वत्तीस इन्द्र कहे हैं।

समवायांग के तेतीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—चमरस्स णं असुरिंदस्स.......तो भगवती[419] में भी चमरेन्द्र की चमरचंचा राजधानी के प्रत्येक द्वार के वाहर तेतीस-तेतीस भौम नगर कहे हैं।

समवायांग के पैंतीसवें समवाय का पाँचवाँ सूत्र है—सोहम्मे कप्पे सभाए...... तो भगवती[420] में भी यही वर्णन है।

---

४१०. भगवती—श. १ उ. १
४११. भगवती—श. १ उ. १
४१२. भगवती—श. १ उ. १
४१३. भगवती—श. ८ उ. २
४१४. भगवती—श. १ उ. १
४१५. भगवती—श. १ उ. १
४१६. भगवती—श. १५
४१७. भगवती—श. १ उ. १
४१८. भगवती—श. ३ उ. ८
४१९. भगवती—श. ८ उ. २
४२०. भगवती—श. १ उ. १

समवायांग के छत्तीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—चमरस्स णं असुरिंदस्स.......तो भगवती[४२१] में भी चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊँची बतायी है।

समवायांग के बियालीसवें समवाय का नवमाँ सूत्र है—एगमेगाए ओसप्पिणीए.......तो भगवती[४२२] में भी यही वर्णन है।

समवायांग के छियालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—बंभीए णं लिवीए.......तो भगवती[४२३] में भी ब्राह्मी लिपि के छियालीस मात्रिकाक्षर कहे हैं!

समवायांग के एकावनवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—चमरस्स णं असुरिंदस्स ....तो भगवती[४२४] में भी चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा के एकावन सौ स्तम्भ कहे गये हैं।

समवायांग के बावनमें समवाय का प्रथम सूत्र है—मोहणिज्जस्स कम्मस्स.......तो भगवती[४२५] में भी क्रोध, कोप, आदि मोहनीय कर्म के बावन नाम हैं।

समवायांग के छासठवें समवाय का छठा सूत्र है—आभिणिबोहिनाणस्स ....तो भगवती[४२६] के भी आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागरोपम कही है।

समवायांग के अठहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र है—सक्कस्स णं देविंदस्स....... तो भगवती[४२७] में भी कहा है कि शक्र देवेन्द्र के वैश्रमण, सेनानायक के रूप में आज्ञा का पालन करते हैं।

समवायांग के इकासीवें समवाय का तीसरा सूत्र है—विवाहपन्नीए एकासीतिं ....तो भगवती[४२८] में भी प्रस्तुत आगम के इक्यासी महायुग्म शतक कहे गये हैं।

इस तरह भगवती सूत्र में अनेक पाठों का समवायांग के साथ समन्वय है। कितने ही सूत्रों में नारक व देवों की स्थिति के सम्बन्ध में अपेक्षादृष्टि से पुनरावृत्ति भी हुयी है अतः हमने उसे जानकर उसकी तुलना नहीं की है।

समवायांग और प्रश्नव्याकरण—

समवायांग और प्रश्नव्याकरण ये दोनों ही अंग सूत्र हैं। समवायांग में ऐसे अनेक स्थल हैं जिन की तुलना प्रश्नव्याकरण के साथ की जा सकती है। प्रश्नव्याकरण का प्रतिपाद्य विषय पाँच आश्रव और पांच संवर हूं। इसलिये विषय की दृष्टि से यह सीमित है।

समवायांग के द्वितीय समवाय का तृतीय सूत्र है—दुविहे बंधणे....तो इसकी प्रतिध्वनि प्रश्नव्याकरण[४२९] में भी मुखरित हुयी है।

---

४२१. भगवती—श. ८ उ. २
४२२. भगवती—श. ३ उ. ७
४२३. भगवती—श. १ उ. १
४२४. भगवती—श. १३ उ. ६
४२५ भगवती—श. १२ उ. ५
४२६. भगवती—श. ७. उ. २ सू. ११०
४२७. भगवती—श. ३ उ. ७
४२८. भगवती—उपसंहार
४२९. प्रश्नव्याकरण—५ संवरद्वार

समवायांग के तृतीय समवाय का प्रथम सूत्र है—तम्रो दंडा पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३०] में भी तीन दण्ड का उल्लेख है।

समवायांग के तृतीय समवाय का द्वितीय सूत्र है—तम्रो गुत्तीम्रो पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३१] में भी तीन गुप्तियों का उल्लेख हुआ है।

समवायांग के तृतीय समवाय का तृतीय सूत्र है—तम्रो सल्ला पण्णत्ता''' तो प्रश्नव्याकरण[४३२] में भी तीन शल्यों का वर्णन है।

समवायांग के तृतीय समवाय का चतुर्थ सूत्र है—तम्रो गारवा पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३३] में भी गर्व के तीन भेद बताये हैं।

समवायांग सूत्र के तृतीय समवाय का पांचवाँ सूत्र है—तम्रो विराहणा पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३४] में भी तीन विराधनाम्रों का उल्लेख है।

समवायांग सूत्र के चतुर्थ समवाय का चतुर्थ सूत्र है—चत्तारि सण्णा पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३५] में भी चार संज्ञाम्रों का वर्णन है।

समवायांग के पांचवें समवाय का दूसरा सूत्र है—पंच महव्वया पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३६] में भी पांच महाव्रतों का वर्णन है।

समवायांग के पांचवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—पंच म्रासवदारा पण्णत्ता''''तो प्रश्नव्याकरण[४३७] में भी पांच म्राश्रवद्वारों का निरूपण हुम्रा है।

समवायांग के पांचवे समवाय का पांचवाँ सूत्र है—पंच संवरदारा पण्णत्ता—तो प्रश्नव्याकरण[४३८] में भी पांच संवरद्वारों का विश्लेषण है।

समवायांग के सातवें समवाय का पहला सूत्र है—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता''''''तो प्रश्नव्याकरण[४३९] में भी सात भयस्थान बताये हैं।

समवायांग के म्राठवें समवाय का पहला सूत्र है—म्रट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता''''''''तो प्रश्नव्याकरण[४४०] में भी म्राठ मदस्थान बताये हैं।

समवायांग के नौवें समवाय का प्रथम सूत्र है—नव बंभचेरगुत्तीम्रो पण्णत्ताम्रो''''तो प्रश्नव्याकरण[४४१] में भी नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों का उल्लेख है।

---

४३०. प्रश्नव्याकरण ५ संवरद्वार
४३१. प्रश्नव्याकरण ५ संवरद्वार
४३२. प्रश्नव्याकरण ५ संवरद्वार
४३३. प्रश्नव्याकरण ५ संवरद्वार
४३४. प्रश्नव्याकरण ५ वां संवरद्वार
४३५. प्रश्नव्याकर ५ वां संवरद्वार
४३६. प्रश्नव्याकरण ५ वां संवरद्वार
४३७. प्रश्नव्याकरण म्राश्रवद्वार
४३८. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
४३९. प्रश्नव्याकरण ५ वां संवरद्वार
४४०. प्रश्नव्याकरण ५ वां संवरद्वार
४४१. प्रश्नव्याकरण ५ संवरद्वार

समवायांग सूत्र के नौवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—'नव वंभचेर-अगुत्तीओ पण्णत्ताओ" तो प्रश्न-व्याकरण[४४२] में भी नौ ब्रह्मचर्य की अगुप्तियों का वर्णन है।

समवायांग सूत्र के दसवें समवाय का पहला सूत्र है—'दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते' तो प्रश्नव्याकरण[४४३] में भी श्रमणधर्म के दस प्रकार बताये हैं।

समवायांग सूत्र के ग्यारहवें समवाय का पहला सूत्र है—'एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ" तो प्रश्नव्याकरण[४४४] में भी उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का उल्लेख है।

समवायांग सूत्र के बारहवें समवाय का पहला सूत्र है—'वारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ" तो प्रश्न-व्याकरण[४४५] में भी वारह प्रकार की भिक्षुप्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है।

समवायांग के सोलहवें समवाय का पहला सूत्र है—'सोलस य गाहासोलसगा पण्णत्ता' तो प्रश्नव्याकरण[४४६] में सूत्रकृतांग के सोलहवें अध्ययन का नाम गाथाषोडशक बताया है।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का पहला सूत्र है—'सत्तरसविहे असंजमे पण्णत्ते' तो प्रश्नव्याकरण[४४७] में भी सत्तरह प्रकार के असंयम का प्रतिपादन है।

समवायांग सूत्र के अठारहवें समवाय का पहला सूत्र है—'अट्ठारसविहे वंभे पण्णत्ते' तो प्रश्नव्याकरण[४४८] में भी ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार बताये हैं।

समवायांग सूत्र के उन्नीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगूणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता' तो प्रश्न व्याकरण[४४९] में भी ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन बताये हैं।

समवायांग के तेईसवें समवाय का पहला सूत्र है—'तेवीसं सूयगडज्झयणा पण्णत्ता' तो प्रश्नव्याकरण[४५०] में भी सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों का सूचन है।

समवायांग के पच्चीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'पुरिम-पच्छिमगाणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ' तो प्रश्नव्याकरण[४५१] में भी प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ बताई हैं।

समवायांग के सत्तावीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'सत्तावीसं अणगारगुणा पण्णत्ता' तो प्रश्न-व्याकरण[४५२] में भी श्रमणों के सत्तावीस गुणों का प्रतिपादन किया है।

समवायांग के अट्ठईसवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते' तो प्रश्न-व्याकरण[४५३] में भी आचारप्रकल्प के अट्ठावीस प्रकार बताये हैं।

---

४४२. प्रश्नव्याकरण आश्रवद्वार ४
४४३. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४४. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४५. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४६. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४७. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४८. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ४
४४९. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४५०. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४५१. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४५२. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४५३. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५

समवायांग के उन्तीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगूणतीसविहे पावसुयपसंगे' तो प्रश्नव्याकरण[454] में भी पापश्रुत के उन्तीस प्रसंग बताये हैं।

समवायांग के तीसवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'तीसं मोहणीयठाणा पण्णत्ता' तो प्रश्नव्याकरण[455] में भी मोहनीय के तीस स्थानों का उल्लेख है।

समवायांग के इकतीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'एक्कतीसं सिद्धाइगुणा पण्णत्ता' तो प्रश्नव्याकरण[456] में भी सिद्धों के एकत्तीस गुण कहे हैं।

समवायांग के तेतीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ.........' तो प्रश्न-व्याकरण[457] में भी तेतीस आशातना का उल्लेख है।

इस तरह समवायांग और प्रश्नव्याकरण में अनेक स्थलों पर समान विषयों का निरूपण हुआ है।

समवायांग और औपपातिक

उपांग साहित्य में प्रथम उपांग सूत्र "औपपातिक" है। समवायांग में कुछ विषय ऐसे हैं जिन की सहज रूप से तुलना औपपातिक के साथ की जा सकती है। हम उन्हीं पर यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं।

समवायांग के प्रथम समवाय का छठा सूत्र है—'एगा अकिरिया' तो औपपातिक[458] में भी इस का वर्णन प्राप्त है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सातवाँ सूत्र है—'एगे लोए' तो औपपातिक[459] में भी लोक के स्वरूप का प्रतिपादन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का आठवाँ सूत्र है—'एगे अलोए' तो औपपातिक[460] में भी अलोक का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'एगे पुण्णे'.है तो औपपातिक[461] में भी पुण्य के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है।

समवायांग के प्रथम समवाय का बारहवाँ सूत्र—'एगे पावे' है तो औपपातिक[462] में भी पाप का वर्णन है।

समवायांग के प्रथम समवाय में बन्ध, मोक्ष, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा का कथन है तो औपपातिक[463] में भी उक्त विषयों का निरूपण हुआ है।

समवायांग के चतुर्थ समवाय का दूसरा सूत्र है—'चत्तारि झाणा पण्णत्ता' तो औपपातिक[464] में भी ध्यान के इन प्रकारों का निरूपण हुआ है।

---

४५४. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
४५५. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
४५६. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
४५७. प्रश्नव्याकरण संवरद्वार
४५८. औपपातिक २०
४५९. औपपातिक ५६
४६०. औपपातिक ५६
४६१. औपपातिक ३४
४६२. औपपातिक ३४
४६३. औपपातिक ३४
४६४. औपपातिक ३०

समवायांग के छट्ठे समवाय का तीसरा सूत्र है—'छव्विहे वाहिरे तवोकम्मे' और चौथा सूत्र है 'छव्विहे अब्भितरे तवोकम्मे ...' तो औपपातिक[465] में छह वाह्य और छह आभ्यंतर तपों का उल्लेख है।

समवायांग के सातवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था' तो औपपातिक[466] में भी महावीर के सात हाथ ऊंचे होने का वर्णन है।

समवायांग के आठवें समवाय का सातवां सूत्र है—'अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए ...' तो औपपातिक[467] में भी केवलीसमुद्घात का उल्लेख है।

समवायांग के वारहवें समवाय का दसवां सूत्र है—'सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स ...' और ग्यारहवां सूत्र 'ईसिपब्भाराए णं पुढवीए' तो औपपातिक[468] में भी ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का वर्णन है और उसके वारह नाम वताये हैं।

समवायांग के चौतीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'चौत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता' तो औपपातिक[469] में भी बुद्धातिशय के चौतीस भेद वताये हैं।

समवायांग के पैंतीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता' तो औपपातिक[470] में भी सत्य-वचनातिशय पैंतीस वताये हैं।

समवायांग पैंतालीसवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—'ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव' तो औपपातिक में भी 'ईषत् प्राग्भारा' पृथ्वी का आयाम-विष्कंभ पैंतालीस लाख योजन का वताया है।

समवायांग सूत्र के एक्कानवे समवाय का पहला सूत्र है—'एकाणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ' तो औपपातिक[472] में भी दूसरे की वैयावृत्य करने की प्रतिज्ञाएं एक्कानवें वताई हैं।

इस तरह समवायांग और औपपातिक में विषयसाम्य है।

समवायांग और जीवाभिगम

समवायांग में आये हुए कुछ विषयों की तुलना अव हम तृतीय उपाङ्ग जीवाभिगम सूत्र के साथ करेंगे।

समवायांग के द्वितीय समवाय का दूसरा सूत्र है—'दुवे रासी पण्णत्ता' तो जीवाभिगम[473] में भी दो राशियों का उल्लेख है।

समवायांग के छठे समवाय का द्वितीय सूत्र है—'छ जीव-निकाया पण्णत्ता' तो जीवाभिगम[474] में भी यह वर्णन है।

समवायांग के नौवें समवाय का नौवां सूत्र है—विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए वाहाए नव-नव भोमा पण्णत्ता' तो जीवाभिगम[475] में भी विजयद्वार के प्रत्येक पार्श्वभाग में नौ नौ भौम नगर हैं, ऐसा उल्लेख है।

---

४६५. औपपातिक सूत्र ३०
४६६. औपपातिक सूत्र १०
४६७. औपपातिक सूत्र ४२
४६८. औपपातिक सूत्र ४३
४६९. औपपातिक सूत्र १०
४७०. औपपातिक सूत्र १०
४७१. औपपातिक सूत्र ४३
४७२. औपपातिक सूत्र २०
४७३. जीवाभिगम प्र. १, सूत्र १
४७४. जीवाभिगम प्र. ५, सूत्र २२८
४७५. जीवाभिगम प्र. ३, सूत्र १३२

समवायांग के नौवें समवाय में दर्शनावरण की नौ प्रकृतियाँ कही हैं तो जीवाभिगम[४७६] में भी दर्शनावरण कर्म की नौ प्रकृतियां कही हैं।

समवायाग के बारहवें समवाय का चौथा सूत्र है—विजया णं रायहाणी दुवालस ......तो जीवाभिगम[४७७] में भी विजया राजधानी का आयाम-विष्कम्भ बारह लाख योजन का प्रतिपादन किया है।

समवायांग के तेरहवें समवाय का पांचवां सूत्र है—जलयर-पंचिदियतिरिक्खजोणिआणं......" तो जीवाभिगम[४७८] में भी जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय की साढे तेरह लाख कुलकोटियां कही हैं।

सत्तरहवें समवाय का तृतीय सूत्र है—'माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस......' तो जीवाभिगम[४७९] में भी मानुषोत्तर पर्वत की ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की कही है।

सत्तरहवें समवाय का चौथा सूत्र है—सव्वेसिं पि णं वेलंधर......तो जीवाभिगम[४८०] में भी सर्व वेलंधर और अणुवेलंधर नागराजों के आवासपर्वतों की ऊंचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की बतायी है।

समवायांग के सत्तरहवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'लवणे णं समुद्दे'......तो जीवाभिगम[४८१] में भी लवणसमुद्र के पेंदे से ऊपर की सतह की ऊंचाई सत्तर हजार योजन की बताई है।

अठारहवें समवाय का सातवां सूत्र है—धूमप्पहाए णं......तो जीवाभिगम[४८२] में भी धूमप्रभा पृथ्वी का विस्तार एक लाख अठारह योजन का बताया है।

पच्चीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—दोच्चाए णं पुढवीए......तो जीवाभिगम[४८३] में भी शर्कराप्रभा पृथ्वी में पच्चीस लाख नारकावास बताये हैं।

सत्तावीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु......तो जीवाभिगम[४८४] में भी सौधर्म और ईशान कल्प में अट्ठावीस लाख विमान बताये हैं।

चौतीसवें समवाय का छठा सूत्र है—पढम-पंचम......तो जीवाभिगम[४९०] में भी पहली, पांचमी छठी और सातवीं इन चार पृथ्वियों में चौंतीस लाख नारकावास बताये हैं।

पैंतीसवें समवाय का छठा सूत्र है बितिय-चउत्थीसु......तो जीवाभिगम[४८६] में भी दूसरी और चौथी-इन दो पृथ्वियों में पैंतीस लाख नारकावास बताये हैं।

सैंतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—सव्वासु णं विजय......तो जीवाभिगम[४८७] में भी विजय-वैजयन्त और अपराजिता इन सब राजधानियों के प्राकारों की ऊंचाई सैंतीस योजन की बतायी है।

४७६. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १३२
४७७. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १३५
४७८. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ९७
४७९. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १७८
४८०. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १५९
४८१. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १७३
४८२. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ६८
४८३. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ७०
४८४. जीवाभिगम—प्र. २ सू. २१०
४८५. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ८१
४८६. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ८१
४८७. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १३५

सैंतीसवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—खुड्डियाए णं विमाणं……तो जीवाभिगम[४८८] में भी क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति के प्रथम वर्ग में सैंतीस उद्देशन काल कहे हैं।

उनचालीसवें समवाय का तृतीय सूत्र है—दोच्च-चउत्थ……तो जीवाभिगम[४८९] में भी दूसरी, चौथी पाँचमीं, छठी और सातवीं इन पांच पृथ्वियों में उनचालीस लाख नारकावास बताये हैं।

इकतालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—चउसु पुढवीसु……तो जीवाभिगम[४९०] में भी चार पृथ्वियों में इकतालीस हजार नारकावास बताये हैं।

बयालीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—कालोए णं समुद्दे……तो जीवाभिगम[४९१] में भी कालोद समुद्र में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य बताये हैं।

बयालीसवें समवाय का सातवां सूत्र है—लवणे णं समुद्दे……तो जीवाभिगम[४९२] में भी लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को बयालीस हजार नागदेवता धारण करते बताये हैं।

तयालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—पढम-चउत्थ……तो जीवाभिगम[४९३] में भी पहली, चौथी और पांचमी इस तीन पृथ्वियों में तयालीस लाख नारकावास बताये हैं।

पैंतालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—सीमंतए णं नरए……तो जीवाभिगम[४९४] में भी सीमान्तक नारकावास का आयाम-विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजन का बताया है।

पचपनवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—मंदरस्स णं पव्वयस्स……तो जीवाभिगम[४९५] में भी मेरु पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से विजय द्वार के पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पचपन हजार योजन का बताया है।

साठवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—लवणस्स समुद्दस्स……तो जीवाभिगम[४९६] में भी लवण समुद्र के अग्रोदक को साठ हजार नागदेवता धारण करते हैं ऐसा उल्लेख है।

चौसठवें समवाय का चौथा सूत्र है—सव्वे वि णं दहीमुहा पव्वया……तो जीवाभिगम[४९७] में भी सभी दधिमुख पर्वत माला के आकार वाले है। अतः उन का विष्कम्भ सर्वत्र समान है, उन की ऊंचाई चौसठ हजार योजन की है।

छासठवें समवाय का प्रथम सूत्र है—दाहिणड्ढ-माणुस्स-खेत्ताणं, द्वितीय सूत्र है—छावट्ठि सूरिया तविंसु, तृतीय सूत्र है—उत्तरड्ढ माणुस्स खेत्ताणं……, चतुर्थसूत्र है—छावट्ठि सूरिया तविंसु वा ३, तो जीवाभिगम[४९८] में भी दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र में छासठ-छासठ चन्द्र और सूर्य बताये हैं।

---

४८८. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १३७
४८९. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ८१
४९०. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ८१
४९१. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १७५
४९२. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १५८
४९३. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. ८
४९४. जीवाभिगम—प्र. ३
४९५. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १२९
४९३. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १५८
४९७. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १८३
४९८. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १७७

सड़सठवें समवाय का तृतीय सूत्र है—'मंदरस्स णं पव्वयस्स.......' तो जीवाभिगम[499] में भी मेरुपर्वत के चरमान्त से गौतमद्वीप के पूर्वी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर सड़सठ हजार योजन का कहा है।

उनहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र है—समयखित्ते णं मंदरवज्जा.......तो जीवाभिगम[500] में भी लिखा है 'समयक्षेत्र में मेरु को छोड़कर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत हैं, जैसे—पैंतीस वर्ष, तीस वर्षधर पर्वत और चार इषुकार पर्वत।

बहत्तरवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'बावत्तरिं सुवन्नकुमारावास.......तो जीवाभिगम[501] में भी सुवर्णकुमारावास बहत्तर लाख बताये हैं।

बहत्तरवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं.......तो जीवाभिगम[502] में भी बहत्तर चन्द्र और सूर्य का वर्णन प्राप्त है।

उनासीवें समवाय का पहला सूत्र 'वलयामुहस्स.......' दूसरा सूत्र 'एवं केउस्सवि.......' तृतीय सूत्र छट्ठीए पुढवीए...... और चतुर्थ सूत्र 'जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स.......' है तो जीवाभिगम[503] में भी वडवामुख पातालकलश का एवं केतुक यूपक आदि पाताल कलशों का छठी पृथ्वी के मध्यभाग से छट्ठे घनोदधि तक का वर्णन और जम्बूद्वीप के प्रत्येक द्वार का अव्यवहित अन्तर उनासी हजार योजन का है, यह वर्णन मिलता है।

अस्सीवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'जम्बुद्दीवे णं दीवे......तो जीवाभिगम[504] में भी जम्बूद्वीप में एक सौ अस्सी योजन जाने पर सर्वप्रथम आभ्यंतर मण्डल में सूर्योदय होता है, यह वर्णन है।

चौरासीवें समवाय का पहला सूत्र है—चउरासीइ निरयावास.......' तो जीवाभिगम[505] में भी नारकावास चौरासी लाख बताये हैं।

चौरासीवें समवाय का सातवां सूत्र है—सव्वेवि णं अजंणगपव्वया.......तो जीवाभिगम[506] में भी सर्व अजंनग पर्वतों की ऊंचाई चौरासी-चौरासी हजार योजन की है।

चौरासीवें समवाय का आठवां सूत्र है—'हरिवास-रम्यवासियाणं.......' तो जीवाभिगम[507] में भी 'सर्व अंजनगपर्वतों की ऊंचाई चौरासी हजार योजन की कही है।

चौरासीवें समवाय का दसवां सूत्र है—विवाहपन्नतीए णं भगवतीए....... तो जीवाभिगम[508] में भी विवाहप्रज्ञप्ति के चौरासी हजार पद हैं।

पचासीवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'धायइसंडस्स णं मंदरा.......तो जीवाभिगम[509] में भी धातकी खण्ड के मेरुपर्वत पंचासी हजार योजन ऊंचे हैं, यह वर्णन है।

---

४९९. जीवाभिगम—प्र. ३, सूत्र १६१
५००. जीवाभिगम—प्र. ३, सू १७७
५०१. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. २, सूत्र १७६
५०२. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. २, सूत्र १५८
५०३. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. २, सूत्र १५६, उद्दे. १, सूत्र. ७६, उद्दे. २, सूत्र १४५
५०४. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. १, सूत्र ७२
५०५. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. १, सूत्र ८१
५०६. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. २,
५०७. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. २, सूत्र १८३
५०८. जीवाभिगम—प्र. ३, उद्दे. १, सूत्र ७९
५०९. जीवाभिगम—प्र. ३,

छियासीवें समवाय का तृतीय सूत्र है—'दोच्चाए णं पुढवीए·······तो जीवाभिगम[५१०] में भी दूसरी पृथ्वी के मध्यभाग से दूसरे घनोदधि के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अंतर छियासी हजार योजन का कहा है।

अठासीवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स' तो जीवाभिगम में[५११] प्रत्येक चन्द्र सूर्य का अठासी-अठासी ग्रहों का परिवार बताया है।

इक्कानवेवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'कालोए णं समुद्दे' तो जीवाभिगम[५१२] के अनुसार भी कालोद समुद्र की परिधि कुछ अधिक इक्कानवे लाख योजन की है।

पंचानवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स·······'तो जीवाभिगम[५१३] में भी जम्बूद्वीप के चरमान्त से चारों दिशाओं में लवणसमुद्र में पंचानवें-पंचानवे हजार योजन अन्दर जाने पर चार महापाताल कलश कहे हैं।

सौवें समवाय का आठवां सूत्र है—'सव्वेवि णं कंचणगपव्वया·······' तो 'जीवाभिगम[५१४] में भी सर्व काँचनक पर्वत सौ-सौ योजन ऊंचे हैं, सौ-सौ कोश पृथ्वी में गहरे हैं और उनके मूल का विष्कम्भ सौ-सौ योजन का कहा है।

पांचसौवें समयवाय का आठवां सूत्र है—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा·······' तो जीवाभिगम[५१५] में सौधर्म और ईशानकल्प में सभी विमान पांच सौ-पांच सौ योजन ऊंचे कहे हैं।

छहसौवें समवाय का पहला सूत्र है—सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु··· ···· "तो जीवाभिगम[५१६] में भी सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में सभी विमान छह सौ योजन ऊंचे कहे हैं।

सातसौवें समवाय का प्रथम सूत्र है—बंभलंतयकप्पेसु····· ' तो जीवाभिगम[५१७] में भी ब्रह्म और लान्तक कल्प के सभी विमान सात सौ योजन ऊंचे बतलाए हैं।

आठसौवें समवाय का प्रथम सूत्र है—महासुक्क-सहस्सारेसु ·····तो जीवाभिगम[५१८] में भी यही है।

नव सौवें समवाय का प्रथम सूत्र है—आणय-पाणय···· ·· हजारवें समवाय का प्रथम सूत्र है—सव्वे वि णं गेवेज्ज ···ग्यारह सौ वें समवाय का प्रथम सूत्र है—अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं·······तीन हजार वें—समवाय का-इमीसे णं रयणप्पहाए······ तो इन सूत्रों जैसा वर्णन जीवाभिगम[५१९] में भी प्राप्त है।

समवायांग सूत्र के सात हजारवें समवाय का प्रथम सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए·······तो जीवाभिगम[५२०] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकाण्ड के ऊपर के चरमान्त से पुलक काण्ड के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर सात हजार योजन का बताया है।

---

५१०. जीवाभिगम—प्र. ३ सूत्र ७९
५११. जीवाभिगम—प्र. ३ उद्दे, २, सूत्र १९४
५१२. जीवाभिगम—प्र. ३ उद्दे, २, सूत्र १७५
५१३, जीवाभिगम—प्र. ३. उ. २ सू. १५६
५१४. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. २ सू. १५०
५१५. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. १ सू. २११
५१६. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. १ सू. २११
५१७. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. १ सू. २११
५१८. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. १ सू. २११
५१९. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. १ सू-२११, १९५
५२०. जीवाभिगम—प्र. ३

दो लाखवें समवाय का प्रथम सूत्र है—लवणे णं समुद्दे······ तो जीवाभिगम [521] में भी लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ दो लाख योजन का बताया है।

चार लाखवें समवाय का प्रथम सूत्र है—धायइखंडे णं दीवे······ तो जीवाभिगम [522] में भी धातकीखण्ड का चक्रवाल-विष्कम्भ चार लाख योजन का बताया है।

पाँच लाखवें समवाय का प्रथम सूत्र है—लवणस्स णं समुद्दस्स······ तो जीवाभिगम [523] में भी लवण समुद्र के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पाँच लाख योजन का बतलाया है।

इस तरह जीवाभिगम में, समवायांग में आये अनेक विषयों की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है।

समवायांग और प्रज्ञापना—

प्रज्ञापना चतुर्थ उपांग है। प्रज्ञापना का अर्थ है—जीव, अजीव का निरूपण करने वाला शास्त्र। आचार्य मलयगिरि प्रज्ञापना को समवाय का उपांग मानते हैं। प्रज्ञापना का समवायांग के साथ कब से सम्बन्ध स्थापित हुआ, यह अनुसन्धान का विषय है। स्वयं श्यामाचार्य प्रज्ञापना को दृष्टिवाद से लिया सूचित करते हैं। किन्तु आज दृष्टिवाद अनुपलब्ध है। इसलिये स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि दृष्टिवाद में से कितनी सामग्री इस में ली गई है। दृष्टिवाद में मुख्य रूप से दृष्टि याने दर्शन का ही वर्णन है। समवायांग में भी मुख्य रूप से जीव अजीव आदि तत्त्वों का प्रतिपादन है। तो प्रज्ञापना में भी वही निरूपण है। अतः प्रज्ञापना को समवायांग उपांग मानने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। अतएव समवायांग में आये हुये विषयों की तुलना प्रज्ञापना के साथ सहज रूप से की जा सकती है।

प्रथम समवाय का पाँचवाँ सूत्र है—एगा किरिया तो प्रज्ञापना [524] में भी क्रिया का निरूपण हुआ है।

प्रथम समवाय का बीसवाँ सूत्र है—अप्पइट्ठाणे नरए······तो प्रज्ञापना [525] में भी अप्रतिष्ठान नरक का आयाम विष्कम्भ प्रतिपादित है।

प्रथम समवाय का बावीसवां सूत्र है—सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे······तो प्रज्ञापना [526] में भी सर्वार्थ-सिद्ध विमान का आयाम विष्कम्भ एक लाख योजन का बताया है।

प्रथम समवाय का छब्बीसवाँ सूत्र है—इमीसे णं रयणप्पहाए णं ······है तो प्रज्ञापना [527] में भी रत्न-प्रभा के कुछ नारकों की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

प्रथम समवाय के सत्तावीसवें सूत्र से लेकर चालीसवें सूत्र तक जो वर्णन है वह प्रज्ञापना [528] के चतुर्थ पद में उसी तरह से प्राप्त होता है।

---

५२१. जीवाभिगम—प्र. ३ सू. १७३
५२२. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. २ सू. १७४
५२३. जीवाभिगम—प्र. ३ उ. २ सू, १५४
५२४. प्रज्ञापना—पद २२
५२५. प्रज्ञापना—पद २
५२६. प्रज्ञापना—पद २
५२७. प्रज्ञापना—पद ४ सू. ९४
५२८. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र—९४, ९५, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३

समवायांग के प्रथम समवाय का इकतालीसवाँ सूत्र है—ते णं देवा.......तो प्रज्ञापना [५२९] में भी सागर यावत् लोकहितविमानों में जो देव उत्पन्न होते हैं, वे एक पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

प्रथम समवाय का बयालीसवाँ सूत्र है—तेसिं णं देवाणं ......तो प्रज्ञापना[५३०] में उन देवों की आहार लेने की इच्छा एक हजार वर्ष से होती है।

दूसरे समवाय का दूसरा सूत्र है—दुविहा रासी पण्णत्ता....... तो प्रज्ञापना [५३१] में भी दो राशियों का उल्लेख है।

दूसरे समवाय के आठवें सूत्र से लेकर बाईसवें सूत्र तक का वर्णन प्रज्ञापना[५३२] में भी इसी तरह प्राप्त हैं।

तृतीय समवाय के तेरहवें सूत्र से तेवीसवें सूत्र तक का वर्णन प्रज्ञापना[५३३] में भी इसी तरह संप्राप्त है।

चतुर्थ समवाय के दशवें सूत्र से सत्तरहवें सूत्र तक का विषय प्रज्ञापना[५३४] में भी इसी तरह उपलब्ध होता है।

पांचवें समवाय के चौदहवें सूत्र से इक्कीसवें सूत्र तक जिस विषय का प्रतिपादन हुआ है वह प्रज्ञापना[५३५] में भी निहारा जा सकता है।

छठे समवाय का पहला सूत्र है—'छ लेसाओ पण्णत्ताओ' तो प्रज्ञापना [३६] में भी छह लेश्याओं का वर्णन प्राप्त है।

छठे समवाय का दूसरा सूत्र है—'छ जीवनिकाया पण्णत्ता....' तो प्रज्ञापना[५३७] में भी वह वर्णन उपलब्ध होता है।

छठे समवाय का पांचवां सूत्र है—'छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता....' तो प्रज्ञापना[५३८] में भी छाद्मस्थिक समुद्घात के छह प्रकार बताये हैं।

छठे समवाय के दशवें सूत्र से सत्तरहवें सूत्र तक का वर्णन प्रज्ञापना[५३९] में भी प्राप्त है।

सातवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—सत्त समुग्घाया पण्णत्ता.... तो प्रज्ञापना [४०] में भी सात समुद्घात का उल्लेख हुआ है।

---

५२९. प्रज्ञापना—पद ७ सूत्र १४६
५३०. प्रज्ञापना—पद २८ सू. ३०४
५३१. प्रज्ञापना—पद १ सू. १
५३२. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९८, ९९, १०२, १०३; पद ७, सूत्र १४६; पद २८ सूत्र ३०३
५३३. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९८, ९९, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५३४. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५३५. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५३६. प्रज्ञापना—पद १७, सूत्र २१४
५३७. प्रज्ञापना—पद १, सूत्र १२
५३८. प्रज्ञापना—पद ३६, सूत्र ३३१
५३९. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, १०२, १०३; पद ७; सूत्र १४६; पद २८ सू. ३०६
५४०. प्रज्ञापना—पद-३६ सू. ३३१

सातवें समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर बावीसवें सूत्र तक जिन विषयों का उल्लेख हुआ है, वे विषय प्रज्ञापना[५४१] में भी उसी तरह प्राप्त हैं।

आठवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—अट्ठसामइए केवलीसमुग्घाए....तो प्रज्ञापना[५४२] में भी केवली समुद्‌घात के आठ समय बताये हैं।

आठवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक जिन विषयों की चर्चाएँ हुयी हैं, वे प्रज्ञापना[५४३] में भी इसी तरह प्रतिपादित हैं।

नवमें समवाय के ग्यारहवें सूत्र से लेकर उन्नीसवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन किया गया है, वे प्रज्ञापना[५४४] में भी चर्चित हैं।

दशवें समवाय के नवम सूत्र से लेकर चौवीसवें सूत्र तक जिन-जिन विषयों पर विचारणा हुयी है, वे प्रज्ञापना[५४५] में भी निहारे जा सकते हैं।

ग्यारहवें समवाय का छठा सूत्र है—हेट्ठिमगेविज्जाणं.......तो प्रज्ञापना[५४६] में भी नीचे के तीन ग्रैवेयक देवों के एक सौ ग्यारह विमान बताये हैं।

ग्यारहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक जिन चिन्तनबिन्दुओं का उल्लेख है, प्रज्ञापना[५४७] में भी उन सभी पर प्रकाश डाला गया है।

बारहवें समवाय के बारहवें सूत्र से उन्नीसवें सूत्र तक जिन विषयों के सम्बन्ध में विवेचन हुआ है, प्रज्ञापना[५४८] में भी उन सब पर चिन्तन हुआ है।

तेरहवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—गब्भं वक्कंति य....तो प्रज्ञापना[५४९] में भी गर्भजतिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के तेरह योग प्रतिपादित हैं।

तेरहवें समवाय के नवमें सूत्र से लेकर सोलहवें सूत्र तक जिन पहलुओं पर विचार किया गया है, वे विषय प्रज्ञापना[५५०] में भी प्रज्ञापित हैं।

चौदहवें समवाय के नवमें सूत्र से लेकर सत्तरहवें समवाय तक जिन विषयों को उजागर किया गया है, वे प्रज्ञापना[५५१] में भी अपने ढंग से विवेचित हुये हैं।

---

५४१. प्रज्ञापना—पद ४ सू. ९४, ९५, १०२, १०३, पद ७ सू. १४६, पद २८ सू, ३०६

५४२. प्रज्ञापना—पद ३६ सू. ३३१

५४३. प्रज्ञापना—पद ४ सू. ९४, ९५, १०२, १०३; पद ७ सू. १४६; पद २८ सू. ३०४

५४४. प्रज्ञापना—पद २३, पद ४ सू. ९४, ९५, १०२, १०३; पद-७ सू. १४६; पद २८ सू. ३०४

५४५. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९६, १००, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद, २८ सूत्र ३०६

५४६. प्रज्ञापना—द, २, सूत्र ५३

५४७. प्रज्ञापना—पद ४ सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सू. १४६; पद २८, सूत्र ३०६

५४८. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद. ७, सू. १४६; पद २८, सूत्र ३०४

५४९ प्रज्ञापना—पद १६, सूत्र २०२

५५०. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सू. १४६; पद २८ सूत्र ३०६

५५१. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सू. १४६; पद २८ सूत्र ३०४

पन्द्रहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर सोलहवें सूत्र तक जिन पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, वे प्रज्ञापना[५५२] में भी हैं।

सोलहवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—सोलस कसाया पण्णत्ता…तो प्रज्ञापना[५५३] में भी अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय चर्चित हुये हैं।

सोलहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक जिन वातों पर प्रकाश डाला है, वे प्रज्ञापना[५५४] में भी विश्लेषित हैं।

सत्तरहवें समवाय के ग्यारहवें सूत्र से लेकर वीसवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन-मनन किया गया है, उन विषयों पर प्रज्ञापना[५५५] में भी प्रकाश डाला गया है।

अठारहवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—वंभीए णं लिवीए……… तो प्रज्ञापना[५५६] में भी ब्राह्मी लिपी का लेखन अठारह प्रकार का वताया है।

अठारहवें समवाय के नौवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक जिन विषयों को प्रकाशित किया गया है, वे विषय प्रज्ञापना[५५७] में भी विस्तार से निरूपित हैं।

उन्नीसवें समवाय में छठे सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक जिन विषयों की चर्चा की गई है, वे विषय प्रज्ञापना[५५७] में भी आये हैं।

वीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—पाणयस्स णं देविंदस्स………"तो प्रज्ञापना[५५८] में भी प्राणत कल्पेन्द्र के वीस हजार सामानिक देव वताये हैं।

वीसवें समवाय के आठवें सूत्र से सत्तरहवें सूत्र तक जो वर्णन हैं वह प्रज्ञापना[५६०] में भी मिलता है।

इक्कीसवें समवाय में पांचवें सूत्र से लेकर चौदहवें समवाय तक जिन विषयों की चर्चा है, वे प्रज्ञापना[५६१] में भी चर्चित हुए हैं।

बावीसवें समवाय में सातवें सूत्र से लेकर सोलहवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन हुआ है, उन विषयों पर प्रज्ञापना[५६२] में भी विश्लेषण हुआ है।

---

५५२. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९०२, पद ७ सू. १४६ पद २८, सूत्र ३०४
५५३ प्रज्ञापना—पद १४, सूत्र १८८
५५४. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७ सूत्र. १४६ पद २९ सूत्र ३०४
५५५. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९०२; पद सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०४
५५६. प्रज्ञापना—पद १, सूत्र ३७
५५७. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सू, १४६; पद २८, सूत्र ३०४
५५८. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सू. १४६; पद २८, सूत्र ३०४
५५९. प्रज्ञापना—पद ५, सूत्र ५३
५६०. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०४
५६१. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १२२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८ सूत्र ३०४
५६२. प्रज्ञापना पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद, २९ सूत्र ३०४

तेईसवें समवाय के पांचवें सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक जिन भावों की प्ररूपणा हुई है वे भाव प्रज्ञापना[563] में भी इसी तरह प्ररूपित हैं।

चौबीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक जिन विचारों को गुम्फित किया गया है, वह प्रज्ञापना[564] में भी उसी रूप में व्यक्त हुए हैं।

पच्चीसवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक जो वर्णन है वह प्रज्ञापना[565] में भी उसी तरह मिलता है।

छब्बीसवें समवाय के दूसरे सूत्र से दशवें सूत्र तक जो विचारसूत्र आये हैं वे प्रज्ञापना[566] में भी देखे जा सकते हैं।

सत्ताईसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक जिन विचारों को निरूपित किया है वे प्रज्ञापना[567] में भी उसी तरह मिलते हैं।

अठाईसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीसं विमाण-सय-सहस्सा पण्णत्ता' तो प्रज्ञापना[568] में भी ईशान कल्प के अठावीस लाख विमान बताये हैं।

अठाईसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, उनतीसवें समवाय के दसवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक, तीसवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, एकतीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, बत्तीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, तेतीसवें समवाय के पांचवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन हुआ है, वे विषय प्रज्ञापना[569] में भी अच्छी तरह से चर्चित किये गये हैं।

चौतीसवें समवाय का पाँचवाँ सूत्र है—'चमरस्स णं असुरिंदस्स ·······'तो प्रज्ञापना[570] में भी चमरेन्द्र के चौतीस लाख भवनावास बताये हैं।

उनचालीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'नाणावरणिज्जस्स········' तो प्रज्ञापना[571] में भी ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र, और आयु—इन चार मूल कर्म प्रकृतियों की उनचालीस उत्तरकर्म प्रकृतियां बताई हैं।

चालीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'भूयाणंदस्स णं नागकुमारस्स नागरण्णो ·· ···'तो प्रज्ञापना में भी भूतानन्द नागकुमारेन्द्र के चालीस लाख भवनावास बताये हैं।

चालीसवें समवाय का आठवां सूत्र है—महासुक्के कप्पे·······तो प्रज्ञापना[573] में भी महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमानावास का वर्णन है।

---

५६३. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५६४. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५६५. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७ सूत्र, १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५६६. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५६७. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५६८ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
५६९. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२; पद ७, सूत्र १४६; पद २८, सूत्र ३०६
५७०. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४६
५७१. प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३
५७२. प्रज्ञापना पद २, सूत्र १३२
५७३. प्रज्ञापना पद २, सूत्र १३२

वियालीसवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'संमुच्छिम-भुयपरिसप्पाणं ·· ····' तो प्रज्ञापना[५७४] में भी सम्मूछिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति वियालीस हजार वर्ष की बताई है।

वियालीसवें समवाय का छठा सूत्र है—'नामकम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते' तो प्रज्ञापना[५७५] में भी नामकर्म की वियालीस प्रकृतियां बताई हैं।

पैंतालीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव' तो प्रज्ञापना[५७६] में भी ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के आयाम-विष्कम्भ का वर्णन है।

छियालीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'पभंजणस्स णं वाउकुमारिंदस्स········' तो प्रज्ञापना[५७७] में भी वायुकुमारेन्द्र प्रभंजन के छियालीस लाख भवनावास बताये हैं।

उनपचासवें समवाय का तृतीय सूत्र है—'तेइंदियाणं उक्कोसेणं·······'तो प्रज्ञापना[५७८] में भी त्रीन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति उनपचास अहोरात्रि की बताई है।

पचासवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'लंतए कप्पे पन्नासं········' तो प्रज्ञापना[५७९] में भी लांतक कल्प में पचास हजार विमान बताये हैं।

एकावनवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'दंसणावरण-नामाणं·······' तो प्रज्ञापना[५८०] में भी ऐसा ही कथन है।

बावनवें समवाय का चौथा सूत्र है—'नाणावरणिज्जस्स, नामस्स········' तो प्रज्ञापना[५८१] में भी ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीन मूल प्रकृतियों की बावन उत्तर प्रकृतियाँ बताई हैं।

बावनवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'सोहम्म-सणंकुमार········' तो प्रज्ञापना[५८२] में भी सौधर्म सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन देवलोकों में बावन लाख विमानावास कहे हैं।

त्रेपनवें समवाय का चौथा सूत्र है—'सम्मुच्छिम-उरपरिसप्पाणं·······'' तो प्रज्ञापना में भी सम्मूछिम उरपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति त्रेपन हजार वर्ष की कही है।

पचपनवें समवाय का पांचवाँ सूत्र है—'पढम-बिइयासु दोसु······' तो प्रज्ञापना [५८४] में भी प्रथम और द्वितीय इन दो पृथ्वियों में पचपन लाख नरकावास बताये हैं।

पचपनवें समवाय का छठा सूत्र है—'दंसणावरणिज्ज-नामाउयाणं·······' तो प्रज्ञापना[५८५] में भी दर्शनावरणीय, नाम और आयु इन तीन मूल प्रकृतियों की पचपन उत्तर प्रकृतियाँ हैं।

---

५७४. प्रज्ञापना पद ४
५७५. प्रज्ञापना पद १३, सूत्र २९३
५७६. प्रज्ञापना पद २
५७७. प्रज्ञापना पद २, सूत्र १३२
५७८. प्रज्ञापना पद ४, सूत्र ९७
५७९. प्रज्ञापना पप २, सूत्र ५३
५८०. प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३
५८१. प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३
५८२. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४३
५८३, प्रज्ञापना पद ४, सूत्र १७
५८४. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ८१
५८५. प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३

अठावनवें समवाय का पहला सूत्र है—'पढम-दोच्च-पंचमासु ....' तो प्रज्ञापना[५८६] में भी पहली, दूसरी और पांचवीं इन तीन पृथ्वियों में अठावन लाख नारकावास बताए हैं।

अठावनवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'नाणावरणिज्जस्स वेयणिय.... ...' तो प्रज्ञापना[५८७] में ज्ञानावरणीय, वेदनीय आयु, नाम और अन्तराय इन पांच मूल कर्मप्रकृतियों की अठावन उत्तर प्रकृतियां कही हैं।

साठवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—'वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स' तो प्रज्ञापना[५८८] में भी वलेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव बताये हैं।

साठवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'बंभस्स णं देविंदस्स.......' तो प्रज्ञापना[५८९] में भी ब्रह्म देवेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव बताये हैं।

साठवें समवाय का छठा सूत्र है—'सोहम्मीसाणेसु दोसु.......' तो प्रज्ञापना[५९०] में भी सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में साठ लाख विमानावास कहे हैं।

वासठवें समवाय का चौथा सूत्र है—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु.......'तो प्रज्ञापना[५९१] में भी सौधर्म और ईशान कल्प के प्रथम प्रस्तट की प्रथम आवलिका एवं प्रत्येक दिशा में वासठ-वासठ विमान हैं।

वासठवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'सव्वे वेमाणियाणं वासट्ठि...... 'तो प्रज्ञापना[५९२] में भी सर्व वैमानिक देवों के वासठ विमान प्रस्तट कथित हैं।

चौसठवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'चउसट्ठि असुरकुमाराणं.... ...'तो प्रज्ञापना[५९३] में भी चौसठ लाख असुरकुमारावास बताये हैं।

वहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'बावत्तरिं सुवन्नकुमारावासा.... . ' तो प्रज्ञापना[५९४] में भी सुवर्णकुमारावास वहत्तर लाख बताये हैं।

वहत्तरवें समवाय का आठवां सूत्र है—'सम्मुच्छिम-खहयर....' तो प्रज्ञापना[५९५] में भी सम्मूच्छिम खेचर तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति वहत्तर हजार वर्ष की बतायी है।

चौहत्तरवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—चउत्थवज्जासु छसु.......तो प्रज्ञापना[५९६] में भी चौथी पृथ्वी को छोड़कर शेष छह पृथ्वियों में चौहत्तर लाख नरकावास कहे हैं।

छिहत्तरहवें समवाय का पहला सूत्र है—'छावत्तरिं विज्जुकुमारावास...... 'तो प्रज्ञापना[५९७] में भी विद्युत् कुमारावास छिहत्तर लाख बताये हैं।

---

५८६. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ८१
५८७. प्रज्ञापना पद २३, सूत्र ८१
५८८. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ३१
५८९. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ५३
५९०. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ३३
५९१. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४७
५९२. प्रज्ञापना पद २
५९३. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४७
५९४. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४६
५९५. प्रज्ञापना पद ४, सूत्र ९८
५९६. प्रज्ञापना पद २
५९७. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४६

छिहत्तरहवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'एवं दीव-दिसा-उदहीणं………'तो प्रज्ञापना[५९८] में भी द्वीपकुमार दिशाकुमार आदि के छिहत्तर लाख भवन बताये हैं।

अस्सीवें समवाय का छठा सूत्र है—'ईसाणस्स देविंदस्स……'तो प्रज्ञापना[५९९] में भी ईशान देवेन्द्र के अस्सी हजार सामानिक देव बताये हैं।

चौरासीवें समवाय का छठा सूत्र है—'सव्वेवि णं वाहिरया मंदरा………' तो प्रज्ञापना[६००] में भी ऐसा ही वर्णन है।

चौरासीवें समवाय का वारहवाँ सूत्र है—'चोरासीइ पइन्नग……' तो प्रज्ञापना[६०१] में भी ऐसा ही कथन है।

छियानवेवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'वायुकुमाराणं छण्णउइ………' तो प्रज्ञापना[६०२] में भी वायुकुमार के छानवे लाख भवन बताये हैं।

निन्यानवेवें समवाय का सातवां सूत्र है—'दक्खिणग्राओ णं कट्ठाओ………' तो प्रज्ञापना[६०३] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के अंजनकाण्ड के नीचे के चरमान्त से व्यन्तरों के भौमेय विहारों के ऊपरी चरमान्त का अव्यवहित अंतर निन्यानवे सौ योजन का है।

डेढ़सौवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'आरणे कप्पे………' तो प्रज्ञापना[६०४] में भी आरण कल्प के डेढ़ सौ विमान बताये हैं।

ढाई सौवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—'असुरकुमाराणं…'तो प्रज्ञापना[६०५] में भी असुरकुमारों के प्रासाद ढाई सौ योजन ऊँचे वताये हैं।

चार सौवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—'आणयपाणएसु………' है तो प्रज्ञापना [६०६] में भी आनत और प्राणत इन दो कल्पों में चार सौ विमान वताये हैं।

आठ सौवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—'इमीसे णं रयणप्पहाए………' तो प्रज्ञापना[६०७] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम रमणीय भूभाग से आठ सौ योजन के ऊपर सूर्य गति करता कहा गया हैं।

छह हजारवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'सहस्सारे णं कप्पे ……' तो प्रज्ञापना[६०८] में भी—सहस्रार कल्प में छह हजार विमान बताये हैं।

आठ लाखवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'माहिंदे णं कप्पे…… ' तो प्रज्ञापना[६०९] में भी माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमान बताये हैं।

५९८. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४६
५९९. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६००. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५२
६०१. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४६
६०२. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ३७
६०३. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र २८
६०४. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०५. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र २८
६०६. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०७. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४७
६०८. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०९. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३

इस तरह प्रज्ञापना में समवायांग के अनेक विषय प्रतिपादित हैं। कितने ही सूत्र तो समवायांगगत सूत्रों से प्राय: मिलते हैं। समवायांग में जिन विषयों के संकेत किये गये हैं, उन विषयों को श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना में विस्तार से निरूपित किया है। अत्यधिक साम्य होने के कारण ही इसे समवायांग का उपांग माना गया लगता है।

समवायांग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्राचीन जैन भूगोल का महत्त्वपूर्ण आगम है। इस आगम में जैन दृष्टि से सृष्टिविद्या के बीज यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भगवान् ऋषभदेव का प्राग् ऐतिहासिक जीवन भी इसमें मिलता है।

प्रस्तुत आगम के साथ अनेक विषयों की तुलना सहज रूप से इसके साथ की जा सकती है।

आठवें समवाय का चौथा सूत्र है—जंबू णं सुदंसणा अट्ठ·······तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६१०] में भी जम्बूद्वीप के सुदर्शन वृक्ष की आठ योजन की ऊँचाई कही है।

आठवें समवाय का पांचवा सूत्र है—कूडस्स सालमलिस्स णं······ है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६११] में भी गरुडावास कूट शाल्मली वृक्ष आठ योजन के ऊँचे बताये हैं।

आठवें समवाय का छठा सूत्र है—जंबूदीवस्स णं······ तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१२] में भी जम्बूद्वीप की जगती आठ योजन ऊँची बतायी है।

नवमें समवाय का नवमां सूत्र है—विजयस्स णं दारस्स·······तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१३] में विजय द्वार के प्रत्येक पार्श्व भाग में नौ-नौ भौम नगर कहे हैं।

दशवें समवाय का तृतीय सूत्र है—मंदरे णं पव्वए·······तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१४] में भी मेरु पर्वत के मूल का विष्कम्भ दश हजार योजन का बताया है।

दशवें समवाय का आठवां सूत्र है—अकम्मभूमियाणं······ तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६१५] में भी अकर्मभूमिज मनुष्यों के उपभोग के लिये कल्पवृक्षों का वर्णन है।

ग्यारहवें समवाय का द्वितीय सूत्र है—लोगंताओ इक्कारसएहिं······ तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६१६] में भी लोकान्त से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन दूरी पर ज्योतिष्कचक्र प्रारम्भ होता है।

ग्यारहवें समवाय का तीसरा सूत्र है—जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स ······तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६१७] में भी जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन की दूरी पर ज्योतिष्कचक्र प्रारम्भ होता है।

ग्यारहवें समवाय का सातवां सूत्र है—मंदरे णं पव्वए··· तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति [६१८] में भी मेरु पर्वत के पृथ्वीतल के विष्कम्भ से शिखर तल का विष्कम्भ ऊँचाई की अपेक्षा ग्यारह भाग हीन है।

बारहवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—विजया णं रायहाणी ···· तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१९] में भी विजया राजधानी का आयाम-विष्कम्भ बारह लाख योजन का बताया है।

---

६१०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्षस्कार ४, सू. ९०
६११. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सू. १००
६१२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष. १, सू. ४
६१३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्ष. १, सू. ८
६१४. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्ष. ४, सू १०३
६१५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्ष. २, सू. १३०
६१६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्ष. ७, सू. १६४
६१७. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्ष. ७, सू. १६४
६१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सू. १०३
६१९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सू. ८

बारहवें समवाय का छठा सूत्र है—मंदरस्स णं पव्वयस्स...... तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२०] में भी मेरु पर्वत की चूलिका के मूल का विष्कम्भ बारह योजन बताया है।

बारहवें समवाय का सातवां सूत्र है—जम्बूदीवस्स णं दीवस्स...... तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२१] में भी जम्बूद्वीप की वेदिका के मूल का विष्कम्भ बारह योजन का बताया है।

तेरहवें समवाय का आठवां सूत्र है—सूरमंडलं जोयणेणं.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२२] में भी एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग कम करने पर जितना रहे उतना सूर्यमण्डल है।

चौदहवें समवाय का छठा सूत्र है—'भरहेरवयाओ णं जीवाओ.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२३] में भी भरत और ऐरवत की जीवा का आयाम चौदह हजार चार सौ इकहत्तर एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग का कहा है।

चौदहवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—'एगमेगस्स णं रन्नो.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२४] में प्रत्येक चक्रवर्ती के चौदह रत्न बताये हैं।

चौदहवें समवाय का आठवां सूत्र है—जंबुद्दीवे णं दीवे.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२५] में भी कहा है कि गंगा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा आदि चौहद मोटी नदियां पूर्व पश्चिम से लवण समुद्र में मिलती हैं।

सोलहवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'मंदरस्स णं पव्वयस्स...... तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२६] में भी मेरु पर्वत के सोलह नाम बताये हैं।

अठारहवें समवाय का पांचवां सूत्र हैं—'बंभीए णं लिवीए......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२७] में भी ब्राह्मी लिपि के अठारह प्रकार बताये हैं।

उन्नीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'जम्बूद्वीवे णं दीवे सूरिआ.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२८] में 'जम्बूद्वीप में सूर्य ऊंचे तथा नीचे उन्नीस सौ योजन ताप पहुंचाते हैं।

वीसवें समवाय का सातवां सूत्र है—'उस्सप्पिणि-ओसप्पिणिमंडले......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२९] में भी कालचक्र को वीस कोटाकोटी सागरोपम का बताया है।

इक्कीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'एकमेक्काए णं ओसप्पिणीए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३०] में भी प्रत्येक अवसर्पिणी का पांचवाँ दुषमा और छठा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का कहा है।

---

६२०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०६
६२१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १२५
६२२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३०
६२३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र १६
६२४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६८
६२५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५
६२६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०९
६२७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३७
६२८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३९
६२९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र १९-
६३०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३५-३६

इक्कीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी प्रत्येक उत्सर्पिणी का पहला दुषमा और दूसरा दुषम-दुषमा आरा इकवीस-इकवीस हजार वर्ष का है।

चौबीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'चुल्लहिमवंत-सिहरीणं .....' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३२] में लघुहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वतों की जीवा का आयाम चौवीस हजार नौ सौ वत्तीस योजन तथा एक योजन के अड़तीसवें भाग से कुछ अधिक कहा है।

चौबीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'चउवीसं देवठाणा.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३३] में भी देवताओं के चौबीस स्थान इन्द्रवाले शेष अहमिन्द्र-अर्थात् इन्द्र और पुरोहित रहित कहे गए हैं।

चौबीसवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'गंगा-सिंधूओ णं महाणदीओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३४] में भी महानदी गंगा और सिन्धु का प्रवाह कुछ अधिक चौबीस कोश का चौड़ा वतलाया है।

चौबीसवें समवाय का छठा सूत्र है—'रत्तारत्तवतीओ णं.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३५] में भी यही विषय वर्णित है।

पच्चीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'सव्वे वि दीहवेयड्ढपव्वया ....' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३६] में भी सर्वदीर्घ वैताढ्य पर्वत इसी प्रकार के कहे हैं।

पच्चीसवें समवाय का सातवां सूत्र है—'गंगासिंधूओ णं महाणदीओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३७] में भी वर्णन है कि महानदी गंगा-सिंधु का मुक्तावली हार की आकृतिवाला पच्चीस कोश का विस्तृत प्रवाह पूर्व-पश्चिम दिशा में घटमुख से अपने-अपने कुंड में गिरता है।

इकतीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'मंदरे पव्वए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३८] में भी लिखा है 'पृथ्वीतल पर मेरु की परिधि कुछ कम एकतीस हजार छह सौ तेईस योजन की है।

इकतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है, 'जया णं सूरिए ...' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३९] में भी सूर्यदर्शन का वर्णन है।

तेतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'महाविदेहे णं वासे.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४०] में महाविदेह का विष्कंभ कुछ अधिक तेतीस हजार योजन का वताया है।

---

६३१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष २, सूत्र ३७
६३२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ७२
६३३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ५, सूत्र ११५
६३४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ५, सूत्र ७४
६३५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ७४
६३६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष १, सूत्र १२
३२७. जम्बूप्रद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ७४
६३८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १०३
६३९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ७, सूत्र १३३
६४०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ८५

तेतीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—'जया णं सूरिए ·· ····" तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४१] में जम्बूद्वीप में कुछ न्यून तेतीस हजार योजन दूर से सूर्य-दर्शन होता कहा है।

चौतीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'जंवुद्दीवे णं दीवे·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४२] में भी जम्बूद्वीप में चौतीस चक्रवर्तीविजय कहे हैं।

चौतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'जंवुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा·· ·····" तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी जम्बूद्वीप[६४३] में चौतीस दीर्घ वैताढच पर्वत वतलाए हैं।

चौतीसवें समवाय का चौथा सूत्र है—जंवुद्दीवे णं दीवे·······" तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४४] में भी जम्बूद्वीप में उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न होना कहा है।

सेंतीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'हेमवय-हेरण्णवयाग्रो णं·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४५] में भी हेमवन्त ग्रौर हेरण्यवंत की जीवा के ग्रायाम का वर्णन है।

ग्रड़तीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'हेमवए—एरण्णवईमाणं·······" तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४६] में भी हेमवत ग्रौर हैरण्यवत की जीवा के धनुपृष्ठ की परिधि का वर्णन है।

ग्रड़तीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'ग्रत्थस्स णं पव्वयरण्णो·······" जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४७] में भी मेरुपर्वत के द्वितीय काण्ड की ऊंचाई ग्रड़तीस हजार योजन की वताई है।

उनचालीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है 'समयखेत्ते एगूणचत्तालीसं·······तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४८] में भी समयक्षेत्र में उनचालीस कुल-पर्वत वताये हैं।

चालीसवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'मंदरचूलिया णं·····' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६४९] में भी वर्णन है कि मेरु की चूलिका चालीस योजन ऊंची है।

पैंतालीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'समयखेत्ते णं पणयालीसं·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५०] में भी समयक्षेत्र का ग्रायाम-विष्कंभ पैंतालीस लाख योजन का वताया है।

पैंतालीसवें समवाय का छठा सूत्र है—'मंदरस्स णं पव्वयस्स·······" तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५१] में भी मेरुपर्वत एवं लवण समुद्र का ग्रव्यवहित ग्रन्तर चारों दिशाग्रों में पैंतालीस-पैंतालीस हजार योजन का वताया है।

---

६४१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ७, सूत्र १३३
६४२. जम्पूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ९५
६४३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ६, सूत्र १२५
६४४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ९५
६४५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र ७९
६४६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १११
६४७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १०८
६४८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ६, सूत्र १२५
६४९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १०६
६५०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १७७
५५१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वक्ष ४, सूत्र १०३

सैतालीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'जया णं सूरिए सव्वब्भितर.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५२] में भी सूर्यदर्शन का इसी तरह वर्णन प्राप्त है।

अड़तालीसवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगमेगस्स णं रन्नो.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५३] में भी प्रत्येक चक्रवर्ती के अड़तालीस हजार पट्टण बताये हैं।

अड़तालीसवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'सूरमंडले णं अडयालीसं.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५४] में भी सूर्यविमान का विष्कम्भ एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग जितना है।

उनपचासवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'देवकुरु-उत्तरकुरुएसु णं.......' तो जम्मूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५५] में भी देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्य उनपचास अहोरात्रि में युवा हो जाते कहे हैं।

पचासवें समवाय का चौथा सूत्र है—'सव्वेवि णं दीहवेयड्ढा मूले' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५६] में भी सर्वदीर्घ वैताढ्य पर्वतों के मूल का विष्कंभ पचास योजन का है।

पचासवें समवाय का छठा सूत्र है—'सव्वाओ णं तिमिस्सगुहाओ....' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५७] में भी सर्व तिमिश्र गुफा और खण्डप्रपात गुफाओं का आयाम पचास-पचास योजन का है।

त्रेपनवें समवाय का पहला सूत्र है—'देवकुरु-उत्तरकुरुयाओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५८] में भी देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवा का आयाम त्रेपन हजार योजन का बताया है।

त्रेपनवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'महाहिमवंतरुप्पीणं.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६५९] में भी महाहिमवंत और रुक्मी आदि के आयाम का वर्णन है।

पचपनवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'मन्दरस्स णं पव्वयस्स' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६६०] में भी मेरुपर्वत के पश्चिमी चरमान्त से विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पचपन हजार योजन का है।

सत्तावनवें समवाय का पांचवा सूत्र है—'महाहिमवंत-रुप्पीणं.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६६१] में भी महाहिमवंत और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवा का वर्णन है।

साठवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगमेगे णं मंडले.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६६२] में भी वर्णन है कि प्रत्येक मण्डल में सूर्य साठ-साठ मुहूर्त पूरे करता है।

---

६५२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७ सूत्र १३३
६५३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३ सूत्र ६९
६५४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७ सूत्र १३०
६५५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २ सूत्र २५
६५६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र १२
६५६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र १२
६५८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ८७
६५९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ७९
६६०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र ८
६६१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ७९
६६२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६ सूत्र १२७

इकसठवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'चंदमंडलेण एगसट्ठि.......'' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[663] में भी चन्द्र-मण्डल का समांश एक योजन के इकसठ विभाग करने पर (४५ समांश) होता है।

वासठवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'सुक्कपक्खस्स णं चंदे.......' जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[664] में शुक्लपक्ष में चन्द्र वासठ भाग प्रतिदिन बढ़ता है और कृष्ण पक्ष में उतना ही घटता है, यह कथन है।

त्रेसठवें समवाय के चारों सूत्रों में जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[665] में ज्यों का त्यों मिलता है।

चौसठवें समवाय का छठा सूत्र है—''सव्वस्स वि य णं रन्नो.......'' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[666] में भी वर्णन है कि सभी चक्रवर्तियों का मुक्तामणिमय हार महामूल्यवान् एवं चौंसठ लड़ियों वाला होता है।

पैंसठवें समवाय का पहला सूत्र है—''जंबुद्दीवे ण दीवे पणसट्ठि सूरमंडला''.......तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[667] में भी जम्बूद्वीप में सूर्य के पैंसठ मंडल बताये हैं।

सड़सठवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'हेमयवएरन्नवयाओ ... ...' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[668] में भी हेमवत और एरण्यवत की वाहा का आयाम सड़सठ सौ पंचावन योजन तथा एक योजन के तीन भाग जितना है।

अड़सठवें समवाय के दूसरे, तीसरे और चौथे सूत्र 'उक्कोसपए अड़सट्ठि अरहंता.......' चक्कवट्टी बलदेवा.......' 'पुक्खरवरदीवड्ढे णं'' वर्णन है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[669] में भी 'उत्कृष्ट अड़सठ तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव होते हैं वैसे ही पुष्करार्धद्वीप में भी होते कहे हैं।

वहत्तरवें समवाय का छठा सूत्र है—''एगमेगस्स णं रन्नो...... '' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[670] में भी यह वर्णन है कि प्रत्येक चक्रवर्ती के वहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर होते हैं।

बहत्तरवें समवाय का सातवाँ सूत्र है—'वावत्तरि कलाओ पण्णत्ताओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[671] में भी बहत्तर कलाओं का उल्लेख है।

तिहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'हरिवास-रम्मयवासयाओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष की जीवा के आयाम का वर्णन है।

चौहत्तरवें समवाय का दूसरा सूत्र है—निसहाओ णं वासहर.......' तीसरा सूत्र है—'एवं सीतावि.......' इसी तरह जम्बूद्वीप[672] प्रज्ञप्ति में भी निषध पर्वत और सीतोदा महानदी का वर्णन है।

सतहत्तरवें समवाय का पहला सूत्र है—'भरहे राया चाउरंत-चक्कवट्टी.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[673]

---

६६३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १४४-१४५
६६४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३४
६६५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३, व. ४, सू. ८२, वक्ष ७, सू. १२७
६६६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६८
६६७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १२७
६६८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७६
६६९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७,
६७०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६९
६७१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ३०
६७२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८२
६७३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ७०

में भी भरत चक्रवर्ती सतहत्तर लाख पूर्व तक कुमार पद में रहने के पश्चात् राजपद को प्राप्त हुए, यह उल्लेख है।

अठहत्तरवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७४] में उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मंडल से उनचालीसवें मंडल तक एक मुहूर्त के इकसठिए अठहत्तर भाग प्रमाण दिन तथा रात्रि को बढ़ाकर गति करता कहा है।

उन्नासीवें समवाय का चतुर्थ सूत्र है—'जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७५] में भी वर्णन है कि जम्बूद्वीप के प्रत्येक द्वार का अव्यवहित अंतर उन्नासी हजार योजन का है।

बियासीवें समवाय का पहला सूत्र है—'जंबुद्दीवे दीवे बासीयं.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७६] में कहा है—जम्बूद्वीप में एक सौ बियासीवें सूर्यमण्डल में सूर्य दो बार गति करता है।

तियासीवें समवाय का चौथा सूत्र है—'उसभे णं अरहा कोसलिए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७७] में भी लिखा है अरहंत कौसलिक ऋषभदेव तियासी लाख पूर्व गृहवास में रहकर मुंडित यावत् प्रव्रजित हुए।

तियासीवें समवाय का पांचवां सूत्र है—'भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी.......' तो जम्बूद्वीप[६७८] प्रज्ञप्ति में भी वर्णन है कि भरत चक्रवर्ती तियासी लाख पूर्व गृहवास में रहकर जिन हुए।

चौरासीवें समवाय का दूसरा सूत्र है—'उसभे णं अरहा कोसलिए.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७९] के अनुसार भी अरहंत कौसलिक ऋषभदेव चौरासी लाख पूर्व का आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

चौरासीवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं.......' तो जम्बूद्वीप[६८०] प्रज्ञप्ति में भी उल्लेख है कि ऋषभदेव जी की तरह भरत बाहुबली ब्राह्मी और सुन्दरी भी सिद्ध हुए।

चौरासीवें समवाय का पन्द्रहवां सूत्र है—'उसभस्स णं अरहओ.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८१] में अरहंत ऋषभदेव के चौरासी गण और चौरासी गणधरों का उल्लेख है।

अठासीवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'मंदरस्स णं पव्वयस्स.......' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८२] में भी मेरु पर्वत के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर अठासी हजार योजन का बताया है।

---

६७४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३१
६७५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र ९
६७६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३४
६७७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३०, ३१
६७८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ७०
६७९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३३
६८०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३३
६८१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र १८
६८२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०३

नवासीवें समवाय का पहला सूत्र है—'उसभे णं अरहा·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८३] में भी अरहंत कौसलिक ऋषभदेव इस अवसर्पिणी के तृतीय सुषम-दुषमा काल के अन्तिम भाग में नवासी पक्ष शेष रहने पर कालधर्म को प्राप्त हुए।

नव्वेवें समवाय का पाँचवाँ सूत्र है—'सव्वेसि णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं·······'तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८४] में भी सर्ववृत्तवैताढ्य पर्वतों के शिखर के ऊपर से सौगंधिक काण्ड के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर नव्वे सौ योजन का कहा है।

छियानवेवें समवाय का पहला सूत्र है—'एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंत-चक्कवट्टिस्स·······' तो जम्बूद्वीप[६८५] प्रज्ञप्ति में भी प्रत्येक चक्रवर्ती के छानवे-छानवे करोड़ ग्राम बताये हैं।

निन्यानवेवें समवाय के पहले सूत्र से लेकर छट्ठे सूत्र तक जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८६] में भी ज्यों का त्यों मिलता है।

सौवें समवाय का छठा सूत्र है—'सव्वेवि णं दीहवेयड्ढपव्वया·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८७] में सर्व दीर्घवैताढ्य पर्वत सौ-सौ कोश ऊंचे प्ररूपित हैं।

दो सौवें समवाय का तीसरा सूत्र है—'जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचणपव्वय-सया पण्णत्ता·······' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८८] में भी जम्बूद्वीप में दो सौ कांचनक पर्वतों का वर्णन है।

पांच सौवें समवाय में प्रथम सूत्र से लेकर सातवें सूत्र तक जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८९] में भी इसी तरह मिलता है।

हजारवें समवाय में दूसरे सूत्र से लेकर छठे सूत्र तक जो वर्णन है, वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६९०] में भी इसी तरह देखा जा सकता है।

इस तरह समवायांग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अनेक स्थलों पर विषयसाम्य है। विस्तारभय से कुछ सूत्रों की तुलना जानकर हमने यहाँ पर छोड़ दी है।

समवायांग और सूर्यप्रज्ञप्ति

सूर्यप्रज्ञप्ति छठा उपांग है। डॉ. विन्टर नित्ज ने सूर्यप्रज्ञप्ति को एक वैज्ञानिक ग्रन्थ माना है। डा. शुब्रिंग ने जर्मनी की हेमबर्ग युनिवर्सिटी में अपने भाषण में कहा था कि 'जैन विचारकों ने जिन तर्कसम्मत एवं सुसंगत सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है वे आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं की दृष्टि से भी अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण

---

६८३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३१, ३३

६८४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८२

६८५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६७

६८६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, ७, सूत्र १०३, १३४,

६८७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र १२

६८८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५

६८९. जम्पूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४,३ सूत्र १२५, ३३, ७०, ८६, ९१, ९७, ७५

६९०. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८८, ७२

हैं। विश्व रचना के सिद्धान्त के साथ उसमें उच्चकोटि का गणित एवं ज्योतिपविज्ञान भी मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति में गणित और ज्योतिप पर गहराई से विचार किया गया है, अतः सूर्यप्रज्ञप्ति के अध्ययन के विना भारतीय ज्योतिप के इतिहास को सही रूप से नहीं समझा जा सकता।[६९१]

हम यहां पर संक्षेप में समवायांग में आये हुए विपयों के साथ सूर्यप्रज्ञप्ति की तुलना करेंगे।

समवायांग के प्रथम समवाय में तेवीस, चौवीस और पच्चीसवें सूत्र में जिन आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्रों का वर्णन है वह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[६९२] में भी है।

दूसरे समवाय के चौथे से सातवें समवाय तक पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा के तारों का वर्णन है। वह सूर्यप्रज्ञप्ति[६९३] में भी प्राप्त है।

तीसरे समवाय के छठे सूत्र से लेकर वारहवें सूत्र तक मृगशिर, पुष्य, जेष्ठा, अभिजित, श्रवण, अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रों का वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[६९४] में भी मिलता है।

चौथे समवाय के सातवें, आठवें और नौवें सूत्र में अनुराधा, पूर्वापाढा, और उत्तरापाढा नक्षत्रों के चार तारों का वर्णन है, सूर्यप्रज्ञप्ति[६९५] में भी उन तारों का वर्णन दर्शनीय है।

पांचवें समवाय के नौवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा धनिष्ठा नक्षत्रों के पांच-पांच तारों का वर्णन है, सूर्यप्रज्ञप्ति[६९६] में भी वह वर्णन इसी तरह मिलता है।

छठे समवाय के सातवें एवं आठवें सूत्र में कृत्तिका, अश्लेपा नक्षण के छह-छह तारे बताये हैं तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९७] में भी उनका उल्लेख है।

सातवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक मघा, कृत्तिका, अनुराधा और धनिष्ठा नक्षत्रों के तारे तथा उनके द्वारों का वर्णन है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९८] में भी वह मिलता है।

आठवें समवाय के नौवें सूत्र में 'अट्ठनवखत्ता चंदेणं………"तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९९] में भी चन्द्र के साथ प्रमर्द योग करने वाले कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्ता, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा इन आठ नक्षत्रों का वर्णन है।

नौवें समवाय के पांचवें, छठे, और सातवें सूत्र में अभिजित् नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने का वर्णन है तथा रत्नप्रभा पृथ्वी से नौ सौ योजन ऊंचे तारा है, यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७००] में भी है। समवायांग और सूर्यप्रज्ञप्ति

---

६९१. He who has a thorough knowlede of the structure of the world cannot but admire the inward logic and harmony of Jain ideas. Hand in hand with refind casmographical ideas goes a high standard of Astronomy and mathematics. A history of Indian Astronomy is not conceivable without the famous "Surya Pragyapati."
—Dr. Schubring.

६९२. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ६

६९३. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ९ सूत्र ४२

६९४. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ९, सूत्र ४२

६९५. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ९, सूत्र ४२

६९६. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ९, सूत्र ४२

६९७. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राफृत १०, प्रा. ९, सूत्र ४२

६९८. सूत्रप्रज्ञप्ति—प्राभृत १, प्रा. ९, सूत्र ४२

६९९. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १, प्रा. ९, सूत्र ४२

७००. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ११, सूत्र ४४

में अन्तर इतना ही है कि समवायांग में अभिजित् का चन्द्र के साथ योगकाल ९ मुहूर्त का बताया है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७०१] में १२ मूहूर्त का बताया है।

ग्यारहवें समवाय के दूसरे, तीसरे और पांचवें सूत्र में ज्योतिष चक्र के प्रारंभ का वर्णन है और मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे बताये हैं, यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०२] में भी मिलता है।

बारहवें समवाय के आठवें और नौवें सूत्र में जघन्य रात और दिन बारह मूहूर्त के बताये हैं तो सूर्य-प्रज्ञप्ति[७०३] में भी उसका निरूपण हुआ है।

पंद्रहवें समवाय के तीसरे और चौथे सूत्र में ध्रुवराहु का चन्द्र को आवृत और अनावृत करने का वर्णन है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७०४] में भी वह वर्णन द्रष्टव्य है।

अठारहवें समवाय के आठवें सूत्र में पौष और आषाढ़ मास में एक दिन उत्कृष्ट अठारह मूहूर्त का होता है तथा एक रात्रि अठारह मूहूर्त की होती है। सूर्यप्रज्ञप्ति[७०५] में भी यही वर्णन उपलब्ध है।

उन्नीसवें समवाय के द्वितीय सूत्र में जम्बूद्वीप में सूर्य ऊँचे और नीचे उन्नीस सौ योजन ताप पहुँचाता है। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०६] में भी है।

चौवीसवें समवाय के चौथे सूत्र में वर्णन है—उत्तरायण में रहा हुआ सूर्य चौवीस अंगुल प्रमाण प्रथम प्रहर की छाया करके पीछे मुड़ता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०७] में भी है।

सत्तावीसवें समवाय के दूसरे और तीसरे सूत्र में क्रमश: यह वर्णन है कि जम्बूद्वीप में अभिजित को छोड़कर सत्तावीस नक्षत्रों से व्यवहार होता है और नक्षत्र मास सत्तावीस अहोरात्रि का होता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०८] में भी है।

उनतीसवें समवाय के तीसरें से सातवें तक जो वर्णन है, वह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०९] में भी उपलब्ध है।

तीसवें समवाय के तीसरे सूत्र में तीस मुहूर्त्तों के नाम बताये हैं, वे नाम सूर्यप्रज्ञप्ति[७१०] में भी मिलते हैं।

इकतीसवें समवाय के चौथे और पांचवें सूत्र में क्रमश: अधिक मास कुछ अधिक इकतीस रात्रि का बताया है। और सूर्यमास कुछ न्यून इकतीस अहोरात्रि का बताया है। सूर्यप्रज्ञप्ति[७११] में यही है।

बत्तीसवें समवाय के पांचवें सूत्र में रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे बताये हैं तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७१२] में भी यह वर्णन है।

---

७०१. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा. ११ सूत्र ४४
७०२. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १८, प्रा. सूत्र ९२
७०३. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १ प्रा. १ सूत्र ११
७०४. सूत्रप्रज्ञप्ति—प्राभृत २०, प्रा. ३ प्रा. सूत्र १०५, सू. ३५
१०५. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १, प्रा. ६ सू. १८
७०६. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत ४ प्रा. सू. २५
७०७. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १० प्रा सू. ४६
७०ड़. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, १२, प्रा., १ सू. ३२, ७२
७०९. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १२ सू., ७२
७१०. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १०, पा. १३, सू. ४७
७११. सूर्यप्रजप्ति—प्रा. १२, सू. ७२
७१२. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. प्रा. १०, ९, सू. ७२

छत्तीसवें समवाय के चौथे सूत्र में चैत्र और आश्विन मास में एक दिन पौरुषी छाया का प्रमाण छत्तीस अंगुल का होता कहा है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७१३] में भी यही वर्णन है।

सैंतीसवें समवाय के पांचवें सूत्र में कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुलप्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७१४] में है।

चालीसवें समवाय के छठे सूत्र में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सूर्य चालीस अंगुलप्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७१५] में भी है।

पैंतालीसवें समवाय के सातवें सूत्र में डेढ़ क्षेत्र वाले सभी नक्षत्र चन्द्र के साथ पैंतालीस मुहूर्त्त का योग करते हैं। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७१६] में भी है।

छप्पनवें समवाय के प्रथम सूत्र में जम्बूद्वीप में छप्पन नक्षत्रों ने चन्द्र के साथ योग किया व करते हैं, यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७१७] में भी उपलब्ध होता है।

बासठवें समवाय के प्रथम सूत्र में वर्णन है कि पांच संवत्सर वाले युग की बासठ पूर्णिमाएँ और बासठ अमावस्याएँ होती हैं, यह वर्णन सूत्रप्रज्ञप्ति[७१८] में भी है।

इकहत्तरवें समवाय के प्रथम सूत्र में वर्णन है कि चौथे चन्द्र-संवत्सर की हेमन्त ऋतु के इकहत्तर अहोरात्रि व्यतीत होने पर सर्वबाह्य मण्डल से सूर्य पुनरावृत्ति करता है। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७१९] में प्राप्त है।

बहत्तरवें समवाय का पाँचवां सूत्र है, पुष्करार्ध द्वीप में बहत्तर चन्द्र व सूर्य प्रकाश करते हैं। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७२०] में भी है।

अठासीवें समवाय के प्रथम सूत्र में वर्णन है कि प्रत्येक चन्द्र, सूर्य का अठासी-अठासी ग्रह का परिवार है। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७२१] में भी प्राप्त होता है।

अठानवें वें समवाय के चतुर्थ सूत्र से लेकर सातवें सूत्र तक जो वर्णन है, वह सूर्यप्रज्ञप्ति[७२२] में भी इसी तरह मिलता है।

इस तरह सूर्यप्रज्ञप्ति के साथ समवायांग के अनेक सूत्र मिलते हैं।

समवायांग और उत्तराध्ययन—

मूल सूत्रों में उत्तराध्ययन का प्रथम स्थान है। यह आगम भाव-भाषा और शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, योग आदि का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। हम यहाँ पर संक्षेप में

---

७१३. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १०, प्रा. २., सू. ४३
७१४. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १०, सू ४३
७१५. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १० सू. ४३
७१६. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. ३, सू. २५
७१७. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १०, प्रा. २२, सू. ६०
७१८. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १३, सू. ८०
७१९. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. ११,
७२०. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १९,
७२१. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १८, सू. ५१
७२२. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १, १०, प्रा. ९ सू. ४२

समवायांग में आये हुये विषयों का उत्तराध्ययन में आये हुये विषयों के साथ दिग्दर्शन करेंगें, जिससे समवायांग की महत्ता का सहज ही आभास हो सके।

दूसरे समवाय के तीसरे सूत्र में बन्ध के राग और द्वेष ये दो प्रकार बताये हैं। तो उत्तराध्ययन[७२३] में भी उन का निरूपण है।

तीसरे समवाय के प्रथम सूत्र में तीन दण्डों का निरूपण है—तो उत्तराध्ययन[७२४] में भी वह वर्णन है।

तीसरे समवाय के दूसरे सूत्र में तीन गुप्तियों का उल्लेख है तो उत्तराध्ययन[७२५] में भी गुप्तियों का वर्णन प्राप्त है।

तीसरे समवाय के तीसरे सूत्र में तीन शल्यों का वर्णन है तो उत्तराध्ययन[७२६] में भी शल्यों का वर्णन प्राप्त है।

पाँचवें समवाय के सातवें सूत्र में पाँच समिति के नाम दिये गये हैं। उत्तराध्ययन[७२७] में उन पर विस्तार से निरूपण है।

छठे समवाय का तीसरे और चौथे सूत्र में बाह्य और आभ्यन्तर तप का वर्णन है। उत्तराध्ययन[७२८] में भी वह प्राप्त है।

सातवें समवाय के प्रथम सूत्र में सप्त भयस्थानों का निरूपण किया गया है, उत्तराध्ययन[७२९] में भी उनके सम्बन्ध में संकेत हैं।

आठवें समवाय के प्रथम सूत्र में आठ मदस्थानों की चर्चा है तो उत्तराध्ययन[७३०] में उनका सूचन है।

आठवें समवाय के दूसरे सूत्र में अष्ट प्रवचनमाताओं के नाम हैं, उत्तराध्ययन[७३१] में भी उनका निरूपण है।

नवमें समवाय के प्रथम सूत्र में नव ब्रह्मचर्य-गुप्तियाँ निरूपित हैं तो उत्तराध्ययन[७३२] में भी यह विषय चर्चित है।

नवमें समवायांग के ग्यारहवें सूत्र में दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ बतायी हैं तो उत्तराध्ययन[७३३] में भी उनका कथन है।

दशवें समवाय के प्रथम सूत्र में श्रमण के दश धर्मों का वर्णन है, तो उत्तराध्ययन[७३४] में भी उनका संकेत है।

---

७२३. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७२४. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७२५. उत्तराध्ययन—अ. २४
७२६. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७२७. उत्तराध्ययन—अ. २४
७२८. उत्तराध्ययन—अ. ३०
७२९. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३०. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३१. उत्तराध्ययन—अ. २४
७३२. उत्तराध्ययन—अ. ३६
७३३. उत्तराध्ययन—अ. ३३
७३४. उत्तराध्ययन—अ. ३१

ग्यारहवें समवाय के प्रथम सूत्र में उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण है तो उत्तराध्ययन[७३५] में भी संक्षेप में सूचन है।

बारहवें समवाय के पहले सूत्र में भिक्षु की बारह प्रतिमाएं गिनाई हैं तो उत्तराध्ययन[७३६] में भी उनकी संक्षेप में सूचना है।

सोलहवें समवाय के पहले सूत्र में सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययनों के नाम निर्दिष्ट हैं तो उत्तराध्ययन[७३७] में भी उनका संकेत है।

सत्तरहवें समवाय के प्रथम सूत्र में सत्तरह प्रकार के असंयम बताये हैं, उनका निर्देश उत्तराध्ययन[७३८] में भी है।

अठारहवें समवाय के प्रथम सूत्र में ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार बताये हैं, इनका संकेत उत्तराध्ययन[७३९] में भी प्राप्त होता है।

उन्नीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययनों के नाम आये हैं तो उत्तराध्ययन[७४०] में उनका संकेत है।

बावीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में बावीस-परीषहों के नाम निर्दिष्ट हैं तो उत्तराध्ययन[७४१] में उनका विस्तार से निरूपण है।

तेवीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों के नाम हैं, उत्तराध्ययन[७४२] में भी उनका संकेत है।

चौवीसवें समवाय के चौथे सूत्र के अनुसार उत्तरायण में रहा हुआ सूर्य चौवीस अंगुल प्रमाण प्रथम प्रहर की छाया करता हुआ पीछे मुड़ता है, यह वर्णन उत्तराध्ययन[७४३] में भी है।

सत्तावीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में अनगार के सत्तावीस गुण प्रतिपादित हैं, तो उत्तराध्ययन[७४४] में भी उनका सूचन है।

तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में मोहनीय के तीस स्थान बताये हैं, उत्तराध्ययन[७४५] में भी इसका निर्देश है।

इकतीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में सिद्धों के इकतीस गुण कहे हैं, तो उत्तराध्ययन[७४६] में भी इनका संकेत है।

---

७३५. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३६. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३७. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३८. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७३९. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४०. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४१. उत्तराध्ययन—अ. २
७४२. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४३. उत्तराध्ययन—अ. २६
७४४. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४५. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४६. उत्तराध्ययन—अ. ३१

बत्तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में योगसंग्रह के बत्तीस प्रकार बताये हैं, उत्तराध्ययन[७४७] में भी उनकी सूचना है।

तेतीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में तेतीस आशातनाओं का नाम-निर्देश है तो उत्तराध्ययन[७४८] में भी इनका सूचन किया गया है।

छत्तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनों के नाम आये हैं।[७४९]

उनहत्तरवें समवाय के तीसरे सूत्र में मोहनीय कर्म को छोड़कर शेप सात मूल कर्म-प्रकृतियों की उनहत्तर उत्तर कर्म-प्रकृतियाँ बतायी हैं। यह वर्णन उत्तराध्ययन[७५०] में भी प्राप्त है।

सत्तरहवें समवाय के चौथे सूत्र के अनुसार मोहनीय कर्म की स्थिति, अवाधाकाल सात-हजार वर्ष छोड़कर सत्तर कोटाकोटि सागरोपम की बतायी है। उत्तराध्ययन[७५१] में यही वर्णन मिलता है।

सत्तासीवें समवाय के पाँचवें सूत्र के अनुसार प्रथम और अन्तिम को छोड़कर छह मूल कर्मप्रकृतियों की सत्तासी उत्तरप्रकृतियाँ होती हैं, यही वर्णन उत्तराध्ययन[७५२] में भी है।

सत्तावनवें समवाय के तीसरे सूत्र के अनुसार आठ मूल कर्म-प्रकृतियों की सत्तानवें उत्तरकर्म-प्रकृतियाँ हैं, यही वर्णन उत्तराध्ययन[७५३] में प्राप्त है।

इस तरह उत्तराध्ययन में समवायांगगत ऐसे अनेक विषय हैं, जिनकी उत्तराध्ययन में कही संक्षेप में और कहीं विस्तार से चर्चा मिलती है।

समवायांग और अनुयोगद्वार

मूल सूत्रों की परिगणना में अनुयोगद्वार का चतुर्थ स्थान है। अनुयोग का अर्थ है—शब्दों की व्याख्या या विवेचन करने की प्रक्रिया-विशेष। समवायांग में आये हुए अनेक विषय अनुयोगद्वार नें भी प्रतिपादित हुये हैं।

प्रथम समवाय के छब्बीसवें सूत्र से लेकर चालीसवें सूत्र तक जिन विषयों की चर्चा है, वे विषय अनुयोगद्वार[७५४] में भी चर्चित हैं।

दूसरे समवाय के आठवें सूत्र से लेकर बीसवें समवाय तक जिन-जिन विषयों की चर्चा की गयी है, वे अनुयोगद्वार[७५५] में चर्चित हुये हैं।

तृतीय समवाय के तेरहवें सूत्र से लेकर इक्कीसवें सूत्र तक जिन विषयों का उल्लेख किया गया है वे विषय अनुयोगद्वार[७५६] में भी आये हैं।

---

७४७. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४८. उत्तराध्ययन—अ. ३१
७४९. उत्तराध्ययन—अ. १ से ३६ तक
७५०. उत्तराध्ययन—अ. ३३
७५१. उत्तराध्ययन—अ. ३३ गा. ३१
७५२. उत्तराध्ययन—अ. ३३
७५३. उत्तराध्ययन—अ. ३३
७५४. अनुयोगद्वार सूत्र—सू. १३९
७५५. अनुयोगद्वार सूत्र—सू. १३९
७५६. अनुयोगद्वार सूत्र—सू. १३९, १४०।

चौथे समवाय के दशवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक के विषयों पर अनुयोगद्वारसूत्र[७५७] में भी चिन्तन किया गया है।

पांचवें समवाय के चौदहवें सूत्र से लेकर उन्नीसवें सूत्र तक जो भाव प्रज्ञापित हुये हैं, वे अनुयोगद्वार में भी द्रष्टव्य हैं।

छठे समवाय के दसवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, और सातवें समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर बीसवें सूत्र तक, आठवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, नौवें समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक, दशवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर बावीसवें सूत्र तक, ग्यारहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, बारहवें समवाय के बारहवें सूत्र तक, तेरहवें समवाय के नवमें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, चौदहवें समवाय के नवमें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, पन्द्रहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, सोलहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, सत्तरहवें समवाय के ग्यारहवें सूत्र से लेकर अठारहवें सूत्र तक, अठारहवें समवाय के नवम सूत्र से लेकर, पन्द्रहवें सूत्र तक, उन्नीसवें समवाय में छठे सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक, बीसवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, इक्कीसवें समवाय के पांचवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, बावीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, तेवीसवें समवाय के पांचवें सूत्र से लेकर दशवें सूत्र तक, चोवीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक, पच्चीसवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, छब्बीसवें समवाय के दूसरे सूत्र से लेकर आठवें सूत्र तक, सत्तावीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक, अठावीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, उनतीसवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, तीसवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, इकतीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, बत्तीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, तेतीसवें समवाय के पांचवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, जिन-जिन विषयों का वर्णन आया है वे विषय अनुयोगद्वार[७५८] में भी कहीं संक्षेप में तो कहीं विस्तार से चर्चित हैं।

इस तरह समवायांग का विषय-वर्णन इतना अधिक व्यापक है कि आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर उस सम्बन्ध में विचारचर्चाएं की गई हैं। आगमों में कहीं पर सूत्र शैली का उपयोग हुआ है तो कहीं पर जिज्ञासुओं को समझाने के लिए व्यासशैली का उपयोग भी हुआ है। हमने उपर्युक्त पंक्तियों में मुख्य रूप से समवायांगगत विषय जिन आगमों में आये हैं, उन पर सप्रमाण चिन्तन किया है। यों दशवैकालिक, नन्दी, दशाश्रुतस्कंध व कल्पसूत्र के विषय भी कुछ समवायांग के साथ मिलते हैं पर उनकी संख्या अधिक न होने से हमने उनका यहां पर उल्लेख नहीं किया है और न आगमेतर ग्रन्थों के साथ विषयों की तुलना की है।

वैदिक और बौद्ध ग्रन्थों के विषयों के साथ भी समवायांगगत विषयों की तुलना सहजरूप से की जा सकती है। यों संक्षेप में यथास्थान उनका उल्लेख किया गया है। आज आवश्यकता है आगम साहित्य की अन्य साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने की। मूर्धन्य मनीषियों का ध्यान इस ओर केन्द्रित हो तो समन्वय और सत्य के अनेक द्वार उद्घाटित हो सकते हैं।

व्याख्या-साहित्य

समवायांग सूत्र में न दर्शन सम्बन्धी गहन गुत्थियां हैं और न अध्यात्म सम्बन्धी गंभीर विवेचन ही हैं। जो भी विषय निरूपित हैं वे सहज, सुगम और सुबोध हैं, जिसके कारण इस पर न निर्युक्तियां लिखी गईं और न

---

७५७. अनुयोगद्वार सूत्र—सूत्र १३९

७५८. अनुयोगद्वार सूत्र—सूत्र १३९

नें भाष्य का निर्माण ही किया गया, और न चूर्णियां ही रची गईं। सर्वप्रथम नवाङ्गी-टीकाकार आचार्य अभयदेव ने इस पर वृत्ति का निर्माण किया। यह वृत्ति न अतिसंक्षिप्त है और न अतिविस्तृत ही। वृत्ति के प्रारम्भ में आचार्य ने श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है, क्योंकि प्रस्तुत आगम के अर्थ-प्ररूपक भगवान् महावीर हैं। आचार्य अभयदेव ने विज्ञों से यह अभ्यर्थना की है कि मेरे सामने आगम के गुरुगंभीर रहस्यों को उद्घाटित करने वाली अर्थपरम्परा का अभाव है, अत: कहीं पर विपरीत अर्थप्ररूपणा हो गई हो तो विज्ञगण परिष्कृत करने का अनुग्रह[७५९] करें।

वृत्ति में आचार्य ने समवाय शब्द की व्याख्या भी की है। व्याख्या करते हुए अनेक स्थलों पर पाठान्तरों के उल्लेख भी किये हैं।[७६०] प्रज्ञापना सूत्र तथा गन्धहस्ती के भाष्य का भी उल्लेख है। यह वृत्ति वि. सं. ११२० में अणहिल पाटण में लिखी गयी है। इस का ग्रन्थमान ३५७५ श्लोक-प्रमाण है।

इस आगम पर दूसरी संस्कृत टीका करने वाले पूज्य श्री घासीलालजी म. हैं।[७६१] उन्होंने आचार्य अभयदेव का अनुसरण करते हुये टीका का निर्माण किया है। यह टीका अपने ढंग की है। कहीं-कहीं पर टीकाकार ने अपनी दृष्टि से अर्थ की संगति के लिये मूल पाठ में भी परिवर्तन कर दिया है। जैसे आगामी काल के उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थंकरों के नामों में परिवर्तन हुआ है।[७६२] हमारी दृष्टि से, टीका या विवेचन में लेखक अपने स्वतन्त्र विचार दें, इस में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु मूल पाठों में परिवर्तन करने से उनकी प्रामाणिकता लुप्त हो जाती है। अत: पाठों को परिवर्तित करना उचित नहीं।

समवायांगसूत्र पर सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद करने वाले आचार्य अमोलक ऋषि जी म. हुये हैं। उन्होंने बत्तीस आगमों का हिन्दी में अनुवाद कर महान् श्रुतसेवा की है।[७६३]

गुजराती भाषा में पण्डितप्रवर दलसुखभाई मालवणिया[७६४] ने महत्त्वपूर्ण अनुवाद किया है। यह अनुवाद अनुवाद न होकर एक विशिष्ट रचना हो गई है। सर्वत्र मालवणिया जी का पाण्डित्य छलकता है। उन्होंने अनुवाद के साथ जो टिप्पण दिये हैं वे उनके गम्भीर अध्ययन के द्योतक हैं। अनुसन्धानकर्ताओं के लिये यह संस्करण अत्यन्त उपयोगी है।

पण्डितप्रवर मुनि श्रीकन्हैयालाल जी 'कमल' ने हिन्दी अनुवाद के साथ समवायांग का प्रकाशन किया है। ग्रन्थ का परिशिष्ट विभाग महत्त्वपूर्ण है। यह संस्करण जिज्ञासुओं के लिए श्रेयस्कर है।[७६५]

---

७५९. समवायांग वृत्ति १-२।

७६०. "जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयायविक्खंभेणं" के स्थान पर "जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं चक्कवालविक्खंभेणं" आदि पाठ मिलता है 'नवरं जंबुद्दीवे इह सूत्रे' 'आयायविक्खंभेणं' ति क्वचित् पाठो दृश्यते क्वचित्तु 'चक्कवालविक्खंभेणं ति.......।।"

—समवायांग वृत्ति—अहमदाबाद संस्करण पृ. ५

७६१. जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट सन् १९६२

७६२. श्रीकृष्ण के आगामी भव-एक अनुचिन्तन। लेखक—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

७६३. लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जी, हैदराबाद वि. सं. २४४६

७६४. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद सन् १९५५

७६५. आगम अनुयोग प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं. ११४१, दिल्ली ७

आचार्य अभयदेव वृत्ति सहित सर्वप्रथम सन् १८८० में रायबहादुर धनपतसिंह जी ने एक संस्करण प्रकाशित किया और उसके पश्चात् सन् १९१९ में आगमोदय समिति सूरत से उसका अभिनव संस्करण प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् सन् १९३८ में मफतलाल झवेरचन्द ने अहमदाबाद से वृत्ति सहित ही एक संस्करण मुद्रित किया। विक्रम संवत् १९९५ में जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर से गुजराती अनुवाद सहित संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

केवल मूलपाठ के रूप में "सुत्तागमे"[७६६] अंगसुत्ताणि,[७६७] अंगपविट्ठाणि[७६८] आदि अन्य अंग-आगमों के साथ यह आगम भी प्रकाशित है।

इन संस्करणों के अतिरिक्त स्थानकवासी जैन समाज के प्रबुद्ध आचार्य श्री धर्मसिंह मुनि ने समवायांग पर मूलस्पर्शी शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाला टब्बा लिखा था पर वह अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत संस्करण

इस तरह समय-समय पर समवायांग सूत्र के संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं। प्रस्तुत संस्करण के प्रधान सम्पादक हैं—श्रमण संघ के तेजस्वी युवाचार्य श्रीमधुकर मुनि जी म.। आपके कुशल नेतृत्व में आगम-प्रकाशन-समिति आगमों के शानदार संस्करण प्रकाशित करने में संलग्न है। स्वल्पावधि में अनेक आगम प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक आगम के सम्पादक और विवेचक पृथक्-पृथक् व्यक्ति होने के कारण ग्रन्थमाला में जो एकरूपता आनी चाहिये थी वह नहीं आसकी है। वह आ भी नहीं सकती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र लेखन व सम्पादन शैली होती है। तथापि युवाचार्यश्री ने यह महान् भगीरथ कार्य उठाया है। श्रमणसंघ के सम्मेलनों में तथा स्थानकवासी कान्फ्रेंस दीर्घकाल से यह प्रयत्न कर रही थी कि आगम-बत्तीसी का अभिनव प्रकाशन हो। मुझे परम आह्लाद है कि मेरे परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थानकेशरी अध्यात्मयोगी उपाध्यायप्रवर श्री पुष्करमुनि जी म. के सहपाठी व स्नेही सहयोगी युवाचार्यप्रवर ने दत्तचित्त होकर इस कार्य को अतिशीघ्र रूप से सम्पन्न करने का दृढ संकल्प किया है। यह गौरव की चीज है। हम सभी का कर्तव्य है कि उन्हें पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य को अधिकाधिक मौलिक रूप में प्रतिष्ठित करें।

समवायांग के सम्पादक व विवेचक पण्डितप्रवर श्री हीरालाल जी शास्त्री हैं। पण्डित हीरालाल जी शास्त्री दिगम्बर जैन परम्परा के जाने-माने प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। उन्होंने अनेक दिगम्बर-ग्रन्थों का सम्पादन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। जीवन की सान्ध्यवेला में उन्होंने श्वेताम्बर परम्परा के महनीय आगम स्थानांग और समवायांग का सम्पादन किया। स्थानांग इसी आगममाला से पूर्व प्रकाशित हो चुका है। अब उनके द्वारा सम्पादित समवायांग सूत्र प्रकाशित हो रहा है। वृद्धावस्था के कारण जितना चाहिये, उतना श्रम वे नहीं कर सके हैं। तथा कहीं-कहीं परम्पराभेद होने के कारण विषय की पूर्ण स्पष्ट भी नहीं कर सके हैं। मैंने अपनी प्रस्तावना में उन सभी विषयों की पूर्ति करने का प्रयास किया है। तथापि मूलस्पर्शी भावानुवाद और जो यथास्थान संक्षिप्त विवेचन दिया है, वह उन के पाण्डित्य का स्पष्ट परिचायक है।

सम्पादनकलामर्मज्ञ कलमकलाधर पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, जो श्वेताम्बर आगमों के तलस्पर्शी

---

७६६. धर्मोपदेष्टा फूलचन्द जी म. सम्पादित, गुडगांव—पंजाब

७६७. मुनि श्री नथमल जी सम्पादित, जैन विश्वभारती, लाडनूं

७६८. जैन संस्कृति रक्षक संघ-सैलाना (मध्यप्रदेश)

विद्वान् हैं, उन की सम्पादनकला का यत्र-तत्र सहज ही दिग्दर्शन होता है। वस्तुतः भारिल्ल जी आगमों को सर्वाधिक सुन्दर व प्रामाणिक बनाने के लिये जो श्रमसाध्य कार्य कर रहे हैं, वह उन की आगम-निष्ठा का द्योतक है।

समवायांग की प्रस्तावना का आलेखन करते समय अनेक व्यवधान उपस्थित हुये। उन में सबसे बड़ा व्यवधान प्रकृष्ट प्रतिभा की धनी आगम व दर्शन की गम्भीर ज्ञाता पूज्य मातेश्वरी साध्वीरत्न महासती श्री प्रभावती जी का संथारे के साथ अकस्मात् दि. २७ जनवरी १९८२ को स्वर्गवास हो जाना रहा। माँ की ममता निराली होती है। माता-पिता के उपकारों को भुलाया नहीं जा सकता। जिस मातेश्वरी ने मुझे जन्म ही नहीं दिया, अपितु साधना के महामार्ग पर बढ़ने के लिये उत्प्रेरित किया, उसके महान् उपकार को कैसे भुलाया जा सकता है, तथापि कर्तव्य की जीती जागती प्रतिमा का यही हार्दिक आशीर्वाद था कि 'वत्स ! खूब श्रुतसेवा करो !' उसी संबल को लेकर मैं प्रस्तावना की ये पंक्तियाँ लिख गया हूँ। आशा है प्रस्तुत आगम अत्यधिक लोकप्रिय होगा और स्वाध्यायप्रेमियों के लिये यह संस्करण अत्यन्त उपयोगी रहेगा।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

जैन स्थानक
मोकलसर (राज.)
दि. २६ फरवरी, १९८२

विषयानुक्रमणिका

नवस्थानक-समवाय

ब्रह्मचर्यगुप्तियाँ, अगुप्तियाँ, ब्रह्मचर्य-अध्ययन, पार्श्वनाथ की अवगाहना, नक्षत्र, तारा-सचार, जम्बूद्वीप में मत्सप्रवेश, विजयद्वार, वाण-व्यन्तरों की सुधर्मा सभा, दर्शनावरण की प्रकृतियाँ, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

२५

दशस्थानक-समवाय

श्रमणधर्म, समाधिस्थान, मन्दर पर्वत, अरिष्टनेमि-अवगाहना, ज्ञानवृद्धिकारी नक्षत्र, कल्पवृक्ष, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

२९

एकादशस्थानक-समवाय

उपासकप्रतिमा, ज्योतिश्चक्र, भ. महावीर के गणधर, मूलनक्षत्र, ग्रैवेयक, मंदर पर्वत, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

३२

द्वादशस्थानक-समवाय

भिक्षुप्रतिमा, संभोग, कृतिकर्म, विजया राजधानी, राम बलदेव, मन्दर-चूलिका, जम्बूद्वीपवेदिका, जघन्य रात्रि-दिवस, ईषत्प्राग्भार पृथ्वी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

३८

त्रयोदशस्थानक-समवाय

क्रियास्थान, विमानप्रस्तट, जलचरपंचेन्द्रिय जीवों की कुलकोटि, प्राणायुपूर्व की वस्तु, प्रयोग. सूर्यमंडल का विस्तार, स्थिति, आहार, सिद्दि।

४०

चतुर्दशस्थानक-समवाय

भूतग्राम, पूर्व, जीवस्थान, भरत-ऐरवत-जीवा, चक्रवर्तीरत्न, महानदी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास आहार, सिद्धि।

४६

पञ्चदशस्थानक-समवाय

परमाधार्मिक देव, नमि अर्हत् की अवगाहना, ध्रुवराहु, नक्षत्र, १५ मुहुर्त के दिन-रात्रि, विद्यानुवादपूर्व के वस्तु, मनुष्य प्रयोग, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

षोडशस्थानक-समवाय

४७

गाथाषोडशक, कषाय, मन्दर-नाम, पार्श्व की श्रमणसंपदा, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, स्थिति।

सप्तदशस्थानक-समवाय

५१

असंयम, संयम, मानुषोत्तर पर्वत, आवासपर्वत, चारणगति, चमर का उत्पातपर्वत, मरण, कर्मप्रकृतिवेदन, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

अष्टादशस्थानक-समवाय

ब्रह्मचर्य, अरिष्टनेमि की श्रमणसम्पदा, निर्ग्रन्थस्थान, आचारांग-पद, ब्राह्मीलिपि के लेखविधान, अस्तिनास्तिप्रवाद के वस्तु, धूमप्रभा पृथ्वी, उत्कृष्ट रात-दिन, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।

3500

एकाशीतिस्थानक समवाय — १३९

भिक्षुप्रतिमा, कुन्थु जिन के मनःपर्यवज्ञानी, व्याख्याप्रज्ञप्ति के महायुग्मशत।

द्वि-अशीतिस्थानक समवाय — १४०

सूर्य-संचार, भ. महावीर का गर्भापहरण, महाहिमवन्त एवं रुक्मि पर्वत के सौगंधिक काण्ड का अन्तर।

त्रि-अशीतिस्थानक समवाय — १४१

भ. महावीर का गर्भापहार, शीतल जिन के गण और गणधर, स्थ. मंडितपुत्र का आयुष्य, ऋषभ का गृहवासकाल, भरत राजा का गृहस्थकाल।

चतुरशीतिस्थानक समवाय — १४२

नारकावास, ऋषभ जिन का आयुष्य, भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी का आयुष्य, श्रेयांस जिन का आयु, त्रिपृष्ठ वासुदेव का नरक में उत्पाद, देवेन्द्र शक्र के सामानिक देव, जम्बूद्वीप के बाहर के मंदरों और अंजनक पर्वतों की ऊंचाई, हरिवर्ष एवं रम्यक वर्ष की जीवाओं के धनुःपृष्ठ का परिक्षेप, पंकबहुल काण्ड के चरमान्तों का अन्तर, व्याख्याप्रज्ञप्ति के पद, नागकुमारावास, प्रकीर्णक, जीवयोनियाँ, पूर्वादि संख्याओं का गुणाकार, ऋषभ जिन की श्रमणसम्पदा, विमानावास।

पञ्चाशीतिस्थानक समवाय — १४४

आचारांग के उद्देशनकाल, धातकीखंड के मन्दर, रुचकद्वीप के माण्डलिक पर्वतों की ऊंचाई, नन्दनवन।

षडशीतिस्थानक समवाय — १४५

सुविधि जिन के गण और गणधर, सुपार्श्व जिन की वादी-सम्पदा, दूसरी पृथ्वी से घनोदधि का अन्तर।

सप्ताशीतिस्थानक समवाय — १४६

मन्दर पर्वत, कर्मप्रकृति, महाहिमवन्तपर्वत एवं सौगंधिक कूट का अन्तर।

अष्टाशीतिस्थानक समवाय — १४७

सूर्य-चन्द्र के महाग्रह, दृष्टिवाद के सूत्र, मन्दर एवं गोस्तूभ पर्वत का अन्तर, सूर्यसंचार से दिवस-रात्रिक्षेत्र का वृद्धि-ह्रास।

एकोननवतिस्थानक समवाय — १४९

ऋषभ जिन का सिद्धिकाल, महावीर जिन का निर्वाणकाल, हरिषेण चक्रवर्ती का राजकाल, शान्ति जिन की आर्याएँ।

नवतिस्थानक समवाय — १४९

शीतलनाथ की अवगाहना, स्वयंभू वासुदेव का विजयकाल, वैताढ्य पर्वत और सौगंधिक काण्ड का अन्तर।

द्वादशाङ्ग गणिपिटक

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं चउत्थं अंगं

समवायंगसुत्तं

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्मस्वामि-विरचितं चतुर्थम् अङ्गम्

समवायांगसूत्रम्

श्रीसमवायाङ्गसूत्रम्

१—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—[इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपुंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोअगरेणं अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं बोहिदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधरेणं वियट्टछउमेणं जिणेणं जावएणं तिन्नेणं तारएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयगेणं सव्वन्नुणा सव्वदरिसिणा सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पन्नत्ते। तं जहा—

आयारे १. सूयगडे २. ठाणे ३. समवाए ४. विवाहपन्नत्ती ५. नायाधम्मकहाओ ६. उवासगदसाओ ७. अंतगडदसाओ ८. अणुत्तरोववाइदसाओ ९. पण्हावागरणं १०. विवागसुयं ११. दिट्ठिवाए १२।

हे आयुष्मन्! उन भगवान् ने ऐसा कहा है, मैंने सुना है। [इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्तिम समय में विद्यमान उन श्रमण भगवान् महावीर ने द्वादशांग गणिपिटक कहा है। वे भगवान्—आचार आदि श्रुतधर्म के आदिकर हैं, (अपने समय में धर्म के आदि प्रणेता हैं)। तीर्थंकर हैं, (धर्मरूप तीर्थ के प्रवर्तक हैं)। स्वयं सम्यक् बोधि को प्राप्त हुए हैं। पुरुषों में रूपातिशय आदि विशिष्ट गुणों के धारक होने से, एवं उत्तम वृत्ति वाले होने से पुरुषोत्तम हैं। सिंह के समान पराक्रमी होने से पुरुषसिंह हैं, पुरुषों में उत्तम सहस्र पत्र वाले श्वेत कमल के समान श्रेष्ठ होने से पुरुषवर-पुण्डरीक हैं। पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती जैसे हैं, जैसे गन्धहस्ती के मद की गन्ध से बड़े-बड़े हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार आपके नाम की गन्धमात्र से बड़े-बड़े प्रवादी रूपी हाथी भाग खड़े होते हैं। वे लोकोत्तम हैं, क्योंकि ज्ञानातिशय आदि असाधारण गुणों से युक्त हैं और तीनों लोकों के स्वामियों द्वारा नमस्कृत हैं, इसीलिए तीनों लोकों के नाथ हैं और अधिप अर्थात् स्वामी हैं क्योंकि जो प्राणियों के योग-क्षेम को करता है, वही नाथ और स्वामी कहा जाता है। लोक के हित करने से—उनका उद्धार करने से—लोकहितकर हैं। लोक में प्रकाश और उद्योत करने से लोक-प्रदीप और लोक-प्रद्योतकर हैं। जीवमात्र को अभयदान के दाता हैं, अर्थात् प्राणिमात्र पर अभया (दया और करुणा) के धारक हैं, चक्षु (नेत्र) का दाता जैसे महान् उपकारी होता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर अज्ञान रूप अन्धकार में पड़े प्राणियों को सन्मार्ग के प्रकाशक होने से चक्षु-दाता हैं और सन्मार्ग पर लगाने से मार्गदाता हैं, बिना किसी भेद-भाव के प्राणिमात्र के शरणदाता हैं, जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाने के कारण अक्षय जीवन के दाता हैं, सम्यक् बोधि प्रदान करने वाले हैं, दुर्गतियों में गिरते हुए जीवों को बचाने के कारण धर्म-दाता हैं, सद्धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नायक हैं, धर्मरूप रथ के संचालन करने से धर्म के सारथी हैं। धर्मरूप चक्र के चतुर्दिशाओं में और चारों गतियों में प्रवर्तन करने से धर्मवर-चातुरन्त चक्रवर्ती हैं। प्रतिघात-रहित निरावरण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल-दर्शन के धारक हैं। छद्म अर्थात् आवरण और छल-प्रपंच से सर्वथा निवृत्त होने के कारण व्यावृत्तछद्म हैं—सर्वथा निर्दोष

हैं। विषय-कषायों को जीतने से स्वयं जिन हैं, और दूसरों के भी विषय-कषायों के छुड़ाने से और उन पर विजय प्राप्त कराने का मार्ग बताने से ज्ञापक हैं या जय-प्रापक हैं। स्वयं संसार-सागर से उत्तीर्ण हैं और दूसरों के उत्तारक हैं। स्वयं बोध को प्राप्त होने से बुद्ध हैं और दूसरों को बोध देने से बोधक हैं। स्वयं कर्मों से मुक्त हैं और दूसरों के भी कर्मों के मोचक हैं। जो सर्व जगत् के जानने से सर्वज्ञ और सर्वलोक के देखने से सर्वदर्शी हैं। जो अचल, अरुज, (रोग-रहित) अनन्त, अक्षय, अव्याबाध (बाधाओं से रहित) और पुनः आगमन से रहित ऐसी सिद्ध-गति नाम के अनुपम स्थान को प्राप्त करने वाले हैं। ऐसे उन भगवान् महावीर ने यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक कहा है।

वह इस प्रकार है—आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायाङ्ग ४, व्याख्या-प्रज्ञप्ति-अङ्ग ५, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ६, उपासकदशाङ्ग ७, अन्तकृतदशाङ्ग ८, अनुत्तरौपपातिकदशांग ९, प्रश्नव्याकरणांग १०, विपाक-सूत्रांग ११, और दृष्टिवादांग १२।

विवेचन—श्रमण भगवान् महावीर ने अपनी धर्मदेशना में जिस बारह अंगरूप गणिपिटक का उपदेश दिया, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. आचाराङ्ग—में साधुजनों के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य, इन पांच प्रकार के आचारधर्म का विवेचन है।

२. सूत्रकृताङ्ग—में स्वमत, पर-मत और स्व-पर-मत का विवेचन किया गया है, तथा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नौ पदार्थों का निरूपण है।

३. स्थानाङ्ग—में एक से लेकर दश स्थानों के द्वारा एक-एक, दो-दो आदि की संख्या वाले पदार्थों या स्थानों का निरूपण है।

४. समवायाङ्ग—में एक, दो आदि संख्यावाले पदार्थों से लेकर सहस्रों पदार्थों के समुदाय का निरूपण है।

५. व्याख्याप्रज्ञप्ति-अंग—में गणधर देव के द्वारा पूछे गये ३६ हजार प्रश्नों का और भगवान् के द्वारा दिये गये उत्तरों का संकलन है।

६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग—में परीषह-उपसर्ग-विजेता पुरुषों के अर्थ-गर्भित दृष्टान्तों एवं धार्मिक पुरुषों के कथानकों का विवेचन है।

७. उपासकदशाङ्ग—में उपासकों (श्रावकों) के परम धर्म का विधिवत् पालन करने और अन्त समय में संलेखना की आराधना करने वाले दश महाश्रावकों के चरित्रों का वर्णन है।

८. अंतकृत्दशाङ्ग—में महाघोर परीषह और उपसर्ग सहन करते हुए केवल-ज्ञानी हो अन्त-मुंहूर्त के भीतर ही कर्मों का अन्त करने वाले महान् अनगारों के चरितों का वर्णन है।

९. अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग—में घोर-परीषह सहन कर और अन्त में समाधि से प्राण त्याग कर पंच अनुत्तर महाविमानों में उत्पन्न होने वाले अनगारों का वर्णन है।

१०. प्रश्नव्याकरणाङ्ग—में स्वसमय, पर-समय और स्व-परसमय-विषयक प्रश्नों का, मन्त्र-विद्या आदि के साधने का और उनके अतिशयों का वर्णन है।

११. विपाकसूत्राङ्ग—में महापाप करने वाले और उसके फलस्वरूप घोर दुःख पाने वाले

पापी पुरुषों का, तथा महान् पुण्योपार्जन करने वाले और उसके फलस्वरूप सांसारिक सुखों को पाने वाले पुण्यात्मा जनों का चरित्र-वर्णन है।

१२. दृष्टिवादाङ्ग—में परिकर्म, सूत्र, पूर्व, अनुयोग और चूलिका नामक पांच महा अधिकारों के द्वारा गणितशास्त्र का, ३६३ अन्य मतों का, चौदह पूर्वों का, महापुरुषों के चरितों का एवं जलगता, आकाशगता आदि पांच चूलिकाओं का बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। वस्तुत: द्वादशाङ्ग श्रुत में यह दृष्टिवाद अंग ही सबसे बड़ा है।

इस द्वादशांग श्रुत को 'गणिपिटक' कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे 'पिटक' पिटारी, पेटी, मंजूषा या आज के शब्दों में सन्दूक या बॉक्स में कोई भी व्यापारी अपनी मूल्यवान् वस्तुओं को सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार गणी अर्थात् साधु-साध्वी-संघ के स्वामी आचार्य का यह भगवान् के द्वादशांग श्रुतरूप अमूल्य प्रवचनों को सुरक्षित रखने वाला पिटक या पिटारा है।

२—तत्थ णं जे से चउत्थे अंगे समवाए त्ति आहिते तस्स णं अयमट्ठे पन्नत्ते। तं जहा—

उस द्वादशांग श्रुतरूप गणिपिटक में यह समवायांग चौथा अंग कहा गया है, उसका यह अर्थ इस प्रकार है—

विवेचन—प्रतिनियत संख्या वाले पदार्थों के सम्-सम्यक् प्रकार से अवाय—निश्चय या परिज्ञान कराने से इस अंग का 'समवाय' यह सार्थक नाम है।

एक स्थानक-समवाय

३—एगे आया, एगे अणाया। एगे दंडे, एगे अदंडे। एगा किरिया, एगा अकिरिया। एगे लोए, एगे अलोए। एगे धम्मे, एगे अधम्मे। एगे पुण्णे, एगे पावे। एगे बंधे, एगे मोक्खे। एगे आसवे, एगे संवरे। एगा वेयणा, एगा णिज्जरा।

आत्मा एक है, अनात्मा एक है, दंड एक है, अदंड एक है, क्रिया एक है, अक्रिया एक है, लोक एक है, अलोक एक है, धर्मास्तिकाय एक है, अधर्मास्तिकाय एक है, पुण्य एक है, पाप एक है, बन्ध एक है, मोक्ष एक है, आस्रव एक है, संवर एक है, वेदना एक है और निर्जरा एक है।

विवेचन—यद्यपि आत्मा-अनात्मा आदि (अचेतन पुद्गलादि) पदार्थ अनेक हैं, किन्तु द्रव्यार्थिक-संग्रह नय की अपेक्षा उनकी एकता उक्त सूत्रों में प्रतिपादित की गई है। इसका कारण यह है कि सभी जीव प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी जीव द्रव्य की अपेक्षा एक हैं। अथवा त्रिकाल अनुगामी चेतनत्व की अपेक्षा एक हैं। इसी प्रकार अनात्मा-आत्मा से भिन्न घट-पटादि अचेतन पदार्थ अचेतनत्व सामान्य की अपेक्षा एक हैं। दण्ड अर्थात् हिंसादि सभी प्रकार के पाप, मन, वचन, काय की खोटी प्रवृत्ति रूप हैं अत: दण्ड भी एक है। अहिंसक या प्रशस्त मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप होने से अदण्ड भी एक है। इसी प्रकार क्रिया-अक्रिया, लोक-अलोक, धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय, पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष, आस्रव-संवर, वेदना और निर्जरा इन सभी परस्पर प्रतिपक्षी या

सापेक्ष पदार्थों को भी संग्रह नय की अपेक्षा समान धर्मवाले होने से एक-एक जानना चाहिए। जैन सिद्धान्त में सभी कथन नयों की अपेक्षा से किया जाता है। समवायाङ्ग के इस प्रथम स्थानक में सर्व कथन संग्रह नय की अपेक्षा से एक रूप में किया गया है।

४—जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पन्नत्ते। पालए जाणविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं पन्नत्ते। सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं पन्नत्ते।

जम्बूद्वीप नामक यह प्रथम द्वीप आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौड़ाई) की अपेक्षा शत-सहस्र (एक लाख) योजन विस्तीर्ण कहा गया है। सौधर्मेन्द्र का पालक नाम का यान (यात्रा के समय उपयोग में आने वाला पालक नाम के आभियोग्य देव की विक्रिया से निर्मित विमान) एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है। सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर महाविमान एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है।

भावार्थ—जम्बूद्वीप, पालक यान-विमान और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर महाविमान एक एक लाख योजन रूप समान विस्तार वाले हैं।

५—अद्दानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते। चित्तानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते। सातिनक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है।

६—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। दोच्चाए पुढवीए नेरइयाणं जहन्नेणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं साहियं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमारिंद-वज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउअसन्नि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउय-गब्भ-वक्कंतियसन्निमणुयाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता।

इसी रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। इसी रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। दूसरी शर्करा पृथिवी में नारकियों की जघन्य स्थिति एक सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागरोपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्रों को छोड़ कर शेष भवनवासी कितनेक देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। कितनेक असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। कितनेक असंख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है।

७—वाणमंतराण देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। जोइसियाणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं जहन्नेणं एगं

पलिग्रोवमं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं जहन्नेणं साइरेगं एगं पलिग्रोवमं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता।

वान-व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम कही गई है। ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष से अधिक एक पल्योपम कही गई है। सौधर्मकल्प में देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम कही गई है। सौधर्म कल्प में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है। ईशानकल्प में देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम कही गई है। ईशानकल्प में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है।

८—जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववन्ना, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा एकस्स ग्रद्धमासस्स ग्राणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं एगस्स वाससहस्सस्स ग्राहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगेणं भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

जो देव सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुपोत्तर और लोकहित नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। वे देव एक अर्धमास में (पन्द्रह दिन में) आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के एक हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो एक मनुष्य भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ एक स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विस्थानक-समवाय

९—दो दंडा पन्नत्ता। तं जहा—अट्ठादंडे चेव, अणत्थादंडे चेव। दुवे रासी पण्णत्ता। तं जहा—जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव। दुविहे बंधणे पन्नत्ते। तं जहा—रागबंधणे चेव, दोस-बंधणे चेव।

दो दण्ड कहे गये हैं, जैसे—अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड। दो राशि कही गई हैं, जैसे—जीवराशि और अजीवराशि। दो प्रकार के बंधन कहे गये हैं, जैसे—रागबंधन और द्वेषबंधन।

विवेचन—हिंसादि पापरूप प्रवृत्ति को दंड कहते हैं। जो दंड अपने और पर के उपकार के लिए प्रयोजन-वश किया जाता है, उसे अर्थदंड कहते हैं। किन्तु जो पापरूप दंड विना किसी प्रयोजन के निरर्थक किया जाता है, उसे अनर्थदंड कहते हैं। कर्मों का बन्ध कराने वाले बन्धन रागरूप भी होते हैं और द्वेषरूप भी होते हैं। कषायों से कर्मबन्ध होता है। क्रोध और मान कषाय द्वेष रूप हैं और माया तथा लोभकषाय रागरूप हैं।

१०—पुव्वा फग्गुणी नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते । उत्तराफग्गुणी नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते । पुव्वाभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते । उत्तराभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते ।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है और उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है।

११—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। दुच्चाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। दुच्चाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। दूसरी शर्कराप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। इसी दूसरी पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति दो सागरोपम कही गई है।

१२—असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमारिंद-वज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउय-असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउय-गब्भवक्कंतियसन्निपंचिंदिय-मणुस्साणं अत्थेगइयाणं, दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्रों को छोड़कर शेष भवनवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक कितने ही जीवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक पंचेन्द्रिय संज्ञी कितनेक मनुष्यों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है।

१३—सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे अत्थे-गइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

सौधर्म कल्प में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। सौधर्म कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है। ईशान कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई गई है। सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है। माहेन्द्रकल्प में देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई है।

१४—जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेस्सं सुभफासं सोहम्मवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा दोण्हं अद्धमासाणं

आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

जो देव शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्शवाले सौधर्मावतंसक विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है। वे देव दो अर्धमासों में (एक मास में) आनप्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के दो हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दो भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ द्विस्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिस्थानक-समवाय

१५—तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे वयदंडे कायदंडे। तओ गुत्तीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती। तओ सल्ला पन्नत्ता। तं जहा—मायासल्ले णं नियाणसल्ले णं मिच्छादंसणसल्ले णं। तओ गारवा पन्नत्ता, तं जहा—इड्ढीगारवे णं रसगारवे णं सायागारवे णं। तओ विराहणा पन्नत्ता, तं जहा—नाणविराहणा दंसणविराहणा चरित्तविराहणा।

तीन दंड कहे गये हैं, जैसे—मनदंड, वचनदंड, कायदंड। तीन गुप्तियाँ कही गई हैं, जैसे—मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। तीन शल्य कही गई हैं, जैसे—मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शन शल्य। तीन गौरव कहे गये हैं, जैसे—ऋद्धिगौरव, रसगौरव, सातागौरव। तीन विराधना कही गई हैं, जैसे—ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना, चारित्रविराधना।

विवेचन—जिसके द्वारा चारित्र रूप ऐश्वर्य निःसार किया जावे, उसे दंड कहते हैं। मन, वचन, काय की खोटी प्रवृत्ति के द्वारा चरित्र नष्ट होता है, अतः दंड के तीन भेद कहे गये है। यतः मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्ति के रोकने को, एवं शुभ प्रवृत्ति के करने को गुप्ति कहते हैं, अतः गुप्ति के भी तीन भेद कहे गये हैं। जो शरीर में चुभे हुए—भीतर ही भीतर प्रविष्ट वाण आदि के समान अन्तरंग में दुःख का वेदन करावें उन्हें शल्य कहते हैं। मायाचारी की माया उसे भीतर पीड़ित करती रहती है कि कहीं मेरी माया या छल-छद्म प्रकट न हो जावे। दूसरी शल्य निदान है। देवादिक के ऋद्धि-वैभआदि को देखकर अपनी तपस्या के फलस्वरूप उनकी कामना करने को निदान कहते हैं। निदान करने वाले का चित्त सदा उन सुखादि को पाने की लालसा से निरन्तर सन्तप्त रहता है, इसलिए निदान को भी शल्य कहा है। तीसरी शल्य मिथ्यादर्शन है। इसके प्रभाव से जीव सदा ही पर-वस्तुओं को प्राप्त करने की अभिलाषा से वेचैन रहता है। पर-वस्तु की चाह करना मिथ्यादर्शन है इसीलिए इसे शल्य कहा गया है। अभिमान, लोभ आदि के द्वारा अपनी आत्मा को गुरु या भारी बनाने को गौरव कहते हैं। ऋद्धि-वैभवादि के द्वारा अपने को गौरवशाली मानना ऋद्धिगौरव कहलाता है। घी, दूध, मिष्ट आदि रसों के खाये विना मैं नहीं रह सकता, अतः उनके खाने-पीने में गौरव का

अनुभव करना, उनके प्राप्त होने से अभिमान करना रसगौरव कहलाता है। मेरे से ये परीषह-उपसर्गादि नहीं सहे जाते, मैं शीत-उष्ण की बाधा नहीं सह सकता, इत्यादि प्रकार से अपनी सुख-शीलता को प्रकट करना या साता प्राप्त होने पर अहंकार करना सातागौरव है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीनों मोक्ष के मार्ग हैं, उनको विराधना करने से विराधना के भी तीन भेद हो जाते हैं।

१६—मिगसिरनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। पुस्सनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। जेट्ठानक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। अभीइनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। सवणनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। अस्सिणिनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। भरणीनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते।

मृगशिर नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। पुष्य नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। ज्येष्ठा नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। अभिजित् नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। श्रवण नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। अश्विनी नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। भरणी नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है।

१७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। दोच्चाए णं पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तच्चाए णं पुढवीए णेरइयाणं जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। दूसरी शर्करा पृथिवी में नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। तीसरी वालुका पृथिवी में नारकियों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है।

१८—असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउयसन्निगब्भवक्कंतियमणुस्साणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है।

१९—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। जे देवा आभंकरं पभंकरं आभंकर-पभंकरं चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता, ते णं देवा तिण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा, तेसि णं देवाणं तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति, बुज्झिस्संति, मुच्चिस्संति, परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। जो देव

आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक नाम वाले विशिष्ट विमानों में देव-रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। वे देव तीन अर्धमासों में (डेढ़ मास में) आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को तीन हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ त्रिस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुःस्थानक-समवाय

२०—चत्तारि कसाया पन्नत्ता, तं जहा—कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए। चत्तारि झाणा पन्नत्ता, तं जहा—अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे। चत्तारि विकहाओ पन्नत्ताओ, तं जहा—इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा देसकहा। चत्तारि सण्णा पन्नत्ता, तं जहा—आहार-सण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा। चउव्विहे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—पगइबंधे ठिइबंधे अणुभावबंधे पएसबंधे। चउगाउए जोयणे पन्नत्ते।

चार कषाय कहे गये हैं—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय। चार ध्यान कहे गये हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान। चार विकथाएं कही गई हैं। जैसे—स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा। चार संज्ञाएं कही गई हैं। जैसे—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा। चार प्रकार का बन्ध कहा गया है। जैसे—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाव-बन्ध, प्रदेशबन्ध। चार गव्यूति का एक योजन कहा गया है।

विवेचन—जो आत्मा को कसे, ऐसे संसार बढ़ाने वाले विकारी भावों को कषाय कहते हैं। चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। यह एकाग्रता जब इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोगादि के होने पर उनके दूर करने के रूप में होती है, तब उसे आर्तध्यान कहते हैं। जब वह एकाग्रता हिंसादि पाप करने में होती है, तब उसे रौद्रध्यान कहते हैं। जब वह एकाग्रता जिन-प्रवचन के प्रसार, दया, दान, परोपकार आदि करने में होती है, तब उसे धर्म्यध्यान कहते हैं और जब यह एकाग्रता सर्वशुभ-अशुभ भावों से निवृत्त होकर एकमात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप में स्थिरता रूप होती है, तब उसे शुक्लध्यान कहते हैं। शुक्लध्यान मोक्ष का साक्षात् कारण है और धर्म्यध्यान परम्परा कारण है। आर्तध्यान और और रौद्रध्यान संसार-बन्धन के कारण हैं। राग-द्वेषवर्धक निरर्थक कथाओं को विकथा कहते हैं। इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्तिको संज्ञा कहते हैं। कर्मो के स्वभाव, स्थिति, फल-प्रदानादि रूप से आत्मा के साथ संबद्ध होने को बंध कहते हैं। प्रस्तुत सूत्रों में इनके चार-चार भेदों को गिनाया गया है। चार कोश या गव्यूति को योजन कहते हैं।

२१—अणुराहानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते, पुव्वासाढानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते। उत्तरासाढानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते।

अनुराधा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है। पूर्वाषाढा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है। उत्तराषाढा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है।

२२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति चार सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। सौधर्म-ईशानकल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की है।

२३—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। जे देवा किट्ठि सुकिट्ठि किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिजुत्तं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा चउण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसिं देवाणं चउहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चार सागरोपम है। इन कल्पों के जो देव कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टि-आवर्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टियुक्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृंग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट, और कृष्टि-उत्तरावतंसक नाम वाले विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम कही गई है। वे देव चार अर्धमासों (दो मास) में आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के चार हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्य-सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चार भवग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

।। इति चतुःस्थानक समवाय समाप्त ।।

पंचस्थानक समवाय

२४—पंच किरिया पन्नत्ता, तं जहा—काइया अहिगरणिया पाउसिया पारितावणिआ पाणाइवायकिरिया। पंच महव्वया पन्नत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

क्रियाएं पांच कही गई हैं। जैसे—कायिकीक्रिया, आधिकरणिकी क्रिया, प्राद्वेपिकी क्रिया, पारितापनिकी क्रिया, प्राणातिपात क्रिया। पांच महाव्रत कहे गये हैं। जैसे—सर्व प्राणानिपात से विरमण, सर्वमृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व मैथुन से विरमण, सर्व परिग्रह से विरमण।

विवेचन—मन वचन काय के व्यापार-विशेष को क्रिया कहते हैं। शरीर से होने वाली चेष्टा को कायिकी क्रिया कहते हैं। हिंसा के अधिकरण खड्ग, भाला, बन्दूक आदि के निर्माण आदि करने की क्रिया को आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं। प्रद्वेष या मत्सरभाव वाली क्रिया को प्राद्वेपिकी क्रिया कहते हैं। प्राणियों को ताड़न-परितापन आदि पहुँचाने वाली क्रिया को पारितापनिकी क्रिया कहते हैं। जीवों के प्राण-घात करने वाली क्रिया को प्राणातिपातिकी क्रिया कहते हैं। सर्व प्रकार की हिंसा का त्याग करना पहला महाव्रत है। सर्व प्रकार के असत्य बोलने का त्याग करना दूसरा महाव्रत है। सर्व प्रकार के अदत्त का त्याग करना अर्थात् विना दी हुई किसी भी वस्तु का ग्रहण नहीं करना तीसरा महाव्रत है। देव, मनुष्य और पशु सम्बन्धी सर्व प्रकार के मैथुन-सेवन का त्याग करना चौथा महाव्रत है। सभी प्रकार के परिग्रह (ममत्व) का त्याग करना पांचवां महाव्रत है।

२६—पंच कामगुणा पन्नत्ता, तं जहा—सद्दा रूवा रसा गंधा फासा। पंच आसवदारा पन्नत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा। पंच संवरदारा पन्नत्ता, तं जहा—सम्मत्तं विरई अप्पमत्तया अकसाया अजोगया। पंच णिज्जरट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमणं, मुसावायाओ वेरमणं, अदिन्नादाणाओ वेरमणं, मेहुणाओ वेरमणं, परिग्गहाओ वेरमणं। पंच समिईओ पन्नत्ताओ, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्लपारिट्ठावणियासमिई।

इन्द्रियों के विषयभूत कामगुण पांच कहे गये हैं। जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, रसनेन्द्रिय का विषय रस, घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध, और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श। कर्मबंध के कारणों को आस्रवद्वार कहते हैं। वे पाँच हैं। जैसे—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। कर्मों का आस्रव रोकने के उपायों को संवरद्वार कहते हैं। वे भी पांच कहे गये हैं—सम्यक्त्व, विरति, अप्रमत्तता, अकषायता और अयोगता या योगों की प्रवृत्ति का निरोध। संचित कर्मों की निर्जरा के स्थान, कारण या उपाय पांच कहे गये हैं। जैसे—प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण। संयम की साधक प्रवृत्ति या यतना-पूर्वक की जाने वाली प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। वे पांच कही गई हैं—गमनागमन में सावधानी रखना ईर्यासमिति है। वचन-बोलने में सावधानी रखकर हित मित प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है। गोचरी में सावधानी रखना और निर्दोष, अनुद्दिष्ट भिक्षा ग्रहण करना एषणासमिति है। संयम के साधक वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि के ग्रहण करने और रखने में सावधानी रखना आदानभांड-मात्र निक्षेपणा समिति है। उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) श्लेष्म (कफ) सिंघाण (नासिकामल) और जल्ल (शरीर का मैल) परित्याग करने में सावधानी रखना पांचवीं प्रतिष्ठापना समिति है।

२७—पंच अत्थिकाया पन्नत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए।

पांच अस्तिकाय द्रव्य कहे गये हैं। जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

विवेचन—बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं। स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलों के गमन करने में सहकारी द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते हैं। स्वयं ठहरनेवाले जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहकारी द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते हैं। सर्व द्रव्यों को अपने भीतर अवकाश प्रदान करने वाले द्रव्य को आकाशास्तिकाय कहते हैं। चैतन्य गुण वाले द्रव्य को जीवास्तिकाय कहते हैं। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाले द्रव्य को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं। इनमें से प्रारम्भ के दो द्रव्य असंख्यात प्रदेश वाले हैं। आकाश अनन्तप्रदेशी है। एक जीव के प्रदेश असंख्यात हैं। पुद्गल द्रव्य के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं।

२८—रोहिणीनक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते। पुणव्वसुनक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते। हत्थनक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते, विसाहानक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते, धणिट्ठानक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते।

रोहिणी नक्षत्र पांच तारावाला कहा गया है। पुनर्वसु नक्षत्र पांच तारावाला कहा गया है। हस्त नक्षत्र पांच तारावाला कहा गया है। विशाखा नक्षत्र पाँच तारावाला कहा गया है धनिष्ठा नक्षत्र पांच तारावाला कहा गया है।

२९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं। पंच पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति पांच पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति पांच सागरोपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पांच पल्योपम कही गई है।

३०—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वायप्पभं वायकंतं वायवण्णं वायलेसं वायज्झयं वायसिंगं वायसिट्ठं वायकूडं वाउत्तरवडिंसगं सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं पंच सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा पंचण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा, तेसिं णं देवाणं पंचहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पंचहि भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पाँच सागरोपम कही गई है। जो देव वात, सुवात, वातावर्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृंग, वातसृष्ट, वातकूट, वातोत्तरावतंसक, सूर, सुसूर, सूरावर्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृंग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन

देवों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागरोपम कही गई है। वे देव पाँच अर्धमासों (ढाई मास) में उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को पांच हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक ऐसे जीव हैं जो पांच भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ पंच स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्स्थानक-समवाय

३१—छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा। छ जीवनिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढवीकाए आऊकाए तेउकाए वाउकाए वणस्सइकाए तसकाए। छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणे ऊणोयरिया वित्तीसंखेवो रसपरिच्चाओ कायकिलेसो संलीणया। छव्विहे अब्भिंतरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं उस्सग्गो।

छह लेश्याएं कही गई हैं। जैसे—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

विवेचन—तीव्र-मन्द आदि रूप कषायों के उदय से, कृष्ण आदि द्रव्यों के सहकार से आत्मा की परिणति को लेश्या कहते हैं। कषायों के अत्यन्त तीव्र उदय होने पर जो अतिसंक्लेश रूप रौद्र परिणाम होते हैं, उन्हें कृष्णलेश्या कहते हैं। इससे उतरते हुए संक्लेशरूप जो रौद्र परिणाम होते हैं, उन्हें नीललेश्या कहते हैं। इससे भी उतरते हुए आर्तध्यान रूप परिणामों को कापोतलेश्या कहते हैं। कषायों का मन्द उदय होने पर दान देने और परोपकार आदि करने के शुभ परिणामों को तेजोलेश्या कहते हैं। कषायों का और भी मन्द उदय होने पर जो विवेक, प्रशम भाव, संवेग आदि जागृत होते हैं, उन परिणामों को पद्मलेश्या कहते हैं। कषायों का सर्वथा मन्द उदय होने पर जो निर्मलता आती है, उसे शुक्ललेश्या कहते हैं। मनुष्य और तिर्यंच जीवों में अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही भावलेश्याओं का परिवर्तन होता रहता है। किन्तु देव और नारक जीवों की लेश्याएं अवस्थित रहती हैं। फिर भी वे अपनी सीमा के भीतर उतार-चढ़ाव रूप होती रहती हैं। शरीर के वर्ण को द्रव्यलेश्या कहते हैं। इसका भावलेश्या से कोई अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है।

(संसारी) जीवों के छह निकाय (समुदाय) कहे गये हैं। जैसे—पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। छह प्रकार के बाहिरी तपःकर्म कहे गये हैं। जैसे—अनशन, ऊनोदर्य, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश और संलीनता। छह प्रकार के आभ्यन्तर तप कहे गये हैं। जैसे—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

विवेचन—छह जीवनिकायों में से आदि के पांच निकाय स्थावरकाय और एकेन्द्रिय जीव हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य और देवगति नरकगति के जीव त्रसकाय कहे जाते हैं।

जिन तपों से बाह्य शरीर के शोषण-द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है, उन्हें बाह्य तप कहते हैं।

यावज्जीवन या नियतकाल के लिए चारों प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन तप है। भूख से कम खाना ऊनोदर्य तप है। गोचरी के नियम करना और विविध प्रकार के अभिग्रह स्वीकार करना वृत्तिसंक्षेप तप है। छह प्रकार के रसों का या एक, दो आदि रसों का त्याग करना रस-परित्याग तप है। शीत, उष्णता की बाधा सहना, नाना प्रकार के आसनों से अवस्थित रह कर शरीर को कृश करना कायक्लेश तप है। एकान्त स्थान में निवास कर अपनी इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकना संलीनता तप है।

भीतरी मनोवृत्ति के निरोध-द्वारा जो कर्मों की निर्जरा का साधन बनता है, उसे आभ्यन्तर तप कहते हैं। अज्ञान, प्रमाद या कषायावेश में किये हुए, अपराधों के लिए पश्चात्ताप या यथायोग्य तपश्चर्या आदि करना प्रायश्चित्त तप है। अहंकार और अभिमान का त्याग कर विनम्र भाव रखना विनय तप है। गुरुजनों की भक्ति करना, रुग्ण होने पर सेवा-टहल करना और उनके दुःखों को दूर करना वैयावृत्त्य तप है। शास्त्रों का वाँचना, पढ़ना, सुनना, उनका चिन्तन करना और धर्मोपदेश करना स्वाध्याय तप है। आर्त्त और रौद्र विचारों को छोड़ कर धर्म-अध्यात्म में मन की एकाग्रता करने को ध्यान कहते हैं। बाहिरी शरीरादि के और भीतरी रागादि भावों के परित्याग को व्युत्सर्ग-तप कहते हैं। बाह्य तप अन्तरंग तपों की वृद्धि के लिए किये जाते हैं और बाह्य तपों की अपेक्षा अन्तरंग तप असंख्यात गुणी कर्म-निर्जरा के कारण होते हैं।

३२—छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतिअसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए।

छह छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं। जैसे—वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक-समुद्घात।

विवेचन—केवलज्ञान होने के पूर्व तक सब जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थों के समुद्घात को छाद्मस्थिक समुद्घात कहा गया है। किसी निमित्त से जीव के कुछ प्रदेशों के बाहिर निकलने को समुद्घात कहते हैं। समुद्घात के सात भेद आगम में बताये गये हैं। उनमें केवलि-समुद्घात को छोड़कर शेष छह समुद्घात छद्मस्थ जीवों के होते हैं। वेदना से पीड़ित होने पर जीव के कुछ प्रदेशों का बाहर निकलना वेदना-समुद्घात है। क्रोधादि कषाय की तीव्रता के समय कुछ जीव-प्रदेशों का बाहर निकलना कषायसमुद्घात है। मरण होने से पूर्व कुछ जीवप्रदेशों का बाहर निकलना मारणान्तिक-समुद्घात है। देवादि के द्वारा उत्तर शरीर के निर्माण के समय या अणिमा-महिमादि विक्रिया के समय जीव प्रदेशों का फैलना वैक्रिय-समुद्घात है। तेजोलब्धि का प्रयोग करते हुए जीवप्रदेशों का बाहर निकालना तैजससमुद्घात है। चतुर्दश पूर्वधर महामुनि के मन में किसी गहन तत्त्व के विषय में शंका होने पर और उस क्षेत्र में केवली का अभाव होने पर केवली भगवान् के समीप जाने के लिए मस्तक से जो एक हाथ का पुतला निकलता है, उसे आहारक-समुद्घात कहते हैं। वह पुतला केवली के चरण-स्पर्श कर उन मुनि के शरीर में वापिस प्रविष्ट हो जाता है और उनकी शंका का समाधान हो जाता है।

उक्त सभी समुद्घातों का उत्कृष्ट काल एक अन्तर्मुहूर्त ही है और उक्त समुद्घातों के समय बाहर निकले हुए प्रदेशों का मूल शरीर से बराबर सम्बन्ध बना रहता है।

३३—छव्विहे अत्थुग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियअत्थुग्गहे चक्खुइंदियअत्थुग्गहे घाणिंदियअत्थुग्गहे जिब्भिंदियअत्थुग्गहे फासिंदियअत्थुग्गहे नोइंदियअत्थुग्गहे।

अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है। जैसे श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह।

विवेचन—किसी पदार्थ को जानने के समय दर्शनोपयोग के पश्चात् जो अव्यक्त रूप सामान्य बोध होता है, वह व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। उसके तत्काल वाद जो अर्थ का ग्रहण या वस्तु का सामान्य ज्ञान होता है, उसे अर्थावग्रह कहते हैं। यह अर्थावग्रह श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों से और नोइन्द्रिय अर्थात् मन से उत्पन्न होता है, अतः उसके छह भेद हो जाते हैं। किन्तु व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का ही होता है, क्योंकि वह चक्षुरिन्द्रिय और मन से नहीं होता क्योंकि यह दोनों अप्राप्यकारी हैं, इनका ग्राह्य पदार्थ के साथ संयोग नहीं होता है। अर्थावग्रह के पश्चात् ही ईहा, अवाय आदि ज्ञान उत्पन्न होते हैं।

३४—कत्तियाणक्खत्ते छतारे पण्णत्ते। असिलेसानक्खत्ते छतारे पण्णत्ते।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारा वाला कहा गया है। आश्लेषा नक्षत्र छह तारा वाला कहा गया है।

३५—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओव-माइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति छह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुर कुमारों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितने देवों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है।

३६—सणंकुमार-माहिंदेसु [कप्पेसु] अत्थेगइयाणं देवाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सयंभुं सयंभुरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्ठिघोसं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति छह सागरोपम कही गई है। उनमें जो देव स्वयम्भू, स्वम्भूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीर-श्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरकांत, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट

स्थिति छह सागरोपम कही गई है। वे देव छह अर्धमासों (तीन मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के छह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ षट्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तस्थानक-समवाय

३७—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवभए मरणभए असिलोगभए। सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए केवलिसमुग्घाए।

सात भयस्थान कहे गये हैं। जैसे—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात् भय, आजीवभय, मरणभय, और अश्लोकभय। सात समुद्घात कहे गये हैं, जैसे—वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात वैक्रियसमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात।

विवेचन—सजातीय जीवों से होने वाले भय को इहलोकभय कहते हैं, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय। विजातीय जीवों से होने वाले भय को परलोकभय कहते हैं। जैसे—मनुष्य को पशु से होने वाला भय। उपार्जित धन की सुरक्षा का भय आदानभय कहलाता है। बिना किसी बाह्य निमित्त के अपने ही मानसिक विकल्प से होने वाले भय को अकस्मात्भय कहते हैं। जीविका सम्बन्धी भय को आजीवभय कहते हैं। मरण के भय को मरणभय कहते हैं। अश्लोक का अर्थ है—निन्दा या अपकीर्त्ति। निन्दा या अपकीर्त्ति के भय को अश्लोकभय कहते हैं। समुद्घात के छह भेदों का स्वरूप पहले कह आये हैं। केवलीभगवान् के वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति को आयुकर्म की शेष रही अन्तर्मुहूर्त प्रमाणस्थिति के बराबर करने के लिए जो दंड, कपाट, मन्थान और लोकपूरण रूप आत्म-प्रदेशों का विस्तार होता है, उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं।

३८—समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

श्रमण भगवान् महावीर सात रत्नि-हाथ प्रमाण शरीर से ऊंचे थे।

३९—इहेव जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते महाहिमवंते निसढे नीलवंते रुप्पी सिहरी मन्दरे। इहेव जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे हेमवते हरिवासे महाविदेहे रम्मए एरण्णवए एरवए।

इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—क्षुल्लक हिमवंत, महा-हिमवंत, निषध, नीलवंत, रुक्मी, शिखरी और मन्दर (सुमेरु पर्वत)। इस जंबूद्वीप नामक द्वीप में सात क्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक, ऐरण्यवत और ऐरवत।

४०—खीणमोहेणं भगवया मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ वेए (ज्ज) ई।

बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह वीतराग मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का वेदन करते हैं।

४१—महानक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते। कत्तिआइआ सत्तनक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता। [पाठा० अभियाइया सत्त नक्खत्ता] महाइया सत्त नक्खत्ता दाहिणदारिआ पण्णत्ता। अणुराहाइआ सत्त नक्खत्ता अवरदारिआ पण्णत्ता। धणिट्ठाइया सत्त नक्खत्ता उत्तरदारिआ पण्णत्ता।

मघानक्षत्र सात तारावाला कहा गया है। कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की ओर द्वारवाले कहे गये हैं। पाठान्तर के अनुसार—अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये हैं। अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये हैं। धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये हैं।

४२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए णं पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी में नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है। चौथी पंक प्रभा पृथिवी में नारकियों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सनत्कुमार कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोगपम कही गई है। माहेन्द्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है।

४३—बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त साहिया सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा, तेसिं णं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे णं सत्तहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

ब्रह्मलोक में कितनेक देवों की स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है। उनमें जो देव सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कांचनकूट और सनत्कुमारावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई

है। वे देव सात अर्धमासों (साढ़े तीन मासों) के बाद आण-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों की सात हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सात भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ सप्त स्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टस्थानक-समवाय

४४—अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—जातिमए कुलमए बलमए रूवमए तवमए सुयमए लाभमए इस्सरियमए। अट्ठ पवयणमायाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिई उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपारिट्ठावणियासमिई मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती।

आठ मदस्थान कहे गये हैं। जैसे—जातिमद (माता के पक्ष की श्रेष्ठता का अहंकार), कुलमद (पिता के वंश की श्रेष्ठता का अहंकार), बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद (विद्या का अहंकार) लाभमद और ऐश्वर्यमद (प्रभुता का अभिमान)। आठ प्रवचन-माताएं कही गई हैं। जैसे—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भांड-मात्र निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल सिंघाण-परिष्ठापनासमिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, और कायगुप्ति,।

विवेचन—मनुष्य जिन स्थानों या कारणों से अहंकार या अभिमान करता है उनको मदस्थान कहा जाता है। वे आठ हैं। विभिन्न कलाओं की प्रवीणता या कुशलता का मद भी होता है, उसे श्रुतमद के अन्तर्गत जानना चाहिए। प्रवचन का अर्थ द्वादशाङ्ग गणिपिटक और उसका आधारभूत संघ है। जैसे माता बालक की रक्षा करती है, उसी प्रकार पांच समितियाँ और तीन गुप्तियां द्वादशाङ्ग प्रवचन की और संघ की, संघ के संयमरूप धर्म की रक्षा करती हैं, इसलिए उनको प्रवचनमाता कहा जाता है।

४५—वाणमंतराणं देवाणं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। कूडसामली णं गरुलावासे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। जंबुद्दीवस्स णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वानव्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं। (उत्तरकुरु में स्थित पार्थिव) जंबूनामक सुदर्शन वृक्ष आठ योजन ऊंचा कहा गया है। (देवकुरु में स्थित) गरुड देव का आवासभूत पार्थिव कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊंचा कहा गया है। जम्बूद्वीप की जगती (प्राकार के समान पाली) आठ योजन ऊंची कही गई है।

४६—अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते, तं जहा—पढमे समए दंडं करेइ, बीए समए कवाडं करेइ, तइयसमए मंथं करेइ, चउत्थे समए मंथंतराइं पूरेइ, पंचमे समए मंथंतराइं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ। सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ। ततो पच्छा सरीरत्थे भवइ।

केवलि समुद्घात आठ समयवाला कहा गया है जैसे—केवली भगवान् प्रथम समय में दंड समुद्घात करते हैं, दूसरे समय में कपाट समुद्घात करते हैं, तीसरे समय में मन्थान समुद्घात करते हैं, चौथे समय में मन्थान के अन्तरालों को पूरते हैं, अर्थात् लोकपूरण समुद्घात करते हैं। पांचवें समय में मन्थान के अन्तराल से आत्मप्रदेशों का प्रतिसंहार (संकोच) करते हैं, छठे समय में मन्थानसमुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं, सातवें समय में कपाट समुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं और आठवें समय में दंडसमुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं। तत्पश्चात् उनके आत्म-प्रदेश शरीरप्रमाण हो जाते हैं।

४७—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—

सुभे य सुभघोसे य वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिधरे चेव वीरभद्दे जसे इ य ॥१॥

पुरुषादानीय अर्थात् पुरुषों के द्वारा जिनका नाम आज भी श्रद्धा और आदर-पूर्वक स्मरण किया जाता है, ऐसे पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव के आठ गण और आठ गणधर थे।

जैसे—शुभ, शुभघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश ॥ १ ॥

४८—अट्ठ नक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति, तं जहा—कत्तिया १, रोहणी २, पुणव्वसू ३, महा ४, चित्ता ५, विसाहा ६, अणुराहा ७, जेट्ठा ८।

आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग करते हैं। जैसे—कृत्तिका १, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, मघा ४, चित्रा ५, विशाखा ६, अनुराधा ७, और ज्येष्ठा ८।

विवेचन—जिस समय चन्द्रमा उक्त आठ नक्षत्रों के मध्य से गमन करता है, उस समय उसके उत्तर और दक्षिण पार्श्व से उनका चन्द्रमा के साथ जो संयोग होता है, वह प्रमर्दयोग कहलाता है।

४९—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति आठ पल्योपम कही गई है। चौथी पंकप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति आठ पल्योपम कही है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति आठ पल्योपम कही गई है।

५०—बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा अच्चिं १, अच्चिमालिं २, वइरोयणं ३, पभंकरं ४, चंदाभं ५, सूराभं ६, सुपइट्ठाभं ७, अग्गिच्चाभं ८, रिट्ठाभं ९, अरुणाभं १०, अणुत्तरवडिंसगं ११, विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा अट्ठण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसिं णं देवाणं अट्ठहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

ब्रह्मलोक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। वहां जो देव अर्चि १, अर्चिमाली २, वैरोचन ३, प्रभंकर ४, चन्द्राभ ५, सूराभ ६, सुप्रतिष्ठाभ ७, अग्नि-अर्च्याभ ८, रिष्टाभ ९, अरुणाभ १०, और अनुत्तरावतंसक ११, नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। वे देव आठ अर्धमासों (पखवाड़ों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के आठ हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव आठ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ अष्टस्थानक समवाय समाप्त ॥

नवस्थानक-समवाय

५१—नव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नो इत्थि-पसु-पंडगसंसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ १, नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ २, नो इत्थीणं गणाइं सेवित्ता भवइ ३, नो इत्थीणं इंदियाणि मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, नो पणीयरसभोई भवइ ५, नो पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता भवइ ६, नो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलिआइं समरइत्ता भवइ ७, नो सद्दाणुवाई, नो रूवाणुवाई, नो गंधाणुवाई, नो रसाणुवाई, नो फासाणुवाई, नो सिलोगाणुवाई भवइ ८, नो सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवइ ९।

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियां (संरक्षिकाएं) कही गई हैं। जैसे—स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन का सेवन नहीं करना १, स्त्रियों की कथाओं को नहीं कहना २, स्त्रीगणों का उपासक नहीं होना ३, स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों और रमणीय अंगों का द्रष्टा और ध्याता नहीं होना ४, प्रणीत-रस-बहुल भोजन का नहीं करना ५, अधिक मात्रा में खान-पान या आहार नहीं करना ६, स्त्रियों के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण नहीं करना ७, कामोद्दीपक शब्दों को नहीं सुनना, कामोद्दीपक रूपों को नहीं देखना, कामोद्दीपक गन्धों को नहीं सूंघना, कामोद्दीपक रसों का स्वाद नहीं लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श नहीं करना ८, और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख में प्रतिबद्ध (आसक्त) नहीं होना ९।

विवेचन—ब्रह्मचारी पुरुषों को अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए उक्त नौ प्रकार के कार्यों का सेवन नहीं करना चाहिए, तभी उनके ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकती है। आगम में ये शील की नौ वाड़ों के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार खेत की वाड़ उसकी रक्षक होती है, उसी प्रकार उक्त नौ वाड़ें ब्रह्मचर्य की रक्षक हैं, अतएव इन्हें ब्रह्मचर्य-गुप्तियां कहा गया है।

५२—नव बंभचेर-अगुत्तीओ पण्णत्ताओ। तं जहा—इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताणं सिज्जासणाणं सेवित्ता भवइ १, इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ २, इत्थीणं गणाइं सेवित्ता भवइ ३, इत्थीणं इंदियाणि

मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, पणीयरसभोई भवति ५, पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता भवइ ६, इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकोलिआइं समरइत्ता भवइ ७, सद्दाणुवाई रूवाणुवाई गंधाणुवाई रसाणुवाई फासाणुवाई सिलोगाणुवाई भवइ ८, सायासुक्खपडिबद्धे यावि भवइ ९।

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ (विनाशिकाएं) कही गई हैं। जैसे—स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन का सेवन करना १, स्त्रियों की कथाओं को कहना—स्त्रियों सम्बन्धी बातें करना २, स्त्रीगणों का उपासक होना ३, स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों और मनोरम अंगों को देखना और उनका चिन्तन करना ४, प्रणीत-रस-बहुल गरिष्ठ भोजन करना ५, अधिक मात्रा में आहार-पान करना ६, स्त्रियों के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण करना ७, कामोद्दीपक शब्दों को सुनना, कामोद्दीपक रूपों को देखना, कामोद्दीपक गन्धों को सूंघना, कामोद्दीपक रसों का स्वाद लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श करना ८, और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख में प्रतिबद्ध (आसक्त) होना ९।

भावार्थ—इन उपर्युक्त नवों प्रकार के कार्यों के सेवन से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है, इसलिए इनको ब्रह्मचर्य की अगुप्ति कहा गया है।

५३—नव बंभचेरा पण्णत्ता तं जहा—

सत्थपरिण्णा[1] लोगविजयो[2] सीओसणिज्जं[3] सम्मत्तं[4]।
आवंति[5] धुत[6] विमोहा[7] [यणं] उवहाणसुयं[8] महापरिण्णा[9] ॥१॥

नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजय २, शीतोष्णीय ३, सम्यक्त्व ४, आवन्ती ५, धूत ६, विमोह ७, उपधानश्रुत ८, और महापरिज्ञा ९।

विवेचन—कुशल या प्रशस्त आचरण करने को भी ब्रह्मचर्य कहते हैं। उसके प्रतिपादक अध्ययन भी ब्रह्मचर्य कहलाते हैं। आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में ऐसे कुशल अनुष्ठानों के प्रतिपादक नौ अध्ययनों का उक्त गाथासूत्र में नामोल्लेख किया गया है। तात्पर्य यह है कि आचारांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध में नौ अध्ययन हैं।

५४—पासे णं अरहा पुरिसादाणीए नव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

पुरुषादानीय पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव नौ रत्नि (हाथ) ऊँचे थे।

५५—अभीजीनक्खत्ते साइरेगे नव मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ। अभीजियाइया नव नक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, तं जहा—अभीजीसवणो जाव भरणी।

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करता है। अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा का उत्तर दिशा की ओर से योग करते हैं। वे नो नक्षत्र अभिजित् से लगाकर भरणी तक जानना चाहिए।

विवेचन—जो नक्षत्र जितने समय तक चन्द्र के साथ रहता है, वह उसका चन्द्र के साथ योग कहलाता है। अभिजित् आदि जो नौ नक्षत्र उत्तर की ओर रहते हुए चन्द्र के साथ योग का अनुभव करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—अभिजित्, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक् और पूर्वाभाद्रपद।

५६—इमीसे णं रयणप्पभाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नव जोयणसए उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ। जंबुद्दीवे णं दीवे नवजोयणिया मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा। विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए बाहाए नव नव भोमा पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर अन्तर करके उपरितन भाग में ताराएं संचार करती हैं। जम्बूद्वीप नामक द्वीप में नौ योजन वाले मत्स्य भूतकाल में नदीमुखों से प्रवेश करते थे, वर्तमान में प्रवेश करते हैं और भविष्य में प्रवेश करेंगे। जम्बूद्वीप के विजय नामक पूर्व द्वार की एक-एक बाहु (भुजा) पर नौ-नौ भौम (विशिष्ट स्थान या नगर) कहे गये हैं।

५७—वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ताओ।

वान व्यन्तर देवों की सुधर्मा नाम की सभाएं नौ योजन ऊंची कही गई हैं।

५८—दंसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स नव उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—निद्दा पयला निद्दानिद्दा पयलापयला थीणद्धी चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियां कही गई हैं। जैसे—निद्रा, प्रचला, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

५९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति नौ पल्योपम है। चौथी पंकप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति नौ सागरोपम है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति नौ पल्योपम है।

६०—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पभं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडिंसगं, सुज्जं सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जपभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्झसिंगं सुज्जसिट्ठं सुज्जकूडं सुज्जुत्तरवडिंसगं, [रुइल्लं] रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकंतं रुइल्लवण्णं रुइल्लेसं रुइल्लज्झयं

रुइल्लसिंगं रुइल्लसिट्ठं रुइल्लकूडं रुइल्लुत्तरवडिसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, ते णं देवा नवण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं नवहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे नवहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति नौ पल्योपम है। ब्रह्मलोक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति नौ सागरोपम है। वहां जो देव पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्मध्वज, पक्ष्मशृंग, पक्ष्मसृष्ट पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतंसक, तथा सूर्य, सुसूर्य, सूर्यावर्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृंग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट सूर्योत्तरावतंसक, [रुचिर) रुचिरावर्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त, रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृंग, रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट, और रुचिरोत्तरावतंसक नामवाले विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति नौ सागरोपम कही गई है। वे देव नौ अर्धमासों (साढ़े चार मासों) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को नौ हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो नौ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ नवस्थानक समवाय समाप्त ॥

दशस्थानक समवाय

६१—दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—खंती १, मुत्ती २, अज्जवे ३, मद्दवे ४, लाघवे ५, सच्चे ६, संजमे ७, तवे ८, चियाए ९, बंभचेरवासे १०।

श्रमण धर्म दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—क्षान्ति १, मुक्ति २, आर्जव ३, मार्दव ४, लाघव ५, सत्य ६, संयम ७, तप ८, त्याग ९, ब्रह्मचर्यवास १०।

विवेचन—जो आरम्भ-परिग्रह एवं घर-द्वार का परित्याग कर और संयम धारण कर उसका निर्दोष पालन करने के लिए निरन्तर श्रम करते रहते हैं, उन्हें 'श्रमण' कहते हैं। उनको अपने विषय-कषायों को जीतने के लिए क्षान्ति आदि दश धर्मों के परिपालन का उपदेश दिया गया है। कषायों में सबसे प्रधान कषाय क्रोध है, उसके जीतने के लिए क्षान्ति, सहनशीलता या क्षमा का धारण करना अत्यावश्यक है। द्वीपायन जैसे परम तपस्वियों के जीवन भर की संयम-साधना क्षण भर के क्रोध से समाप्त हो गई और वे अधोगति को प्राप्त हुए। दूसरी प्रबल कषाय लोभ है, उसके त्याग के लिए मुक्ति अर्थात् निर्लोभता धर्म का पालन करना आवश्यक है। इसी प्रकार माया कषाय को जीतने के लिए आर्जवधर्म का और मान कषाय को जीतने के लिए मार्दव धर्म को पालने का विधान किया गया है। मान कषाय को जीतने से लाघव धर्म स्वतः प्रकट हो जाता है। तथा माया कषाय को जीतने से सत्यधर्म भी प्रकट हो जाता है। पांचों इन्द्रियों के विषयों की प्रवृत्ति को रोकने के लिए संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्यवास इन चार धर्मों के पालने का उपदेश दिया गया है। यहाँ त्याग धर्म से

अभिप्राय अन्तरंग-वहिरंग सभी प्रकार के संग (परिग्रह) के त्याग से है। दान को भी त्याग कहते हैं। अतः संविग्न मनोज्ञ साधुओं को प्राप्त भिक्षा में से दान का विधान भी साधुओं का कर्त्तव्य माना गया है। ब्रह्मचर्य के धारक परम तपस्वियों के साथ निवास करने पर ही श्रमणधर्म का पूर्ण रूप से पालन संभव है, अतः सवसे अन्त में उसे स्थान दिया गया है।

६२—दस चित्तसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जिज्जा सव्वं धम्मं जाणित्तए १, सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए २, सण्णिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा पुव्वभवे सुमरित्तए ३, देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए ४, ओहिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं जाणित्तए ५, ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं पासित्तए ६, मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा जाव [अड्ढतईअदीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं] मणोगए भावे जाणित्तए ७, केवलनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं जाणित्तए ८, केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं पासित्तए ९, केवलिमरणं वा मरिज्जा सव्वदुक्खप्पहीणाए १०।

चित्त-समाधि के दश स्थान कहे गये हैं। जैसे—जो पूर्व काल में कभी उत्पन्न नहीं हुई, ऐसी सर्वज्ञ-भाषित श्रुत और चारित्ररूप धर्म को जानने की चिन्ता का उत्पन्न होना यह चित्त की समाधि या शान्ति के उत्पन्न होने का पहला स्थान है (१)।

धर्म-चिन्ता को चित्त-समाधि का प्रथम स्थान कहने का कारण यह है कि इसके होने पर ही धर्म का परिज्ञान और आराधन संभव है।

जैसा पहले कभी नहीं देखा, ऐसे याथातथ्य (भविष्य में यथार्थ फल को देने वाले) स्वप्न का देखना चित्त-समाधि का दूसरा स्थान है (२)।

जैसा पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा पूर्व भव का स्मरण करने वाला संज्ञिज्ञान (जाति-स्मरण) होना यह चित्त-समाधि का तीसरा स्थान है। पूर्व भव का स्मरण होने पर संवेग और निर्वेद के साथ चित्त में परम प्रशमभाव जागृत होता है (३)।

जैसा पहले कभी नहीं हुआ, ऐसा देव-दर्शन होना, देवों को दिव्य वैभव-परिवार आदिरूप ऋद्धि का देखना, देवों की दिव्य द्युति (शरीर और आभूषणादि की दीप्ति) का देखना, और दिव्य देवानुभाव (उत्तम विक्रियादि के प्रभाव) को देखना यह चित्त-समाधि का चौथा स्थान है, क्योंकि ऐसा देव-दर्शन होने पर धर्म में दृढ श्रद्धा उत्पन्न होती है (४)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक (मूर्त्त पदार्थों को) प्रत्यक्ष जानने वाला अवधि-ज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का पांचवां स्थान है। अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर मन में एक अपूर्व शान्ति और प्रसन्नता प्रकट होती है (५)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला अवधिदर्शन उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का छठा स्थान है (६)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा [अढ़ाई द्वीप-समुद्रवर्ती संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक] जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का सातवां स्थान है (७)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा सम्पूर्ण लोक को प्रत्यक्ष [त्रिकालवर्ती पर्यायों के साथ] जानने वाला केवलज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का आठवां स्थान है (८)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा [सर्व चराचर] लोक को देखने वाला केवल-दर्शन उत्पन्न होना, यह चित्त-समाधि का नौंवा स्थान है (९)।

सर्व दुःखों के विनाशक केवलिमरण से मरना यह चित्त-समाधि का दशवां स्थान है (१०)।

इसके होने पर यह आत्मा सर्व सांसारिक दुःखों से मुक्त हो सिद्ध बुद्ध होकर अनन्त सुख को प्राप्त हो जाता है।

६३—मंदरे णं पव्वए मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

मन्दर (सुमेरु) पर्वत मूल में दश हजार योजन विष्कम्भ (विस्तार) वाला कहा गया है।

६४—अरिहा णं अरिट्ठनेमी दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अरिष्टनेमि तीर्थंकर दश धनुष ऊँचे थे। कृष्ण वासुदेव दश धनुष ऊंचे थे। राम बलदेव दश धनुष ऊंचे थे।

६५—दस नक्खत्ता नाणवुड्ढिकरा पण्णत्ता, तं जहा—

मिगसिर अद्दा पुस्सो तिण्णि य पुव्वा य मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्तो य तहा दस बुड्ढिकराइं नाणस्स ॥१॥

दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये हैं यथा—मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, तीनों पूर्वाएं (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपदा) मूल, आश्लेषा, हस्त और चित्रा, ये दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करते हैं। अर्थात् इन नक्षत्रों में पढ़ना प्रारम्भ करने पर ज्ञान शीघ्र और विपुल परिमाण में प्राप्त होता है।

६६—अकम्मभूमियाणं मणुआणं दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया पण्णत्ता, तं जहा—

मत्तंगया य भिंगा, तुडिअंगा दीव जोइ चित्तंगा।
चित्तरसा मणिअंगा, गेहागारा अनिगिणा य ॥१॥

अकर्मभूमिज मनुष्यों के उपभोग के लिए दश प्रकार के वृक्ष (कल्पवृक्ष) उपस्थित रहते हैं। जैसे—

मद्यांग, भृंग, तूर्यांग, दीपांग, ज्योतिरंग, चित्रांग, चित्तरस, मण्यंग, गेहाकार और अनग्नांग (१)।

विवेचन—जहाँ पर उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को असि मषि, कृषि आदि किसी भी प्रकार का आजीविका-सम्बन्धी कार्य नहीं करना पड़ता है, किन्तु जिनकी सभी आवश्यकताएं वृक्षों से पूर्ण हो जाती हैं, ऐसी भूमि को अकर्मभूमि या भोगभूमि कहते हैं और जिन वृक्षों से उनकी आवश्यकताएं पूरी होती हैं, उन्हें कल्पवृक्ष कहा जाता है। मद्यांग जाति के वृक्षों से अकर्मभूमि के मनुष्यों को मधुर मदिरा प्राप्त होती है। भृंग जाति के वृक्षों से उन्हें भाजन-पात्र प्राप्त होते हैं। तूर्यांग जाति के वृक्षों से उन्हें वादित्र प्राप्त होते हैं। दीपांग जाति के वृक्षों से दीप-प्रकाश मिलता है। ज्योतिरंग वृक्षों से अग्नि प्राप्त होती है। चित्रांग वृक्षों से नाना प्रकार के पुष्प प्राप्त होते हैं। चित्ररस जाति के वृक्षों से अनेक रसवाला भोजन प्राप्त होता है। मण्यंग जाति के वृक्षों से आभूषण प्राप्त होते हैं। गेहाकार वृक्षों से उनको निवासस्थान प्राप्त होता है और अनग्न वृक्षों से उन्हें वस्त्र प्राप्त होते हैं।

६७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए दस निरयावाससयसहस्साइं पण्णत्ताइं। चतुत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारकों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है। चौथी नरक पृथ्वी में में दस लाख नारकावास हैं। चौथी पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति दस सागरोपम की होतीं हैं। पाँचवी पृथ्वी में किन्हीं-किन्हीं नारकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम कही गई है।

६८—असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। असुरिंद-वज्जाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। वायरवणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दस वास-सहस्साइं ठिई पन्नत्ता। वाणमंतराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवों जघन्यस्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है। असुरेन्द्रों को छोड़कर कितनेक शेष भवनवासी देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई हैं। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति दश पल्योपम कही गई हैं। वादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है। कितनेक वानव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है।

६९—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति दश पल्योपम कही गई है। ब्रह्मलोक कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है।

७०—लंतए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा, तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तककल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम कही गई है। वहां जो देव घोष, सुघोष, महाघोष, नन्दिघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक, रमणीय, मंगलावर्त और ब्रह्मलोकावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है। वे देव दश अर्धमासों (पांच मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं, उन देवों के दश हजार वर्षो के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो दश भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ दशस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकादश स्थानक-समवाय

७१—एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दंसणसावए १, कयव्वयकम्मे २, सामाइयकडे ३, पोसहोववासनिरए ४, दिया बंभयारी रत्ति परिमाणकडे ५, दिआ वि राओ वि बंभयारी असिणाई वियडभोजी मोलिकडे ६, सचित्तपरिण्णाए ७, आरंभपरिण्णाए ८, पेसपरिण्णाए ९, उद्दिट्ठ-भत्तपरिण्णाए १०, समणभूए ११, आवि भवइ समणाउसो!

हे आयुष्मान् श्रमणो! उपासकों श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाएं कही गई हैं। जैसे— दर्शन श्रावक १, कृतव्रतकर्मा २, सामायिककृत ३, पौषधोपवास-निरत ४, दिवा ब्रह्मचारी, रात्रि-परिमाण-कृत ५, दिवा ब्रह्मचारी भी, रात्रि-ब्रह्मचारी भी, अस्नायी, विकट-भोजी और मौलिकृत ६, सचित्तपरिज्ञात ७, आरम्भपरिज्ञात ८, प्रेष्य-परिज्ञात ९, उद्दिष्टपरिज्ञात १०, और श्रमणभूत ११।

विवेचन—जो श्रमणों—साधुजनों—की उपासना करते हैं, उन्हें श्रमणोपासक या उपासक कहते हैं। उनके अभिग्रहरूप विशेष अनुष्ठान या प्रतिज्ञा को प्रतिमा कहा जाता है। उपासक या श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार है—

१. **दर्शनप्रतिमा**—में उपासक को शंकादि दोषों से रहित निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करना आवश्यक है, क्योंकि यह सर्व धर्मो का मूल है, इसके होने पर ही व्रतादि का परिपालन हो सकता है, अन्यथा नहीं।

यहां यह ज्ञातव्य है कि उत्तर-उत्तर प्रतिमाधारियों को पूर्व-पूर्व प्रतिमाओं के आचार का परिपालन करना आवश्यक है।

२. व्रतप्रतिमा—में निरतिचार पांच अणुव्रतों और उनकी रक्षार्थ तीन गुणव्रतों का परिपालन करना चाहिए।

३. सामायिकप्रतिमा—में नियत काल के लिए प्रतिदिन दो बार—प्रातः सायंकाल सर्व सावद्ययोग का परित्याग कर सामायिक करना आवश्यक है।

४. पौषधोपवासप्रतिमा—में अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों के दिन सर्व प्रकार के आहार का त्याग कर उपवास के साथ धर्मध्यान में समय बिताना आवश्यक है।

५. पांचवीं प्रतिमा का धारक उपासक दिन को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है और रात्रि में भी स्त्री अथवा भोग का परिमाण करता है और धोती की कांछ (लांग) नहीं लगाता है।

६. छठी प्रतिमा का धारक दिन और रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, अर्थात् स्त्री-सेवन का त्याग कर देता है, वह स्नान भी नहीं करता, रात्रि-भोजन का त्याग कर देता है और दिन में भी प्रकाश-युक्त स्थान में भोजन करता है।

७. सातवीं प्रतिमा का धारक सचित्त वस्तुओं के खान-पान का त्याग कर देता है।

८. आठवीं प्रतिमा का धारक खेती, व्यापार आदि सर्व प्रकार के आरम्भ का त्याग कर देता है।

९. नवमी प्रतिमा का धारक सेवक-परिजनादि से भी आरम्भ-कार्य कराने का त्याग कर देता है।

१०. दशवीं प्रतिमा का धारक अपने निमित्त से बने हुए भक्त-पान के उपयोग का त्याग करता है। आधाकर्मिक भोजन नहीं खाता और क्षुरा से शिर मुंडाता है।

११. ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक उपासक घर का त्यागकर, श्रमण—साधु जैसा वेष धारण कर साधुओं के समीप रहता हुआ साधुधर्म पालने का अभ्यास करता है, ईर्यासमिति आदि का पालन करता है और गोचरी के लिए जाने पर 'ग्यारहवीं श्रमणभूत प्रतिमा-धारक श्रमणोपासक के लिए भिक्षा दो' ऐसा कह कर भिक्षा की याचना करता है। वह कदाचित् शिर भी मुंडाता है और कदाचित् केशलोंच भी करता है।

संस्कृत टीकाकार ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए आरम्भपरित्याग को नवमी, प्रेष्यारम्भ-परित्याग को दशमी और उद्दिष्ट भक्तत्यागी श्रमणभूत को ग्यारहवीं प्रतिमा का निर्देश किया है। तथा पांचवी प्रतिमा में पर्व के दिन एकरात्रिक प्रतिमा-योग का धारण करना कहा है।

दिगम्बर शास्त्रों में सचित्तत्याग को पांचवीं और स्त्रीभोग त्याग कर ब्रह्मचर्य धारण करने को सातवीं प्रतिमा कहा गया है। तथा नवमी प्रतिमा का नाम परिग्रहत्याग और दशमी प्रतिमा का नाम अनुमतित्याग प्रतिमा कहा गया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रतिमाओं के धारण-पालन की परम्परा विच्छिन्न हो गई है। किन्तु दि० सम्प्रदाय में वह आज भी प्रचलित है। इन श्रावकप्रतिमाओं का काल एक, दो, तीन आदि मासों का है। अर्थात् पहली प्रतिमा का काल एक मास, दूसरी का दो मास, तीसरी का तीन मास, चौथी का चार यावत् ग्यारहवीं का ग्यारह मास का काल है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इन का पालन आजीवन किया जाता है।

७२—लोगंताओ इक्कारसएहिं एक्कारेहिं अवाहाए जोइसंते पण्णत्ते। जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारसएहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं जोइसे चारं चरइ।

लोकान्त से एक सौ ग्यारह योजन के अन्तराल पर ज्योतिश्चक्र अवस्थित कहा गया है। जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजना के अन्तराल पर ज्योतिश्चक्र संचार करता है।

७३—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था। तं जहा—इंदभूई अग्गिभूई वायुभूई विअत्ते सोहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाए मेअज्जे पभासे।

श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मंडित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास।

७४—मूले नक्खत्ते एक्कारस तारे पण्णत्ते। हेट्ठिमगेविज्जयाणं देवाणं एक्कारसमुत्तरं गेविज्ज-विमाणसतं भवइत्ति मक्खायं। मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारस भागपरिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

मूल नक्षत्र ग्यारह तारावाला कहा गया है। अधस्तन ग्रैवेयक-देवों के विमान एक सौ ग्यारह (१११) कहे गये हैं। मन्दर पर्वत धरणी-तल से शिखर तल पर ऊंचाई की अपेक्षा ग्यारहवें भाग से हीन विस्तार वाला कहा गया है।

विवेचन—मन्दर मेरु एक लाख योजन ऊंचा है, उसमें से एक हजार योजन भूमि के भीतर मूल रूप में है और भूमितल से ऊपर निन्यानवे (९९) हजार योजन ऊंचा है तथा वह धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तृत है और शिखर पर एक हजार योजन विस्तृत है। यतः ११ × ९ = ९९ निन्यानवे होते हैं, अतः भूमितल के दश हजार योजन विस्तार वाले भाग से ऊपर ग्यारह योजन जाने पर उसका विस्तार एक योजन कम हो जाता है, इस नियम के अनुसार निन्यानवे योजन ऊपर जाने पर सुमेरु पर्वत का शिखरतल एक हजार योजन विस्तृत सिद्ध हो जाता है। इसी नियम को ध्यान में रखकर मन्दर पर्वत के धरणीतल के विस्तार से शिखरतल का विस्तार ग्यारहवें भाग से हीन कहा गया है।

७५—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है। पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति ग्यारह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही कई है।

७६—लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडिंसगं

विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम है। वहां पर जो देव ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृंग, ब्रह्मसृष्ट ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम कही गई है। वे देव ग्यारह अर्धमासों (साढ़े पांच मासों) के वाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को ग्यारह हजार वर्ष के वाद आहार की इच्छा होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो ग्यारह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ एकादश स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्वादश स्थानक-समवाय

७७—बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मासिआ भिक्खुपडिमा, दो मासिआ, भिक्खुपडिमा, तिमासिआ भिक्खुपडिमा, चउमासिआ भिक्खुपडिमा, पंचमासिआ भिक्खुपडिमा, छमासिआ भिक्खुपडिमा, सत्तमासिआ भिक्खुपडिमा, पढमा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, दोच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, तच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, अहोराइया भिक्खुपडिमा, एगराइया भिक्खुपडिमा।

वारह भिक्षु-प्रतिमाएं कही गई हैं। जैसे—एकमासिकी भिक्षु प्रतिमा, दो मासिकी भिक्षु-प्रतिमा, तीन मासिकी भिक्षुप्रतिमा, चार मासिकी भिक्षुप्रतिमा, पांच मासिकी भिक्षुप्रतिमा, छह मासिकी भिक्षुप्रतिमा, सात मासिकी भिक्षुप्रतिमा, प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमा, द्वितीय सप्तरात्रिदिवा प्रतिमा, तृतीय सप्तरात्रिदिवा प्रतिमा, अहोरात्रिक भिक्षुप्रतिमा और एकरात्रिक भिक्षुप्रतिमा।

विवेचन—भिक्षावृत्ति से गोचरी ग्रहण करने वाले साधुओं को भिक्षु कहा जाता है। सामान्य भिक्षुजनों में जो विशिष्ट संहनन और श्रुतधर साधु होते हैं, वे संयम-विशेष की साधना करने के लिए जिन विशिष्ट अभिग्रहों को स्वीकार करते हैं, उन्हें भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र में उनके वारह होने का उल्लेख किया गया है। संस्कृत टीकाकार ने उनके ऊपर कोई खास प्रकाश नहीं डाला है, अतः दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा के अनुसार उनका संक्षेप से वर्णन किया जाता है—

एकमासिकी भिक्षुप्रतिमा—इस प्रतिमा के धारी भिक्षु को काय से ममत्व छोड़कर एक मास तक आनेवाले सभी देव, मनुष्य और तिर्यंच-कृत उपसर्गों को सहना होता है। वह एक मास तक शुद्ध-निर्दोष भोजन और पान की एक-एक दत्ति ग्रहण करता है। एक वार में अखंड धार से दिये गये भोजन या पानी को एकदत्ति कहते हैं। वह गर्भिणी, अल्पवयस्क वच्चे वाली, वच्चे को दूध पिलाने

वाली, रोगिणी आदि स्त्रियों के हाथ से भक्त-पान को ग्रहण नहीं करता। वह दिन के प्रथम भाग में ही गोचरी को निकलता है और पेडा-अर्धपेडा आदि गोचर-चर्या करके वापिस आ जाता है। वह कहीं भी एक या दो रात से अधिक नहीं रहता। विहार करते हुए जहां भी सूर्य अस्त हो जाता है, वहीं किसी वृक्ष के नीचे, या उद्यान-गृह में या दुर्ग में, या पर्वत पर, सम या विषम भूमि पर, पर्वत की गुफा या उपत्यका आदि जो भी समीप उपलब्ध हो, वहीं ठहर कर रात्रि व्यतीत करता है। मार्ग में चलते हुए पैर में क़ांटा लग जाय या आंख में किरकिरी चली जाय, या शरीर में कोई अस्त्र-बाण आदि प्रवेश कर जाय, तो वह अपने हाथ से नहीं निकालता है। वह रात्रि में गहरी नींद नहीं सोता है, किन्तु बैठे-बैठे ही निद्रा-प्रचला द्वारा अल्पकालिक झपाई लेते हुए और आत्म-चिन्तन करते हुए रात्रि व्यतीत करता है और प्रातःकाल होते ही आगे चल देता है। वह ठंडे या गर्म जल से अपने हाथ पैर मुख, दांत आंख आदि शरीर के अंगों को नहीं धोता है, विहार करते हुए यदि सामने से कोई शेर, चीता, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी, या हाथी, घोड़ा भैंसा आदि कोई उन्मत्त प्राणी आ जाता है तो वह एक पैर भी पीछे नहीं हटता, किन्तु वहीं खड़ा रह जाता है। जब वे प्राणी निकल जाते हैं, तब आगे विहार करता है। वह जहां बैठा हो वहां यदि तेज धूप आ जाय तो उठकर शीतल छाया वाले स्थान में नहीं जाता। इसी प्रकार तेज ठंड वाले स्थान से उठकर गर्म स्थान पर नहीं जाता है। इस प्रकार वह आगमोक्त मर्यादा से अपनी प्रतिमा का पालन करता है।

दूसरी से लेकर सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा तक के धारी साधुओं को भी पहली मासिकी प्रतिमाधारी के सभी कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। अन्तर यह है कि दूसरी भिक्षुप्रतिमा वाला दो मास तक प्रतिदिन भक्त-पान की दो-दो दत्तियां ग्रहण करता है। इसी प्रकार एक-एक दत्ति बढ़ाते हुए सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा वाला सात मास तक भक्त-पान की सात-सात दत्तियों को ग्रहण करता है।

प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमावाला साधु चतुर्थ भक्त का नियम लेकर ग्राम के बाहर खड़े या बैठे हुए ही समय व्यतीत करता है।

दूसरी सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमावाला षष्ठभक्त का नियम लेकर उत्कुट (उकडू) आदि आसन से अवस्थित रहता है। तीसरी सप्तरात्रिक प्रतिमावाला अष्टम-भक्त का नियम लेकर सातदिन-रात तक गोदोहन या वीरासनादि से अवस्थित रहता है। अहोरात्रिक प्रतिमा वाला अपानक षष्ठ भक्त का नियम लेकर २४ घंटे कायोत्सर्ग से ग्रामादि के बाहर अवस्थित रहता है। एकरात्रिक भिक्षु प्रतिमावाला अपानक अष्टम भक्त का नियम लेकर अनिमिष नेत्रों से प्रतिमायोग धारण कर कायोत्सर्ग से अवस्थित रहता है।

७८—दुवालसविहे सम्भोगे पण्णत्ते, तं जहा—

उवही सुअ भत्त पाणे अंजली पग्गहे त्ति य।
दायणे य निकाए अ अब्भुट्ठाणे ति आवरे ॥१॥

किइकम्मस्स य करणे वेयावच्चकरणे इ अ।
समोसरणं संनिसिज्जा य कहाए अ पबंधणे ॥२॥

सम्भोग बारह प्रकार का कहा गया है। यथा—

१. उपधि-विषयक सम्भोग २. श्रुत-विषयक सम्भोग, ३. भक्त-पान-विषयक सम्भोग, ४. अंजली-प्रग्रह सम्भोग, ५. दान-विषयक सम्भोग, ६. निकाचन-विषयक सम्भोग, ७. अभ्युत्थान-विषयक सम्भोग, ८. कृतिकर्म-करण सम्भोग, ९. वैयावृत्त्य-करण सम्भोग, १०. समवसरण-सम्भोग, ११. संनिपद्या सम्भोग और ११. कथा-प्रबन्धन सम्भोग ।।१-२।।

विवेचन—समान समाचारी वाले साधुओं के साथ खान-पान करने, वस्त्र-पात्रादि का आदान-प्रदान करने और दीक्षा-पर्याय के अनुसार विनय, वैयावृत्त्य आदि करने को सम्भोग कहते हैं। वह उपधि आदि के भेद से बारह प्रकार का कहा गया है। साधु को अनुद्दिष्ट एवं निर्दोष वस्त्र-पात्र तथा भक्त-पानादि के ग्रहण करने का विधान है। यदि कोई साधु अशुद्ध या सदोष उपधि (वस्त्र-पात्रादि) को एक, दो या तीन बार तक ग्रहण करता है, तब तक तो वह प्रायश्चित्त लेकर सम्भोगिक बना रहता है। चौथी बार अशुद्ध वस्त्र-पात्रादि के ग्रहण करने पर वह प्रायश्चित्त लेने पर भी विसम्भोग के योग्य हो जाता है। अर्थात् अन्य साधु उसके साथ खान-पान बन्द कर देते हैं और उसे अपनी मंडली से पृथक् कर देते हैं। ऐसे साधु को विसम्भोगिक कहा जाता है।

(१) जब तक कोई साधु उपधि (वस्त्र-पात्रादि) विषयक मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह साम्भोगिक है और उपर्युक्त मर्यादा का उल्लंघन करने पर वह पूर्वोक्त रीति से विसम्भोगिक हो जाता है। यह उपधि-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(२) जब तक कोई साधु अन्य सम्भोगिक साधु को श्रुत-विषयक वाचनादि निर्दोष विधि से देता है, तब तक वह सम्भोगिक है और यदि वह उक्त मर्यादा का उल्लंघन कर पार्श्वस्थ आदि साधुओं को तीन बार से अधिक श्रुत की वाचनादि देता है, तो वह पूर्ववत् विसम्भोगिक हो जाता है। यह श्रुत-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(३) जब तक कोई साधु भक्त-पान-विषयक निर्दोष मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह साम्भोगिक और पूर्ववत् मर्यादा का उल्लंघन करने पर विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह भक्त-पान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(४) साधुओं को दीक्षा-पर्याय के अनुसार परस्पर में वन्दना करने और हाथों की अंजलि जोड़कर नमस्कारादि करने का विधान है। जब कोई साधु इसका उल्लंघन नहीं करता है, या पार्श्वस्थ आदि साधुओं की वन्दनादि नहीं करता है, तब तक वह साम्भोगिक है और उक्त मर्यादा का उल्लंघन करने पर वह विसम्भोगिक कर दिया जाता है। यह अंजलि-प्रग्रह-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(५) साधु अपने पास के वस्त्र,पात्रादि को अन्य साम्भोगिक साधु के लिए दे सकता है, या देता है, तब तक वह साम्भोगिक है। किन्तु जब वह अपने वस्त्र-पात्रादि उपकरण उक्त मर्यादा का उल्लंघन कर अन्य विसम्भोगिक या पार्श्वस्थ आदि साधु को देता है तो वह पूर्वोक्त रीति से विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह दान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(६) निकाचन का अर्थ निमंत्रण देना है। जब कोई साधु यथाविधि अन्य साम्भोगिक साधु को शुद्ध वस्त्र, पात्र या भक्त-पानादि देने के लिए निमंत्रण करता है, तब तक वह साम्भोगिक है।

जब वह मर्यादा का उल्लंघन कर अन्य विसम्भोगिक या पार्श्वस्थ आदि साधुको वस्त्रादि देने के लिए निमंत्रण देता है तो वह पूर्ववत् विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह निकाचन-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(७) साधु को गुरुजन या अधिक दीक्षापर्यायवाले साधु के आने पर अपने आसन से उठकर उनका यथोचित अभिवादन करना चाहिए। जब कोई साधु इस मर्यादा का उल्लंघन करता है, अथवा पार्श्वस्थ आदि साधु के लिए अभ्युत्थानादि करता है, तब वह पहले कहे अनुसार विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह अभ्युत्थान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(८) कृतिकर्म वन्दनादि यथाविधि करने पर साधु साम्भोगिक रहता है और उसकी मर्यादा का उल्लंघन करने पर वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(९) वैयावृत्त्यकरण—जब तक साधु वृद्ध, बाल, रोगी आदि साधुओं की यथाविधि वैयावृत्त्य करता है तब तक वह साम्भोगिक है। उसकी मर्यादा का उल्लंघन करने पर वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(१०) प्रवचन-भवन आदि जिस स्थान पर अनेक साधु एक साथ मिलते और उठते-बैठते हैं, उस स्थान को समवसरण कहते हैं। वहां पर मर्यादापूर्वक साम्भोगिक साधुओं के साथ उठना-बैठना समवसरण- विषयक सम्भोग है। तथा वहाँ असम्भोगिक या पार्श्वस्थादि साधुओं के साथ बैठ कर मर्यादा का उल्लंघन करता है तो वह पूर्ववत् विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(११) अपने आसन से उठकर गुरुजनों से प्रश्न पूछना, उनके द्वारा पूछे जाने पर आसन से उठकर उत्तर देना संनिपद्या-विषयक सम्भोग है। यदि कोई साधु गुरुजनों से कोई प्रश्न अपने आसन पर बैठे-बैठे ही पूछता है, या उनके द्वारा कुछ पूछे जाने पर आसन से न उठकर बैठे-बैठे ही उत्तर देता है, तो यह मर्यादा का उल्लंघन करने से पूर्ववत् विसंभोग के योग्य हो जाता है।

(१२) गुरु के साथ तत्त्व-चर्चा या धर्मकथा के समय वाद-कथा सम्बन्धी नियमों का पालन करना कथा-प्रबन्धन-सम्भोग है। जब कोई साधु कथा-प्रबन्ध के नियमों का उल्लंघन करता है, तब वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह कथा-प्रबन्ध-विषयक संभोग-विसम्भोग है।

कहने का सारांश यह है कि साधु जब तक अपने संघ की मर्यादा का पालन करता है, तब तक साम्भोगिक रहता है और उसके उल्लंघन करने पर विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

७९—दुवालसावत्ते कितिकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—

दुओणयं जहाजायं कितिकम्मं बारसावयं।
चउसिरं तिगुत्तं च दुपवेसं एगनिक्खमणं॥१॥

कृतिकर्म बारह आवर्त वाला कहा गया है। जैसे—

कृतिकर्म में दो अवनत (नमस्कार), यथाजात रूप का धारण, बारह आवर्त, चार शिरोनति, तीन गुप्ति, दो प्रवेश और एक निष्क्रमण होता है॥१॥

विवेचन—कृतिकर्म की निरुक्ति है—'कृत्यते छिद्यते कर्म येन तत् कृतिकर्म' अर्थात् परिणामों की जिस विशुद्धिरूप मानसिक क्रिया से शब्दोच्चारण रूप वाचनिक क्रिया से और नमस्कार रूप

कायिक क्रिया से ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्त्तन या छेदन किया जाय, उसे कृतिकर्म कहते हैं। यत: देव और गुरु की वन्दना के द्वारा भी पापकर्मों की निर्जरा होती है, अतः वंदना को कृतिकर्म कहा गया है।

प्रकृत में यह गाथा इस बात की साक्षी में दी गई है कि कृतिकर्म में बारह आवर्त किये जाते हैं। आवर्त्त का क्या अर्थ है, इसके विषय में संस्कृतटीकाकार ने केवल इतना ही लिखा है—द्वादशावर्ता: सूत्राभिधानगर्भा: कायव्यापारविशेषा: यतिजनप्रसिद्धा:' अर्थात्—साधुजन प्रसिद्ध, सूत्रकथित आशयवाले शरीर के व्यापार-विशेष को आवर्त कहते हैं। पर इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि शरीर का वह व्यापार-विशेष क्या है, जिसे कि आवर्त कहते हैं।

दि० परम्परा में दोनों हाथों को मुकुलित कर दाहिनी ओर से बायीं ओर घुमाने को आवर्त कहा गया है। यह आवर्त मन वचन काय की क्रिया के परावर्तन के प्रतीक माने जाते हैं, जो सामायिक दंडक और चतुर्विशतिस्तव के आदि और अन्त में किये जाते हैं*। जो सब मिलकर बारह हो जाते हैं।

आवर्त और कृतिकर्म का विशेष रहस्य सम्प्रदाय-प्रचलित पद्धति से जानना चाहिए। उक्त गाथा स्वल्प पाठ-भेद के साथ दि० मूलाचार में भी पाई जाती है।

८०—विजया णं रायहाणी दुवालस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। रामे णं बलदेवे दुवालस वाससयाइं सव्वाउयं पालित्ता देवत्तं गए। मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिया मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। जंबूदीवस्स णं दीवस्स वेइया मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप के पूर्वदिशावर्ती विजयद्वार के स्वामी विजय नामक देव की विजया राजधानी (यहाँ से असंख्यात योजन दूरी पर) बारह लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाली कही गई है। राम नाम के बलदेव बारह सौ(१२००)वर्ष पूर्ण आयु का पालन कर देवत्व को प्राप्त हुए। मन्दर पर्वत की चूलिका मूल में बारह योजन विस्तार वाली है। जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की वेदिका मूल में बारह योजन विस्तार वाली है।

८१—सव्वजहण्णिया राई दुवालसमुहुत्तिआ पण्णत्ता। एवं दिवसोवि नायव्वो।

सर्व जघन्य रात्रि (सब से छोटी रात) बारह मूहूर्त की होती है। इसी प्रकार सबसे छोटा दिन भी बारह मुहूर्त का जानना चाहिए।

८२—सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थुभिअग्गाओ दुवालस जोयणाइं उद्धं उप्पइया ईसिपब्भार नाम पुढवी पण्णत्ता। ईसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधेज्जा पण्णत्ता। तं

---

* कथिता द्वादशावर्त्ता वपुर्वचनचेतसाम्।
स्तव-सामायिकाद्यन्तपरावर्तन लक्षणा: ॥ १३ ॥
त्रि:सम्पुटीकृतौ हस्तौ भ्रामयित्वा पठेत्पुन:।
साम्यं पठित्वा भ्रामयेत्तौ स्तवेऽप्येतदाचरेत् ॥ १४ ॥ (क्रियाकलाप)

जहा—ईसि त्ति वा, ईसिपब्भारा ति वा, तणू इ वा, तणुयतरि त्ति वा, सिद्धि त्ति वा, सिद्धालए त्ति वा, मुत्ती त्ति वा, मुत्तालए त्ति वा, बंभे त्ति वा बंभवडिसए ति वा, लोकपडिपूरणे ति वा लोगग्ग-चूलिआई वा।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान की उपरिम स्तूपिका (चूलिका) से वारह योजन ऊपर ईषत् प्राग्भार नामक पृथिवी कही गई है। ईषत् प्राग्भार पृथिवी के बारह नाम कहे गये हैं। जैसे—ईषत् पृथिवी, ईषत् प्राग्भार पृथिवी, तनु पृथिवी, तनुतरी पृथिवी, सिद्धि पृथिवी, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय, ब्रह्म, ब्रह्मावतंसक, लोकप्रतिपूरणा और लोकाग्रचूलिका।

८३—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है। पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति बारह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है।

८४—लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीयं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडं सुपुंडं महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं बारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति बारह सागरोपम कही गई है। वहां जो देव माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कम्बु, कम्बुग्रीव, पुंख, सुपुंख, महापुंख, पुंड, सुपुंड, महापुंड नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम कही गई है। वे देव बारह अर्धमासों (छह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के बारह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ द्वादश स्थानक समवाय समाप्त १२ ॥

त्रयोदशस्थानक-समवाय

८५—तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थादंडे अणत्थादंडे हिंसादण्डे अकम्हादंडे दिट्ठिविपरिआसिआदंडे मुसावायवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अज्झत्थिए मानवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए इरियावहिए नामं तेरसमे।

तेरह क्रियास्थान कहे गये हैं। जैसे—अर्थदंड, अनर्थदंड, हिंसादंड, अकस्माद् दंड, दृष्टि-विपर्यास दंड, मृषावाद प्रत्यय दंड, अदत्तादान प्रत्यय दंड, आध्यात्मिक दंड, मानप्रत्यय दंड, मित्रद्वेष-प्रत्यय दंड, मायाप्रत्यय दंड, लोभप्रत्यय दंड और ईर्यापथिक दंड।

विवेचन—कर्म-बन्ध की कारणभूत चेष्टा को क्रिया कहते हैं। उसके तेरह स्थान या भेद कहे गये हैं। अपने शरीर, कुटुम्ब आदि के प्रयोजन से जीव-हिंसा होती है, वह अर्थदंड कहलाता है। विना प्रयोजन जीव-हिंसा करना अनर्थदंड कहलाता है। संकल्पपूर्वक किसी प्राणी को मारना हिंसा-दंड है। उपयोग के विना अकस्मात् जीव-घात हो जाना अकस्माद् दंड है। दृष्टि या वुद्धि के विभ्रम से जीव-घात हो जाना दृष्टिविपर्यास दंड है, जैसे मित्र को शत्रु समझ कर मार देना। असत्य वोलने के निमित्त से होने वाला जीव-घात मृषाप्रत्यय दंड है। अदत्त वस्तु के आदान से—चोरी के निमित्त से होने वाले जीव-घात को अदत्तादानप्रत्यय दंड कहते हैं। अध्यात्म का अर्थ यहाँ मन है। वाहरी निमित्त के विना मन में हिंसा का भाव उत्पन्न होना या शोकादिजनित पीड़ा होना आध्यात्मिक दंड है। अभिमान के निमित्त से होने वाला जीव-घात मानप्रत्यय दंड है। मित्रजन—माता पिता आदि का—अल्प अपराध होने पर भी अधिक दंड देना मित्रद्वेषप्रत्यय दंड है। मायाचार करने से उत्पन्न होने वाला मायाप्रत्यय दंड कहलाता है। लोभ के निमित्त से होने वाला लोभप्रत्यय दण्ड कहलाता है। कषाय के अभाव में केवल योग के निमित्त से होने वाला कर्मवन्ध ईर्यापथिक दंड कहलाता है।

८६—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा पण्णत्ता। सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। एवं ईसाणवडिंसगे वि। जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिआणं अद्धतेरस जाइकुल-कोडीजोणीपमुहसयसहस्साइं पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पों में तेरह विमान-प्रस्तट (प्रस्तार, पटल या पाथड़े) कहे गये हैं। सौधर्मा-वतंसक विमान अर्ध-त्रयोदश अर्थात् साढ़े बारह लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला है। इसी प्रकार ईशानावतंसक विमान भी जानना चाहिए। जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की जाति कुल-कोटियां साढे वारह लाख कही गई हैं।

८७—पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता।

प्राणायु नामक बारहवें पूर्व के तेरह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये हैं।

८८—गब्भवक्कंतिअपंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं तेरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चामोसमणपओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइ-

पओगे सच्चामोसवइपओगे असच्चामोसवइपओगे ओरालियसरीरकायपओगे ओरालियमीससरीरकाय-पओगे वेउव्वियसरीरकायपओगे वेउव्वियमीससरीरकायपओगे कम्मइयसरीरकायपओगे।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों में तेरह प्रकार के योग या प्रयोग होते हैं। जैसे—सत्य मनःप्रयोग, मृषामनःप्रयोग, सत्यमृषामनःप्रयोग, असत्यामृषामनःप्रयोग, सत्यवचनप्रयोग मृषावचन-प्रयोग, सत्यमृषावचनप्रयोग, असत्यामृषावचनप्रयोग, औदारिकशरीरकायप्रयोग, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग, वैक्रियशरीरकायप्रयोग, वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग, और कार्मणशरीरकायप्रयोग।

८९—सूरमंडलं जोयणेणं तेरसेहिं एगसट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणं पण्णत्ते।

सूर्यमंडल एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग (१३/६१) से न्यून अर्थात् ४८/६१ योजन के विस्तार वाला कहा गया है।

९०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं तेरसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है। पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है।

९१—लंतए कप्पे अत्थेगइआणं देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं [वज्जप्पभं] वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जरूवं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडिंसगं वइरं वइरावत्तं वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइररूवं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडिंसगं लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगरूवं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोगकूडं लोगुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेरस सागरो-वमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं तेरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे तेरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। वहां जो देव वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त [वज्रप्रभ] वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य वज्ररूप, वज्रश्रृंग वज्रसृष्ट, वज्र-कूट, वज्रोत्तरावतंसक, वइर, वइरावर्त, वइरप्रभ, वइरकान्त, वइरवर्ण, वइरलेश्य, वइररूप, वइर-श्रृंग, वइरसृष्ट, वइरकूट, वइरोत्तरावतंसक; लोक, लोकावर्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकरूप, लोकश्रृंग, लोकसृष्ट, लोककूट और लोकोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। वे तेरह अर्धमासों (साढ़े छह मासों) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के तेरह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेरह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ त्रयोदशस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुर्दशस्थानक समवाय

९२—चउद्दस भूअग्गामा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा अपज्जत्तया, सुहुमा पज्जत्तया, बादरा अपज्जत्तया, बादरा पज्जत्तया, बेइंदिया अपज्जत्तया, बेइंदिया पज्जत्तया, तेइंदिया अपज्जत्तया, तेइंदिया पज्जत्तया, चउरिंदिया अपज्जत्तया, चउरिंदिया पज्जत्तया, पंचिंदिया असन्नि-अपज्जत्तया, पंचिंदिया असन्नि-पज्जत्तया, पंचिंदिया सन्नि-अपज्जत्तया, पंचिंदिया सन्निपज्जत्तया।

चौदह भूतग्राम (जीवसमास) कहे गये हैं। जैसे—सूक्ष्म अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, सूक्ष्म पर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तक और पंचेन्द्रियसंज्ञी पर्याप्तक।

विवेचन—पर्याप्ति शब्द का अर्थ पूर्णता है। आहार, शरीर, इन्द्रियादि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें तद्रूप परिणत करने की योग्यता की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है। वे छह हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन:पर्याप्ति। जिन जीवों में जितनी पर्याप्तियां संभव हैं, उनकी पूर्णता जिन्होंने प्राप्त करली है वे पर्याप्त कहलाते हैं। जिन्हें वह पूर्णता प्राप्त नहीं हुई हो उन्हें अपर्याप्त कहते हैं। इनकी पूर्ति का काल अन्तर्मुहूर्त है।

९३—चउद्दस पुव्वा पण्णत्ता, तं जहा—

उप्पायपुव्वमग्गेणियं च तइयं च वीरियं पुव्वं।
अत्थीनत्थिपवायं तत्तो नाणप्पवायं च ॥१॥
सच्चप्पवाय पुव्वं तत्तो आयप्पवायपुव्वं च।
कम्मप्पवायपुव्वं पच्चक्खाणं भवे नवमं ॥२॥
विज्जाअनुप्पवायं अबंझपाणाउ बारसं पुव्वं।
तत्तो किरियविसालं पुव्वं तह बिंदुसारं च ॥३॥

चौदह पूर्व कहे गये हैं जैसे—

उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद-पूर्व, अस्तिनास्ति प्रवाद-पूर्व, ज्ञानप्रवाद-पूर्व, सत्य-प्रवाद-पूर्व, आत्मप्रवाद-पूर्व, कर्मप्रवाद-पूर्व, प्रत्याख्यानप्रवाद-पूर्व, विद्यानुवाद-पूर्व, अवन्ध्य-पूर्व, प्राणा-वाय-पूर्व, क्रियाविशाल-पूर्व तथा लोकविन्दुसार-पूर्व।

विवेचन—बारहवें अंग दृष्टिवाद का एक विभाग पूर्व कहलाता है। पूर्व चौदह हैं। उनमें से उत्पाद-पूर्व में उत्पाद का आश्रय लेकर द्रव्यों के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है। अग्रायणीय-पूर्व में द्रव्यों के अग्र-परिमाण का आश्रय लेकर उनका निरूपण किया गया है। वीर्यप्रवाद-पूर्व में जीवादि द्रव्यों के वीर्य-शक्ति का निरूपण किया गया है। अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व में द्रव्यों के स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तित्व का और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा नास्तित्व धर्म का प्ररूपण किया गया है। ज्ञानप्रवादपूर्व में मतिज्ञानादि ज्ञानों के भेद-प्रभेदों का सस्वरूप निरूपण किया गया है। सत्यप्रवाद पूर्व में सत्य-संयम, सत्य वचन तथा उनके भेद-प्रभेदों का और उनके प्रति-

पक्षी असंयम, असत्य वचनादि का विस्तृत निरूपण किया गया है। आत्मप्रवाद पूर्व में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर उसके भेद-प्रभेदों का अनेक नयों से विवेचन किया गया है। कर्मप्रवाद-पूर्व में ज्ञानावरणादि कर्मों का अस्तित्व सिद्धकर उनके भेद-प्रभेदों एवं उदय-उदीरणादि विविध दशाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रत्याख्यानपूर्व में अनेक प्रकार के यम-नियमों का, उनके अतिचारों और प्रायश्चित्तों का विस्तृत विवेचन किया गया है। विद्यानुवादपूर्व में अनेक प्रकार के मंत्र-तंत्रों का, रोहिणी आदि महाविद्याओं का, तथा अंगुष्ठप्रश्नादि लघुविद्याओं की विधिपूर्वक साधना का वर्णन किया गया है। अवन्ध्यपूर्व में कभी व्यर्थ नहीं जाने वाले अतिशयों का, चमत्कारों का तथा जीवों का कल्याण करने वाली तीर्थंकर प्रकृति के बांधने वाली भावनाओं का वर्णन किया गया है। दि० परम्परा में इस पूर्व का नाम कल्याणवाद दिया गया है। प्राणायु या प्राणावाय-पूर्व में जीवों के प्राणों के रक्षक आयुर्वेद के अष्टांगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। क्रियाविशाल-पूर्व में अनेक प्रकार की कलाओं का तथा मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रिया का सभेद विस्तृत निरूपण किया गया है। लोकबिन्दुसार में लोक का स्वरूप, तथा मोक्ष के जाने के कारणभूत रत्नत्रयधर्म का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

९४—अग्गेणिअस्स णं पुव्वस्स चउद्दस वत्थू पण्णत्ता।
समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

अग्रायणीय पूर्व के वस्तु नामक चौदह अर्थाधिकार कहे गये हैं।
श्रमण भगवान् महावीर की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा चौदह हजार साधुओं की थी।

९५—कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छादिट्ठी, सासायणसम्मदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी, अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए, पमत्तसंजए, अप्पमत्तसंजए, निअट्टिबायरे, अनिअट्टिबायरे, सुहुमसंपराए—उवसामए वा खवए वा, उवसंतमोहे, खीणमोहे, सजोगी केवली, अयोगी केवली।

कर्मों की विशुद्धि (निराकरण) की गवेषणा करने वाले उपायों की अपेक्षा चौदह जीवस्थान कहे गये हैं। जैसे—मिथ्यादृष्टि स्थान, सासादन सम्यग्दृष्टि स्थान, सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि स्थान, विरताविरत स्थान, प्रमत्तसंयत स्थान, अप्रमत्तसंयत स्थान, निवृत्तिबादर स्थान, अनिवृत्तिबादर स्थान, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक स्थान, उपशान्तमोह स्थान, क्षीणमोह स्थान, सयोगिकेवली स्थान, और अयोगिकेवली स्थान।

विवेचन—सूत्र-प्रतिपादित उक्त चौदह जीवस्थान गुणस्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान**—अनादिकाल से इस जीव की दृष्टि, रुचि, प्रतीति या श्रद्धा मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उदय से मिथ्या या विपरीत चली आ रही है। यद्यपि इस गुणस्थान वाले जीवों के कषायों की तीव्रता और मन्दता की अपेक्षा संक्लेश की हीनाधिकता होती रहती है, तथापि उनकी दृष्टि मिथ्या या विपरीत ही बनी रहती है। उन्हें आत्मस्वरूप का कभी यथार्थ भान नहीं होता। और जब तक जीव को अपना यथार्थ भान (सम्यग्दर्शन) नहीं होगा, तब तक वह मिथ्यादृष्टि ही बना

रहेगा। फिर भी इसे गुणस्थान संज्ञा दी गई है, इसका कारण यह है कि इस स्थान वाले जीवों के यथार्थ गुणों का विनाश नहीं हुआ है, किन्तु कर्मों के आवरण से उनका वर्तमान में प्रकाश नहीं हो रहा है।

२. सासादन या सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—जब कोई भव्य जीव मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का और अनन्तानुबंधी कषायों का उपशम करके सम्यग्दृष्टि बनता है, तब वह उस अवस्था में अन्तर्मुहूर्त काल ही रहता है। उस काल के भीतर कुछ समय शेप रहते हुए यदि अनन्तानुबन्धी कपाय का उदय आ जावे, तो वह नियम से गिरता है और एक समय से लेकर छह आवली काल तक वमन किये गये सम्यक्त्व का कुछ आस्वाद लेता रहता है। इसी मध्यवर्ती पतनोन्मुख दशा का नाम सास्वादन गुणस्थान है। तथा यह जीव सम्यक्त्व की आसादना (विराधना) करके गिरा है, इसलिए इसे सासादन सम्यग्दृष्टि भी कहते हैं।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान—प्रथम वार उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करते हुए जीव मिथ्यात्व कर्म के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप तीन विभाग करता है। इनमें से उपशम सम्यक्त्व का अन्तर्मुहूर्त काल पूर्ण होते ही यदि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो जाता है, तो वह अर्धसम्यक्त्वी और अर्धमिथ्यात्वी जैसी दृष्टिवाला हो जाता है। इसे ही तीसरा सम्यग्मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त ही है। अतः उसके पश्चात् यदि सम्यक्त्वप्रकृति का उदय हो जाय तो वह ऊपर चढ़कर सम्यक्त्वी बन जाता है। और यदि मिथ्यात्व कर्म का उदय हो जाय, तो वह नीचे गिरकर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आ जाता है।

४. अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान—दर्शन मोहनीयकर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम करके जीव सम्यग्दृष्टि बनता है। उसे आत्मस्वरूप का यथार्थ भान हो जाता है, फिर भी चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से वह उस सत्य मार्ग पर चलने में असमर्थ रहता है और संयमादि के पालन करने की भावना होने पर भी व्रत, संयमादि का लेश मात्र भी पालन नहीं कर पाता है। विरति या त्याग के अभाव से इसे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहा जाता है। इस गुणस्थान को चारों गतियों के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव प्राप्त कर सकते हैं।

५. विरताविरत गुणस्थान—जब उक्त सम्यग्दृष्टि जीव के अप्रत्याख्यान कषाय का उपशम या क्षयोपशम होता है, तब वह त्रसहिंसादि स्थूल पापों से विरत होता है, किन्तु स्थावरहिंसादि सूक्ष्म पापों से अविरत ही रहता है। ऐसे देशविरत अणुव्रती जीव को विरताविरत गुणस्थान वाला कहा जाता है। इस गुणस्थान को केवल मनुष्य और कर्मभूमिज कोई सम्यक्त्वी तिर्यंच प्राप्त कर सकते हैं।

६. प्रमत्तसंयत गुणस्थान—जब उक्त सम्यग्दृष्टि जीव के प्रत्याख्यानावरण कपाय का उपशम या क्षयोपशम होता है, वह स्थूल और सूक्ष्म सभी हिंसादि पापों का त्याग कर महाव्रतों को अर्थात् सकलसंयम को धारण करता है। फिर भी उसके संज्वलन और नोकषायों के तीव्र उदय होने से कुछ प्रमाद बना ही रहता है। ऐसे प्रमाद-युक्त संयमी को प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाला कहा जाता है।

७. अप्रमत्तसंयत गुणस्थान—जब उक्त जीव के संज्वलन और नोकषायों का मन्द उदय होता है, तब वह इन्द्रिय-विषय, विकथा, निद्रादिरूप सर्व प्रमादों से रहित होकर प्रमादहीन संयम का पालन करता है। ऐसे साधु को अप्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला कहा जाता है।

यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि पांचवें से ऊपर के सभी गुणस्थान केवल मनुष्यों के ही होते हैं और सातवें से ऊपर के सभी गुणस्थान उत्तम संहनन के धारक तद्भव मोक्षगामी को होते हैं। हां, ग्यारहवें गुणस्थान तक निकट भव्य पुरुष भी चढ़ सकता है। किन्तु उसका नियम से पतन होता है और अपार्ध पुद्गल परावर्तन काल तक वह संसार में परिभ्रमण कर सकता है।

सातवें गुणस्थान से ऊपर दो श्रेणी होती हैं—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। जो जीव चारित्रमोहकर्म का उपशम करता है, वह उपशम श्रेणी चढ़ता है। जो जीव चारित्रमोहकर्म का क्षय करने के लिए उद्यत होता है, वह क्षपक श्रेणी चढ़ता है। दोनों श्रेणी वाले गुणस्थानों का काल अन्तर्मुहूर्त है।

८. निवृत्तिवादर उपशामक क्षपक गुणस्थान—अनन्तानुवन्धी कपायचतुष्क और दर्शनमोह-त्रिक इन सात प्रकृतियों का उपशमन करने वाला जीव इस आठवें गुणस्थान में आकर अपनी अपूर्व विशुद्धि के द्वारा चारित्रमोह की शेष रही २१ प्रकृतियों के उपशमन की, तथा उक्त सात प्रकृतियों का क्षय करने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियों के क्षपण की आवश्यक तैयारी करता है। यतः इस गुणस्थानवाले सम समयवर्ती जीवों के परिणामों में भिन्नता रहती है और वादर संज्वलन कपायों का उदय रहता है., अतः इसे निवृत्तिवादर गुणस्थान कहते हैं।

९. अनिवृत्तिवादर उपशामक-क्षपक गुणस्थान—इस गुणस्थान में आने वाले एक समयवर्ती सभी जीवों के परिणाम एक से होते हैं, उनमें निवृत्ति या भिन्नता नहीं होती, अत: इसे अनिवृत्ति-वादर गुणस्थान कहा गया है। इस गुणस्थान में उपशम श्रेणीवाला जीव सूक्ष्म लोभ को छोड़कर शेष सभी चारित्रमोह प्रकृतियों का उपशम और क्षपक श्रेणीवाला जीव उन सभी का क्षय कर डालता है और दशवें गुणस्थान में पहुंचता है।

१०. सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक-क्षपक गुणस्थान—इस गुणस्थान में आने वाले दोनों श्रेणियों के जीव सूक्ष्मलोभकपाय का वेदन करते हैं, अतः इसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते हैं। सम्पराय नाम कपाय का है। उपशम श्रेणीवाला जीव उस सूक्ष्मलोभ का उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंचता है और क्षपक श्रेणी वाला जीव उसका क्षय करके वारहवें गुणस्थान में पहुंचता है। दोनों श्रेणियों के इसी भेद को वतलाने के लिए इस गुणस्थान का नाम 'सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक-क्षपक' दिया गया है।

११. उपशान्तमोह गुणस्थान—उपशम श्रेणीवाला जीव दशवें गुणस्थान के अन्तिम समय में सूक्ष्म लोभ का उपशमन कर इस गुणस्थान में आता है और मोह कर्म की सभी प्रकृतियों का पूर्ण उपशम कर देने से यह उपशान्तमोह गुणस्थान वाला कहा जाता है।

इस गुणस्थान का काल लघु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इसके समाप्त होते ही वह नीचे गिरता हुआ सातवें गुणस्थान को प्राप्त होता है। यदि उसका संसार-परिभ्रमण शेष है, तो वह मिथ्यात्व गुणस्थान तक भी प्राप्त हो जाता है।

१२. क्षीणमोह गुणस्थान—क्षपक श्रेणी पर चढ़ा हुआ दशवें गुणस्थानवर्ती जीव उसके अन्तिम समय में सूक्ष्म लोभ का भी क्षय करके क्षीणमोही होकर वारहवें गुणस्थान में पहुंचता है। यतः उसका मोहनीयकर्म सर्वथा क्षीण या नष्ट हो चुका है, अतः यह गुणस्थान 'क्षीणमोह' इस सार्थक

नाम से कहा जाता है। इस गुणस्थान का काल भी लघु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसके भीतर यह ज्ञानावरण कर्म की पांच, दर्शनावरण कर्म की नौ और अन्तराय कर्म की पांच इन उन्नीस प्रकृतियों के सत्त्व की असंख्यात गुणी प्रतिसमय निर्जरा करता हुआ अन्तिम समय में सब का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त होता है।

१३. **सयोगिकेवली गुणस्थान**—इस गुणस्थान में केवली भगवान के योग विद्यमान रहते हैं, अतः इसका नाम सयोगिकेवली गुणस्थान है। ये सयोगिजिन धर्मदेशना करते हुए विहार करते रहते हैं। जीवन के अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रहने पर ये योगों का निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश करते हैं।

१४. **अयोगिकेवली गुणस्थान**—इस गुणस्थान का काल 'अ, इ, उ, ऋ, लृ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारणकाल-प्रमाण है। इतने ही समय के भीतर वे वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की सभी सत्ता में स्थित प्रकृतियों का क्षय करके शुद्ध निरंजन सिद्ध होते हुए सिद्धालय में जा विराजते हैं और अनन्त स्वात्मोत्थ सुख के भोक्ता बन जाते हैं।

९६—भरहेरवयाओ णं जीवाओ चउद्दस चउद्दस जोयणसहस्साइं चत्तारि अ एगुत्तरे जोयणसए छच्च एगूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

भरत और ऐरवत क्षेत्र की जीवाएं प्रत्येक (१४४०१$\frac{६}{१९}$) चौदह हजार चार सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग प्रमाण लम्बी कही गई हैं।

विवेचन—डोरी चढ़े हुए धनुष के समान भरत और ऐरवत क्षेत्र का आकार है। उसमें डोरी रूप लम्बाई को जीवा कहते हैं। वह उक्त क्षेत्रों की (१४४०१$\frac{६}{१९}$) योजन प्रमाण लम्बी है।

९७—एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दस रयणा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थीरयणे, सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, पुरोहियरयणे, वड्ढइरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे, असिरयणे, दण्डरयणे चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, मणिरयणे, कागिणिरयणे।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के चौदह-चौदह रत्न होते हैं। जैसे—स्त्रीरत्न, सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, पुरोहितरत्न, वर्धकीरत्न, अश्वरत्न, हस्तिरत्न, असिरत्न, दंडरत्न, चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, मणिरत्न और काकिणिरत्न।

विवेचन—चेतन या अचेतन वस्तुओं में जो वस्तु अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होती है, उसे रत्न कहा जाता है। प्रत्येक चक्रवर्ती के समय में जो सर्वश्रेष्ठ सुन्दर स्त्री होती है, वह उसकी पट्टरानी बनती है और उसे स्त्रीरत्न कहा जाता है। इसी प्रकार प्रधान सेना-नायक को सेनापतिरत्न, प्रधान कोठारी या भंडारी को गृहपतिरत्न, शान्तिकर्मादि करानेवाले पुरोहित को पुरोहितरत्न, रथादि के निर्माण करने वाले बढ़ई को वर्धकिरत्न, सर्वोत्तम घोड़े को अश्वरत्न और सर्वश्रेष्ठ हाथी को हस्तिरत्न कहा जाता है। ये सातों चेतन पंचेन्द्रिय रत्न हैं। शेष सात एकेन्द्रिय कायवाले रत्न हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक रत्न की एक-एक हजार देव सेवा करते हैं। इसीसे उन रत्नों की सर्व-श्रेष्ठता सिद्ध है।

९८—जंबुद्दीवे णं दीवे चउद्दस महानईओ पुव्वावरेण लवणसमुद्दं समप्पंति, तं जहा—गंगा, सिंधू, रोहिआ, रोहिअंसा, हरी, हरिकंता, सीआ, सीओदा, नरकंता, नारीकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवई।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चौदह महानदियां पूर्व और पश्चिम दिशा से लवणसमुद्र में जाकर मिलती हैं। जैसे—गंगा-सिन्धु, रोहिता-रोहितांसा, हरी-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नरकान्ता-नारीकान्ता, सुवर्ण-कूला—रूप्यकूला, रक्ता और रक्तवती।

विवेचन—उक्त सात युगलों में से प्रथम नाम वाली महानदी पूर्व की ओर से और दूसरे नाम वाली महानदी पश्चिम की ओर से लवण समुद्र में प्रवेश करती है। नदियों का एक-एक युगल भरत आदि सात क्षेत्रों में क्रमशः प्रवहमान रहता है।

९९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है। पांचवीं पृथिवी में किन्हीं-किन्हीं नारकों की स्थिति चौदह सागरोपम की है। किन्हीं-किन्हीं असुरकुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है। लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है।

१००—महासुक्के कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेण चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिकंतं सिरिमहिअं सिरिसोमनसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदकंतं महिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउद्दसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउद्दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है। वहां जो देव श्रीकान्त श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है। वे देव चौदह अर्धमासों (सात मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को चौदह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव ग्रहण कर सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ चतुर्दशस्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चदशस्थानक समवाय

१०१—पन्नरस परमाहम्मिश्रा पण्णत्ता, तं जहा—

[1]अंबे [2]अंबरिसी चेव [3]सामे [4]सबलेत्ति आवरे।
[5]रुद्दो [6]वरुद्द [7]काले अ [8]महाकालेत्ति आवरे ॥१॥
[9]असिपत्ते [10]धणु [11]कुम्भे [12]वालुए वे[13]अरणी ति अ।
[14]खरस्सरे [15]महाघोसे एते पन्नरसाहिश्रा ॥२॥

पन्द्रह परम अधार्मिक देव कहे गये हैं—

अम्ब १, अम्बरिषी २, श्याम ३, शबल ४, रुद्र ५, उपरुद्र ६. काल ७, महाकाल ८, असिपत्र ९, धनु १०, कुम्भ ११, वालुका १२, वैतरणी १३, खरस्वर १४, महाघोष १५ ॥१-२॥

विवेचन—यद्यपि ये अम्ब आदि पन्द्रह असुरकुमार जाति के भवनवासी देव हैं, तथापि ये पूर्व भव के संस्कार से अत्यन्त क्रूर संक्लेश परिणामी होते हैं और इन्हें नारकों को लड़ाने-भिड़ाने और मार-काट करने में ही आनन्द आता है, इसलिए ये परम-अधार्मिक कहलाते हैं। इनमें जो नारकों को खींच कर उनके स्थान से नीचे गिराता है और बाँधकर खुले अम्बर (आकाश) में छोड़ देता है, उसे अम्ब कहते हैं। अम्बरिषी असुर उस नारक को गंडासों से काट-काट कर भाड़ में पकाने के योग्य टुकड़े-टुकड़े करते हैं। श्याम असुर कोड़ों से तथा हाथ के प्रहार आदि से नारकों को मारते-पीटते हैं। शबल असुर चीर-फाड़ कर नारकियों के शरीर से आंतें, चर्वी, हृदय आदि निकालते हैं। रुद्र और उपरुद्र असुर भाले बर्छे आदि से छेद कर ऊपर लटकाते हैं। काल असुर नारकों को कण्डु आदि में पकाते हैं। महाकाल उनके पके मांस को टुकड़े-टुकड़े करके खाते हैं। असिपत्र असुर सेमल वृक्ष का रूप धारण कर अपने नीचे छाया के निमित्त से आने वाले नारकों को तलवार की धार के समान तीक्ष्ण पत्ते गिरा कर उन्हें कष्ट देते हैं। धनु असुर धनुष द्वारा छोड़े गये तीक्ष्ण नोक वाले वाणों से नारकियों के अंगों का छेदन-भेदन करते हैं। कुंभ उन्हें कुंभ आदि में पकाते हैं। वालुका जाति के असुर वालु के आकार कदम्ब पुष्प के आकार और वज्र के आकार रूप से अपने शरीर की विक्रिया करके उष्ण वालु में गर्म भाड़ में चने के समान नारकों को भूनते हैं। वैतरणी नामक असुर पीव, रक्त आदि से भरी हुई तप्त जल वाली नदी का रूप धारण करके प्यास से पीड़ित होकर पानी पीने को आने वाले नारकों को अपने विक्रिया वाले क्षार उष्ण जल से पीड़ा पहुँचाते हैं और उनको उसमें डुबकियाँ लगवाते हैं। खरस्वर वाले असुर वज्रमय कंटकाकीर्ण सेमल वृक्ष पर नारकों को वार-वार चढ़ाते-उतारते हैं। महाघोष असुर भय से भागते हुए नारकियों को वाड़ों में घेर कर उन्हें नाना प्रकार की यातनाएं देते हैं। इस प्रकार ये क्रूर देव तीसरी पृथिवी तक जा करके वहाँ के नारकों को भयानक कष्ट देते हैं।

१०२—णमी णं अरहा पन्नरस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

नमि अर्हन् पन्द्रह धनुष ऊंचे थे।

१०३—धुवराहू णं बहुलपक्खस्स पडिवए पन्नरसभागं पन्नरस भागेणं चंदस्सलेसं आवरेत्ताण चिट्ठति। तं जहा—पढमाए पढमं भागं, बीआए दुभागं, तइआए तिभागं, चउत्थीए चउभागं,

पंचमीए पंचभागं, छट्ठीए छभागं, सत्तमीए सत्तभागं, अट्ठमीए अट्ठभागं, नवमीए नवभागं, दसमीए दसभागं, एक्कारसीए एक्कारसभागं, बारसीए बारसभागं, तेरसीए तेरसभागं, चउद्दसीए चउद्दसभागं, पन्नरसेसु पन्नरसभागं, [आवरेत्ताण चिट्ठति] तं चेव सुक्कपक्खस्स य उवदंसेमाणे उवदंसेमणे चिट्ठति। तं जहा—पढमाए पढमभागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसभागं उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठति।

ध्रुवराहु कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन से चन्द्र लेश्या के पन्द्रहवें-पन्द्रहवें दीप्तिरूप भाग को अपने श्यामवर्ण से आवरण करता रहता है। जैसे—प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग को, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग को, तृतीया के दिन तीसरे भाग को, चतुर्थी के दिन चौथे भाग को, पंचमी के दिन पांचवें भाग को, षष्ठी के दिन छठे भाग को, सप्तमी के दिन सातवें भाग को, अष्टमी के दिन आठवें भाग को, नवमी के दिन नौवें भाग को, दशमी के दिन दशवें भाग को, एकादशी के दिन ग्यारहवें भाग को, द्वादशी के दिन बारहवें भाग को, त्रयोदशी के दिन तेरहवें भाग को, चतुर्दशी के दिन चौदहवें भाग को और पन्द्रस (अमावस) के दिन पन्द्रहवें भाग को आवरण करके रहता है। वही ध्रुवराहु शुक्ल पक्ष में चन्द्र के पन्द्रहवें-पन्द्रहवें भाग को उपदर्शन कराता रहता है। जैसे प्रतिपदा के दिन पन्द्रहवें भाग को प्रकट करता है, द्वितीया के दिन दूसरे पन्द्रहवें भाग को प्रकट करता है। इस प्रकार पूर्णमासी के दिन पन्द्रहवें भाग को प्रकट कर पूर्ण चन्द्र को प्रकाशित करता है।

विवेचन—राहु दो प्रकार के माने गये हैं—एक पर्वराहु और दूसरा ध्रुवराहु। इनमें से पर्वराहु तो पूर्णिमा के दिन छह मास के बाद चन्द्र-विमान का आवरण करता है और ध्रुवराहु चन्द्र-विमान से चार अंगुल नीचे विचरता हुआ चन्द्र की एक-एक कला को कृष्ण पक्ष में आवृत करता और शुक्ल पक्ष में एक-एक कला को प्रकाशित करता रहता है। चन्द्रमा की दीप्ति या प्रकाश को चन्द्र-लेश्या कहा जाता है।

१०४—छ णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता, तं जहा—

सतभिसय भरणि अद्दा असलेसा साई तहा जेट्ठा।
एते छण्णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता ॥१॥

छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्र के साथ संयोग करके रहने वाले कहे गये हैं। जैसे—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा। ये छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्र से संयुक्त रहते हैं ॥१॥

१०५—चेत्तासोएसु णं मासेसु पन्नरसमुहुत्तो दिवसो भवति। एवं चेत्तासोयमासेसु पण्णरस-मुहुत्ता राई भवति।

चैत्र और आसौज मास में दिन पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त का होता है। इसी प्रकार चैत्र और आसौज मास में रात्रि भी पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त की होती है।

१०६—विज्जाअणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पन्नरस वत्थू पण्णत्ता।

विद्यानुवाद पूर्व के वस्तु नामक पन्द्रह अर्थाधिकार कहे गये हैं।

१०७—मणूसाणं पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सच्चमणपओगे (१), मोसमणपओगे (२), सच्चमोसमणपओगे (३), असच्चामोससमणपओगे (४), सच्चवइपओगे (५), मोसवइपओगे (६), सच्चमोसवइपओगे (७), असच्चामोसवइपओगे (८), ओरालिअसरीरकायपओगे (९), ओरालिअमीससरीरकायपओगे (१०), वेउव्वियसरीरकायपओगे (११), वेउव्विअमीससरीकायपओगे (१२), आहारयसरीरकायप्पओगे (१३), आहारयमीससरीरकायप्पओगे (१४), कम्मयसरीरकायप्पओगे (१५)।

मनुष्यों के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गये हैं। जैसे—१ सत्यमन:प्रयोग, २ मृषामन:प्रयोग, ३ सत्यमृषामन:प्रयोग, ४ असत्यमृषामन:प्रयोग, ५ सत्यवचनप्रयोग, ६ मृषावचनप्रयोग, ७ सत्य-मृषावचनप्रयोग, ८ असत्यामृषावचनप्रयोग, ९ औदारिक शरीर काय प्रयोग, १० औदारिक मिश्र शरीरकायप्रयोग, ११ वैक्रिय शरीरकायप्रयोग, १२ वैक्रियमिश्र शरीरकायप्रयोग, १३ आहारक शरीरकायप्रयोग, १४ आहारकमिश्र शरीरकायप्रयोग और १५ कार्मण शरीरकायप्रयोग।

विवेचन—आत्मा के परिस्पन्द, क्रियापरिणाम या व्यापार को प्रयोग कहते हैं। अथवा जिस क्रियापरिणाम रूप योग के साथ आत्मा प्रकर्ष रूप से सम्बन्ध को प्राप्त हो उसे प्रयोग कहते हैं। सत्य अर्थ के चिन्तन रूप व्यापार को सत्यमन:प्रयोग कहते है। इसी प्रकार मृषा (असत्य) अर्थ के चिन्तनरूप व्यापार को मृषामन:प्रयोग, सत्य असत्य रूप दोनों प्रकार के मिश्रित अर्थ-चिन्तन रूप व्यापार को सत्य-मृषामन:प्रयोग, तथा सत्य-मृषा से रहित अनुभय अर्थ रूप चिन्तन को असत्यामृषामन:-प्रयोग कहते हैं। इसी प्रकार से सत्य, मृषा आदि चारों प्रकार के वचन-प्रयोगों का अर्थ जानना चाहिए। औदारिक शरीर वाले पर्याप्तक मनुष्य-तिर्यंचों के शरीर-व्यापार को औदारिकशरीर कायप्रयोग और अपर्याप्तक उन्हीं मनुष्य-तिर्यंचों के शरीर-व्यापार को औदारिकमिश्र शरीरकायप्रयोग कहते हैं। इसी प्रकार से पर्याप्तक देव-नारकों के वैक्रिय शरीर के व्यापार को वैक्रियशरीर कायप्रयोग और अपर्याप्तक उन्हीं देव-नारकों के शरीरव्यापार को वैक्रियमिश्र शरीर कायप्रयोग कहते हैं। आहारकशरीरी होकर औदारिक शरीर पुन: ग्रहण करते समय के व्यापार को आहारक मिश्रशरीर कायप्रयोग और आहारकशरीर के व्यापार के समय आहारक शरीरकायप्रयोगहोता है। एक गति को छोड़कर अन्य गति को जाते हुए विग्रहगति में जीव के जो योग होता है, उसे कार्मण शरीरकायप्रयोग कहते हैं। केवली भगवान् के समुद्घात करने की दशा में तीसरे, चौथे और पांचवें समय में भी कार्मणशरीर काययोग होता है।

१०८—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं पन्नरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं पन्नरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइआणं पन्नरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं पन्नरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है। पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है। सौधर्म ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है।

१०९—महासुक्के कप्पे अत्थेगइआणं देवाणं पन्नरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिंगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पन्नरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं पण्णरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे पण्णरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृंग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट और नन्दोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। वे देव पन्द्रह अर्धमासों (साढ़े सात मासों) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को पन्द्रह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो पन्द्रह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ पंचदशस्थानक समवाय समाप्त ॥

षोडशस्थानक-समवाय

११०—सोलस य गाहा-सोलसगा पण्णत्ता। तं जहा—[1]समए [2]वेयालिए [3]उवसग्गपरिन्ना [4]इत्थीपरिण्णा [5]निरयविभत्ती [6]महावीरथुई [7]कुसीलपरिभासिए [8]वीरिए [9]धम्मे [10]समाही [11]मग्गे [12]समोसरणे [13]आहातहिए [14]गंथे [15]जमईए गाहासोलसमे [16]सोलसगे।

सोलह गाथा-षोडशक कहे गये हैं। जैसे—१ समय, २ वैतालीय, ३ उपसर्ग परिज्ञा, ४ स्त्री-परिज्ञा, ५ नरकविभक्ति, ६ महावीरस्तुति, ७ कुशीलपरिभाषित, ८ वीर्य, ९ धर्म, १० समाधि, ११ मार्ग, १२ समवसरण, १३ याथातथ्य, १४ ग्रन्थ, १५ यमकीय और १६ सोलहवाँ गाथा।

विवेचन—सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में 'समय' आदि नाम वाले सोलह अध्ययन हैं, इसलिए वे 'गाथा-षोडशक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। पहले अध्ययन में नास्तिक आदि के समयों (सिद्धान्तों या मतों) का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे अध्ययन की रचना वैतालीय छन्दों में की गई है, अतः उसे वैतालीय कहते हैं। इसी प्रकार शेष अध्ययनों का कथन जान लेना चाहिए। समवसरण-अध्ययन में तीन सौ तिरेसठ मतों का समुच्चय रूप से वर्णन किया गया है। सोलहवें अध्ययन को पूर्वोक्त पन्द्रह अध्ययनों के अर्थ का गान करने से, गाथा नाम से कहा गया है।

१११—सोलस कसाया पण्णत्ता। तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे, अणंताणुबंधी माणे, अणंताणुबंधी माया, अणंताणुबंधी लोभे; अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, अपच्चक्खाण-

कसाए माया, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, पच्चक्खाणावरणे माणे, पच्चक्खाणावरणा माया, पच्चक्खाणावरणे लोभे; संजलणे कोहे, संजलणे माणे, संजलणा माया, संजलणे लोभे।

कषाय सोलह कहे गये हैं। जैसे—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी लोभ; अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध, अप्रत्याख्यानकषाय मान, अप्रत्याख्यानकषाय माया, अप्रत्याख्यानकषाय लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ; संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ।

११२—मंदरस्स णं पव्वयस्स सोलस नामधेया पण्णत्ता, तं जहा—

[1]मंदर मेरु[2] मणोरम[3] सुदंसण[4] सयंपभे[5] य गिरिराया[6]।
रयणुच्चय[7] पियदंसण[8] मज्झे लोगस्स[9] नाभी[10] य ॥१॥
अत्थे[11] अ सूरिआवत्ते[12] सूरिआ[13] वरणे त्ति अ।
उत्तरे[14] अ दिसाई अ[15] वडिंसे[16] इअ सोलसे ॥२॥

मन्दर पर्वत के सोलह नाम कहे गये हैं। जैसे—

१ मन्दर, २ मेरु, ३ मनोरम, ४ सुदर्शन, ५ स्वयम्प्रभ, ६ गिरिराज, ७ रत्नोच्चय, ८ प्रियदर्शन, ९ लोकमध्य, १० लोकनाभि, ११ अर्थ, १२ सूर्यावर्त, १३ सूर्यावरण, १४ उत्तर, १५ दिशादि और १६ अवतंस ॥१-२॥

११३—पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समण-संपदा होत्था। आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता। चमरबलीणं ओवारियालेणे सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। लवणे णं समुद्दे सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा सोलह हजार श्रमणों की थी। आत्म-प्रवाद पूर्व के वस्तु नामक सोलह अर्थाधिकार कहे गये हैं। चमरचंचा और बलीचंचा नामक राजधानियों के मध्य भाग में उतार-चढ़ाव रूप अवतारिकालयन वृत्ताकार वाले होने से सोलह हजार आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये हैं। लवणसमुद्र के मध्य भाग में जल के उत्सेध की वृद्धि सोलह हजार योजन कही गई है।

११४—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं अत्थेगइआणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है। पाँचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुर-कुमार देवों की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है।

११५—महासुक्के कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आवत्तं विआवत्तं नंदिआवत्तं महाणंदिआवत्तं अंकुसं अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सोलसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं सोलसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे सोलसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की स्थिति सोलह सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव आवर्त, व्यावर्त, नन्द्यावर्त, महानन्द्यावर्त, अंकुश, अंकुशप्रलम्ब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम कही गई है। वे देव सोलह अर्धमासों (आठ मासों) के वाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को सोलह हजार वर्षों के वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सोलह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ षोडशस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तदशस्थानक समवाय

११६—सत्तरसविहे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकायअसंजमे आउकायअसंजमे तेउकाय-असंजमे वाउकायअसंजमे वणस्सइकायअसंजमे वेइंदियअसंजमे तेइंदियअसंजमे चउरिंदियअसंजमे पंचिंदिअअसंजमे अजीवकायअसंजमे पेहाअसंजमे उवेहाअसंजमे अवहट्टुअसंजमे अप्पमज्जणाअसंजमे मणअसंजमे वइअसंजमे कायअसंजमे।

सत्तरह प्रकार का असंयम कहा गया है। जैसे—१. पृथिवीकाय-असंयम, २. अप्काय-असंयम, ३. तेजस्काय-असंयम, ४. वायुकाय-असंयम, ५. वनस्पतिकाय-असंयम. ६. द्वीन्द्रिय-असंयम, ७. त्रीन्द्रिय-असंयम, ८. चतुरिन्द्रिय-असंयम, ९. पंचेन्द्रिय-असंयम, १०. अजीवकाय-असंयम, ११. प्रेक्षा-असंयम, १२. उपेक्षा-असंयम, १३. अपहृत्य-असंयम, १४. अप्रमार्जना-असंयम, १५. मनः-असंयम, १६. वचन-असंयम, १७. काय-असंयम।

११७—सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकायसंजमे आउकायसंजमे तेउकायसंजमे वाउकायसंजमे वणस्सइकायसंजमे वेइंदियसंजमे तेइंदियसंजमे चउरिंदियसंजमे पंचिंदियसंजमे अजीव-कायसंजमे पेहासंजमे उवेहासंजमे अवहट्टुसंजमे पमज्जणासंजमे मणसंजमे वइसंजमे कायसंजमे।

सत्तरह प्रकार का संयम कहा गया है। जैसे—१. पृथिवीकाय-संयम, २. अप्काय-संयम, ३. तेजस्काय-संयम, ४. वायुकाय-संयम, ५. वनस्पतिकाय-संयम, ६. द्वीन्द्रिय-संयम, ७. त्रीन्द्रिय-संयम, ८. चतुरिन्द्रिय-संयम, ९. पंचेन्द्रिय-संयम, १०. अजीवकाय-संयम, ११. प्रेक्षा-संयम, १२. उपेक्षा-

संयम, १३. अपहृत्य-संयम, १४. प्रमार्जना-संयम, १५. मनः-संयम, १६. वचन-संयम, १७. काय-संयम।

विवेचन—समिति या सावधानीपूर्वक यम-नियमों के पालन करने को संयम कहते हैं और संयम का पालन नहीं करना असंयम है। एकेन्द्रिय पृथिवीकाय आदि जीवों की रक्षा करना, उनको किसी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचाना पृथिवीकायादि जीवविषयक संयम है और उनको वाधादि पहुँचाना उनका असंयम है। अजीव पौद्गलिक वस्तुओं सम्बन्धी संयम अजीव-संयम है और उनकी अयतना करना अजीव-असंयम है। स्थान, उपकरण, वस्त्र-पात्रादि का विधिपूर्वक पर्यवेक्षण करना प्रेक्षासंयम है और उनका पर्यवेक्षण नहीं करना, या अविधिपूर्वक करना प्रेक्षा-असंयम है। शत्रु-मित्र में, और इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं में राग-द्वेष नहीं करना, किन्तु उनमें मध्यस्थभाव रखना उपेक्षासंयम है। उनमें राग-द्वेषादि करना उपेक्षा-असंयम है। संयम के योगों की उपेक्षा करना अथवा असंयम के कार्यों में व्यापार करना उपेक्षा-असंयम है। जीवों को दूर कर निर्जीव भूमि में विधिपूर्वक मल-मूत्रादि का परठना अपहृत्य-संयम है और अविधि से परठना अपहृत्य-असंयम है। पात्रादि का विधिपूर्वक प्रमार्जन करना प्रमार्जना संयम है और अविधिपूर्वक करना या न करना अप्रमार्जना-असंयम है। मन, वचन, काय का प्रशस्त व्यापार करना उनका संयम है और अप्रशस्त व्यापार करना उनका असंयम है।

११८—माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। सव्वेसिं पि णं वेलंधर-अणुवेलंधरणागराईणं आवासपव्वया सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। लवणे णं समुद्दे सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

मानुषोत्तर पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा कहा गया है। सभी वेलन्धर और अनुवेलन्धर नागराजों के आवास पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचे कहे गये हैं। लवणसमुद्र की सर्वाग्र शिखा सत्तरह हजार योजन ऊंची कही गई है।

११९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सातिरेगाइं सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पतित्ता ततो पच्छा चारणाणं तिरिआ गती पवत्तति।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमि भाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन ऊपर जाकर (उठ कर) तत्पश्चात् चारण ऋद्धिधारी मुनियों की नन्दीश्वर, रुचक आदि द्वीपों में जाने के लिए तिर्छी गति होती है।

१२०—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। बलिस्स णं असुरिंदस्स रुअगिंदे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

असुरेन्द्र असुरराज चमर का तिगिंछिकूटनामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा कहा गया है। असुरेन्द्र बलि का रुचकेन्द्रनामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा कहा गया है।

१२१—सत्तरसविहे मरणे पण्णत्ते। तं जहा—आवीईमरणे ओहिमरणे आयंतियमरणे वलायमरणे वसट्टमरणे अंतोसल्लमरणे तब्भवमरणे बालमरणे पंडितमरणे बालपंडितमरणे छउमत्थमरणे केवलिमरणे वेहाणसमरणे गिद्धपिट्ठमरणे भत्तपच्चक्खाणमरणे इंगिणिमरणे पाओवगमणमरणे।

मरण सत्तरह प्रकार का कहा गया है। जैसे—१. आवीचिमरण, २. अवधिमरण, ३. आत्यन्तिकमरण, ४. वलन्मरण, ५. वशार्तमरण, ६. अन्त:शल्यमरण, ७. तद्भवमरण, ८. बालमरण, ९. पंडितमरण, १०. बालपंडितमरण, ११. छद्मस्थमरण, १२. केवलिमरण, १३. वैहायसमरण, १४. गृद्ध्रस्पृष्ट या गृद्ध्रपृष्ठमरण, १५. भक्तप्रत्याख्यानमरण, १६. इंगिनीमरण, १७. पादपोपगमनमरण।

विवेचन—विवरण इस प्रकार है—

१. **आवीचिमरण**—जल की तरंग या लहर को वीचि कहते हैं। जैसे जल में वायु के निमित्त से एक के बाद दूसरी तरंग उठती रहती है, उसी प्रकार आयुकर्म के दलिक या निषेक प्रतिसमय उदय में आते हुए झड़ते या विनष्ट होते रहते हैं। आयुकर्म के दलिकों का झड़ना ही मरण है। अत: प्रतिसमय के इस मरण को आवीचिमरण कहते हैं। अथवा वीचि नाम विच्छेद का भी है। जिस मरण में कोई विच्छेद या व्यवधान न हो, उसे आवीचिमरण कहते हैं। ह्रस्व अकार के स्थान पर दीर्घ आकार प्राकृत में हो जाता है।

२. **अवधिमरण**—अवधि सीमा या मर्यादा को कहते हैं। मर्यादा से जो मरण होता है, उसे अवधिमरण कहते हैं। कोई जीव वर्तमान भव की आयु को भोगता हुआ आगामी भव की भी उसी आयु को बाँधकर मरे और आगामी भव में भी उसी आयु को भोगकर मरेगा, तो ऐसे जीव के वर्तमान भव के मरण को अवधिमरण कहा जाता है। तात्पर्य यह कि जो जीव आयु के जिन दलिकों को अनुभव करके मरता है, यदि पुन: उन्हीं दलिकों का अनुभव करके मरेगा, जो वह अवधिमरण कहलाता है।

३. **आत्यन्तिकमरण**—जो जीव नारकादि के वर्तमान आयुकर्म के दलिकों को भोगकर मरेगा और मर कर भविष्य में उस आयु को भोगकर नहीं मरेगा, ऐसे जीव के वर्तमान भव के मरण को आत्यन्तिकमरण कहते हैं।

४. **वलन्मरण**—संयम, व्रत, नियमादि धारण किये हुए धर्म से च्युत या पतित होते हुए अव्रतदशा में मरने वाले जीवों के मरण को वलन्मरण कहते हैं।

५. **वशार्तमरण**—इन्द्रियों के विषय के वश होकर अर्थात् उनसे पीड़ित होकर मरने वाले जीवों के मरण को वशार्तमरण कहते हैं। जैसे रात में पतंगे दीपक की ज्योति से आकृष्ट होकर मरते हैं, उसी प्रकार किसी भी इन्द्रियों के विषय से पीड़ित होकर मरना वशार्तमरण कहलाता है।

६. **अन्त:शल्यमरण**—मन के भीतर किसी प्रकार के शल्य को रख कर मरने वाले जीव के मरण को अन्त:शल्यमरण कहते हैं। जैसे कोई संयमी पुरुष अपने व्रतों में लगे हुए दोषों की लज्जा, अभिमान आदि के कारण आलोचना किये बिना दोष के शल्य को मन में रखकर मरे।

७. **तद्भवमरण**—जो जीव वर्तमान भव में जिस आयु को भोग रहा है, उसी भव के योग्य आयु को बाँधकर यदि मरता है, तो ऐसे मरण को तद्भवमरण कहा जाता है। यह मरण

मनुष्य या तिर्यंच गति के जीवों का ही होता है। देव या नारकों का नहीं होता है, क्योंकि देव या नारकी मर कर पुनः देव या नारकी नहीं हो सकता, ऐसा नियम है। उनका जन्म मनुष्य या तिर्यंच पंचेन्द्रियों में ही होता है।

८. बालमरण—आगम भाषा में अविरत या मिथ्यादृष्टि जीव को 'बाल' कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि और असंयमी जीवों के मरण को बालमरण कहते हैं। प्रथम गुणस्थान से लेकर चौथे तक के जीवों का मरण बालमरण कहलाता है।

९. पंडितमरण—संयमी सम्यग्दृष्टि जीव को पंडित कहा जाता है। उसके मरण को पंडित-मरण कहते हैं। छठे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक का मरण पंडितमरण कहलाता है।

१०. बालपंडितमण—देशसंयमी पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकव्रती मनुष्य या तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव के मरण को बाल-पंडितमरण कहते हैं।

११. छद्मस्थमरण—केवलज्ञान उत्पन्न होने के पूर्व बारहवें गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थों के मरण को छद्मस्थमरण कहते हैं।

१२. केवलिमरण—केवलज्ञान के धारक अयोगिकेवली के सर्व दुःखों का अन्त करने वाले मरण को केवलिमरण कहते हैं। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगिजिन भी केवली हैं, किन्तु तेरहवें गुण-स्थान में मरण नहीं होता है।

१३. वैहायसमरण—विहायस् नाम आकाश का है। गले में फांसी लगाकर किसी वृक्षादि से अधर लटक कर मरने को वैहायसमरण कहते हैं।

१४. गृद्धस्पृष्ट या गिद्धपृष्ठमरण—'गिद्धपिट्ठ' इस प्राकृत पद के दो संस्कृत रूप होते हैं—गृद्ध्रस्पृष्ट और गृद्ध्रपृष्ठ। प्रथम रूप के अनुसार गिद्ध, चील आदि पक्षियों के द्वारा जिसका मांस नोंचनोंच कर खाया जा रहा हो, ऐसे जीव के मरण को गृद्ध्रस्पृष्टमरण कहते हैं। दूसरे रूप के अनुसार मरे हुए हाथी, ऊंट आदि के शरीर में प्रवेश कर अपने शरीर को गिद्धों आदि का भक्ष्य बनाकर मरने वाले जीवों के मरण को गृद्धपृष्ठमरण कहते हैं।

१५. भक्तप्रत्याख्यानमरण—उपसर्ग आने पर, दुष्काल पड़ने पर, असाध्य रोग के हो जाने पर या जरा से जर्जरित शरीर के हो जाने पर यावज्जीवन के लिए त्रिविध या चतुर्विध आहार का यम नियम रूप से त्याग कर संल्लेखना या संन्यास धारण करके मरने वाले मनुष्य के मरण को भक्तप्रत्या-ख्यानमरण कहते हैं। इस मरण से मरने वाला अपने आप भी अपनी वैयावृत्त्य (सेवा-टहल) करता है और यदि दूसरा व्यक्ति करे तो उसे भी स्वीकार कर लेता है।

१६. इंगिनीमरण—जो भक्तप्रत्याख्यानी दूसरों के द्वारा की जाने वाली वैयावृत्त्य का त्याग कर देता है और जब तक सामर्थ्य रहती है, तब तक स्वयं ही प्रतिनियत देश में उठता-बैठता और अपनी सेवा-टहल करता है, ऐसे साधु के मरण को इंगिनीमरण कहते हैं।

१७. पादपोपगममरण—पादप नाम वृक्ष का है, जैसे वृक्ष वायु आदि के प्रबल वेग से जड़ से उखड़ कर भूमि पर जैसा पड़ जाता है, उसी प्रकार पड़ा रहता है, इसी प्रकार जो महासाधु भक्त-पान का यावज्जीवन परित्याग कर और स्व-पर की वैयावृत्त्य का भी त्याग कर, कायोत्सर्ग, पद्मासन

या मृतकासन आदि किसी आसन से आत्म-चिन्तन करते हुए तदवस्थ रहकर प्राण त्याग करता है, उसके मरण को पादपोपगमनमरण कहते हैं।

१२२—सुहुमसंपराए णं भगवं सुहुमसंपरायभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधति। तं जहा—आभिणिबोहियणाणावरणे सुयणाणावरणे ओहिणाणावरणे मणपज्जवणाणावरणे केवलणाणावरणे चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे सायावेयणिज्जं जसोकित्तिनामं उच्चागोयं दाणंतरायं लाभंतरायं भोगंतरायं उवभोगंतरायं वीरिअअंतरायं।

सूक्ष्मसाम्पराय भाव में वर्तमान सूक्ष्मसाम्पराय भगवान् केवल सत्तरह कर्म-प्रकृतियों को बाँधते हैं। जैसे—१. आभिनिबोधिकज्ञानावरण, २. श्रुतज्ञानावरण, ३. अवधिज्ञानावरण, ४. मनःपर्यज्ञानावरण, ५. केवलज्ञानावरण, ६. चक्षुर्दर्शनावरण, ७. अचक्षुर्दर्शनावरण, ८. अवधिदर्शनावरण, ९. केवलदर्शनावरण, १०. सातावेदनीय, ११. यशस्कीर्तिनामकर्म, १२. उच्चगोत्र, १३. दानान्तराय, १४. लाभान्तराय, १५. भोगान्तराय, १६. उपभोगान्तराय और १७. वीर्यान्तराय।

१२३—पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम कही गई है। छठी पृथ्वी तमःप्रभा में किन्हीं-किन्हीं नारकों की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सत्तरह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सत्तरह पल्योपम कही गई है। महाशुक्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम कही गई है।

१२४—सहस्सारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महानलिणं पोंडरीअं महापोंडरीअं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहकंतं सीहवीअं भाविअं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं सत्तरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सहस्रार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम है। वहां जो देव, सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महामुकुद, नलिन, महानलिन, पौण्डरीक, महापौण्डरीक, शुक्र, महाशुक्र, सिंह, सिंहकान्त, सिंहवीज, और भावित नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम की होती है। वे देव सत्तरह अर्धमासों (साढ़े

आठ मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के सत्तरह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्तरह भवग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ सप्तदशस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टादशस्थानक समवाय

१२५—अट्ठारसविहे बंभे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ १, नोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ २, मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ ३, ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ ४, नोवि अण्णं वायाए सेवावेइ ५, वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ ६। ओरालिए कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ ७, णोवि य अण्णं काएणं सेवावेइ ८, काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ ९। दिव्वे कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ १०, णोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ ११, मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ १२। दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ १३, णोवि अण्णं वायाए सेवावेइ १४, वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ १५। दिव्वे कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ १६, णोवि अण्णं काएणं सेवावेइ १७, काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ १८।

ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का कहा गया है। जैसे—औदारिक (शरीर वाले मनुष्य-तिर्यंचों के) काम-भोगों को नहीं मन से स्वयं सेवन करता है, नहीं अन्य को मन से सेवन कराता है और न मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है ३। औदारिक-कामभोगों को नहीं वचन से स्वयं सेवन करता है, नहीं अन्य को वचन से सेवन कराता है और नहीं सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है ६। औदारिक-कामभोगों को नहीं स्वयं काय से सेवन करता है, नहीं अन्य को काय से सेवन कराता है और नहीं काय से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है ९। दिव्य (देव-देवी सम्बन्धी) काम-भोगों को नहीं स्वयं मन से सेवन करता है, नहीं अन्य को मन से सेवन कराता है और नहीं मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है १२। दिव्य-काम भोगों को नहीं स्वयं वचन से सेवन करता है, नहीं अन्य को वचन से सेवन कराता हैं और नहीं सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है १५। दिव्य-कामभोगों को नहीं स्वयं काय से सेवन करता है, नहीं अन्य को काय से सेवन कराता है और नहीं काय से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है १८।

१२६—अरहतो णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं सखुड्डयविअत्ताणं अट्ठारस ठाणा पण्णत्ता। तं जहा—

वयछक्कं ६ कायछक्कं १२ अकप्पो १३ गिहिभायणं १४।
पलियंक १५ निसिज्जा १६ य सिणाणं १७ सोभवज्जणं १८ ॥१॥

अरिष्टनेमि अर्हत् की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा अठारह हजार साधुओं की थी। श्रमण भगवान् महावीर ने सक्षुद्रक-व्यक्त-सभी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अठारह स्थान कहे हैं। जैसे—व्रतषट्क ६, कायषट्क १२,

अकल्प १३, (वस्त्र, पात्र, भक्त-पानादि) गृहि-भाजन १४, पर्यङ्क (पलंग आदि) १५, निषद्या (स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना) १६, स्नान १७ और शरीर-शोभा का त्याग १८।

विवेचन—साधु दो प्रकार के होते हैं—वय (दीक्षा पर्याय) से और श्रुत (शास्त्रज्ञान) से अव्यक्त—अपरिपक्व और वय तथा श्रुत दोनों से व्यक्त—परिपक्व। इनमें अव्यक्त साधु को क्षुद्रक या क्षुल्लक भी कहते हैं। ऐसे क्षुद्रक और व्यक्त साधुओं के १८ संयमस्थान भगवान् महावीर ने कहे हैं। हिंसादि पांचों पापों का और रात्रि भोजन का यावज्जीवन के लिए सर्वथा त्याग करना व्रतषट्क है। पृथिवी आदि छह काया के जीवों की रक्षा करना कायपट्कवर्जन है। अकल्पनीय भक्त-पान का त्याग, गृहस्थ के पात्र का उपयोग नहीं करना, पलंगादि पर नहीं सोना, स्त्री-संसक्त आसन पर नहीं बैठना, स्नान नहीं करना और शरीर की शोभा-शृंगारादि नहीं करना। इन अठारह स्थानों से साधुओं के संयम की रक्षा होती है।

१२७—आयारस्स णं भगवतो सचूलियागस्स अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता।

चूलिका-सहित भगवद्-आचाराङ्ग सूत्र के पद-प्रमाण से अठारह हजार पद कहे गये हैं।

१२८—बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पण्णत्ते। तं जहा—बंभी १, जवणालिया २, दोसऊरिया ३, खरोट्टिया ४, खरसाविआ ५, पहाराइया ६, उच्चत्तरिआ ७, अक्खरपुट्ठिया ८, भोगवइता ९, वेणतिया १०, णिण्हइया ११, अंकलिवी १२, गणिअलिवी १३, गंधव्वलिवी [भूयलिवी] १४, आदंसलिवी १५, माहेसरीलिवी १६, दामिलिवी १७, वोलिंदलिवी १८।

ब्राह्मीलिपि के लेख-विधान अठारह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—१. ब्राह्मीलिपि, २. यावनीलिपि, ३. दोपउपरिकालिपि, ४. खरोष्ट्रिकालिपि, ५. खर-शाविकालिपि, ६. प्रहारातिकालिपि, ७. उच्चत्तरिकालिपि, ८. अक्षरपृष्ठिकालिपि, ९. भोगवतिकालिपि, १०. वैणकियालिपि, ११. निह्नविकालिपि, १२. अंकलिपि, १३. गणितलिपि, १४. गन्धर्वलिपि, [भूतलिपि] १५. आदर्शलिपि, १६. माहेश्वरीलिपि, १७. दामिलिपि, १८. पोलिन्दीलिपि।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि इन लिपियों का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। फिर भी वर्तमान में प्रचलित अनेक लिपियों का वोध होता है। जैसे—यावनीलिपि अर्वी-फारसी, उड़ियालिपि, द्राविड़ीलिपि आदि। आगम-ग्रन्थों में भी लिपियों के नामों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

१२९—अत्थिनत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू पण्णत्ता।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के अठारह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये हैं।

१३०—धूमप्पभा णं पुढवी अट्ठारसुत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

पोसासाढेसु णं मासेसु सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवइ।

धूमप्रभा नामक पांचवीं पृथिवी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन कही गई है।

पौप और आपाढ़ मास में एक वार उत्कृष्ट रात और दिन क्रमशः अठारह मुहूर्त के होते हैं।

विवेचन—पौष मास में सबसे वड़ी रात अठारह मुहूर्त की होती है और आषाढ़ मास में सबसे बड़ा दिन अठारह मुहूर्त का होता है, यह सामान्य कथन है। हिन्दू ज्योतिष गणित के अनुसार आषाढ़ में कर्क संक्रान्ति को सबसे वड़ा दिन और मकर संक्रान्ति के दिन पौष में सवसे वड़ी रात होती है। अंग्रेजी ज्योतिष के अनुसार २३ दिसम्वर को सवसे वड़ी रात और २१ जून को सवसे वड़ा दिन अठारह मुहूर्त का होता है। एक मुहूर्त में ४८ मिनिट होते हैं।

१३१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सहस्सारे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है। सहस्रार कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है।

१३२—आणए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीअं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवाणं अट्ठारसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं अट्ठारस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति वुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

आनत कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है। वहां जो देव काल, सुकाल, महाकाल, अंजन, रिष्ट, साल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुण्डरीक, पुण्डरीकगुल्म और सहस्रारावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है। वे देव अठारह अर्धमासों (नौ मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के अठारह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अठारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, वुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ अष्टादशस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनविंशतिस्थानक समवाय

१३३—एगूणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

१उक्खित्तणाए, २संघाडे. ३अंडे, ४कुम्मे अ, ५सेलए।
६तुंबे, अ, ७रोहिणी, ८मल्ली, ९मागंदी, १०चंदिमाति अ ॥१॥
११दावद्दवे, १२उदगणाए, १३मंडुक्के, १४तेतली इ अ।
१५नंदिफले, १६अवरकंका, १७आइण्णे, १८सुंसुमा इ अ ॥२॥
अवरे अ, १९पोण्डरीए णाए एगूणवीसइमे।

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के (प्रथम श्रुतस्कन्ध के) उन्नीस अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—१. उत्क्षिप्तज्ञात, २. संघाट, ३. अंड, ४. कूर्म, ५. शैलक, ६. तुम्ब, ७. रोहिणी, ८. मल्ली, ९. माकंदी, १०. चन्द्रिमा, ११. दावद्रव, १२. उदकज्ञात, १३. मंडूक, १४. तेतली, १५. नन्दिफल, १६. अपरकंका, १७. आकीर्ण, १८. सुंसुमा और पुण्डरीकज्ञात ॥१-२॥

१३४—जंबूदीवे णं दीवे सूरिआ उक्कोसेणं एगूणवीसं जोयणसयाइं उड्ढमहो तवयंति।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में सूर्य उत्कृष्ट रूप से एक हजार नौ सौ योजन ऊपर और नीचे तपते हैं।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के उपरिम भूमिभाग से ऊपर आठ सौ योजन पर सूर्य अवस्थित है और उक्त भूमिभाग से एक हजार योजन गहरा लवणसमुद्र है। इसलिए सूर्य अपने उष्ण प्रकाश से ऊपर सौ योजन तक—जहां तक कि ज्योतिश्चक्र अवस्थित है, तथा नीचे अठारह सौ योजन अर्थात् लवणसमुद्र के अधस्तन तल तक इस प्रकार सर्व मिलाकर उन्नीस सौ (१९००) योजन के क्षेत्र को संतप्त करता है।

१३५—सुक्के णं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ।

शुक्र महाग्रह पश्चिम दिशा से उदित होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ सहगमन करता हुआ पश्चिम दिशा में अस्तंगत होता है।

१३६—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं छेअणाओ पण्णत्ताओ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की कलाएं उन्नीस छेदनक (भागरूप) कही गई हैं।

विवेचन—जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। उसके भीतर जो छह वर्षधर पर्वत और सात क्षेत्र हैं, वे भारतवर्ष से मेरु पर्वत तक दूने-दूने विस्तार वाले हैं और मेरु से आगे ऐरवत वर्ष तक आधे-आधे विस्तार वाले हैं। इन सबका योग (१+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१=१९०) एक सौ नव्वे होता है। इस (१९०) का भाग एक लाख में देने पर ५२६$\frac{१०}{१९०}$ आता है। ऊपर के शून्य का नीचे के शून्य के साथ अपवर्तन कर देने पर $\frac{६}{१९}$ रह जाता है। प्रकृत सूत्र में इसी उन्नीस भागरूप कलाओं का उल्लेख किया गया है, क्योंकि १९० भागों में जिस

क्षेत्र या कुलाचल (वर्षधर) की जितनी शलाकाएं हैं, उनसे इसे गुणित करने पर उस विवक्षित क्षेत्र या कुलाचल का विस्तार निकल आता है।

१३७—एगूणवीसं तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइआ।

उन्नीस तीर्थंकर अगार-वास में रह कर फिर मुंडित होकर अगार से अनगार प्रव्रज्या को प्राप्त हुए—गृहवास त्याग कर दीक्षित हुए।

विवेचन—वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर, ये पांच तीर्थंकर कुमार अवस्था में ही प्रव्रजित हुए। शेष उन्नीस तीर्थंकरों ने गृहवास छोड़ कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

१३८—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं एगूणवीसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणवीसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणवीसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आणयकप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। आनत कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है।

१३९—पाणए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं सुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडिसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

प्राणत कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है। वहां जो देव आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, सुषिर, इन्द्र, इन्द्रकान्त और इन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है। वे देव उन्नीस अर्धमासों (साढ़े नौ मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्‌वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के उन्नीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ एकोनविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

विंशतिस्थानक समवाय

१४०—वीसं असमाहिठाणा पण्णत्ता, तं जहा—दवदवचारि यावि भवइ १, अपमज्जियचारि यावि भवइ २, दुप्पमज्जियचारि यावि भवइ ३, अतिरित्तसेज्जासणिए ४, रातिणियपरिभासी ५, थेरोवघाइए ६, भूओवघाइए ७, संजलणे ८, कोहणे ९, पिट्ठिमंसिए १०, अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ ११, णवाणं अधिकरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाएत्ता भवइ १२, पोराणाणं अधिकरणाणं खामिअ विउसविआणं पुणोदीरेत्ता भवइ १३, ससरक्खपाणिपाए १४, अकालसज्झायकारए यावि भवइ १५, कलहकरे १६, सद्दकरे १७, झंझकरे १८, सूरप्पमाणभोई १९, एसणाऽसमिते आवि भवइ २०।

वीस असमाधिस्थान कहे गये हैं। जैसे—१. दव-दव या धप-धप करते हुए जल्दी-जल्दी चलना, २. अप्रमार्जितचारी होना, ३. दुष्प्रमार्जितचारी होना, ४. अतिरिक्त शय्या-आसन रखना, ५. रात्निक साधुओं का पराभव करना, ६. स्थविर साधुओं को दोष लगाकर उनका उपघात या अपमान करना ७. भूतों (एकेन्द्रिय जीवों) का व्यर्थ उपघात करना,; ८. सदा रोषयुक्त प्रवृत्ति करना, ९. अतिक्रोध करना, १०. पीठ पीछे दूसरे का अवर्णवाद करना, ११. निरन्तर-सदा ही दूसरों के गुणों का विलोप करना, जो व्यक्ति दास या चोर नहीं है, उसे दास या चोर आदि कहना, १२. नित्य नये अधिकरणों (कलह अथवा यन्त्रादिकों) को उत्पन्न करना, १३. क्षमा किये हुए या उपशान्त हुए अधिकरणों (लड़ाई-झगड़ों) को पुनः पुनः जागृत करना, १४. सरजस्क (सचेतन धूलि आदि से युक्त) हाथ-पैर रखना, सरजस्क हाथ वाले व्यक्ति से भिक्षा ग्रहण करना और सरजस्क स्थंडिल आदि पर चलना, सरजस्क आसनादि पर बैठना, १५. अकाल में स्वाध्याय करना और काल में स्वाध्याय नहीं करना, १६. कलह करना, १७. रात्रि में उच्च स्वर से स्वाध्याय और वार्तालाप करना, १८. गण या संघ में फूट डालने वाले वचन बोलना, १९. सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त होने तक खाते-पीते रहना तथा २०. एषणासमिति का पालन नहीं करना और अनेषणीय भक्त-पान को ग्रहण करना।

विवेचन—जिन कार्यों के करने से अपने या दूसरे व्यक्तियों के चित्त में संक्लेश उत्पन्न हो उनको असमाधिस्थान कहते हैं। सूत्र-प्रतिपादित सभी कार्यों से दूसरों को तो संक्लेश और दुःख होता ही है, साथ ही उक्त कार्यों के करने वालों को भी विना देखे, शोधे धप-धप करते हुए चलने पर ठोकर आदि लगने से, तथा सांप, बिच्छू आदि के द्वारा काट लिए जाने पर महान् संक्लेश और दुःख उत्पन्न होता है। साधु-मर्यादा से अधिक शय्या-आसनादि के रखने पर, दूसरों का पराभव करने पर, गुरुजनादिकों का अपमान करने पर और नित्य नये झगड़े-टंटे उठाने पर संघ में विक्षोभ उत्पन्न होता है और संघ द्वारा बहिष्कार कर दिये जाने पर तथा दिन भर खाने से रोगादि हो जाने पर स्वयं को भी भारी दुःख पैदा होता है। इसलिए उक्त सभी बीसों कार्यों को असमाधिस्थान कहा गया है।

१४१—मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वेवि अ घणोदही वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वीसं सामाणिअसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। णपुंसयवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधओ बंधठिई पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता। उस्सप्पिणिओसप्पिणिमंडले वीसं सागरोवम कोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

मुनिसुव्रत अर्हत् बीस धनुष ऊंचे थे। सभी घनोदधिवातवलय वीस हजार योजन मोटे कहे गये हैं। प्राणत देवराज देवेन्द्र के सामानिक देव वीस हजार कहे गये हैं। नपुंसक वेदनीय कर्म की, नवीन कर्म-बन्ध की अपेक्षा [उत्कृष्ट] स्थिति वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम कही गई है। प्रत्याख्यान पूर्व के बीस वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मंडल (आर-चक्र) वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल परिमित कहा गया है। अभिप्राय यह है कि दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का उत्सर्पिणीकाल और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का अवसर्पिणीकाल मिल कर वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कालचक्र कहलाता है।

१४२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पाणते कप्पे देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति वीस पल्योपम कही गई है। छठी तमःप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति वीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति वीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति वीस पल्योपम कही गई है। प्राणत कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति वीस सागरोपम कही गई है।

१४३—आरणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सायं विसायं सुविसायं सिद्धत्थं उप्पलं भित्तिलं, तिगिच्छं दिसासोवत्थियं पलंबं रुइलं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फपभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिद्धं पुप्फुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा वीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा, तेसि णं देवाणं वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

आरण कल्प में देवों की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम कही गई है। वहां जो देव सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, भित्तिल, तिगिंछ, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, रुचिर, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त, पुष्पप्रभ, पुष्पदकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसिद्ध (पुष्पसृष्ट) और पुष्पोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम कही गई है। वे देव बीस अर्धमासों (दश मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को बीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परमनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकविंशतिस्थानक समवाय

१४४—एक्कवीसं सवला पण्णत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे सवले १, मेहुणं पडिसेवमाणे सवले २, राइभोअणं भुंजमाणे सवले ३, आहाकम्मं भुंजमाणे सवले ४, सागारियं पिंडं भुंजमाणे सवले ५, उद्देसियं कीयं आहट्टु दिज्जमाणं भुंजमाणे सवले ६, अभिक्खणं पडियाइक्खेत्ता णं भुंजमाणे सवले ७, अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सवले ८, अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सवले ९, अंतो मासस्स तओ माईठाणे सेवमाणे सवले १०, रायपिंडं भुंजमाणे सवले ११, आउट्टिआए पाणाइवायं करेमाणे सवले १२, आउट्टिआए मुसावायं वदमाणे सवले १३, आउट्टियाए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सवले १४, आउट्टियाए अणंतरहिआए पुढवीए ठाणं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सवले १५, एवं आउट्टिआ चित्तमंताए पुढवीए, एवं आउट्टिआ चित्तमंताए सिलाए कोलावासंसि वा दारुए अण्णयरे वा तहप्पगारे ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सवले १६, जीवपइट्ठिए सपाणे सबीए सहरिए सउत्तिंगे पणग-दग-मट्टी-मक्कडासंताणए तहप्पगारे ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सवले १७, आउट्टिआए मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा तयाभोयणं वा, पवालभोयणं वा पुप्फभोयणं वा फलभोयणं वा हरियभोयणं वा भुंजमाणे सवले १८, अंतो संवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सवले १९, अंतो संवच्छरस्स दस माइठाणाइं सेवमाणे सवले २०, अभिक्खणं अभिक्खणं सीतोदय-वियडवग्घारियपाणिणा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सवले २१।

इक्कीस शवल कहे गये हैं (जो दोप रूप क्रिया-विशेषों के द्वारा अपने चारित्र को शवल (कर्बुरित, मलिन या धब्बों से दूपित करते हैं) जैसे—१. हस्त-मैथुन करनेवाला शवल, २. स्त्री आदि के साथ मैथुन सेवन करने वाला शवल, ३. रात में भोजन करने वाला शवल, ४. आधाकर्मिक भोजन को सेवन करने वाला शवल, ५. सागारिक (शय्यांतर स्थान-दाता) का भोजन-पिंड ग्रहण करने वाला शवल, ६. औद्देशिक, वाजार से क्रीत और अन्यत्र से लाकर दिये गये (अभ्याहृत) भोजन को खाने वाला शवल, ७. वार-वार प्रत्याख्यान (त्याग) कर पुनः उसी वस्तु को सेवन करने वाला शवल, ८. छह मास के भीतर एक गण से दूसरे गण में जाने वाला शवल, ९. एक मास के भीतर तीन वार नाभि-प्रमाण जल में अवगाहन या प्रवेश करने वाला शवल, १०. एक मास के भीतर तीन वार मायास्थान को सेवन करने वाला शवल, ११. राजपिण्ड खाने वाला शवल, १२. जान-बूझ कर पृथिवी आदि जीवों का घात करने वाला शवल, १३. जान-बूझ कर असत्य वचन बोलनेवाला शवल, १४. जान-बूझकर विना दी (हुई) वस्तु को ग्रहण करनेवाला शवल, १५. जान-बूझ कर अनन्तर्हित (सचित्त) पृथिवी पर स्थान, आसन, कायोत्सर्ग आदि करने वाला शवल, १६. इसी प्रकार जान-बूझ कर सचेतन पृथिवी पर, सचेतन शिला पर और कोलावास (घुन वाली) लकड़ी आदि पर स्थान, शयन आसन आदि करने वाला शवल, १७. जीव-प्रतिष्ठित, प्राण-युक्त, सवीज, हरित-सहित, कीड़े-मकोड़े वाले, पनक, उदक, मृत्तिका कीड़ीनगरा वाले एवं इसी प्रकार के अन्य स्थान पर अवस्थान, शयन, आसनादि करने वाला शवल, १८. जान-बूझ कर मूल-भोजन, कन्द-भोजन, त्वक्-भोजन, प्रवाल-भोजन, पुष्प-भोजन, फल-भोजन और हरित-भोजन करने वाला शवल, १९. एक वर्ष के भीतर दश वार जलावगाहन या जल में प्रवेश करने वाला शवल, २०. एक वर्ष के भीतर दश वार मायास्थानों का सेवन करने वाला शवल और २१. वार-वार शीतल जल से व्याप्त हाथों से अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुओं को ग्रहण कर खाने वाला शवल।

१४५—णिअट्टिबादरस्स णं खवितसत्तयस्स मोहणिज्जस्स कम्मस्स एक्कवीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा—अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अप्पच्चक्खाणकसाए माणे, अप्पच्चक्खाणकसाए माया, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणकसाए माया, पच्चक्खाणावरणकसाए लोहे, [संजलणकसाए कोहे, संजलणकसाए माणे, संजलणकसाए माया, संजलणकसाए लोहे,] इत्थिवेदे पुंवेदे णपुंवेदे हासे अरति-रति-भय-सोग-दुगुंछा।

जिसने अनन्तानुवन्धी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक (मिथ्यात्व, मिश्र एवं सम्यक्त्वमोहनीय) इन सात प्रकृतियों का क्षय कर दिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि अष्टम गुणस्थानवर्त्ती निवृत्तिबादर संयत के मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का सत्त्व कहा गया है। जैसे—१. अप्रत्याख्यान क्रोध-कषाय २. अप्रत्याख्यान मानकषाय, ३. अप्रत्याख्यान माया कषाय, ४. अप्रत्याख्यान लोभ-कषाय, ५. प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय, ६. प्रत्याख्यानावरण मानकषाय, ७. प्रत्याख्याना-वरण मायाकषाय, ८. प्रत्याख्यानावरण लोभकषाय, [९. संज्वलन क्रोधकषाय, १०. संज्वलन मानकषाय, ११. संज्वलन मायाकषाय, १२. संज्वलन लोभकषाय] १३. स्त्रीवेद, १४. पुरुषवेद, १५. नपुंसकवेद, १६. हास्य, १७. अरति, १८. रति, १९. भय, २०. शोक और २१. दुगुंछा (जुगुप्सा)।

१४६—एक्कमेक्काए णं ओसप्पिणीए पंचम-छट्ठाओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—दूसमा, दूसमदूसमा, एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढम-बितिआओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—दूसमदूसमाए, दूसमाए य।

प्रत्येक अवसर्पिणी के पांचवें और छठे आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गये हैं। जैसे—दुःषमा और दुःषम-दुःषमा। प्रत्येक उत्सर्पिणी के प्रथम और द्वितीय आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गये हैं। जैसे—दुःषम-दुःषमा और दुःषमा।

१४७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगवीसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है। छठी तमःप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुर-कुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है।

१४८—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आरणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है। आरणकल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है।

१४९—अच्चुते कप्पे देवाणं जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामकंडं मल्लं किट्टं चावोण्णतं अरण्णवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं

देवाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

अच्युत कल्प में देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव श्रीवत्स, श्रीदामकाण्ड, मल्ल, कृष्ट, चापोन्नत और आरणावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। वे देव इक्कीस अर्धमासों (साढ़े दश मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निश्वास लेते हैं। उन देवों के इक्कीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे, और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ एकविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

द्वाविंशतिस्थानक-समवाय

१५०—बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा—दिगिंछापरीसहे १, पिवासापरीसहे २, सीतपरीसहे ३, उसिणपरीसहे ४, दंसमसगपरीसहे ५, अचेलपरीसहे ६, अरइपरीसहे ७, इत्थीपरीसहे ८, चरिआपरीसहे ९, निसीहिआपरीसहे १०, सिज्जापरीसहे ११, अक्कोसपरीसहे १२, वहपरीसहे १३, जायणापरीसहे १४, अलाभपरीसहे १५, रोगपरीसहे १६, तणफासपरीसहे १७, जल्लपरीसहे १८, सक्कारपुरक्कारपरीसहे १९, पण्णापरीसहे २०, अण्णाणपरीसहे २१, अदंसणपरीसहे २२।

बाईस परीषह कहे गये हैं। जैसे—१. दिगिंछा (बुभुक्षा) परीषह, २. पिपासापरीषह, ३. शीतपरीषह, ४. उष्णपरीषह, ५. दंशमशक परीषह, ६. अचेल परीषह, ७. अरति-परीषह, ८. स्त्रीपरीषह, ९. चर्यापरीषह, १०. निषद्यापरीषह, ११. शय्यापरीषह, १२. आक्रोशपरीषह, १३. वधपरीषह, १४. याचनापरीषह, १५. अलाभपरीषह, १६. रोगपरीषह, १७. तृणस्पर्शपरीषह, १८. जल्लपरीषह, १९. सत्कार-पुरस्कारपरीषह, २०. प्रज्ञापरीषह, २१. अज्ञानपरीषह और २२. अदर्शनपरीषह।

विवेचन—मोक्षमार्ग से पतन न हो और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा हो, इस भावना से भूख, प्यास, शीत, उष्ण, डांस-मच्छर आदि की जो बाधा या कष्ट स्वयं समभावपूर्वक सहन किये जाते हैं, उन्हें परीषह कहा जाता है। वे बाईस हैं, जिनके नाम ऊपर गिनाये गये हैं।

१५१—दिट्ठिवायस्स णं बावीसं सुत्ताइं छिन्नछेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं समयसुत्तपरिवाडीए।

दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग में बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रपरीपाटी से छिन्न-छेदनयिक हैं। बाईस सूत्र आजीविकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्न-छेदनयिक हैं। बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से नयत्रिक-सम्बन्धी हैं। बाईस सूत्र चतुष्कनयिक हैं जो चार नयों की अपेक्षा से कहे गये हैं।

विवेचन—जो नय छिन्न सूत्र को छेद या भेद से स्वीकार करता है, अर्थात् दूसरे श्लोकादि की अपेक्षा नहीं रखता है, वह छेदनयस्थित कहलाता है। जैसे—'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि श्लोक अपने अर्थ को प्रकट करने के लिए अन्य श्लोक की अपेक्षा नहीं रखता है। इसी प्रकार जो सूत्र छिन्न-छेदनय वाले होते हैं उन्हें छिन्नछेदनयिक कहा जाता है। दृष्टिवाद अंग में ऐसे बाईस सूत्र हैं जो जिनमत की परिपाटी या पद्धति से निरूपण किये हैं। जो नय अच्छिन्न (अभिन्न) सूत्र की छेद से अपेक्षा रखता है, वह अच्छिन्नछेदनक कहलाता है अर्थात् द्वितीय आदि श्लोकों की अपेक्षा रखता है। ऐसे बाईस सूत्र आजीविक गोशालक के मत की परिपाटी से कहे गये हैं। जो सूत्र द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक और उभयास्तिक इन तीन नयों की अपेक्षा से कहे गये हैं, वे त्रिकनयिक या त्रैराशिक मत की परिपाटी से कहे गये हैं। जो सूत्र संग्रह, व्यवहार, ऋजु-सूत्र और शब्दादित्रक, इन चार नयों की अपेक्षा से कहे गये हैं वे चतुष्कनयिक कहे जाते हैं। वे स्वसमय से संबद्ध हैं।

१५२—बावीसविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णपरिणामे, नीलवण्णपरिणामे, लोहियवण्णपरिणामे, हलिद्दवण्णपरिणामे, सुक्किल्लवण्णपरिणामे, सुब्भिगंधपरिणामे, दुब्भिगंध-परिणामे, तित्तरसपरिणामे, कडुयरसपरिणामे, कसायरसपरिणामे, अंबिलरसपरिणामे, महुररस-परिणामे, कक्खडफासपरिणामे, मउयफासपरिणामे, गुरुफासपरिणामे, लहुफासपरिणामे, सीतफास-परिणामे, उसिणफासपरिणामे, णिद्धफासपरिणामे, लुक्खफासपरिणामे, अगुरुलहुफासपरिणामे, गुरुलहु-फासपरिणामे।

पुद्गल के परिणाम (धर्म) बाईस प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—१. कृष्णवर्णपरिणाम २. नीलवर्णपरिणाम, ३. लोहितवर्णपरिणाम, ४. हारिद्रवर्णपरिणाम, ५. शुक्लवर्णपरिणाम, ६. सुरभिगन्धपरिणाम, ७. दुरभिगन्धपरिणाम, ८. तिक्तरसपरिणाम, ९, कटुकरसपरिणाम १०. कषायरसपरिणाम, ११. आम्लरसपरिणाम १२. मधुररसपरिणाम, १३. कर्कशस्पर्श परिणाम, १४. मृदुस्पर्शपरिणाम, १५. गुरुस्पर्शपरिणाम, १६. लघुस्पर्शपरिणाम, १७. शीतस्पर्शपरिणाम, १८. उष्णस्पर्शपरिणाम, १९. स्निग्धस्पर्शपरिणाम, २०. रूक्षस्पर्शपरिणाम, २१. अगुरुलघुस्पर्शपरिणाम और २२. गुरुलघुस्पर्शपरिणाम।

१५३—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है। छठी तमःप्रभा पृथिवी में नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। अधस्तन सातवीं तमस्तमा पृथिवी में कितनेक नारकियों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। कितनेक

असुरकुमार देवों की स्थिति वाईस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति वाईस पल्योपम कही गई है।

१५४—अच्चुते कप्पे देवाणं [उक्कोसेणं] वावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेवेज्जगाणं देवाणं जहण्णेणं वावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा महियं विसूहियं विमलं पभासं वणमालं अच्चुतवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं वावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा [वावीसं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा।] तेसि णं देवाणं वावीसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे वावीसं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

अच्युत कल्प में देवों की [उत्कृष्ट] स्थिति वाईस सागरोपम कही गई है। अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति वाईस सागरोपम कही गई है। वहां जो देव महित, विसूहित (विश्रुत), विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति वाईस सागरोपम कही गई है। वे देव वाईस अर्धमासों (ग्यारह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के वाईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव वाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, वुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ द्वाविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रयोविंशतिस्थानक-समवाय

१५५—तेवीसं सूयगडज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—समए १, वेतालिए २, उवसग्गपरिण्णा ३, थीपरिण्णा ४, नरयविभत्ती ५, महावीरथुई ६, कुसीलपरिभासिए ७, विरिए ८, धम्मे ९, समाही १०, मग्गे ११, समोसरणे १२, आहत्तहिए १३, गंथे १४, जमईए १५, गाथा १६, पुंडरीए १७, किरियाठाणा १८, आहारपरिण्णा १९, अपच्चक्खाणकिरिआ २०, अणगारसुयं २१, अद्दइज्जं २२, णालंदइज्जं २३।

सूत्रकृताङ्ग के तेईस अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—१. समय, २. वैतालिक, ३. उपसर्ग-परिज्ञा, ४. स्त्रीपरिज्ञा, ५. नरकविभक्ति, ६. महावीरस्तुति, ७. कुशीलपरिभाषित, ८. वीर्य, ९. धर्म, १०. समाधि, ११. मार्ग, १२. समवसरण, १३. याथातथ्य (आख्यातहित) १४. ग्रन्थ, १५. यमतीत, १६. गाथा, १७. पुण्डरीक, १८. क्रियास्थान, १९. आहार-परिज्ञा २०. अप्रत्याख्यानक्रिया, २१. अनगारश्रुत, २२. आर्द्रीय, २३. नालन्दीय।

१५६—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमण-मुहुत्तंसि केवलवरनाण-दंसणे समुप्पण्णे। जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थकरा

पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था। तं जहा—अजित-संभव-अभिणंदण-सुमई जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में, इसी भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी में तेईस तीर्थंकर जिनों को सूर्योदय के मुहूर्त्त में केवल-वर-ज्ञान और केवल-वर-दर्शन उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीपनामक इसी द्वीप में इसी अवसर्पिणीकाल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में ग्यारह अंगश्रुत के धारी थे। जैसे—अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति यावत् पार्श्वनाथ, महावीर। कौशलिक ऋषभ अर्हत् चतुर्दशपूर्वी थे।

१५७—जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थंकरा पुव्वभवे मंडलियरायाणो होत्था। तं जहा—अजित-संभव-अभिणंदण जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए पुव्वभवे चक्कवट्टी होत्था।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में इस अवसर्पिणी काल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में मांडलिक राजा थे। जैसे—अजित, संभव, अभिनन्दन यावत् पार्श्वनाथ तथा वर्धमान। कौशलिक ऋषभ अर्हत् पूर्वभव में चक्रवर्ती थे।

१५८—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणाणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है। सौधर्म ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है।

१५९—हेट्ठिममज्झिमगेविज्जाणं देवाणं जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसि णं देवाणं तेवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जई।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक के देवों की जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। वे देव तेईस अर्धमासों (साढ़े ग्यारह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के तेईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो तेईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ त्रयोविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुर्विंशतिस्थानक-समवाय

१६०—चउव्वीसं देवाहिदेवा पण्णत्ता। तं जहा—उसभ-अजित-संभव-अभिणंदण-सुमइ-पउमप्पह-सुपास-चंदप्पह- सुविधि-सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्ज-विमल-अणंत-धम्म-संति-कुंथु-अर-मल्ली - मुणिसुव्वय-नमि-नेमी-पास-वद्धमाणा।

चौवीस देवाधिदेव कहे गये हैं। जैसे—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त) शीतल, श्रेयान्स, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान।

१६१—चुल्लहिमवंत-सिहरीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णव-वत्तीसे जोयणसए एगं अट्ठत्तीसइ भागं जोयणस्स किंचि विसेसाहियाओ आयामेणं पण्णत्ता।

क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वतों की जीवाएं चौवीस-चौवीस हजार नौ सौ वत्तीस योजन और एक योजन के अड़तीस भागों में से एक भाग से कुछ अधिक (२४९३२$\frac{1}{38}$ साधिक) लम्वी कही गई है।

१६२—चउवीसं देवट्ठाणा सइंदया पण्णत्ता, सेसा अहमिंदा अनिंदा अपुरोहिआ।

चौवीस देवस्थान इन्द्र-सहित कहे गये हैं। शेष देवस्थान इन्द्र-रहित, पुरोहित-रहित हैं और वहां के देव अहमिन्द्र कहे जाते हैं।

विवेचन—जो चौवीस देवस्थान इन्द्र-सहित कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं—दश जाति के भवन-वासी देवों के दश स्थान, आठ जाति के व्यन्तर देवों के आठ स्थान, पाँच प्रकार के ज्योतिष्क देवों के पांच स्थान और सौधर्मादि कल्पवासी देवों का एक स्थान। इस प्रकार ये सव मिलकर (१०+८+५+१=२४) चौवीस होते हैं। इन सभी स्थानों में राजा-प्रजा आदि जैसी व्यवस्था है, अत: उनके अधिपतियों को इन्द्र कहा जाता है। किन्तु नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमानों में राजा प्रजा आदि की कल्पना नहीं है, किन्तु वहाँ के सभी देव समान ऐश्वर्य एवं वैभववाले हैं, वे सभी अपने को 'अहम्+इन्द्र:' 'मैं इन्द्र हूँ' इस प्रकार अनुभव करते हैं, इसलिए वे 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं और इसी कारण उन चौदह ही स्थानों को अनिन्द्र (इन्द्र-रहित) और अपुरोहित (पुरोहित-रहित) कहा गया है। यह अपुरोहित शब्द उपलक्षण है, अत: जहाँ इन्द्र होता है, वहाँ उसके साथ सामानिक, त्रायस्त्रिंश, आत्म-रक्षक, पुरोहित और लोकपालादि भी होते हैं। किन्तु जहाँ इन्द्र की कल्पना नहीं है, उन देवस्थानों को 'अनिन्द्र, अपुरोहित' आदि शब्दों से कहा गया है।

१६३—उत्तरायणगते णं सूरिए चउवीसंगुलिए पोरिसिछायं णिव्वत्तइत्ता णं णिअट्टत्ति। गंगा-सिंधूओ णं महाणदीओ पवहे सातिरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ते। रत्ता-रत्तवतीओ णं महाणदीओ पवाहे सातिरेगे चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ते।

उत्तरायण-गत सूर्य चौवीस अंगुलवाली पौरुषी छाया को करके कर्क संक्रान्ति के दिन सर्वाभ्यन्तर मंडल से निवृत्त होता है, अर्थात् दूसरे मंडल पर आता है। गंगा-सिन्धु महानदियाँ प्रवाह

(उद्गम-)स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तार वाली कही गई हैं। [इसी प्रकार] रक्ता-रक्तवती महानदियाँ प्रवाह-स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तारवाली कही गई हैं।

१६४—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं ठिई चउवीसं पलिओवमाइं पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है।

१६५—हेट्ठिम-उवरिमगेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा णीससंति वा। तेसि णं देवाणं चउवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। वे देव चौबीस अर्धमासों (बारह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को चौबीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौबीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ चतुर्विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पंचविंशतिस्थानक समवाय

१६६— पुरिम-पच्छिमगाणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— ईरिआसमिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोयपाणभोयणं आदाण-भंड-मत्तणिक्खेवणासमिई ५, अणुवीतिभासणया कोहविवेगे लोभविवेगे भयविवेगे हासविवेगे ५, उग्गहअणुण्णवणया उग्गहसीमजाणणया सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया साहारणभत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया ५, इत्थी-पसु-पंडगसंसत्तगसयणासणवज्जणया इत्थीकहविवज्जणया इत्थीणं इंदियाण-

मालोयणवज्जणया पुव्वरय-पुव्व-कीलिआणं अणणुसरणया पणीताहारविवज्जणया ४, सोइंदियरागोवरई चक्खिदियरागोवरई घाणिंदियरागोवरई जिब्भिदियरागोवरई फासिंदियरागोवरई ५।

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के (द्वारा उपदिष्ट) पंचयाम की पच्चीस भावनाएं कही गई हैं। जैसे—[प्राणातिपात-विरमण या अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएं—] १. ईर्यासमिति, २. मनोगुप्ति, ३. वचनगुप्ति, ४ आलोकितपान-भोजन, ५. आदानभांड-मात्रनिक्षेपणासमिति। [मृषावाद-विरमण या सत्य महाव्रत की पांच भावनाएं—] १. अनुवीचिभाषण, २. क्रोध-विवेक, ३. लोभ-विवेक, ४. भय-विवेक, ५. हास्य-विवेक। [अदत्तादान-विरमण या अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएं—] १. अवग्रह-अनुज्ञापनता, २. अवग्रहसीम-ज्ञापनता, ३. स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणता, ४. साधर्मिक अवग्रह-अनुज्ञापनता, ५. साधारण भक्तपान-अनुज्ञाप्य परिभुंजनता, [मैथुन-विरमण या ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएं—] १. स्त्री-पशु-नपुंसक-संसक्त शयन-आसन वर्जनता, २. स्त्रीकथाविवर्जनता, ३. स्त्री इन्द्रिय-[मनोहराङ्ग] आलोकनवर्जनता, ४. पूर्वरत-पूर्वक्रीडा-अननुस्मरणता, ५. प्रणीत-आहार-विवर्जनता। [परिग्रह-वेरमण महाव्रत की पांच भावनाएं—] १. श्रोत्रेन्द्रिय-रागोपरति, २. चक्षुरिन्द्रिय-रागोपरति. ३. घ्राणेन्द्रिय-रागोपरति, ४. जिह्वेन्द्रिय-रागोपरति, और ५. स्पर्शनेन्द्रिय-रागोपरति।

विवेचन—मध्य के बाईस तीर्थंकरों के शासन में पंच महाव्रत के स्थान पर चातुर्याम धर्म प्रचलित था, अतएव यहाँ प्रथम और चरम तीर्थंकर का ग्रहण किया गया है। आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव और चरम तीर्थंकर वर्धमान स्वामी ने जिन पंचयाम व्रतों का उपदेश दिया तथा उनकी रक्षा के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाओं के चिन्तन, मनन और आचरण करने का भी विधान किया है। यावज्जीवन के लिए स्वीकृत अहिंसा महाव्रत तभी सुरक्षित रह सकता है जब कि भूमि पर दृष्टि रख कर जीवों की रक्षा करते हुए गमन किया जाए, मन की चंचलता पर नियन्त्रण रखा जाए, बोलते समय नियन्त्रण रखते हुए हित, मित, प्रिय वचन बोले जाएं, सूर्य से प्रकाशित स्थान पर भली भाँति देख-शोध कर खान-पान किया जाए और वस्त्र-पात्र आदि को उठाते और रखते समय सावधानी रखी जाए। ये ही प्रथम महाव्रत की पांच भावनाएं हैं।

सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए आवश्यक है कि खूब सोच-विचार करके बोला जाए, क्रोध का त्याग किया जाए, लोभ का त्याग किया जाए, भय का त्याग किया जाए, और हास-परिहास का त्याग किया जाए। विचार किये विना बोलने से असत्य वचन का मुख से निकलना सम्भव है, क्रोध के आवेश में भी प्रायः असत्य वचन मुख से निकल जाते हैं, लोभ से तो मनुष्य प्रायः झूठ बोलते ही हैं, भय से भी व्यक्ति असत्य बोल जाता है और हँसी में भी दूसरे को अपमानित करने या उसका मजाक उड़ाने के लिए असत्य बोलना प्रायः देखा जाता है। अतः सत्य महाव्रत की पूर्ण रक्षा के लिए अनुवीचिभाषण और क्रोध, लोभ, भय और हास्य का परित्याग आवश्यक है।

अचौर्य महाव्रत की रक्षा के लिए आवश्यक है कि किसी भी वस्तु को ग्रहण करने से पहले उसके स्वामी से अनुज्ञा या स्वीकृति प्राप्त कर ली जाए, अपनी सीमा या मर्यादा के ज्ञानपूर्वक ही वस्तु ग्रहण की जाए, स्वयं याचना करके वस्तु ग्रहण की जाए, अपने साधर्मिकों को आहार-पानी के लिए आमन्त्रण देकर खान-पान किया जाए और याचना करके लाये हुए भक्त-पानादि को गुरुजनों के आगे निवेदन कर और उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर आहार किया जाए। संस्कृतटीकाकार ने परिभुंजनता की

व्याख्या करते हुए अथवा कह कर उसका निवास अर्थ भी किया है, जिसका अभिप्राय यह है कि जिस स्थानक या उपाश्रय आदि में निवास किया जाए, उसके स्वामी से स्वीकृति प्राप्त करके ही निवास किया जाए।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की रक्षा के लिए स्त्री, पशु, नपुंसक दुराचारी मनुष्यों के सम्पर्क वाले स्थान पर सोने या बैठने का त्याग किया जाए, स्त्रियों की राग-वर्धक कथाओं का और उनके मनोहर अंगो-पांगों को देखने का त्याग किया जाए, पूर्वकाल में स्त्री के साथ भोगे हुए भोगों को और काम-क्रीड़ाओं को याद न किया जाए तथा पौष्टिक गरिष्ठ और रस-बहुल आहार-पान का त्याग किया जाए।

परिग्रह-त्याग महाव्रत की रक्षा के लिए पाँचों इन्द्रियों के शब्दादि इष्ट विषयों में राग का और अनिष्ट विषयों में द्वेष का त्याग आवश्यक है।

इन भावनाओं के करने पर ही उक्त महाव्रत स्थिर और दृढ़ रह सकते हैं, अन्यथा नहीं। अत: उक्त भावनाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्र में भी उक्त व्रतों की २५ भावनाएं कही गई हैं, किन्तु श्वे० और दि० सम्मत पाठों में तीसरे अचौर्य महाव्रत की भावनाओं में कुछ अन्तर है, प्रकरण-संगत होने एवं कुछ महत्त्वपूर्ण होने से उनका यहाँ निर्देश किया जाता है—

श्वे० तत्त्वार्थाधिगम भाष्य के अनुसार—

१. अनुवीचि-अवग्रह-याचन—हिंसादि दोषों से रहित निर्दोप अवग्रह का ग्रहण करना और उसी की याचना करना।

२. अभीक्ष्णावग्रहयाचन—निरन्तर उसी प्रकार से ग्रहण और याचन करना।

३. एतावदित्यवग्रहावधारण—मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है, ऐसा कह कर उतनी ही वस्तु को और भक्त-पान को ग्रहण करना।

४. समानधार्मिकों से अवग्रह-याचन—अपने ही समान समाचारी वालों से याचना करना और उन्हीं के पदार्थों को ग्रहण करना।

५. अनुज्ञापित पान-भोजन—अनुज्ञा या स्वीकृति मिलने पर भोजन-पान करना।

दि० तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार—

१. शून्यागार-आवास—जिनका कोई स्वामी नहीं रहा है और जो सर्वसाधारण लोगों के ठहरने के लिए घोषित कर दिये गये हैं, ऐसे सूने घर, मठ आदि में निवास करना।

२. विमोचितावास—जिन घरों के स्वामियों को राजा आदि ने निकाल कर देश से बाहर कर दिया और उन्हें सर्वसाधारण के रहने या ठहरने के लिए घोषित कर दिया ऐसे घरों में निवास करना।

३, परोपरोधाकरण—जहाँ स्वयं निवास कर रहे हों, उस स्थान पर यदि कोई साधर्मी ठहरने को आवे तो उसे मना नहीं करना।

४. भैक्ष्यशुद्धि—भिक्षा-सम्बन्धी सर्व दोषों और अन्तरायों को टाल भिक्षा ग्रहण करना।

५. सधर्माविसंवाद—साधर्मी जनों से विसंवाद या कलह नहीं करना।

१६७—मल्ली णं अरहा पणवीसं धणुइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

सव्वे वि दीहवेयड्ढपव्वया पणवीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । पणवीसं पणवीसं गाउआणि उव्विद्धेणं पण्णत्ता ।

दोच्चाए णं पुढवीए पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

मल्ली अर्हन् पच्चीस धनुष ऊंचे थे ।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत पच्चीस धनुष ऊंचे कहे गये हैं । तथा वे पच्चीस कोश भूमि में गहरे कहे गये हैं ।

दूसरी पृथिवी में पच्चीस लाख नारकावास कहे गये हैं ।

१६८—आयारस्स णं भगवओ सचूलिआयस्स पणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

सत्थपरिण्णा[1] लोगविजओ[2] सीओसणीअ[3] सम्मत्तं[4] ।
आवंति[5] धुय[6] विमोह[7] उवहाण[8] सुयं महपरिण्णा[9] ॥१॥
पिंडेसण[10] सिज्जिरि[11] आ[12] भासज्झयणा[13] य वत्थ[14] पाएसा[15] ।
उग्गहपडिमा[16] सत्तिक्कसत्तया[17-23] भावण[24] विमुत्ती[25] ॥२॥
णिसीहज्झयणं पणुवीसइमं ।

चूलिका-सहित भगवद्-आचाराङ्ग सूत्र के पच्चीस अध्ययन कहे गये हैं । जैसे—१ शस्त्र-परिज्ञा, २ लोकविजय, ३ शीतोष्णीय, ४ सम्यक्त्व, ५ आवन्ती, ६ धूत, ७ विमोह, ८ उपधानश्रुत, ९ महापरिज्ञा, १० पिण्डैषणा, ११ शय्या, १२ ईर्या, १३ भाषाध्ययन, १४ वस्त्रैषणा, १५ पात्रैषणा, १६ अवग्रहप्रतिमा, १७-२३ सप्तैकक (१७ स्थान, १८ निषीधिका, १९ उच्चारप्रस्रवण, २० शब्द, २१ रूप, २२ परक्रिया, २३ अन्योन्य क्रिया) २४ भावना अध्ययन और २५ विमुक्ति अध्ययन ॥१-२ ॥

अन्तिम विमुक्ति अध्ययन निशीथ अध्ययन सहित पच्चीसवाँ है ।

१६९—मिच्छादिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए णं संकिलिट्ठपरिणामे णामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपयडीओ णिबंधति—तिरियगतिनामं १, विगलिंदियजातिनामं २, ओरालियसरीरणामं ३, तेअगसरीरणामं ४, कम्मणसरीरनामं ५, हुंडगसंठाणनामं ६, ओरालिअसरीरंगोवंगणामं ७, छेवट्ठ-संघयणनामं ८, वण्णनामं ९, गंधनामं १०, रसनामं ११, फासनामं १२, तिरिआणुपुव्विनामं १३, अगुरुलहुनामं १४, उवघायनामं १५, तसनामं १६, बादरनामं १७, अपज्जत्तयनामं १८, पत्तेयसरीर-नामं १९, अथिरनामं २०, असुभनामं २१, दुभगनामं २२, अणादेज्जनामं २३, अजसोकित्तिनामं २४, निम्माणनामं २५ ।

संक्लिष्ट परिणामवाले अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) जीव नामकर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियों को बांधते हैं । जैसे—१ तिर्यग्गतिनाम, २ विकलेन्द्रिय जातिनाम, ३ औदारिकशरीरनाम, ४ तैजसशरीरनाम, ५ कार्मणशरीरनाम, ६ हुंडकसंस्थान नाम, ७ औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, ८ सेवार्त्तसंहनननाम, ९ वर्णनाम १० गन्धनाम, ११ रसनाम १२ स्पर्शनाम, १३ तिर्यंचानुपूर्वीनाम, १४ अगुरुलघुनाम, १५ उपघातनाम, १६ त्रसनाम, १७ वादर-नाम, १८ अपर्याप्तकनाम, १९ प्रत्येकशरीरनाम, २० अस्थिरनाम, २१ अशुभनाम, २२ दुर्भगनाम, २३ अनादेयनाम, २४ अयशस्कीर्त्तिनाम और २५ निर्माणनाम ।

विवेचन—अत्यन्त संक्लेश परिणामों से युक्त मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक विकलेन्द्रिय जीव नामकर्म की उक्त २५ प्रकृतियों को बाँधता है। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। अत: जब कोई जीव द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक के योग्य उक्त प्रकृतियों का बन्ध करेगा, तब वह विकलेन्द्रियजातिनाम के स्थान पर द्वीन्द्रियजाति नामकर्म का बन्ध करेगा। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय या चतुरिन्द्रिय जाति के योग्य प्रकृतियां को बाँधने वाला त्रीन्द्रिय या चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म का बन्ध करेगा। इसका कारण यह है कि जातिनाम कर्म के ५ भेदों में विकलेन्द्रिय जाति नाम का कोई भेद नहीं है। प्रस्तुत सूत्र में पच्चीस-पच्चीस संख्या के अनुरोध से और द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियों के तीन वार उक्त प्रकृतियों के कथन के विस्तार के भय से 'विकलेन्द्रिय' पद का प्रयोग किया गया है।

१७०—गंगा-सिंधूओ णं महानदीओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं पवातेण पडंति। रत्ता-रत्तावईओ णं महाणदीओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं मकरमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं पवातेण पडंति।

गंगा-सिन्धु महानदियाँ पच्चीस कोश पृथुल (मोटी) घड़े के मुख-समान मुख में प्रवेश कर और मकर (मगर) के मुख की जिह्वा के समान पनाले से निकल कर मुक्तावली हार के आकार से प्रपातद्रह में गिरती हैं। इसी प्रकार रक्ता-रक्तवती महानदियाँ भी पच्चीस कोश पृथुल घड़े के मुख समान मुख में प्रवेश कर और मकर के मुख की जिह्वा के समान पनाले से निकलकर मुक्तावली-हार के आकार से प्रपातद्रह में गिरती हैं।

विवेचन—क्षुल्लक हिमवंत कुलाचल या वर्षधरपर्वत के ऊपर स्थित पद्मद्रह के पूर्वी तोरण द्वार से गंगा महानदी और पश्चिमी तोरणद्वार से सिन्धुमहानदी निकलती है। इसी प्रकार शिखरी कुलाचल के ऊपर स्थित पुंडरीकद्रह के पूर्वी तोरणद्वार से रक्तामहानदी और पश्चिमी तोरणद्वार से रक्तवती महानदी निकलती है। ये चारों ही महानदियाँ द्रहों से निकल कर पहले पाँच-पाँच सौ योजन पर्वत के ऊपर ही वहती हैं। तत्पश्चात् गंगा-सिन्धु भरतक्षेत्र की ओर दक्षिणाभिमुख होकर और रक्ता-रक्तवती ऐरवतक्षेत्र की ओर उत्तराभिमुख होकर भूमि पर अवस्थित अपने-अपने नाम वाले गंगाकूट आदि प्रपात कूटों में गिरती हैं। पर्वत से गिरने के स्थान पर उनके निकलने के लिए एक बड़ा वज्रमयी पनाला बना हुआ है उसका मुख पर्वत की ओर घड़े के मुख समान गोल है और भरतादि क्षेत्रों की ओर मकर के मुख की लम्बी जीभ के समान है। तथा पर्वत से नीचे भूमि पर गिरती हुई जलधारा मोतियों के सहस्रों लड़ीवाले हार के समान प्रतीत होती है। यह जलधारा पच्चीस कोश या सवा छह योजन चौड़ी होती है।

१७१—लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता।

लोकविन्दुसार नामक चौदहवें पूर्व के वस्तुनामक पच्चीस अर्थाधिकार कहे गये हैं।

१७२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभापृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं महातमः प्रभापृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है।

१७३—मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा; तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पणवीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं पणवीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। वे देव पच्चीस अर्धमासों (साढ़े बारह मासों) के बाद आन-प्राण या श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों के पच्चीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पच्चीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ पंचविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षड्विंशतिस्थानक समवाय

१७४—छव्वीसं दसकप्पववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता, तं जहा—दस दसाणं, छ कप्पस्स, दस ववहारस्स।

दशासूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध) कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र के छव्वीस उद्देशनकाल कहे गये हैं। जैसे—दशासूत्र के दश, कल्पसूत्र के छह और व्यवहारसूत्र के दश।

विवेचन—आगम या शास्त्र की वाचना देने के काल को उद्देशन-काल कहते हैं। जिस श्रुतस्कन्ध अथवा अध्ययन में जितने अध्ययन या उद्देशक होते हैं, उनके उद्देशनकाल या अवसर भी उतने ही होते हैं।

१७५—अभवसिद्धियाणं जीवाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तमोहणिज्जं, सोलस कसाया, इत्थीवेदे पुरिसवेदे नपुंसकवेदे हासं अरति रति भयं सोगं दुगुंछा।

अभव्यसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के छव्वीस कर्मांश (प्रकृतियाँ) सत्ता में कहे गये हैं। जैसे—१ मिथ्यात्व मोहनीय, १६ सोलह कषाय, १८ स्त्रीवेद, १९ पुरुष वेद, २० नपुंसकवेद, २१ हास्य, २२ अरति, २३ रति, २४ भय, २५ शोक और २६ जुगुप्सा।

विवेचन—दर्शनमोह का जब कोई जीव सर्वप्रथम उपशमन करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, तब वह अनादिकाल से चले आ रहे दर्शनमोहनीय कर्म के तीन विभाग करता है। तब वह चारित्र-मोह के उक्त पच्चीस भेदों के साथ अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला होता है। परन्तु अभव्य जीव कभी सम्यग्दर्शन को प्राप्त ही नहीं करते, अतः अनादि मिथ्यात्व के वे तीन विभाग भी नहीं कर पाते हैं। इससे उनके सदा ही मोहनीय कर्म की छव्वीस प्रकृतियाँ ही सत्ता में रहती हैं। मिश्र और सम्यक्त्वमोहनीय की सत्ता उनमें नहीं होती।

१७६—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थे-गइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति छव्वीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं महातमःप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति छव्वीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति छव्वीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प में रहनेवाले कितनेक देवों की स्थिति छव्वीस पल्योपम कही गई है।

१७७—मज्झिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा छव्वीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं छव्वीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छव्वीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति छव्वीस सागरोपम कही गई है। जो देव मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति छव्वीस सागरोपम कही गई है। वे देव छव्वीस अर्धमासों (तेरह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के छव्वीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छव्वीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्वदुःखों का अन्त करेंगे।

॥ षड्विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तविंशतिस्थानक-समवाय

१७८—सत्तावीसं अणगारगुणा पण्णत्ता, तं जहा— पाणाइवायाओ वेरमणं १, मुसावायाओ वेरमणं २, अदिन्नादाणाओ वेरमणं ३, मेहुणाओ वेरमणं ४, परिग्गहाओ वेरमणं ५, सोइंदियनिग्गहे ६, चक्खिंदियनिग्गहे ७, घाणिंदियणिग्गहे ८, जिब्भिंदियणिग्गहे ९, फासिंदियनिग्गहे १०, कोहविवेगे

११, माणविवेगे १२, मायाविवेगे १३, लोभविवेगे १४, भावसच्चे १५, करणसच्चे १६, जोगसच्चे १७, खमा १८, विरागया १६, मणसमाहरणया २०, वयसमाहरणया २१, कायसमाहरणया २२, णाण-संपण्णया २३, दंसणसंपण्णया २४, चरित्तसंपण्णया २५, वेयण अहियासणया २६. मारणंतिय अहिया-सणया २७।

अनगार-निर्ग्रन्थ साधुओं के सत्ताईस गुण हैं। जैसे—१ प्राणातिपात-विरमण, २ मृषावाद-विरमण, ३ अदत्तादान-विरमण, ४ मैथुन-विरमण, ५ परिग्रह-विरमण, ६ श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह, ७ चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह, ८ घ्राणेन्द्रिय-निग्रह, ६ जिह्वेन्द्रिय-निग्रह, १० स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह, ११ क्रोध-विवेक, १२ मानविवेक, १३. मायाविवेक, १३ लोभविवेक, १५ भावसत्य, १६ करणसत्य, १७ योग-सत्य, १८ क्षमा, १६ विरागता, २० मनःसमाहरणता, २१ वचनसमाहरणता, २२ कायसमाहरणता, २२ ज्ञानसम्पन्नता, २४ दर्शनसम्पन्नता, २५ चारित्रसम्पन्नता, २६ वेदनातिसहनता और मारणान्तिकातिसहनता।

विवेचन—अनगार श्रमणों के प्राणातिपात-विरमण आदि पाँच महाव्रत मूलगुण हैं। शेष बाईस उत्तर गुण हैं, जिनमें पाँचों इन्द्रियों के विषयों का निग्रह करना, अर्थात् उनकी उच्छृंखल प्रवृत्ति को रोकना और क्रोधादि चारों कषायों का विवेक अर्थात् परित्याग करना आवश्यक है। अन्तरात्मा की शुद्धि को भावसत्य कहते हैं। वस्त्रादि का यथाविधि प्रतिलेखन करते पूर्ण सावधानी रखना करणसत्य है। मन वचन काय की प्रवृत्ति समीचीन रखना अर्थात् तीनों योगों की शुद्धि या पवित्रता रखना योगसत्य है। मन में भी क्रोध भाव न लाना, द्वेष और अभिमान का भाव जागृत न होने देना क्षमा गुण है। किसी भी वस्तु में आसक्ति नहीं रखना विरागता गुण है। मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति का निरोध करना उनकी समाहरणता कहलाती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से सम्पन्नता तो साधुओं के होना ही चाहिए। शीत-उष्ण आदि वेदनाओं को सहना वेदनातिसहनता है। मरण के समय सर्व प्रकार के परीषहों और उपसर्गों को सहना, तथा किसी व्यक्ति के द्वारा होने वाले मारणान्तिक कष्ट को सहते हुए भी उस पर कल्याणकारी मित्र की बुद्धि रखना मारणा-न्तिकातिसहनता है।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि दिगम्बर-परम्परा में साधुओं के २८ गुण कहे गये हैं। उनमें पाँच महाव्रत और पाँचों इन्द्रियों का निरोध रूप १० गुण तो उपर्युक्त ही हैं। शेष १८ गुण इस प्रकार हैं—पाँच समितियों का परिपालन, तीन गुप्तियों का पालन, सामायिक वन्दनादि छह आवश्यक करना, अचेल रहना, एक बार भोजन करना, केश लुंच करना, और स्नान-दन्त-धावनादि का त्याग करना।

दोनों में एक अचेल या नग्न रहने का ही मौलिक अन्तर है। शेष गुणों का परस्पर एक-दूसरे गुणों में अन्तर्भाव हो जाता है।

१७६—जंबुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति। एगमेगे णं णक्खत्तमासे सत्तावीसाहिं राइंदियाहिं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपनामक इस द्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर शेष नक्षत्रों के द्वारा मास आदि

का व्यवहार प्रवर्तता है। (अभिजित् नक्षत्र का उत्तराषाढा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में प्रवेश हो जाता है।) नक्षत्र मास सत्ताईस दिन-रात की प्रधानता वाला कहा गया है। अर्थात् नक्षत्र मास में २७ दिन होते हैं। सौधर्म-ईशान कल्पों में उनके विमानों की पृथिवी सत्ताईस सौ (२७००) योजन मोटी कही गई है।

१८०—वेयगसम्मत्तबंधोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीसं उत्तरपगडीओ संत-कम्मंसा पण्णत्ता। सावणसुद्धसत्तमीसु णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं नियट्टेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवट्टमाणे चारं चरइ।

वेदक सम्यक्त्व के वन्ध रहित जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस प्रकृतियों की सत्ता कही गई है। श्रावण सुदी सप्तमी के दिन सूर्य सत्ताईस अंगुल की पौरुपी छाया करके दिवस क्षेत्र (सूर्य से प्रकाशित आकाश) की ओर लौटता हुआ और रजनी क्षेत्र (प्रकाश की हानि करता और अन्धकार को) वढ़ता हुआ संचार करता है।

१८१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है। अधस्तन सप्तम महातमःप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है।

१८२—मज्झिम-उवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तावीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं सत्तावीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चि-स्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। जो देव मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। ये देव सत्ताईस अर्धमासों (साढ़े तेरह मासों) के वाद आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों को सत्ताईस हजार वर्षों के वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्ताईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, वुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ सप्तविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टाविंशतिस्थानक-समवाय

१८३—अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—मासिआ आरोवणा १, सपंचराई मासिआ आरोवणा २, सदसराईमासिया आरोवणा ३। [सपण्णरसराइ मासिआ आरोवणा ४, सवीसइ राई मासिआ आरोवणा ५, सपंचवीसराइ मासिआ आरोवणा ६,] एवं चेव दो मासिआ आरोवणा सपंचराई दो मासिया आरोवणा० ६। एवं तिमासिया आरोवणा ६, चउमासिया आरोवणा ६, उवघाइया आरोवणा २५, अणुवघाइया आरोवणा २६, कसिणा आरोवणा २७, अकसिणा आरोवणा २८। एतावता आयारपकप्पे एताव ताव आयरियव्वे।

आचारप्रकल्प अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ मासिकी आरोपणा, २ सपंचरात्रिमासिकी आरोपणा, ३ सदशरात्रिमासिकी आरोपणा, ४ सपंचदशरात्रिमासिकी आरोपणा, सविंशतिरात्रिकोमासिकी आरोपण, ५ सपंचविंशतिरात्रिमासिकी आरोपणा ६ इसी प्रकार द्विमासिकी आरोपणा, ६ त्रिमासिकी आरोपणा, ६ चतुर्मासिकी आरोपणा, ६ उपघातिका आरोपणा, २५ अनुपघातिका आरोपण, २६ कृत्स्ना आरोपणा २७ अकृत्स्ना आरोपणा, २८ यह अट्ठाईस प्रकार का आचारप्रकल्प है। यह तब तक आचरणीय है। (जब तक कि आचरित दोष की शुद्धि न हो जावे।)

विवेचन—'आचार' नाम का प्रथम अंग है, उसके अध्ययन-विशेष को प्रकल्प कहते हैं। उसका दूसरा नाम 'निशीथ' भी है। उसमें अज्ञान, प्रमाद या आवेश आदि से साधु-साध्वी द्वारा किये गये अपराधों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। इसको आचारप्रकल्प कहने का कारण यह है कि प्रायश्चित्त देकर साधु-साध्वी को उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप आचार में पुनः स्थापित किया जाता है। इस आचारप्रकल्प या प्रायश्चित्त के प्रकृत सूत्र में अट्ठाईस भेद कहे गये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

किसी अनाचार का सेवन करने पर साधु को उसकी शुद्धि के लिए कुछ दिनों तक तप करने का प्रायश्चित्त दिया गया। उस प्रायश्चित्त की अवधि पूर्ण होने के पहले ही उसने पूर्व से भी बड़ा कोई अपराध कर डाला, जिसकी शुद्धि एक मास के तप से होना संभव हो, तब उसे उसी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में एक मास के वहन-योग्य जो मास भर का प्रायश्चित्त दिया जाता है, उसे मासिकी आरोपणा कहते हैं।१।

कोई ऐसा अपराध करे जिसकी शुद्धि पाँच दिन-रात्रि के तप के साथ एक मास के तप से हो, तो ऐसे दोषी को उसी पूर्वदत्त प्रायश्चित्त में पांच दिन-रात सहित एक मास के प्रायश्चित्त को पूर्वदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित करने को 'सपंचरात्रमासिकी आरोपणा' कहते हैं।१।

इसी प्रकार पूर्व से भी कुछ बड़ा अपराध होने पर दश दिन-रात्रि सहित एक मास के तप द्वारा शुद्धि योग्य प्रायश्चित्त देने को सदशरात्रमासिकी आरोपणा कहते हैं।३। इसी प्रकार मास सहित पन्द्रह, बीस और पच्चीस दिन-रात्रि के वहन योग्य प्रायश्चित्त मासिक प्रायश्चित्त में आरोपण करने पर क्रमशः पंचदशरात्रमासिकी आरोपणा ४, विंशतिरात्र मासिकी आरोपणा ५ और पंचविंशतिरात्रमासिकी ६, आरोपणा होती है।

जैसे मासिकी आरोपणा के छह भेद ऊपर बतलाये गये हैं, उसी प्रकार द्विमासिकी आरोपणा

के ६ भेद, त्रिमासिकी आरोपणा के ६ भेद और चतुर्मासिकी आरोपणा के ६ भेद जानना चाहिए। इस प्रकार चारों मासिकी आरोपणा के २४ भेद हो जाते हैं।

२७ दिन-रात के दिये गये प्रायश्चित्तों को लघुमासिक प्रायश्चित्त कहते हैं। ऐसे डेढ़ मास के प्रायश्चित्त को लघु द्विमासिक प्रायश्चित्त कहते हैं। ऐसे लघु त्रिमासिक, लघु चतुर्मासिक प्रायश्चित्तों को उपघातिक आरोपणा कहते हैं। यही पच्चीसवीं आरोपणा है। इसे उद्घातिक आरोपणा भी कहते हैं।

पूरे मास भर के प्रायश्चित्त को गुरुमासिक कहा जाता है। इसके साथ अर्धपक्ष, पक्ष आदि के प्रायश्चित्तों के आरोपण करने को अनुपघातिक आरोपण कहते हैं। इसे अनुद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त भी कहा जाता है। यह छब्बीसवीं आरोपणा है।

साधु ने जितने अपराध किये हैं, उन सब के प्रायश्चित्तों को एक साथ देने को कृत्स्ना आरोपणा कहते हैं। यह सत्ताईसवीं आरोपणा है।

बहुत अधिक अपराध करनेवाले साधु को भी प्रायश्चित्तों को सम्मिलित करके छह मास के तपप्रायश्चित्त को अकृत्स्ना आरोपणा कहते हैं। यह अट्ठाईसवीं आरोपणा है। इसमें सभी छोटे-मोटे प्रायश्चित्त सम्मिलित हो जाते हैं।

कितना ही बड़ा अपराध किया हो, पर छह मास से अधिक तप का विधान नहीं है।

१८४—भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेइगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मत्तवेयणिज्जं मिच्छत्तवेयणिज्जं सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जं, सोलस कसाया, णव णोकसाया।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता कही गई है। जैसे—सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय, सम्यग्मिथ्यात्व वेदनीय, सोलह कषाय और नौ नोकषाय।

१८५—आभिणिबोहियणाणे अट्ठावीसविहे पण्णत्ते। तं जहा—सोइंदियअत्थावग्गहे १, चक्खिदियअत्थावग्गहे २, घाणिंदियअत्थावग्गहे ३, जिब्भिदियअत्थावग्गहे ४, फासिंदियअत्थावग्गहे ५, णोइंदियअत्थावग्गहे ६, सोइंदियवंजणोग्गहे ७, घाणिंदियवंजणोग्गहे ८, जिब्भिदियवंजणोवग्गहे ९, फासिंदियवंजणोग्गहे १०। सोतिंदियईहा ११, चक्खिदियईहा १२, घाणिंदियईहा १३, जिब्भिदियईहा १४, फासिंदियईहा १५, णोइंदियईहा १६, सोतिंदियावाए १७, चक्खिदियावाए १८, घाणिंदियावाए १९, जिब्भिदियावाए २०, फासिंदियावाए २१, णोइंदियावाए २२। सोइंदियधारणा २३, चक्खिदियधारणा २४, घाणिंदियधारणा २५, जिब्भिदियधारणा २६, फासिंदियधारणा २७, णोइंदियधारणा २८।

आभिनिबोधिकज्ञान अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, ३ घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ४ जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ६ नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह, ७ श्रोत्रेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, ८ घ्राणेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, ९ जिह्वेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, १० स्पर्शनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, ११ श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, १२ चक्षुरिन्द्रिय-ईहा, १३ घ्राणेन्द्रिय-ईहा, १४ जिह्वेन्द्रिय-ईहा, १५ स्पर्शनेन्द्रिय-ईहा, १६ नोइन्द्रिय-ईहा, १७ श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, १८ चक्षुरि–

न्द्रिय-अवाय, १९ घ्राणेन्द्रिय-अवाय, २० जिह्वेन्द्रिय-अवाय, २१ स्पर्शनेन्द्रिय-अवाय, २२ नोइन्द्रिय-अवाय, २३ श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, २४ चक्षुरिन्द्रिय-धारणा २५ घ्राणेन्द्रिय-धारणा, २६ जिह्वेन्द्रिय-धारणा, २७ स्पर्शनेन्द्रिय-धारणा और २८ नोइन्द्रिय-धारणा।

विवेचन—किसी भी पदार्थ के जानने के पूर्व 'कुछ है' इस प्रकार का अस्पष्ट आभास होता है, उसे दर्शन कहते हैं। उसके तत्काल वाद ही कुछ स्पष्ट किन्तु अव्यक्त वोध होता है, उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं। उसके वाद 'यह मनुष्य है' ऐसा जो सामान्य वोध या ज्ञान होता है, उसे अर्थावग्रह कहते हैं। तत्पश्चात् यह जानने की इच्छा होती है कि यह मनुष्य वंगाली है, या मद्रासी ? इस जिज्ञासा को ईहा कहते हैं। पुन: उसकी वोली आदि सुनकर निश्चय हो जाता है कि यह वंगाली नहीं किन्तु मद्रासी है, इस प्रकार के निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। यही ज्ञान जव दृढ हो जाता है, तव धारणा कहलाता है। कालान्तर में वह स्मरण का कारण वनता है। स्मरण स्वयं भी धारणा का एक अंग है। इनमें व्यंजनावग्रह मन और चक्षुरिन्द्रिय से नहीं होता क्योंकि इनसे देखी या सोची-विचारी गई वस्तु व्यक्त ही होती है, किन्तु व्यंजनावग्रह ज्ञान अव्यक्त या अस्पष्ट होता है। अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के चारों ज्ञान पांचों इन्द्रियों और छठे मन से होते हैं। अत: चार को छह से गुणित करने पर (४×६=२४) चौवीस भेद अर्थावगह सम्वन्धी होते हैं। और व्यंजनावग्रह मन और चक्षु के सिवाय शेष चार इन्द्रियों से होता है अत: उन चार भेदों को ऊपर के चौवीस भेदों में जोड़ देने पर (२४+४=२८) अट्ठाईस भेद आभिनिवोधिक ज्ञान के होते हैं। इसको ही मतिज्ञान कहते हैं। मन को 'नोइन्द्रिय' कहा जाता है, क्योंकि वह वाहर दिखाई नहीं देता। पर सोच-विचार से उसके अस्तित्व का सभी को परिज्ञान अवश्य होता है।

१८६—ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

ईशान कल्प में अट्ठाईस लाख विमानावास कहे गये हैं।

२८७—जीवे णं देवगइम्मि वंधमाणे नामस्स कम्मस्स अट्ठावीसं उत्तरपगडीओ निवंधति। तं जहा—देवगतिनामं १, पंचिंदियजातिनामं २, वेउव्वियसरीरनामं ३, तेयगसरीरनामं ४, कम्मण-सरीरनामं ५, समचउरंससंठाणनामं ६, वेउव्वियसरीरंगोवंगणामं ७, वण्णनामं ८, गंधनामं ९, रस-नामं १०, फासनामं ११, देवाणुपुव्विनामं १२, अगुरुलहुनामं १३, उवघायनामं १४, पराघायनामं १५, उस्सासनामं १६, पसत्थविहायोगइनामं १७, तसनामं १८, वायरनामं १९, पज्जत्तनामं २०, पत्तेयसरीरनामं २१, थिराथिराणं सुभासुभाणं आएज्जाणाएज्जाणं दोण्हं अण्णयरं एगं नामं २४, निवंधइ। [सुभगनामं २५, सुस्सरनामं २६,] जसोकित्तिनामं २७, निम्माणनामं २८।

देवगति को वांधने वाला जीव नामकर्म की अट्ठाईस उत्तरप्रकृतियों को वांधता है। वे इस प्रकार हैं—१ देवगतिनाम, २ पंचेन्द्रियजातिनाम, ३ वैक्रियकशरीरनाम, ४ तैजसशरीरनाम, ५ कार्मण-शरीरनाम, ६ समचतुरस्रसंस्थाननाम, ७ वैक्रियकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, ८ वर्णनाम, ९ गन्धनाम, १० रसनाम, ११ स्पर्शनाम, १२ देवानुपूर्वीनाम, १३ अगुरुलघुनाम, १४ उपघातनाम, १५ पराघातनाम, १६ उच्छ्वासनाम, १७ प्रशस्त विहायोगतिनाम, १८ त्रसनाम, १९ वादरनाम, २० पर्याप्तनाम, २१ प्रत्येकशरीरनाम, २२ स्थिर-अस्थिर नामों में से कोई एक, २३ शुभ-अशुभनामों में से कोई एक, २४

आदेय-अनादेय नामों में से कोई एक, [२५ सुभगनाम, २६ सुस्वरनाम, २७ यशस्कीर्त्तिनाम और २८ निर्माण नाम, इन अट्ठाईस प्रकृतियों को बांधता है ।

१८८—एवं चेव नेरइया वि, णाणत्तं—अप्पसत्थविहायोगइनामं हुंडगसंठाणणामं अथिरणामं दुब्भगणामं असुभणामं दुस्सरणामं अणादिज्जणामं अजसोकित्तिणामं निम्माणणामं ।

इसी प्रकार नरकगति को बांधनेवाला जीव भी नामकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों को वांधता है । किन्तु वह प्रशस्त प्रकृतियों के स्थान पर अप्रशस्त प्रकृतियों को वांधता है । जैसे—अप्रशस्त विहायोगतिनाम, हुंडकसंस्थाननाम, अस्थिरनाम, दुर्भगनाम, अशुभनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम. अयशस्कीर्त्तिनाम और निर्माणनाम । इतनी मात्र ही भिन्नता है ।

१८९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकिों की स्थिति अट्ठाईस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमारों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है । सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है ।

१९०—उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । जे देवा मज्झिमउवरिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । ते णं देवा अट्ठावीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा । तेसि णं देवाणं अट्ठावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानवासी देवों की जघन्य स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की है । जो देव मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति अट्ठाईस सागरोपम होती है । वे देव अट्ठाईस अर्धमासों (चौदह मासों) के वाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को अट्ठाईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

॥ अष्टाविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनत्रिंशत्स्थानक-समवाय

१६१—एगूणतीसइविहे पावसुयपसंगे णं पण्णत्ते। तं जहा—भोमे उप्पाए सुमिणे अंतलिक्खे अंगे सरे वंजणे लक्खणे ८। भोमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सुत्ते वित्ती वत्तिए ३। एवं एक्केक्कं तिविहं २४। विकहाणुजोगे २५, विज्जाणुजोगे २६, मंताणुजोगे २७, जोगाणुजोगे २८, अण्णतित्थियपवत्ताणुजोगे २९।

पापश्रुतप्रसंग-पापों के उपार्जन करनेवाले शास्त्रों का श्रवण-सेवन उनतीस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. भौमश्रुत—भूमि के विकार, भूकम्प आदि का फल-वर्णन करनेवाला निमित्त-शास्त्र।
२. उत्पातश्रुत—अकस्मात् रक्त-वर्षा आदि उत्पातों का फल बतानेवाला निमित्तशास्त्र।
३. स्वप्नश्रुत—शुभ-अशुभ स्वप्नोंका फल वर्णन करनेवाला श्रुत।
४. अन्तरिक्षश्रुत—आकाश में विचरनेवाले ग्रहों के युद्धादि होने, ताराओं के टूटने और सूर्यादि के ग्रहण, ग्रहोपराग आदि का फल बतानेवाला श्रुत।
५. अंगश्रुत—शरीर के विभिन्न अंगों के हीनाधिक होने और नेत्र, भुजा आदि के फड़कने का फल बताने वाला श्रुत।
६. स्वरश्रुत—मनुष्यों, पशु-पक्षियों एवं अकस्मात् काष्ठ-पाषाणादि-जनित स्वरों (शब्दों) को सुनकर उनके फल को बतानेवाला श्रुत।
७. व्यंजनश्रुत—शरीर में उत्पन्न हुए तिल, मषा आदि का फल बतानेवाला श्रुत।
८. लक्षणश्रुत—शरीर में उत्पन्न चक्र, खड्ग, शंखादि चिह्नों का फल बतानेवाला श्रुत।

भौमश्रुत तीन प्रकार का है, जैसे—सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक।

१. अंगश्रुत के सिवाय अन्य मतों की सहस्र पद-प्रमाण रचना को सूत्र कहते हैं।
२. उन्हीं सूत्रों की लक्ष-पद-प्रमाण व्याख्या को वृत्ति कहते हैं।
३. उस वृत्ति की कोटि-पद-प्रमाण व्याख्या को वार्त्तिक कहते हैं।

इन सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक के भेद से उपर्युक्त भौम, उत्पात आदि आठों प्रकार के श्रुत के (८ × ३ = २४) चौवीस भेद हो जाते हैं।

अंगश्रुत की लक्ष-पद-प्रमाण रचना को सूत्र, कोटि-पद प्रमाण व्याख्या को वृत्ति और अपरिमित पद-प्रमाण व्याख्या को वार्त्तिक कहा जाता है।

२५. विकथानुयोगश्रुत—स्त्री, भोजन-पान आदि की कथा करनेवाले तथा अर्थ-काम आदि की प्ररूपणा करनेवाले पाकशास्त्र अर्थशास्त्र, कामशास्त्र आदि।

२६. विद्यानुयोगश्रुत—रोहिणी, प्रज्ञप्ति, अंगुष्ठप्रसेनादि विद्याओं को साधने के उपाय और उनका उपयोग बतानेवाले शास्त्र।

२७. मंत्रानुयोगश्रुत—लौकिक प्रयोजनों के साधक अनेक प्रकार के मंत्रों का साधन बताने वाला मंत्रशास्त्र।

२८. योगानुयोगश्रुतं—स्त्री-पुरुषादि को वश में करनेवाले अंजन, गुटिका आदि के निरूपक शास्त्र।

२९. अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग—कपिल, बौद्ध आदि मतावलम्बियों के द्वारा रचित शास्त्र।

उक्त प्रकार के शास्त्रों के पढ़ने और सुनने से मनुष्यों का मन इन्द्रिय-विषयों की ओर आकृष्ट होता है और भौम, स्वप्न आदि का फलादि बतानेवाले शास्त्रों के पठन-श्रवण से मुमुक्षु साधक अपनी साधना से भटक सकता है, अतः मोक्षाभिलाषी जनों के लिए उक्त सभी प्रकार के शास्त्रों को पापश्रुत कहा गया है।

१९२—आसाढे णं मासे एगूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ता। [एवं चेव] भद्दवए णं मासे, कत्तिए णं मासे, पोसे णं मासे, फग्गुणे णं मासे, वइसाहे णं मासे। चंददिणे णं एगूणतीसं मुहुत्ते सातिरेगे मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते।

आषाढ़ मास रात्रि-दिन की गणना की अपेक्षा उनतीस रात-दिन का कहा गया है। [इसी प्रकार] भाद्रपदमास, कार्त्तिक मास, पौषमास, फाल्गुणमास, और वैशाखमास भी उनतीस-उनतीस रात-दिन के कहे गये हैं। चन्द्र दिन मुहूर्त्त गणना की अपेक्षा कुछ अधिक उनतीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

१९३—जीवे णं पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मदिट्ठी तित्थकरनामसहिआओ णामस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपगडीओ णिबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ।

प्रशस्त अध्यवसान (परिणाम) से युक्त सम्यग्दृष्टि भव्य जीव तीर्थंकरनाम-सहित नामकर्म की उनतीस प्रकृतियों को बांधकर नियम से वैमानिक देवों में देवरूप से उत्पन्न होता है।

१९४—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति उनतीस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की होती है।

१९५—उवरिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणतीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं एगूणतीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणतीसभवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम कही गई है। जो देव उपरिम-अस्ततन ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम कही गई है। वे देव उनतीस अर्धमासों (साढ़े चौदह मासों) के वाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के उनतीस हजार वर्षों के वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उनतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

।। एकोनत्रिशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिशत्स्थानक समवाय

१९६—तीसं मोहणीयठाणा पण्णत्ता। तं जहा—

जे यावि तसे पाणे वारिमज्झे विगाहिआ।
उदएण क्कम्म मारेइ महामोहं पकुव्वइ ।।१।।
सीसावेढेण जे केई आवेढेइ अभिक्खणं।
तिव्वासुभसमायारे महामोहं पकुव्वइ ।।२।।
पाणिणा संपिहित्ताणं सोयमावरिय पाणिणं।
अंतोनदंतं मारेई महामोहं पकुव्वइ ।।३।।
जायतेयं समारब्भ बहुं आरंभिया जणं।
अंतोधूमेण मारेई महामोहं पकुव्वइ ।।४।।
सिस्सम्मि [सीसम्मि] जे पहणइ उत्तमंगम्मि चेयसा।
विभज्ज मत्थयं फाले महामोहं पकुव्वइ ।।५।।
पुणो पुणो पणिधिए हणित्ता उवहसे जणं।
फलेणं अदुवा दंडेणं महामोहं पकुव्वइ ।।६।।
गूढायारी निगूहिज्जा मायं मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाई महामोहं पकुव्वइ ।।७।।
धंसेइ जो अभूएणं अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुम कासि त्ति महामोहं पकुव्वइ ।।८।।
जाणमाणो परिसओ सच्चामोसाणि भासइ।
अक्खीणझंझे पुरिसे महामोहं पकुव्वइ ।।९।।
अणागयस्स नयवं दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं किच्चा णं पडिबाहिरं ।।१०।।
उवगसंतं पि झंपित्ता पडिलोमाइं वग्गुहिं।
भोगभोगे वियारेई मोहमोहं पकुव्वइ ।।११।।
अकुमारभूए जे केई कुमारभूए त्ति हं वए।
इत्थीहिं गिद्धे वसए महामोहं पकुव्वइ ।।१२।।

अबंभयारी जे केई बंभयारि त्ति हं वए।
गद्दहे व्व गवां मज्झे विस्सरं नयई नदं ॥१३॥
अप्पणो अहिए बाले मायामोसं बहुं भसे।
इत्थीविसयगेहीए महामोहं पकुव्वइ ॥१४॥१२॥
जं निस्सिए उव्वहइ जससाहिगमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि महामोहं पकुव्वइ ॥१५॥१३॥
ईसरेण अदुवा गामेणं अणिसरे ईसरीकए।
तस्स संपयहीणस्स सिरी अतुलमागया ॥१६॥
ईसादोसेण आविट्ठे कलुसाविलचेयसे।
जे अंतरायं चेएइ महामोहं पकुव्वइ ॥१७॥१४॥
सप्पी जहा अंडउडं भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइं पसत्थारं महामोहं पकुव्वइ ॥१८॥१५॥
जे नायगं च रट्ठस्स नेयारं निगमस्स वा।
सेट्ठिं बहुरवं हंता महामोहं पकुव्वइ ॥१९॥१६॥
बहुजणस्स णेयारं दीवं ताणं च पाणिणं।
एयारिसं नरं हंता महामोहं पकुव्वइ ॥२०॥१७॥
उवट्ठियं पडिविरयं संजयं सुतवस्सियं।
वुक्कम्म धम्माओ भंसेइ महामोहं पकुव्वइ ॥२१॥१८॥
तहेवाणंतणाणीणं जिणाणं वरदंसिणं।
तेसिं अवण्णवं बाले महामोहं पकुव्वइ ॥२२॥१९॥
नेयाउअस्स मग्गस्स दुट्ठे अवयरई बहुं।
तं तिप्पयंतो भावेइ महामोहं पकुव्वइ ॥२३॥२०॥
आयरिय-उवज्झाएहिं सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले महामोहं पकुव्वइ ॥२४॥२१॥
आयरिय-उवज्झायाणं सम्मं नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे महामोहं पकुव्वइ ॥२५॥२२॥
अबहुस्सुए य जे केई सुएणं पविकत्थई।
सज्झायवायं वयइ महामोहं पकुव्वइ ॥२६॥२३॥
अतवस्सीए य जे केई तवेण पविकत्थइ।
सव्वलोयपरे तेणे महामोहं पकुव्वइ ॥२७॥२४॥
साहारणट्ठा जे केई गिलाणम्मि उवट्ठिए।
पभू ण कुणई किच्चं मज्झं पि से न कुव्वइ ॥२८॥
सढे नियडीपण्णाणे कलुसाउलचेयसे।
अप्पणो य अबोही य महामोहं पकुव्वइ ॥२९॥२५॥
जे कहाहिगरणाइं संपउंजे पुणो पुणो।
सव्वतित्थाण भेयाणं महामोहं पकुव्वइ ॥३०॥२६॥

जे य आहम्मिए जोए संपउंजे पुणो पुणो।
सहाहेउं सहीहेउं महामोहं पकुव्वइ ॥३१॥२७॥
जे अ माणुस्सए भोए अदुवा पारलोइए।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ महामोहं पकुव्वइ ॥३२॥२८॥
इड्ढी जुई जसो वण्णो देवाणं वल-वीरियं।
तेसिं अवण्णवं वाले महामोहं पकुव्वइ ॥३३॥२९॥
अपस्समाणो पस्सामि देवे जक्खे य गुज्झगे।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी महामोहं पकुव्वइ ॥३४॥३०॥

मोहनीय कर्म वंधने के कारणभूत तीस स्थान कहे गये हैं। जैसे—

(१) जो कोई व्यक्ति स्त्री-पशु आदि त्रस-प्राणियों को जल के भीतर प्रविष्ट कर और पैरों को नीचे दवा कर जलके द्वारा उन्हें मारता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है। यह पहला मोहनीय स्थान है।

(२) जो व्यक्ति किसी मनुष्य आदि के शिर को गीले चर्म से वेष्टित करता है, तथा निरन्तर तीव्र अशुभ पापमय कार्यो को करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है। यह दूसरा मोहनीय स्थान है।

(३) जो कोई किसी प्राणी के मुख को हाथ से वन्द कर उसका गला दवाकर घुरघुराते हुए उसे मारता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। वह तीसरा मोहनीय स्थान है।

(४) जो कोई अग्नि को जला कर, या अग्नि का महान् आरम्भ कर किसी मनुष्य-पशु आदि को उसमें जलाता है या अत्यन्त धूमयुक्त अग्निस्थान में प्रविष्ट कर धुंए से उसका दम घोंटता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। यह चौथा मोहनीय स्थान है।

(५) जो किसी प्राणी के उत्तमाङ्ग—शिर पर मुद्गर आदि से प्रहार करता है अथवा अति संक्लेश युक्त चित्त से उसके माथे को फरसा आदि से काटकर मार डालता है, वह महामहोनीय कर्म का वन्ध करता है। वह पाँचवां मोहनीय स्थान है।

(६) जो कपट करके किसी मनुष्य का घात करता है और आनन्द से हंसता है, किसी मंत्रित फल को खिला कर अथवा डंडे से मारता है, वह महामोहनीय कर्म का वंध करता है। यह छठा मोहनीय स्थान है।

(७) जो गूढ़ (गुप्त) पापाचरण करने वाला मायाचार से अपनी माया को छिपाता है, असत्य वोलता है और सूत्रार्थ का अपलाप करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। यह सातवाँ मोहनीय स्थान है।

(८) जो अपने किये ऋपिघात आदि घोर दुष्कर्म को दूसरे पर लादता है, अथवा अन्य व्यक्ति के द्वारा किये गये दुष्कर्म को किसी दूसरे पर आरोपित करता है कि तुमने यह दुष्कर्म किया है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। यह आठवाँ मोहनीय स्थान है।

(९) 'यह वात असत्य है' ऐसा जानता हुआ भी जो सभा में सत्यामृषा (जिसमें सत्यांश कम

है और असत्यांश अधिक है ऐसी) भाषा बोलता है और लोगों से सदा कलह करता रहता है, वह महा मोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह नवां मोहनीय स्थान है।

(१०) राजा का जो मंत्री—अमात्य-अपने ही राजा की दारों (स्त्रियों) को, अथवा धन आने के द्वारों को विध्वंस करके और अनेक सामन्त आदि को विक्षुब्ध करके राजा को अनधिकारी करके राज्य पर, रानियों पर या राज्य के धन-आगमन के द्वारों पर स्वयं अधिकार जमा लेता है. वह महा-मोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह दशवाँ मोहनीय स्थान है।

(११) जिसका सर्वस्व हरण कर लिया है, वह व्यक्ति भेंट आदि लेकर और दीन वचन बोलकर अनुकूल बनाने के लिए यदि किसी के समीप आता है, ऐसे पुरुष के लिए जो प्रतिकूल वचन बोलकर उसके भोग-उपभोग के साधनों को विनष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। यह ग्यारहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१२) जो पुरुष स्वयं अकुमार (विवाहित) होते हुए भी 'मैं कुमार-अविवाहित हूँ,' ऐसा कहता है और स्त्रियों में गृद्ध (आसक्त) और उनके अधीन रहता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है। जो कोई पुरुष स्वयं अब्रह्मचारी होते हुए भी 'मैं ब्रह्मचारी हूं' ऐसा बोलता है, वह बैलों के मध्य में गधे के समान विस्वर (बेसुरा) नाद (शब्द) करता—रेंकता—हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। तथा उक्त प्रकार से जो अज्ञानी पुरुष अपना ही अहित करनेवाले मायाचार-युक्त बहुत अधिक असत्य वचन बोलता है और स्त्रियों के विषयों में आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह बारहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१३) जो राजा आदि की ख्याति से अर्थात् 'यह उस राजा का या मंत्री आदि का सगा-सम्बन्धी है' ऐसी प्रसिद्धि से अपना निर्वाह करता हो अथवा आजीविका के लिए जिस राजा के आश्रय में अपने को समर्पित करता है, अर्थात् उसकी सेवा करता है और फिर उसी के धन में लुब्ध होता है, वह पुरुष महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ॥ १५ ॥ यह तेरहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१४) किसी ऐश्वर्यशाली पुरुष के द्वारा, अथवा जन-समूह के द्वारा कोई अनीश्वर (ऐश्वर्य-रहित निर्धन) पुरुष ऐश्वर्यशाली बना दिया गया, तब उस सम्पत्ति-विहीन पुरुष के अतुल (अपार) लक्ष्मी हो गई। यदि वह ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित होकर, कलुषता-युक्त चित्त से उस उपकारी पुरुष के या जन-समूह के भोग-उपभोगादि में अन्तराय या व्यवच्छेद डालने का विचार करता है, तो वह महा-मोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १६-१७ ॥ यह चौदहवाँ महामोहनीय स्थान है।

(१५) जैसे सर्पिणी (नागिन) अपने ही अंडों को खा जाती है, उसी प्रकार जो पुरुष अपना ही भला करने वाले स्वामी का, सेनापति का अथवा धर्मपाठक का विनाश करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १८ ॥ वह पन्द्रहवां मोहनीय स्थान है।

(१६) जो राष्ट्र के नायक का या निगम (विशाल नगर) के नेता का अथवा, महायशस्वी सेठ का घात करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१९॥ यह सोलहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१७) जो बहुत जनों के नेता का, दीपक के समान उनके मार्ग-दर्शक का और इसी प्रकार के अनेक जनों के उपकारी पुरुष का घात करता है, वह महामहोनीय कर्म का वन्ध करता है ॥ २० ॥ यह सत्तरहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१८) जो दीक्षा लेने के लिए उपस्थित या उद्यत पुरुष को, भोगों से विरक्त जन को, संयमी मनुष्य को या परम तपस्वी व्यक्ति को अनेक प्रकारों से भड़का कर धर्म से भ्रष्ट करता है, वह महा-मोहनीयकर्म का वन्ध करता है ।। २१ ।। यह अठारहवाँ मोहनीय स्थान है ।

(१९) जो अज्ञानी पुरुष अनन्तज्ञानी अनन्तदर्शी जिनेन्द्रों का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २२ ।। यह उन्नीसवाँ मोहनीयस्थान है ।

(२०) जो दुष्ट पुरुष न्याय-युक्त मोक्षमार्ग का अपकार करता है और वहुत जनों को उससे च्युत करता है, तथा मोक्षमार्ग की निन्दा करता हुआ अपने आपको उससे भावित करता है, अर्थात् उन दुष्ट विचारों से लिप्त करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २२ ।। यह वीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२१) जो अज्ञानी पुरुष, जिन-जिन आचार्यों और उपाध्यायों से श्रुत और विनय धर्म को प्राप्त करता है, उन्हीं की यदि निन्दा करता है, अर्थात् ये कुछ नहीं जानते, ये स्वयं चारित्र से भ्रष्ट हैं, इत्यादि रूप से उनकी वदनामी करता है, तो वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २४ ।। यह इक्कीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२२) जो आचार्य, उपाध्याय एवं अपने उपकारक जनों को सम्यक् प्रकार से सन्तृप्त नहीं करता है अर्थात् सम्यक् प्रकार से उनकी सेवा नहीं करता है, पूजा और सन्मान नहीं करता है, प्रत्युत अभिमान करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २५ ।। यह वाईसवाँ मोहनीयस्थान है ।

(२३) अवहुश्रुत (अल्प श्रुत का धारक) जो पुरुष अपने को वड़ा शास्त्रज्ञानी कहता है, स्वाध्यायवादी और शास्त्र-पाठक वतलाता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २६ ।। यह तेईसवां मोहनीय स्थान है ।

(२४) जो अतपस्वी (तपस्या-रहित) होकर के भी अपने को महातपस्वी कहता है, वह सब से महा चोर (भाव-चोर होने के कारण) महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। २७ ।। यह चौवीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२५) उपकार (सेवा-शुश्रूषा) के लिए किसी रोगी, आचार्य या साधु के आने पर स्वयं समर्थ होते हुए भी जो 'यह मेरा कुछ भी कार्य नहीं करता है', इस अभिप्राय से उसकी सेवा आदि कर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता है, इस मायाचार में पटु, वह शठ (धूर्त्त) कलुषितचित्त होकर (भवान्तर में) अपनी अवोधि (रत्नत्रयधर्म की अप्राप्ति) का कारण वनता हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २८-२९ ।। यह पच्चीसवाँ महामोहनीय स्थान है ।

(२६) जो पुनः पुनः (वार-वार) स्त्री-कथा, भोजन-कथा आदि विकथाएं करके मंत्र-यंत्रादि का प्रयोग करता है या कलह करता है, और संसार से पार उतारनेवाले सम्यग्दर्शनादि सभी तीर्थों के भेदन करने के लिए प्रवृत्ति करता है. वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। ३० ।। यह छव्वीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२७) जो अपनी प्रशंसा के लिए मित्रों के निमित्त अधार्मिक योगों का अर्थात् वशीकरणादि प्रयोगों का वार-वार उपयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ।। ३१ ।। यह सत्ताईसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२८) जो मनुष्य-सम्बन्धी अथवा पारलौकिक देवभव सम्बन्धी भोगों में तृप्त नहीं होता हुआ बार-बार उनकी अभिलाषा करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। ३२ ।। यह अट्ठाईसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२९) जो अज्ञानी देवों की ऋद्धि (विमानादि सम्पत्ति), द्युति (शरीर और आभूषणों की कान्ति), यश और वर्ण (शोभा) का, तथा उनके बल-वीर्य का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। ३३ ।। यह उनतीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(३०) जो देवों, यक्षों और गुह्यकों (व्यन्तरों) को नहीं देखता हुआ भी 'मैं उनको देखता हूं' ऐसा कहता है, वह जिनदेव के समान अपनी पूजा का अभिलाषी अज्ञानी पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। ३४ ।। यह तीसवां मोहनीय स्थान है ।

१९७—थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

स्थविर मंडितपुत्र तीस वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध हुए, यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए ।

१९८—एगमेगे णं अहोरत्ते तीसमुहुत्ते मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते । एएसि णं तीसाए मुहुत्ताणं तीसं नामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा—रोद्दे सत्ते मित्ते वाऊ सुपीए ५, अभिचंदे माहिंदे पलंबे बंभे सच्चे १०, आणंदे विजए विस्ससेणे पायावच्चे उवसमें १५, ईसाणे तट्ठे भाविअप्पा वेसमणे वरुणे २०, सतरिसभे गंधव्वे अग्गिवेसायणे आतवे आवत्ते २५, तट्ठवे भूमहे रिसभे सव्वट्ठसिद्धे रक्खसे ३० ।

एक-एक अहोरात्र (दिन-रात) मुहूर्त्त-गणना की अपेक्षा तीस मुहूर्त्त का कहा गया है । इन तीस मुहूर्त्तों के तीस नाम हैं । जैसे—१ रौद्र, २ शक्त, ३ मित्र, ४ वायु, ५ सुपीत, ६ अभिचन्द्र, ७ माहेन्द्र, ८ प्रलम्ब, ९ ब्रह्म, १० सत्य, ११ आनन्द, १२ विजय, १३ विश्वसेन, १४ प्राजापत्य, १५ उपशम, १६ ईशान, १७ तष्ट, १८ भावितात्मा, १९ वैश्रवण २० वरुण, २१ शतऋषभ, २२ गन्धर्व, २३ अग्नि वैशायन, २४ आतप, २५ आवर्त, २६ तष्टवान, २७ भूमह (महान), २८ ऋषभ, २९ सर्वार्थसिद्ध और ३० राक्षस ।

विवेचन—इन मुहूर्तों की गणना सूर्योदय काल से लेकर क्रम से की जाती है । इनके मध्यवर्ती छह मुहूर्त कभी दिन में अन्तर्भूत होते हैं और कभी रात्रि में होते हैं । इसका कारण यह है कि जब ग्रीष्म ऋतु में अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब वे दिन में गिने जाते हैं और जब शीत काल में रात्रि अठारह मुहूर्त की होती है, तब वे रात्रि में गिने जाते हैं ।

१९९—अरे णं अरहा तीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

अठारहवें अर अर्हन् तीस धनुष ऊंचे थे ।

२००—सहस्सारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तीसं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

सहस्रार देवेन्द्र देवराज के तीस हजार सामानिक देव कहे गये हैं ।

२०१—पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

समणे णं भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

पार्श्व अर्हन् तीस वर्ष तक गृह-वास में रहकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृह-वास में रहकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

२०२—रयणप्पभाए णं पुढवीए तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी में तीस लाख नारकावास हैं।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति तीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति तीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तीस पल्योपम कही गई है।

२०३—उवरिमउवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिममज्झिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम कही कई है। जो देव उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम कही गई है। वे देव तीस अर्धमासों (पन्द्रह मासों) के बाद आन-प्राण और उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के तीस हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकत्रिंशत्स्थानक समवाय

२०५—एकत्तीसं सिद्धाइगुणा पण्णत्ता। तं जहा—खीणे आभिनिबोहियणाणावरणे १, खीणे सुयणाणावरणे २, खीणे ओहिणाणावरणे ३, खीणे मणपज्जवणाणावरणे ४, खीणे केवलणाणावरणे ५,

खीणे चक्खुदंसणावरणे ६, खीणे अचक्खुदंसणावरणे ७, खीणे ओहिदंसणावरणे ८, खीणे केवलदंसणावरणे ९, खीणे णिद्दा १०, खीणे णिद्दाणिद्दा ११, खीणे पयला १२, खीणे पयलापयला १३, खीणे थीणद्धी १४, खीणे सायावेयणिज्जे १५, खीणे असायावेयणिज्जे १६, खीणे दंसणमोहणिज्जे १७, खीणे चरित्तमोहणिज्जे १८, खीणे नेरइआउए १९, खीणे तिरिआउए २०, खीणे मणुस्साउए २१, खीणे देवाउए २२, खीणे उच्चागोए २३, खीणे नीयागोए २४, खीणे सुभणामे २५, खीणे असुभणामे २६, खीणे दाणंतराए २७, खीणे लाभंतराए २८, खीणे भोगंतराए २९, खीणे उवभोगंतराए ३०, खीणे वीरिअंतराए ३१।

सिद्धों के आदि गुण अर्थात् सिद्धत्व पर्याय प्राप्त करने के प्रथम समय में होने वाले गुण इकतीस कहे गये हैं। जैसे—१ क्षीण आभिनिवोधिकज्ञानावरण, २ क्षीणश्रुतज्ञानावरण, ३ क्षीण-अवधिज्ञानावरण, ४ क्षीणमन:पर्यवज्ञानावरण, ५ क्षीणकेवलज्ञानावरण, ६ क्षीणचक्षुदर्शनावरण, ७, क्षीण अचक्षुदर्शनावरण, ८ क्षीण अवधिदर्शनावरण, ९ क्षीण केवलदर्शनावरण, १० क्षीण निद्रा, ११ क्षीण निद्रानिद्रा, १२ क्षीण प्रचला, १३ क्षीण प्रचलाप्रचला, १४ क्षीणस्त्यानर्द्धि, १५ क्षीण साता-वेदनीय, १६ क्षीण असातावेदनीय, १७ क्षीण दर्शनमोहनीय, १८ क्षीण चारित्रमोहनीय, १९ क्षीण नरकायु, २० क्षीण तिर्यगायु, २१ क्षीण मनुष्यायु, २२ क्षीण देवायु, २३ क्षीण उच्चगोत्र, २४ क्षीण नीचगोत्र, २५ क्षीण शुभनाम, २६ क्षीण अशुभनाम, २७ क्षीण दानान्तराय, २८ क्षीण लाभान्तराय, २९ क्षीणभोगान्तराय, ३० क्षीण उपभोगान्तराय और ३१ क्षीण वीर्यान्तराय।

२०६—मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कत्तीसं जोयणसहस्साइं छच्चेव तेवीसे जोयणसए किंचि देसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते। जया णं सूरिए सव्वबाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एकत्तीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ। अभिवड्ढिए णं मासे एक्कत्तीसं सातिरेगाइं राइंदियाइं राइंदियग्गेण पण्णत्ते। आइच्चे णं मासे एक्कत्तीसं राइंदियाइं किंचि विसेसूणाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत धरणी-तल पर परिक्षेप (परिधि) की अपेक्षा कुछ कम इकत्तीस हजार छह सौ तेईस योजन कहा गया है। जब सूर्य सब से बाहरी मंडल में जाकर संचार करता है, तव इस भरत-क्षेत्र-गत मनुष्य को इकत्तीस हजार आठ सौ इकत्तीस और एक योजन के साठ भागों में से तीस भाग (३१८३१$\frac{३०}{६०}$) की दूरी से वह सूर्य दृष्टिगोचर होता है। अभिवर्धित मास में रात्रि-दिवस की गणना से कुछ अधिक इकत्तीस रात-दिन कहे गये हैं। सूर्यमास रात्रि-दिवस की गणना से कुछ विशेष हीन इकत्तीस रात-दिन का कहा गया है।

२०७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति इकत्तीस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति

इकत्तीस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम कही गई है।

२०८—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिआणं देवाणं जहण्णेणं एकत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिम-उवरिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एकत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं एक्कत्तीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कत्तीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की जघन्य स्थिति इकत्तीस सागरोपम कही गई है। जो देव उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति इकत्तीस सागरोपम कही गई है। वे देव इकत्तीस अर्धमासों (साढ़े पन्द्रह मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास निःश्वास लेते हैं। उन देवों के इकत्तीस हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इकत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

॥ एकत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्वात्रिंशत्स्थानक समवाय

२०९—बत्तीसं जोगसंगहा पण्णत्ता। तं जहा—

आलोयण १, निरवलावे २, आवईसु दढधम्मया ३।
अणिस्सिओवहाणे ४, य, सिक्खा ५, निप्पडिकम्मया ६ ॥१॥
अण्णायया अलोभे ८, य, तितिक्खा ९, अज्जवे १०, सुई ११।
सम्मदिट्ठी १२, समाही १३, य, आयारे १४, विणओवए १५ ॥२॥
धिइमई १६, य, संवेगे १७, पणिही १८, सुविहि १९, संवरे २०।
अत्तदोसोवसंहारे २१, सव्वकामविरत्तया २२ ॥३॥
पच्चक्खाणे २३-२४, विउस्सग्गे २५, अप्पमादे २६, लवालवे २७।
झाणसंवरजोगे २८, य, उदए मारणंतिए २९ ॥४॥
संगाणं च परिण्णाया ३०, पायच्छित्तकरणे वि य ३१।
आराहणा य मरणंते ३२, बत्तीसं जोगसंगहा ॥५॥

बत्तीस योग-संग्रह (मोक्ष-साधक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापार) कहे गये हैं। इनके द्वारा मोक्ष की साधना सुचारु रूप से सम्पन्न होती है। वे योग इस प्रकार हैं—

१. आलोचना—व्रत-शुद्धि के लिए शिष्य अपने दोषों की गुरु के आगे आलोचना करे।

२. निरपलाप—शिष्य-कथित दोषों को आचार्य किसी के आगे न कहे।
३. आपत्सु दृढधर्मता—आपत्तियों के आने पर साधक अपने धर्म में दृढ रहे।
४. अनिश्रितोपधान—दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करके तपश्चरण करे।
५. शिक्षा—सूत्र और अर्थ का पठन-पाठन एवं अभ्यास करे।
६. निष्प्रतिकर्मता—शरीरकी सजावट-श्रृंगारादि न करे।
७. अज्ञातता—यश, ख्याति, पूजादि के लिए अपने तप को प्रकट न करे, अज्ञात रखे।
८. अलोभता—भक्त-पान एवं वस्त्र, पात्र आदि में निर्लोभ प्रवृत्ति रखे।
९. तितिक्षा—भूख, प्यास आदि परीषहों को सहन करे।
१०. आर्जव—अपने व्यवहार को निश्छल और सरल रखे।
११ शुचि—सत्य बोलने और संयम-पालने में शुद्धि रखे।
१२. सम्यग्दृष्टि—सम्यग्दर्शन को शंका-कांक्षादि दोषों को दूर करते हुए शुद्ध रखे।
१३. समाधि—चित्त को संकल्प-विकल्पों से रहित शान्त रखे।
१४. आचारोपगत—अपने आचरण को मायाचार रहित रखे।
१५. विनयोपगत—विनय-युक्त रहे, अभिमान न करे।
१६. धृतिमति—अपनी बुद्धि में धैर्य रखे, दीनता न करे।
१७. संवेग—संसार से भय-भीत रहे और निरन्तर मोक्ष की अभिलाषा रखे।
१८. प्रणिधि—हृदय में माया शल्य न रखे।
१९ सुविधि—अपने चारित्र का विधि-पूर्वक सत्-अनुष्ठान अर्थात् सम्यक् परिपालन करे।
२०. संवर—कर्मों के आने के द्वारों (कारणों) का संवरण अर्थात् निरोध करे।
२१. आत्मदोषोपसंहार—अपने दोषों का निरोध करे—दोष न लगने दे।
२२. सर्वकामविरक्तता—सर्व विषयों से विरक्त रहे।
२३. मूलगुण-प्रत्याख्यान—अहिंसादि मूल गुण-विषयक प्रत्याख्यान करे।
२४. उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान—इन्द्रिय-निरोध आदि उत्तर गुण-विषयक प्रत्याख्यान करे।
२५. व्युत्सर्ग—वस्त्र-पात्र आदि बाहरी उपधि और मूर्च्छा आदि आभ्यन्तर उपधि का परित्याग करे।
२६. अप्रमाद—अपने दैवसिक और रात्रिक आवश्यकों के पालन आदि में प्रमाद न करे।
२७. लवालव—प्रतिक्षण अपनी सामाचारी के परिपालन में सावधान रहे।
२८. ध्यान-संवरयोग—धर्म और शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए आस्रव-द्वारों का संवर करे।
२९. मारणान्तिक कर्मोदय के होने पर भी क्षोभ न करे, मनमें शान्ति रखे।
३०. संग-परिज्ञा—संग (परिग्रह) की परिज्ञा करे अर्थात् उसके स्वरूप को जान कर त्याग करे
३१. प्रायश्चित्तकरण—अपने दोषों की शुद्धि के लिए नित्य प्रायश्चित्त करे।
३२. मारणान्तिक-आराधना—मरने के समय संलेखना-पूर्वक ज्ञान-दर्शन, चारित्र और तप की विशिष्ट आराधना करे।

२१०—बत्तीसं देविंदा पण्णत्ता। तं जहा—चमरे बली धरणे भूआणंदे जाव घोसे महाघोसे, चंदे सूरे सक्के ईसाणे सणंकुमारे जाव पाणए अच्चुए।

बत्तीस देवेन्द्र कहे गये हैं। जैसे—१. चमर, २. बली, ३. धरण, ४. भूतानन्द, यावत् (५. वेणुदेव, ६. वेणुदाली, ७. हरिकान्त ८. हरिस्सह, ९. अग्निशिख, १०. अग्निमाणव, ११. पूर्ण, १२. वशिष्ठ, १३. जलकान्त, १४ जलप्रभ, १५. अमितगति, १६. अमितवाहन, १७. वेलम्ब, १८. प्रभंजन) १९ घोष, २०. महाघोष, २१ चन्द्र, २२. सूर्य, २३. शक्र, २४. ईशान, २५. सनत्कुमार, यावत् (२६. माहेन्द्र, २७. ब्रह्म, २८. लान्तक, २९. शुक्र, ३०. सहस्रार) ३१. प्राणत, ३२. अच्युत।

विवेचन—भवनवासी देवों के दश निकाय हैं और प्रत्येक निकाय के दो दो इन्द्र होते हैं, अत: चमर और बली से लेकर घोष और महाघोष तक के बीस इन्द्र भवनवासी देवों के हैं। ज्योतिष्क देवों के चन्द्र और सूर्य ये दो इन्द्र हैं। शेष शक्र आदि दश इन्द्र वैमानिक-देवों के है। व्यन्तर देवों के आठों निकायों के सोलह इन्द्रों की अल्प ऋद्धिवाले होने से यहाँ विवक्षा नहीं की गई है।

२११—कुंथुस्स णं अरहाओ बत्तीसहिआ बत्तीसं जिणसया होत्था।

कुन्थु अर्हत् के बत्तीस अधिक बत्तीस सौ (३२३२) केवलि जिन थे।

२१२—सोहम्मे कप्पे बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
रेवइणक्खत्ते बत्तीसइतारे पण्णत्ते।
बत्तीसतिविहे णट्टे पण्णत्ते।

सौधर्म कल्प में बत्तीस लाख विमानावास कहे गये हैं।
रेवती नक्षत्र बत्तीस तारावाला कहा गया है।
बत्तीस प्रकार के नृत्य कहे गये हैं।

२१३—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति बत्तीसी पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं पृथिवी में कितनेक नारकियों की स्थिति बत्तीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई हैं। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है।

२१४—जे देवा विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं बत्तीसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

जो देव विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उनमें से कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम कही गई है। वे देव बत्तीस अर्धमासों (सोलह मासों)

के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के वत्तीस हजार वर्षों के वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व कर्मों का अन्त करेंगे।

॥ द्वात्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रयस्त्रिंशत्स्थानक समवाय

२१५—तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

१. सेहे राइणियस्स आसन्नं गंता भवइ आसायणा सेहस्स।
२. सेहे राइणियस्स परओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स।
३. सेहे राइणियस्स सपक्खं गंता भवइ आसायणा सेहस्स।
४. सेहे राइणियस्स आसन्नं ठिच्चा भवइ आसायणा सेहस्स जाव।
५ [सेहे रायणियस्स पुरओ ठिच्चा भवइ, आसायणा सेहस्स।
६. सेहे रायणियस्स सपक्खं ठिच्चा भवइ, आसायणा सेहस्स।
७. सेहे रायणियस्स आसन्नं निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।
८. सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।
९. सेहे रायणियस्स सपक्खं निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।
१०. सेहे रायणियस्स सद्धिं बहिया वियारभूमिं निक्खंते समाणे पुव्वामेव सेहतराए आयामेइ पच्छा रायणिए, आसायणा सेहस्स।
११. सेहे रायणिए सद्धिं बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खंते समाणे तत्थ पुव्वामेव सेहतराए आलोएति पच्छा रायणिए, आसायणा सेहस्स।
१२. सेहे रायणियस्स रातो वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो! के सुत्ते? के जागरे? तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अपडिसुणेत्ता भवति, आसायणा सेहस्स।
१३. केइ रायणियस्स पुव्वं संलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवेति पच्छा रायणिए, आयायणा सेहस्स।
१४. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ, पच्छा रायणियस्स, आसायणा सेहस्स।
१५. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेति, पच्छा रायणियस्स, आसायणा सेहस्स।
१६. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वामेव सेहतरागं उवणिमंतेइ, पच्छा रायणियं, आसायणा सेहस्स।
१७. सेहे रायणिएण सद्धिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं रायणियं अणापुच्छित्ता जस्स-जस्स इच्छइ तस्स-तस्स खद्धं-खद्धं दलयइ, आसायणा सेहस्स।

१८. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता रायणिएण सद्धिं आहरेमाणे तत्थ सेहे खद्धं-खद्धं डायं-डायं ऊसढं-ऊसढं रसितं-रसितं मणुण्णं-मणुण्णं मणामं-मणामं निद्धं-निद्धं लुक्खं-लुक्खं आहरेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
१९. सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२०. सेहे रायणियस्स खद्धं-खद्धं वत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२१. सेहे रायणियस्स 'किं' ति वइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२२. सेहे रायणियं 'तुमं' ति वत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२३. सेहे रायणियं तज्जाएण-तज्जाएण पडिभणित्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२४. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स 'इति एवं' ति वत्ता न भवति, आसायणा सेहस्स ।
२५. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स 'नो सुमरसी' ति वत्ता भवति, आसायणा सेहस्स ।
२६. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं अच्छिंदित्ता भवति, आसायणा सेहस्स ।
२७. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स ।
२८. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठिताए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए अव्वोगडाए दोच्चं पि तमेव कहं कहित्ता भवति, आसायणा सेहस्स ।
२९. सेहे रायणियस्स सेज्जा-संथारगं पाएणं संघट्टित्ता, हत्थेणं अणणुण्णवित्ता गच्छति, आसायणा सेहस्स ।
३०. सेहे रायणियस्स सेज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ, आसायणा सेहस्स ।
३१. सेहे रायणियस्स उच्चासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति, आसायणा सेहस्स ।
३२. सेहे रायणियस्स समासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति, आसायणा सेहस्स ।
३३. सेहे राइणियस्स आलवमाणस्स तत्थगए चेव पडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ।

सम्यग्दर्शनादि धर्म की विराधनारूप आशातनाएं तेतीस कही गई हैं । जैसे—

१. शैक्ष (नवदीक्षित या अल्प दीक्षा-पर्यायवाला) साधु रात्निक (अधिक दीक्षा पर्याय वाले) साधु के अति निकट होकर गमन करे । यह शैक्ष की पहली आशातना है ।
२. शैक्ष साधु रात्निक साधु से आगे गमन करे । यह शैक्ष की दूसरी आशातना है ।
३. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ वरावरी से चले । यह शैक्ष की तीसरी आशातना है ।
४. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे खड़ा हो, यह शैक्ष की चौथी आशातना है ।
५. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ वरावरी से खड़ा हो । यह शैक्ष की पाँचवीं आशातना है ।
६. शैक्ष साधु रात्निक साधु के अतिनिकट खड़ा हो । यह शैक्ष की छठी आशातना है ।
७. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे वैठे । यह शैक्ष की सातवीं आशातना है ।
८. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ वरावरी से वैठे । यह शैक्ष की आठवीं आशातना है ।
९. शैक्ष साधु रत्निक साधु के अति समीप वैठे । यह शैक्ष की नवीं आशातना है ।

१०. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ वाहर विचारभूमि को निकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आचमन (शौच-शुद्धि) करे तो यह शैक्ष की दशवीं आशातना है।

११. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ वाहर विचार-भूमि को या विहारभूमि को निकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहिले आलोचना करे और रात्निक पीछे करे तो यह शैक्ष की ग्यारहवीं आशातना है।

१२. कोई साधु रात्निक साधु के साथ पहले से वात कर रहा हो, तव शैक्ष साधु रात्निक साधु से पहिले ही बोले और रात्निक साधु पीछे वोल पावें। यह शैक्ष की वारहवीं आशातना है।

१३. रात्निक साधु रात्रि में या विकाल में शैक्ष से पूछे कि आर्य! कौन सो रहे हैं और कौन जाग रहे हैं? यह सुनकर भी यदि शैक्ष अनसुनी करके कोई उत्तर न दे, तो यह शैक्ष की तेरहवीं आशातना है।

१४. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम लाकर पहिले किसी अन्य शैक्ष के सामने. आलोचना करे पीछे रात्निक साधु के सामने, तो यह शैक्ष की चौदहवीं आशातना है।

१५. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम को लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को दिखलावे, पीछे रात्निक साधु को दिखावे, तो यह शैक्ष की पन्द्रहवीं आशातना है।

१६. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम-आहार लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को भोजन के लिए निमंत्रण दे और पीछे रात्निक साधु को निमंत्रण दे, तो यह शैक्ष की सोलहवीं आशातना है।

१७. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु से विना पूछे जिस किसी को दे, तो यह शैक्ष की सत्तरहवीं आशातना है।

१८. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार लाकर रात्निक साधु के साथ भोजन करता हुआ यदि उत्तम भोज्य पदार्थों को जल्दी-जल्दी वड़े-वड़े कवलों से खाता है, तो यह शैक्ष की अठारहवीं आशातना है।

१९. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष उसे अनसुनी करता है, तो यह शैक्ष की उन्नीसवीं आशातना है।

२०. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर ही वैठे हुए सुनता है तो यह शैक्ष की बीसवीं आशातना है।

२१. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर 'क्या कहा?' इस प्रकार से यदि शैक्ष कहे तो यह शैक्ष की इक्कीसवीं आशातना है।

२२. शैक्ष रात्निक साधु को 'तुम' कह कर (तुच्छ शब्द से) वोले तो यह शैक्ष की वाईसवीं आशातना है।

२३. शैक्ष रात्निक साधु से यदि चप-चप करता हुआ उद्दंडता से वोले तो यह शैक्ष की तेईसवीं आशातना है।

२४. शैक्ष, रात्निक साधु के कथा करते हुए की 'जी हाँ, आदि शब्दों से अनुमोदना न करे तो यह शैक्ष की चौबीसवीं आशातना है।

२५. शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'तुम्हें स्मरण नहीं' इस प्रकार से बोले तो यह शैक्ष की पच्चीसवीं आशातना है।

२६. शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'बस करो' इत्यादि कहे तो यह शैक्ष की छब्बीसवीं आशातना है।

२७. शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय यदि परिषद् को भेदन करे तो यह शैक्ष की सत्ताईसवीं आशातना है।

२८. शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए उस सभा के नहीं उठने पर दूसरी या तीसरी वार भी उसी कथा को कहे तो यह शैक्ष की अट्ठाईस आशातना है।

२९. शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए यदि कथा की काट करे तो यह शैक्ष की उनतीसवीं आशातना है।

२९. शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या-संस्तारक को पैर से ठुकरावे तो यह शैक्ष की उनतीसवीं आशातना है।

३०. शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या या आसन पर खड़ा होता, वैठता-सोता है, तो यह शैक्ष की तीसवीं आशातना है।

३१-३२. शैक्ष यदि रात्निक साधु से ऊंचे या समान आसन पर वैठता है तो यह शैक्ष की आशातना है।

३३. रात्निक के कुछ कहने पर शैक्ष अपने आसन पर वैठा-वैठा उत्तर दे, यह शैक्ष की तेतसवीं आशातना है।

विवेचन—नवीन दीक्षित साधु का कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य, उपाध्याय और दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ साधु का चलते, उठते, वैठते समय उनके द्वारा कुछ पूछने पर, गोचरी करते समय सदा ही उनके विनय-सम्मान का ध्यान रखे। यदि वह अपने इस कर्तव्य में चूकता है, तो उनकी आशातना करता है और अपने मोक्ष के साधनों को खंडित करता है। इसी बात को ध्यान में रख कर ये तेतीस आशातनाएं कही गई हैं। प्रकृत सूत्र में चार आशातनाओं का निर्देश कर शेष की यावत् पद से सूचना की गई है। उनका दशाश्रुत के अनुसार स्वरूप-निरूपण किया गया है।

२१६—चमरस्स णं असुरिंदस्स णं असुररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए एक्कमेक्कवाराए तेत्तीसं-तेत्तीसं भोमा पण्णत्ता। महाविदेहे णं वासे तेत्तीसं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचि विसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की राजधानी चमरचंचा नगरी में प्रत्येक द्वार के बाहर तेतीस-तेतीस भौम (नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान) कहे गये हैं। महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) कुछ अधिक तेतीस हजार योजन विस्तार वाला है। जब सूर्य सर्ववाह्य मंडल से भीतर की ओर तीसरे मंडल पर आकर संचार करता है, तब वह इस भरत क्षेत्र-गत मनुष्य के कुछ विशेष कम तेतीस हजार योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है।

२१७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए काल-महाकाल-रोरुय-महारोरुएसु नेरइयाणं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरो-

वमाइं ठिई पण्णत्ता। अप्पइट्ठाणनरए नेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितनेक नारकों की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवीं पृथिवी के काल, महाकाल, रौरुक और महारौरुक नारकावासों के नारकों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है। उसी सातवीं पृथिवी के अप्रतिष्ठान नरक में नारकों की अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित पूरी) तेतीस सागरोपम स्थिति कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है।

२१८—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिएसु विमाणेसु उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं तेत्तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेत्तीसं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

विजय-वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानों में देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है। जो देव सर्वार्थसिद्ध नामक पाँचवें अनुत्तर महाविमान में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति पूरे तेतीस सागरोपम कही गई है। वे देव तेतीस अर्धमासों (साढ़े सोलह मासों) के बाद आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। उन देवों के तेतीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव तेतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देव तो नियम से एक भव ग्रहण करके मुक्त होते हैं और विजयादि शेष चार विमानों के देवों में से कोई एक भव ग्रहण करके मुक्त होता है और कोई दो मनुष्यभव ग्रहण करके मुक्त होता है।

॥ त्रयस्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुस्त्रिंशत्स्थानक समवाय

२१९—चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता। तं जहा—अवट्ठिए केस-मंसु-रोम-नहे १, निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी, गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ३, पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे ४, पच्छन्ने आहार-नीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा ५, आगासगयं चक्कं ६, आगासगयं छत्तं ७, आगासगयाओ सेयवरचामराओ ८, आगासफालिआमयं सपायपीढं सीहासणं ९, आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडि-

आभिराओ इंदज्झओ पुरओ गच्छइ १०, जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं जक्खा देवा संछन्नपत्त-पुप्फ-पल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ ११, ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजाइ, अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ १२, बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३, अहोसिरा कंटया भवंति १४, उउविवरीया सुहफासा भवंति १५, सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता-संपमज्जिज्जइ १६, जुत्तफुसिएणं मेहेण य निहयरयरेणूयं किज्जइ १७, जल-थलयभासुरपभूतेणं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १८, अमणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं अवकरिसो भवइ १९, मणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं पाउब्भावो भवइ २०, पच्चाहरओ वि य णं हिययगमणीओ जोयणनीहारी सरो २२, भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ २२, सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पअ-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाणं अप्पणो हिय-सिव-सुहय-भासत्ताए परिणमइ २३, पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किंनर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति २४, अण्णउत्थियपावयणिया वि य णं आगया वंदंति २५, आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पलिवयणा हवंति २६, जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवइ २७, मारी न भवइ २८, सचक्कं न भवइ २९, परचक्कं न भवइ ३०, अइवुट्ठी न भवइ ३१, अणावुट्ठी न भवइ ३२, दुब्भिक्खं न भवइ ३३, पुव्वुप्पण्णा वि य णं उप्पाइया वाहीओ खिप्पमेव उवसमंति ३४।

बुद्धों के अर्थात् तीर्थंकर भगवन्तों के चौतीस अतिशय कहे गये हैं। जैसे—

१. अवस्थित केश, श्मश्रु, रोम, नख होना, अर्थात् नख और केश आदि का नहीं बढ़ना।
२. निरामय—रोगादि से रहित, निरुपलेप-मल रहित निर्मल देह-लता होना।
३. रक्त और मांस का गाय के दूध के समान श्वेत वर्ण होना।
४. पद्म-कमल के समान सुगन्धित उच्छ्वास निःश्वास होना।
५. मांस-चक्षु से अदृश्य प्रच्छन्न आहार और नीहार होना।
६. आकाश में धर्मचक्र का चलना।
७. आकाश में तीन छत्रों का घूमते हुए रहना।
८. आकाश में उत्तम श्वेत चामरों का ढोला जाना।
९. आकाश के समान निर्मल स्फटिकमय पादपीठयुक्त सिंहासन का होना।
१०. आकाश में हजार लघु पताकाओं से युक्त इन्द्रध्वज का आगे-आगे चलना।
११. जहाँ-जहाँ भी अरहन्त भगवन्त ठहरते या बैठते हैं, वहाँ-वहाँ यक्ष देवों के द्वारा पत्र, पुष्प, पल्लवों से व्याप्त, छत्र, ध्वजा, घंटा और पताका से युक्त श्रेष्ठ अशोक वृक्ष का निर्मित होना।
१२. मस्तक के कुछ पीछे तेजमंडल (भामंडल) का होना, जो अन्धकार में भी (रात्रि के समय भी) दशों दिशाओं को प्रकाशित करता है।

१३. जहाँ भी तीर्थंकरों का विहार हो, उस भूमिभाग का वहुसम (एकदम समतल) और रमणीय होना।
१४. विहार-स्थल के कांटों का अधोमुख हो जाना।
१५. सभी ऋतुओं का शरीर के अनुकूल सुखद स्पर्श वाली होना।
१६. जहाँ तीर्थंकर विराजते हैं, वहाँ की एक योजन भूमि का शीतल, सुखस्पर्शयुक्त सुगन्धित पवन से सर्व ओर संप्रमार्जन होना।
१७. मन्द, सुगन्धित जल-विन्दुओं से मेघ के द्वारा भूमि का धूलि-रहित होना।
१८. जल और स्थल में खिलने वाले पाँच वर्ण के पुष्पों से घुटने प्रमाण भूमिभाग का पुष्पोपचार होना, अर्थात् आच्छादित किया जाना।
१९. अमनोज्ञ (अप्रिय) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अभाव होना।
२०. मनोज्ञ (प्रिय) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का प्रादुर्भाव होना।
२१. धर्मोपदेश के समय हृदय को प्रिय लगनेवाला और एक योजन तक फैलनेवाला स्वर होना।
२२. अर्धमागधी भाषा में भगवान् का धर्मोपदेश देना।
२३. वह अर्धमगधी भाषा वोली जाती हुई सभी आर्य अनार्य पुरुषों के लिए तथा द्विपद पक्षी और चतुष्पद मृग, पशु आदि जानवरों के लिए और पेट के वल रेंगने वाले सर्पादि के लिए अपनी-अपनी हितकर, शिवकर सुखद भाषारूप से परिणत हो जाती है।
२४. पूर्वबद्ध वैर वाले भी [मनुष्य] देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड, गन्धर्व और महोरग भी अरहन्तों के पादमूल में (परस्पर वैर भूलकर) प्रशान्त चित्त होकर हर्षित मन से धर्म-श्रवण करते हैं।
२५. अन्य तीर्थिक (परमतावलम्वी) प्रावचनिक (व्याख्यानदाता) पुरुष भी आकर भगवान् की वन्दना करते हैं।
२६. वे वादी लोग भी अरहन्त के पादमूल में वचन-रहित (निरुत्तर) हो जाते हैं।
२७. जहाँ-जहाँ से भी अरहन्त भगवन्त विहार करते हैं, वहाँ-वहाँ पच्चीस योजन तक ईति-भीति नहीं होती है।
२८. मनुष्यों को मारने वाली मारी (हैजा-प्लेग आदि भयंकर वीमारी) नहीं होती है।
२९. स्वचक्र (अपने राज्य की सेना) का भय नहीं होता।
३०. परचक्र (शत्रु की सेना) का भय नहीं होता।
३१. अतिवृष्टि (भारी जलवर्षा) नहीं होती।
३२. अनावृष्टि नहीं होती, अर्थात् सूखा नहीं पड़ता।
३३. दुर्भिक्ष (दुष्काल) नहीं होता।
३४. भगवान् के विहार से पूर्व उत्पन्न हुई व्याधियाँ भी शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं और रक्त-वर्षा आदि उत्पात नहीं होते हैं।

विवेचन—उपर्युक्त चौतीस अतिशयों में से द्वितीय आदि चार अतिशय तीर्थंकरों के जन्म से ही होते हैं। छठे आकाश-गत चक्र से लेकर बीस तक के अतिशय घातिकर्म चतुष्क के क्षय होने पर

होते हैं और शेष देवकृत अतिशय जानना चाहिए। दिगम्बर परम्परा में प्राय: ये ही अतिशय कुछ पाठ-भेद से मिलते हैं, वहाँ जन्म-जात दश अतिशय, केवलज्ञान-जनित दश अतिशय और देवकृत चौदह अतिशय कहे गये हैं।

२२०—जंबुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता। तं जहा—बत्तीसं महाविदेहे, दो भरहे एरवए। जंबुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा पण्णत्ता। जंबुद्दीवे णं दीवे उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थंकरा समुप्पज्जंति।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र चौतीस कहे गये हैं। जैसे—महाविदेह में बत्तीस, भारत क्षेत्र एक और ऐरवत क्षेत्र एक। [इसी प्रकार] जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चौतीस दीर्घ वैताढ्य कहे गये हैं। जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्कृष्ट रूप से चौतीस तीर्थंकर [एक साथ] उत्पन्न होते हैं।

२२१—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। पढम-पंचम-छट्ठी-सत्तमासु चउसु पुढवीसु चोत्तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

असुरेन्द्र असुरराज चमर के चौतीस लाख भवनावास कहे गये हैं। पहिली, पाँचवीं, छठी और सातवीं, इन चार पृथिवियों में चौंतीस लाख (३०+३+पाँच कम एक लाख और ५=३४) नारकावास कहे गये हैं।

॥ चतुस्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चत्रिंशत्स्थानक समवाय

२२२—पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।

पैंतीस सत्यवचन के अतिशय कहे गये हैं।

विवेचन—मूल सूत्र में इन पैंतीस वचनातिशयों के नामों का उल्लेख नहीं है और संस्कृत टीकाकार लिखते हैं कि ये आगम में भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। उन्होंने ग्रन्थान्तरों में प्रतिपादित वचन के पैंतीस गुणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं—

१. संस्कारवत्त्व—वचनों का व्याकरण-संस्कार से युक्त होना।
२. उदात्तत्व—उच्च स्वर से परिपूर्ण होना।
३. उपचारोपेतत्व—ग्रामीणता से रहित होना।
४. गम्भीरशब्दत्व—मेघ के समान गम्भीर शब्दों से युक्त होना।
५. अनुनादित्व—प्रत्येक शब्द के यथार्थ उच्चारण से युक्त होना।
६. दक्षिणत्व—वचनों का सरलता-युक्त होना।
७. उपनीतरागत्व—यथोचित राग-रागिणी से युक्त होना।

ये सात अतिशय शब्द-सौन्दर्य की अपेक्षा से जानना चाहिए। आगे कहे जाने वाले अतिशय अर्थ-गौरव की अपेक्षा रखते हैं।

८. महार्थत्व—वचनों का महान् अर्थवाला होना।
९. अव्याहतपौर्वापर्यत्व—पूर्वापर अविरोधी वाक्य वाला होना।
१०. शिष्टत्व—वक्ता की शिष्टता के सूचक होना।
११. असन्दिग्धत्व—सन्देह-रहित निश्चित अर्थ के प्रतिपादक होना।
१२. अपहृतान्योत्तरत्व—अन्य पुरुष के दूषणों को दूर करने वाला होना।
१३. हृदयग्राहित्व—श्रोता के हृदय-ग्राही-मनोहर वचन होना।
१४. देश-कालाव्ययीतत्व—देश-काल के अनुकूल अवसरोचित वचन होना।
१५. तत्त्वानुरूपत्व—विवक्षित वस्तुस्वरूप के अनुरूप वचन होना।
१६. अप्रकीर्ण प्रसृतत्व—निरर्थक विस्तार से रहित सुसम्वद्ध वचन होना।
१७. अन्योन्य प्रगृहीत—परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदों और वाक्यों से युक्त होना।
१८. अभिजातत्व—वक्ता की कुलीनता और शालीनता के सूचक होना।
१९. अतिस्निग्ध मधुरत्व—अत्यन्त स्नेह से भरे हुए मधुरता-मिष्टता युक्त होना।
२०. अपरमर्मवेधित्व—दूसरे के मर्म-वेधी न होना।
२१. अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व—अर्थ और धर्म के अनुकूल होना।
२२. उदारत्व—तुच्छता-रहित और उदारता-युक्त होना।
२३. परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्व—पराई-निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित होना।
२४. उपगतश्लाघत्व—जिन्हें सुन कर लोग प्रशंसा करें, ऐसे वचन होना।
२५. अनपनीतत्व—काल, कारक, लिंग-व्यत्यय आदि व्याकरण के दोषों से रहित होना।
२६. उत्पादिताच्छिन्न कौतूहलत्व—अपने विषय में श्रोताजनों को लगातार कौतूहल उत्पन्न करने वाले होना।
२७. अद्भुतत्व—आश्चर्यकारक अद्भुत नवीनता-प्रदर्शक वचन होना।
२८. अनतिविलम्बित्व—अतिविलम्ब से रहितधारा प्रवाही बोलना।
२९. विभ्रम, विक्षेप—किलिकिञ्चितादि विमुक्तत्व-मन की भ्रान्ति, विक्षेप और रोष, भयादि से रहित वचन होना।
३०. अनेक जातिसंश्रयाद्विचित्रत्व—अनेक प्रकार से वर्णनीय वस्तु-स्वरूप के वर्णन करने वाले वचन होना।
३१. आहितविशेषत्व—सामान्य वचनों से कुछ विशेषता-युक्त वचन होना।
३२. साकारत्व—पृथक्-पृथक् वर्ण, पद, वाक्य के आकार से युक्त वचन होना।
३३. सत्वपरिगृहीतत्व—साहस से परिपूर्ण वचन होना।
३४. अपरिखेदित्व—खेद—खिन्नता से रहित वचन होना।
३५. अव्युच्छेदित्व—विवक्षित अर्थ की सम्यक् सिद्धि करने वाले वचन होना।

बोले जाने वाले वचन उक्त पैंतीस गुणों से युक्त होने चाहिए।

२२३—कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। दत्ते णं वासुदेवे पणतीसं धणइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। नंदणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

कुन्थु अर्हन् पैंतीस धनुष ऊंचे थे। दत्त वासुदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे। नन्दन बलदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे।

२२४—सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयक्खंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस जोयणाणि वज्जेत्ता मज्झे पणतीसं जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पण्णत्ताओ।

सौधर्म कल्प में सुधर्मा सभा के माणवक चैत्यस्तम्भ में नीचे और ऊपर साढ़े बारह-साढ़े बारह योजन छोड़ कर मध्यवर्ती पैंतीस योजनों में, वज्रमय, गोल वर्तुलाकार पेटियों में जिनों की मनुष्य-लोक में मुक्त हुए तीर्थंकरों की अस्थियां रखी हुई हैं।

२२५—बितिय-चउत्थीसु दोसु पुढवीसु पणतीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

दूसरी और चौथी पृथिवियों में (दोनों के मिला कर) पैंतीस (२५+१०=३५) लाख नारकावास कहे गये हैं।

॥ पंचत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्त्रिंशत्स्थानक समवाय

२२६—छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—विणयसुयं १, परीसहो २, चाउरंगिज्जं ३, असंखयं ४, अकाममरणिज्जं ५, पुरिसविज्जा ६, उरब्भिज्जं ७, काविलियं ८, नमिपव्वज्जा ९, दुमपत्तयं १०, बहुसुयपूजा ११, हरिएसिज्जं १२, चित्तसंभूयं १३, उसुयारिज्जं १४, सभिक्खुगं १५, समाहिठाणाइं १६, पावसमणिज्जं १७, संजइज्जं १८, मियचारिया १९, अणाहपव्वज्जा २०, समुद्दपालिज्जं २१, रहनेमिज्जं २२, गोयम-केसिज्जं २३, समितीओ २४, जन्नतिज्जं २५, सामायारी २६, खलुंकिज्जं २७, मोक्खमग्गगई २८, अप्पमाओ २९, तवोमग्गो ३०, चरणविही ३१, पमायठाणाइं ३२, कम्मपयडी ३३, लेसज्झयणं ३४, अणगारमग्गे ३५, जीवाजीवविभत्ती य ३६।

उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन हैं। जैसे—१. विनयश्रुत अध्ययन २. परीषह अध्ययन, ३. चातुरङ्गीय अध्ययन, ४. असंस्कृत अध्ययन, ५. अकाममरणीय अध्ययन, ६. पुरुष विद्या अध्ययन (क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय अध्ययन) ७. औरभ्रीय अध्ययन, ८. कापिलीय अध्ययन, ९. नमिप्रव्रज्या अध्ययन, १०. द्रुमपत्रक अध्ययन, ११. बहुश्रुतपूजा अध्ययन, १२. हरिकेशीय अध्ययन, १३. चित्तसंभूतीय अध्ययन, १४. इषुकारीय अध्ययन, १५. सभिक्षु अध्ययन, १६. समाधिस्थान अध्ययन, १७. पापश्रमणीय अध्ययन, १८. संयतीय अध्ययन, १९. मृगापुत्रीय अध्ययन, २०. अनाथ प्रव्रज्या अध्ययन, २१. समुद्रपालीय अध्ययन, २२. रथनेमीय अध्ययन, २३. गौतमकेशीय अध्ययन, २४. समिति अध्ययन, २५. यज्ञीय अध्ययन, २६. सामाचारी अध्ययन, २७. खलुंकीय अध्ययन, २८. मोक्षमार्गगति अध्ययन, २९. अप्रमाद अध्ययन, (सम्यक्त्व पराक्रम) ३०. तपोमार्ग अध्ययन, ३१. चरणविधि अध्ययन ३२. प्रमादस्थान अध्ययन, ३३. कर्मप्रकृति अध्ययन, ३४. लेश्या अध्ययन, ३५. अनगारमार्ग अध्ययन और ३६. जीवाजीवविभक्ति अध्ययन।

२२७—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है।

२२८—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था।

श्रमण भगवान् महावीर के संघ में छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं।

२२९—चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं निव्वत्तइ।

चैत्र और आसोज मास में सूर्य एक वार छत्तीस अंगुल की पौरुषी छाया करता है।

॥ षट्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तत्रिंशत्स्थानक समवाय

२३०—कुंथुस्स णं अरहओ सत्ततीसं गणा, सत्ततीसं गणहरा होत्था।

कुन्थु अर्हन् के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे।

२३१—हेमवय-हेरण्णवइयाओ णं जीवाओ सत्ततीसं जोयणसहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलसयएगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वासु णं विजय-वेजयंत-जयंत-अपरजियासु रायहाणीसु पागारा सत्ततीसं सत्ततीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र की जीवाएं सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से कुछ कम सोलह भाग ($३७६७४\frac{१६}{१९}$) लम्बी कही गई हैं।

२३२—खुड्डियाए विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्तिनामक कालिक श्रुत के प्रथम वर्ग में सैंतीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

२३३—कत्तियबहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसीछायं निव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ।

कार्त्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुल की पौरुषी छाया करता हुआ संचार करता है।

॥ सप्तत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टात्रिंशत्स्थानक समवाय

२३४—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठत्तीसं अज्जिआसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् के संघ में अड़तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-सम्पदा थी।

२३५—हेमवय-एरण्णवइयाणं जीवाणं धणुपिट्ठे अट्ठत्तीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दसएगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचि विसेसूणा परिक्खेवेणं पण्णत्ते। अत्थस्स णं पव्वय-रण्णो बितिए कंडे अट्ठत्तीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

हैमवत और ऐरण्यवत क्षेत्रों की जीवाओं का धनुःपृष्ठ अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दश भाग से कुछ कम (३८७४०$\frac{10}{19}$) परिक्षेप वाला कहा गया है। जहाँ सूर्य अस्त होता है, उस पर्वतराज मेरु का दूसरा कांड अड़तीस हजार योजन ऊंचा है।

२३६—खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे अट्ठत्तीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति नामक कालिक श्रुत के द्वितीय वर्ग में अड़तीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

।। अष्टत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनचत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२३७—नमिस्स णं अरहओ एगूणचत्तालीसं आहोहियसया होत्था।

समयखेत्ते एगूणचत्तालीसं कुलपव्वया पण्णत्ता। तं जहा—तीसं वासहरा, पंच मंदरा, चत्तारि उसुकारा। दोच्च-चउत्थ-पंचम-छट्ठ-सत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूणचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

नमि अर्हत् के उनतालीस सौ (३९००) नियत (परिमित) क्षेत्र को जानने वाले अवधिज्ञानी मुनि थे। समय क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) में उनतालीस कुलपर्वत कहे गये हैं। जैसे—तीस वर्षधर पर्वत, पाँच मन्दर (मेरु) और चार इषुकार पर्वत। दूसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं, इन पाँच पृथिवियों में उनतालीस (२५+१०+३+पाँच कम एक लाख और ५=३९) लाख नारकावास कहे गये हैं।

२३८—नाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउयस्स एयासि णं चउण्हं कम्मपगडीणं एगूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयुकर्म, इन चारों कर्मो की उनतालीस (५+२८+२+४=३९) उत्तर प्रकृतियां कही गई हैं।

॥ एकोनचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२३९—अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ होत्था।

अरिष्टनेमि अर्हन् के संघ में चालीस हजार आर्यिकाएं थीं।

२४०—मंदरचुलिया णं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।
संती अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

मन्दर चूलिकाएँ चालीस योजन ऊंची कही गई हैं।
शान्ति अर्हन् चालीस धनुष ऊंचे थे।

२४२—भूयाणंदस्स णं नागकुमारस्स नागरन्नो चत्तालीसं भवणावासयसहस्सा पण्णत्ता। खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

नागकुमार, नागराज भूतानन्द के चालीस लाख भवनावास कहे गये हैं। क्षुद्रिका विमान-प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में चालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

२४३—फग्गुणपुण्णिमासिणीए णं सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरिसीछायं निव्वट्टइत्ता णं चारं चरइ। एवं कत्तियाए वि पुण्णिमाए।

फाल्गुण पूर्णमासी के दिन सूर्य चालीस अंगुल की पौरुषी छाया करके संचार करता है। इसी प्रकार कार्त्तिकी पूर्णिमा को भी चालीस अंगुल की पौरुषी छाया करके संचार करता है।

२४३—महासुक्के कप्पे चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता।

महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमानावास कहे गये हैं।

॥ चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकचत्वारिंशत्स्थानक समवाय

१४४—नमिस्स णं अरहओ एकचत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था।

नमि अर्हत् के संघ में इकतालीस हजार आर्यिकाएं थीं।

२४५—चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। तं जहा—रयणप्पाभाए पंकप्पभाए तमाए तमतमाए।

चार पृथिवियों में इकतालीस लाख नारकावास कहे गये हैं। जैसे—रत्नप्रभा में ३० लाख, पंक प्रभा में १० लाख, तमः प्रभा में ५ कम एक लाख और महातमःप्रभा में ५।

२४६—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एक्कचत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका (महती) विमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग में इकतालीस उद्देशनकाल कहे गये हैं।

॥ एकचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२४७—समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर कुछ अधिक वयालीस वर्ष श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध, यावत् (कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और) सर्व दुःखों से रहित हुए।

२४८—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं अवाहातो अंतरं पन्नत्तं। एवं चउद्दिसिं पि दओभासे' संखे दयसीमे य।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की जगती की बाहरी परिधि के पूर्वी चरमान्त भाग से लेकर वेलन्धर नागराज के गोस्तूभनामक आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग तक मध्यवर्ती क्षेत्र का विना किसी बाधा या व्यवधान के अन्तर वयालीस हजार योजन कहा गया है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में भी उदकभास शंख और उदकसीम का अन्तर जानना चाहिए।

२४९—कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा। बायालीसं सूरिया पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा।

कालोद समुद्र में वयालीस चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे। इसी प्रकार वयालीस सूर्य प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे।

२५०—सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पाणं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की उत्कृष्ट स्थिति वयालीस हजार वर्ष कही गई है।

२५१—नामकम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते। तं जहा—गइनामे १, जाइनामे २, सरीरनामे ३, सरीरंगोवंगनामे ४, सरीरबंधणनामे ५, सरीरसंघायणनामे ६, संघयणनामे ७, संठाणनामे ८, वण्णनामे ९, गंधनामे १०, रसनामे ११, फासनामे १२, अगुरुलहुयनामे २३, अवघायनामे १४, पराघायनामे १५, आणुपुव्वीनामे १६, उस्सासनामे १७, आयवनामे १८, उज्जोयनामे १९, विहगगइ-नामे २०, तसनामे २१, थावरनामे २२, सुहुमनामे २३, बायरनामे २४, पज्जत्तनामे २५, अपज्जत्त-

नामे २६, साहारणसरीरनामे २७, पत्तेयसरीरनामे २८, थिरनामे २९, अथिरनामे ३०, सुभनामे ३१, असुभनामे ३२, सुभगनामे ३३, दुब्भगनामे ३४, सुस्सरनामे ३५, दुस्सरनामे ३६, आएज्जनामे ३७, अणाएज्जनामे ३८, जसोकित्तिनामे ३९, अजसोकित्तिनामे ४०, निम्माणनामे ४१, तित्थकरनामे ४२।

नामकर्म बयालीस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१. गतिनाम, २. जातिनाम, ३. शरीर-नाम, ४. शरीराङ्गोपाङ्गनाम, ५. शरीरबन्धननाम, ६ शरीरसंघातननाम, ७. संहनन-नाम, ८. संस्थाननाम, ९. वर्णनाम, १०. गन्धनाम, ११. रसनाम, १२. स्पर्शनाम, १३. अगुरुलघुनाम, १४. उपघातनाम, १५. पराघातनाम, १६. आनुपूर्वीनाम, १७. उच्छ्वास-नाम, १८. आतपनाम, १९. उद्योतनाम, २०. विहायोगतिनाम, २१. त्रसनाम, २२. स्थावर-नाम, २३. सूक्ष्मनाम, २४. बादरनाम, २५. पर्याप्तनाम, २६. अपर्याप्तनाम २७ साधारण-शरीरनाम, २८. प्रत्येकशरीरनाम, २९. स्थिरनाम, ३०. अस्थिरनाम, ३१. शुभनाम, ३२. अशुभनाम, ३३. सुभगनाम, ३४. दुर्भगनाम, ३५. सुस्वरनाम, ३६. दुःस्वरनाम, ३७. आदेयनाम, ३८. अनादेयनाम, ३९. यशस्कीर्त्तिनाम, ४० अयशस्कीर्त्ति नाम, ४१. निर्माण नाम और ४२. तीर्थंकरनाम।

२५२—लवणे णं समुद्दे बायालीसं नागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारंति।

लवण समुद्र की भीतरी वेला को बयालीस हजार नाग धारण करते हैं।

२५३—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे बायालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में बयालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

२५४—एगमेगाए ओसप्पिणीए पंचम-छट्ठीओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ। एगमेगाए उस्सप्पिणीए पढम-बीयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ।

प्रत्येक अवसर्पिणी काल का पाँचवा छठा आरा (दोनों मिल कर) बयालीस हजार वर्ष का कहा गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी काल का पहिला-दूसरा आरा बयालीस हजार वर्ष का कहा गया है।

॥ द्विचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिचत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२५५—तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा पण्णत्ता।

कर्मविपाक सूत्र (कर्मों का शुभाशुभ फल बतलानेवाले अध्ययन) के तेयालीस अध्ययन कहे गये हैं।

२५६—पढम-चउत्थ-पंचमासु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसिं पि दगभासे संखे दयसीमे।

पहिली, चौथी और पाँचवीं पृथिवी में तेयालीस (३०+१०+३=४३) लाख नारकावास कहे गये हैं। जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप के पूर्वी जगती के चरमान्त से गोस्तूभ आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त का विना किसी बाधा या व्यवधान के तेयालीस हजार योजन अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना चाहिए। विशेपता यह है कि दक्षिण में दकभास, पश्चिम दिशा में शंख आवास पर्वत है और उत्तर दिशा में दकसीम आवास पर्वत है।

२५७—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे तेयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमान प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में तेयालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

॥ त्रिचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुश्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२५८—चोयालीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुया भासिया पण्णत्ता।

चवालीस ऋषिभाषित अध्ययन कहे गये हैं, जिन्हें देवलोक से च्युत हुए ऋषियों ने कहा है।

२५९—विमलस्स णं अरहओ णं चउआलीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठि सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

विमल अर्हत् के बाद चवालीस पुरुपयुग (पीढी) अनुक्रम से एक के पीछे एक सिद्ध बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

२६०—धरणस्स णं नागिंदस्स नागरण्णो चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

नागेन्द्र, नागराज, धरण के चवालीस लाख भवनावास कहे गये हैं।

२६१—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमानप्रविभक्ति के चतुर्थ वर्ग में चवालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

॥ चतुश्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त।

पचञ्चत्वारिंशस्थानक समवाय

२६२—समयक्खेत्ते णं पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। एवं उडुविमाणे वि। ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव।

समय क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है। इसी प्रकार ऋतु (उडु). (सौधर्म-ईशान देव लोक में प्रथम पाथड़े में चार विमानावलिकाओं के मध्यभाग में रहा हुआ

गोल विमान) और ईषत्प्राग्भारा पृथिवी (सिद्धिस्थान) भी पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजन विस्तृत जानना चाहिए।

२६३—धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

धर्म अर्हत् पैंतालीस धनुष ऊंचे थे।

२६४—मंदरस्स णं पव्वयस्स चउद्दिसिं पि पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत की चारों ही दिशाओं में लवणसमुद्र की भीतरी परिधि की अपेक्षा पैंतालीस हजार योजन अन्तर विना किसी वाधा के कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है। तथा मन्दर पर्वत धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तृत है। एक लाख में से दश हजार योजन घटाने पर नव्वे हजार योजन शेप रहते हैं। उसके आधे पैंतालीस हजार होते हैं। अतः मन्दर पर्वत से चारों ही दिशाओं में लवण समुद्र की वेदिका पैंतालीस हजार योजन के अन्तराल पर पाई जाती है।

२६५—सव्वे वि णं दिवड्ढखेत्तिया नक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा।

तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य।
एए छ नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥१॥

सभी द्व्यर्ध क्षेत्रीय नक्षत्रों ने पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग किया है, योग करते हैं और योग करेंगे।

तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा ये छह नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्र के साथ संयोग वाले कहे गये हैं।

विवरण—चन्द्रमा का तीस मुहूर्त भोग्य क्षेत्र समक्षेत्र कहलाता है। उसके ड्योढ़े पैंतालीस मुहूर्त भोग्य क्षेत्र को द्व्यर्धक्षेत्रीय कहते हैं।

२६६—महालियाए विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमानप्रविभक्ति सूत्र के पाँचवें वर्ग में पैंतालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

॥ पंचचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२६७—दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया पण्णत्ता। बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।

बारहवें दृष्टिवाद अंग के छियालीस मातृकापद कहे गये हैं। ब्राह्मी लिपि के छियालीस मातृ-अक्षर कहे गये हैं।

विवेचन—सोलह स्वरों में से ऋ ॠ ऌ ॡ इन चार को छोड़ कर शेष बारह स्वर, कवर्गादि पच्चीस व्यंजन, य र ल व ये चार अन्तःस्थ, श, ष, स, ह ये चार ऊष्म वर्ण और ह ये छियालीस ही अक्षर ब्राह्मी लिपि में होते हैं।

२६८—पभंजणस्स णं वाउकुमारिंदस्स छायालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

वायुकुमारेन्द्र प्रभंजन के छियालीस लाख भवनावास कहे गये हैं।

॥ षट्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तचत्वारिंशत्स्थानक समवाय

२६९—जया णं सूरिए सव्वब्भिंतरमंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स सत्तचत्तालीसं जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ।

जब सूर्य सबसे भीतरी मण्डल में आकर संचार करता है, तब इस भरत क्षेत्रगत मनुष्य को सैंतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजन और एक योजन के साठ भागों में इक्कीस भाग की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है।

२७०—थेरे णं अग्गिभूई सत्तचत्तालीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

अग्निभूति स्थविर सैंतालीस वर्ष गृहवास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

॥ सप्तचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टचत्वारिंशस्थानक समवाय

२७१—एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टणसहस्सा पण्णत्ता ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के अड़तालीस हजार पट्टण कहे गये हैं ।

२७२—धम्मस्स णं अरहओ अडयालीसं गणा, अडयालीसं गणहरा होत्था ।

धर्म अर्हत् के अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर थे ।

२७३—सूरमंडले ण अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं पण्णत्ते ।

सूर्यमण्डल एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग-प्रमाण विस्तार वाला कहा गया है ।

॥ अष्टचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनपञ्चाशत्स्थानक समवाय

२७४—सत्त-सत्तमियाए णं भिक्खुपडिमाए एगूणपन्नाए राइंदिएहिं छन्नउइभिक्खासएणं अहासुत्तं जाव [अहाकप्पं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आणाए अणुपालित्ता] आराहिया भवइ ।

सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा उनंचास रात्रि-दिवसों से और एक सौ छियानवे भिक्षाओं से यथासूत्र यथामार्ग से [यथाकल्प से, यथातत्त्व से, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर पालकर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर आज्ञा से अनुपालन कर] आराधित होती है ।

विवेचन—सात-सात दिन के सात सप्ताह जिस अभिग्रह-विशेष की आराधना में लगते हैं, उसे सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा कहते हैं । उसकी विधि संस्कृतटीकाकार ने दो प्रकार से कही है । प्रथम प्रकार के अनुसार प्रथम सप्ताह में प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति की वृद्धि से अट्ठाईस भिक्षाएं होती हैं । इसी प्रकार द्वितीयादि सप्ताहों में भी प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति की वृद्धि से सब एक सौ छियानवे भिक्षाएं होती हैं । अथवा प्रथम सप्ताह के सातों दिनों में एक-एक भिक्षा दत्ति ग्रहण करते हैं । दूसरे सप्ताह के सातों दिनों में दो-दो भिक्षा दत्ति ग्रहण करते हैं । इस प्रकार प्रतिसप्ताह एक-एक भिक्षा दत्ति के बढ़ने से सातों सप्ताहों की समस्त भिक्षाएं एक सौ छियानवे (७+१४+२१+२८+३५+४२+४९=१९६) हो जाती हैं ।

२७५—देवकुरु-उत्तरकुरुएसु णं मणुया एगूणपण्णास-राइंदिएहिं संपन्नजोव्वणा भवंति ।

देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्य उनंचास रात-दिनों में पूर्ण यौवन से सम्पन्न हो जाते हैं ।

२७६—तेइंदियाणं उक्कोसेणं एगूणपण्णं राइंदिया ठिई ।

त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति उनंचास रात-दिन की कही गई है ।

॥ एकोनपंचाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२७७—मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था। अणंते णं अरहा पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। पुरिसुत्तमे णं वासुदेवे पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

मुनिसुव्रत अर्हत् के संघ में पचास हजार आर्यिकाएं थीं। अनन्तनाथ अर्हत् पचास धनुष ऊंचे थे। पुरुषोत्तम वासुदेव पचास धनुष ऊंचे थे।

२७८—सव्वे वि णं दीहवेयड्ढा मूले पन्नासं पन्नासं जोयणाणि विक्खंभेणं पण्णत्ता।
सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत मूल में पचास योजन विस्तार वाले कहे गये हैं।

२७९—लंतए कप्पे पन्नासं विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता। सव्वाओ णं तिमिस्सगुहा-खंडगप्पवायगुहाओ पन्नासं पन्नासं जोयणाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं कंचणगपव्वया सिहरतले पन्नासं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

लान्तक कल्प में पचास हजार विमानावास कहे गये हैं। सभी तिमिस्र गुफाएं और खण्डप्रपात गुफाएं पचास-पचास योजन लम्बी कही गई हैं। सभी कांचन पर्वत शिखरतल पर पचास-पचास योजन विस्तार वाले कहे गये हैं।

॥ पञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८०—नवण्हं बंभचेराणं एकावन्नं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

नवों ब्रह्मचर्यो के इक्यावन उद्देशन काल कहे गये हैं।

विवेचन—आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के शस्त्रपरिज्ञा आदि अध्ययन ब्रह्मचर्य के नाम से प्रख्यात हैं, उनके अध्ययन उनंचास हैं, अतः उनके उद्देशनकाल भी उनंचास ही कहे गये हैं।

२८१—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो सभा सुधम्मा एकावन्नखंभसयसंनिविट्ठा पण्णत्ता। एवं चेव बलिस्स वि।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा इकावन सौ (५१००) खम्भों से रचित है। इसी प्रकार बलि की सभा भी जानना चाहिए।

२८२—सुप्पभे णं बलदेवे एकावन्नं वाससयसहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

सुप्रभ बलदेव इक्यावन हजार वर्ष की परमायु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

२८३—दंसणावरण-नामाणं दोण्हं कम्माणं एकावन्नं उत्तरकम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ।

दर्शनावरण और नाम कर्म इन दोनों कर्मों की (९+४२=५१) इक्यावन उत्तर कर्म-प्रकृतियां कही गई हैं ।

॥ एकपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८४—मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स वावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा—कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए १०, माणे मदे दप्पे थंभे अत्तक्कोसे गव्वे परपरिवाए अवक्कोसे [परिभवे] उन्नए २०, उन्नामे माया उवही नियडी वलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे ३०, कूडे जिम्हे किव्विसे अणायरणया गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे लोभे इच्छा ४०; मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा ५०, नन्दी रागे ५२ ।

मोहनीय कर्म के वावन नाम कहे गये हैं । जैसे—१. क्रोध, २. कोप, ३. रोष. ४. द्वेष, ५. अक्षमा, ६. संज्वलन, ७. कलह, ८. चंडिक्य, ९. भंडन, १०. विवाद, ये दश क्रोध-कषाय के नाम हैं । ११. मान. १२. मद, १३. दर्प, १४. स्तम्भ, १५. आत्मोकर्ष, १६. गर्व, १७. परपरिवाद, १८. अपकर्ष, [१९. परिभव] २०. उन्नत, २१. उन्नाम; ये ग्यारह नाम मान कषाय के हैं । २२. माया, २३. उपधि, २४. निकृति, २५. वलय, २६. गहन, २७. न्यवम, २८. कल्क, २९. कुरुक, ३०. दंभ, ३१. कूट, ३२. जिम्ह ३३. किल्विष, ३४. अनाचरणता, ३५. गूहनता, ३६. वंचनता, ३७. पलिकुंचनता, ३८. सातियोग; ये सत्तरह नाम माया-कषाय के है । ३९. लोभ, ४०. इच्छा, ४१. मूर्च्छा, ४२. कांक्षा, ४३. गृद्धि, ४४. तृष्णा, ४५. भिध्या, ३६. अभिध्या, ४७. कामाशा, ४८. भोगाशा, ४९. जीविताशा, ५०. मरणाशा, ५१. नन्दी, ५२. राग; ये चौदह नाम लोभ-कषाय के हैं । इसी प्रकार चारों कषायों के नाम मिल कर [१०+११+१७+१४=५२] वावन मोहनीय कर्म के नाम हो जाते हैं ।

२८५—गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापाया-लस्स पच्चच्छिल्ले चरमंते, एस णं वावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं दगभागस्स णं केउगस्स संखस्स जूयगस्स दगसीमस्स ईसरस्स ।

गोस्तूभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से वडवामुख महापाताल का पश्चिमी चरमान्त वाधा के विना वावन हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार लवण समुद्र के भीतर अवस्थित दकभास केतुक का, शंख नामक जूपक का और दकसीम नामक ईश्वर का, इन चारों महापाताल कलशों का भी अन्तर जानना चाहिए ।

विवेचन—लवण समुद्र दो लाख योजन विस्तृत है । उसमें पंचानवे हजार योजन आगे जाकर पूर्वादि चारों दिशाओं में चार महापाताल कलश हैं, उनके नाम क्रम से वड़वामुख, केतुक, जूपक और ईश्वर हैं । जम्वूद्वीप की वेदिका के अन्त से बयालीस हजार योजन भीतर जाकर एक हजार योजन के विस्तार वाले गोस्तूभ आदि वेलन्धर नागराजों के चार आवास पर्वत हैं । इसलिए पंचानवे हजार

में से वयालीस हजार योजन कम कर देने पर उनके बीच में वावन हजार योजनों का अन्तर रह जाता है। यही बात इस सूत्र में कही गई है।

२८६—नाणावरणिज्जस्स नामस्स अंतरायस्स एतेसि णं तिण्हं कम्मपगडीणं बावन्नं उत्तर-पयडीओ पण्णत्ताओ।

ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीनों कर्मप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियां बावन (५+४२+५=५२) कही गई हैं।

२८७—सोहम्म-सणंकुमार-माहिंदेसु तिसु कप्पेसु बावन्नं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन कल्पों में (३२+१२+८=५२) बावन लाख विमानावास कहे गये हैं।

॥ द्विपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८८—देवकुरु-उत्तरकुरुयाओ णं जीवाओ तेवन्नं तेवन्नं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। महाहिमवंत-रुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवन्नं तेवन्नं जोयणसहस्साइं नव य एगत्तीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवाएं तिरेपन-तिरेपन हजार योजन से कुछ अधिक लम्बी कही गई हैं। महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवाएं तिरेपन-तिरेपन हजार नौ सौ इकत्तीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग प्रमाण (५३९३१$\frac{६}{१९}$) लम्बी कही गई हैं।

२८९—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्नं अणगारा संवच्छरपरियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना।

श्रमण भगवान् महावीर के तिरेपन अनगार एक वर्ष श्रमणपर्याय पालकर महान्-विस्तीर्ण एवं अत्यन्त सुखमय पाँच अनुत्तर महाविमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए।

२९०—संमुच्छिमउरपरिसप्पाणं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्सा ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तिरेपन हजार वर्ष कही गई है।

॥ त्रिपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुःपञ्चाशत्स्थानक समवाय

२९१—भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए श्रोसप्पिणीए चउवन्नं चउवन्नं उत्तमपुरिसा उप्पंजिसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिसंति वा। तं जहा—चउवीसं तित्थकरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।

भरत और ऐरवत क्षेत्रों में एक एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में चौपन चौपन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। जैसे—चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव। (२४+१२+९+९=५४)।

२९२—अरहा णं अरिट्ठनेमी चउवन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता जिणे जाए केवली सवन्नू सव्वभावदरिसी।

समणे णं भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनिसिज्जाए चाउप्पन्नाइं वागरणाइं वागरित्था। अणंतस्स णं अरहओ चउपन्नं [गणा चउपन्नं] गणहरा होत्था।

अरिष्टनेमि अर्हन् चौपन रात-दिन छद्मस्थ श्रमणपर्याय पाल कर केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी जिन हुए।

श्रमण भगवान् महावीर को एक दिन में एक आसन से बैठे हुए चौपन प्रश्नों के उत्तररूप व्याख्यान दिये थे।

अनन्त अर्हन् के चौपन गण और चौपन गणधर थे।

॥ चतुःपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चपञ्चाशत्स्थानक समवाय

२९३—मल्लिस्स णं अरहओ [मल्ली णं अरहा] पणवण्णं वाससहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खपहीणे।

मल्ली अर्हन् पचपन हजार वर्ष की परमायु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

२९४—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ विजयदारस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पणवण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चाउद्दिसिं पि विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियं ति।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से पूर्वी विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पचपन हजार योजन का कहा गया है। इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित द्वारों का अन्तर जानना चाहिए।

२९५—समणे णं भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणवण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणवण्णं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं वागरित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर अन्तिम रात्रि में पुण्य-फल विपाकवाले पचपन और पाप-फल विपाकवाले पचपन अध्ययनों का प्रतिपादन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

२९६—पढम-विइयासु दोसु पुढवीसु पणवण्णं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

पहिली और दूसरी इन दो पृथिवीयों में पचपन (३०+२५=५५) लाख नारकावास कहे गये हैं।

२९७—दंसणावरणिज्ज-नामाउयाणं तिण्हं कम्मपगडीणं पणवण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

दर्शनावरणीय, नाम और आयु इन तीन कर्मप्रकृतियों की मिलाकर पचपन उत्तर प्रकृतियां (९+४२+४=५५) कही गई हैं।

॥ पञ्चपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्पञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२९८—जंबुद्दीवे णं दीवे छप्पन्नं नक्खत्ता चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में दो चन्द्रमाओं के परिवारवाले (२८+२८=५६) छप्पन नक्षत्र चन्द्र के साथ योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

२९९—विमलस्स णं अरहओ छप्पन्नं गणा छप्पन्नं गणहरा होत्था।

विमल अर्हत् के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे।

॥ षट्पञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तपञ्चाशत्स्थानक समवाय

३००—तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलियावज्जाणं सत्तावन्नं अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा— आयारे सूयगडे ठाणे।

आचारचूलिका को छोड़ कर तीन गणिपिटकों के सत्तावन अध्ययन कहे गये हैं। जैसे आचाराङ्ग के अन्तिम निशीथ अध्ययन को छोड़ कर प्रथमश्रुतस्कन्ध के नौ, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आचारचूलिका को छोड़कर पन्द्रह, दूसरे सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह, द्वितीय श्रुतस्कन्ध

सात और स्थानाङ्ग के दश, इस प्रकार सर्व ('९' + १५' + '१६ + ७'² + १०³ = ५७) सत्तावन अध्ययन कहे गये हैं।

३०१—गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दगभागस्स केउयस्स य संखस्स य जूयस्स य दयसीमस्स ईसरस्स य।

गोस्तुभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त से वड़वामुख महापाताल के वहु मध्य देशभाग का विना किसी बाधा के सत्तावन हजार योजन अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार दकभास और केतुक का, संख और यूपक का और दकसीम तथा ईश्वर नामक महापाताल का अन्तर जानना चाहिये।

विवेचन—पहले वतला आये हैं कि जम्वूद्वीप की वेदिका से गोस्तुभ पर्वत का अन्तर अड़तालीस हजार योजन है। गोस्तुभ का विस्तार एक हजार योजन है। तथा गोस्तुभ और वड़वामुख का अन्तर वावन हजार योजन है और वड़वामुख का विस्तार दश हजार योजन है, उसके आधे पाँच हजार योजन को वावन हजार योजन में मिला देने पर सत्तावन हजार योजन का अन्तर गोस्तुभ के पूर्वी चरमान्त से बड़वामुख के मध्यभाग तक का सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार से शेप तीनों महापाताल कलशों का भी अन्तर निकल आता है।

३०२—मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावन्नं मणपज्जवनाणिसया होत्था।

महाहिमवंत-रुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाणं धणुपिट्ठं सत्तावन्नं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं दोन्नि य तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्तं।

मल्लि अर्हत् के संघ में सत्तावन सौ (५७००) मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे।

महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत की जीवाओं का धनुःपृष्ठ सत्तावन हजार दो सौ तेरानवे योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दशभाग प्रमाण परिक्षेप (परिधि) रूप से कहा गया है।

॥ सप्तपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

३०३—पढम-दोच्च-पंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावन्नं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

पहली, दूसरी और पाँचवी इन तीन पृथिवियों में अट्ठावन (३० + २५ + ३ = ५८) लाख नारकावास कहे गये हैं।

३०४—नाणावरणिज्जस्स वेयणिय-आउय-नाम-अंतराइयस्स एएसि णं पंचण्हं कम्मपगडीणं अट्ठावन्नं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम और अन्तराय इन पाँच कर्मप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियाँ अट्ठावन (५ + २ + ४ + ४२ + ५ = ५८) कही गई हैं।

३०५—गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापाया-लस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसं पि नेयव्वं।

गोस्तूभ आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से वड़वामुख महापाताल के बहुमध्य देश-भाग का अन्तर अट्ठावन हजार योजन विना किसी बाधा के कहा गया है। इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना चाहिये।

विवेचन—ऊपर गोस्तूभ आवासपर्वत से वड़वामुख महापाताल के मध्य भाग का सत्तावन हजार योजन अन्तर जिस प्रकार से वतलाया गया है उसमें एक हजार योजन और आगे तक का माप मिलाने पर अट्ठावन हजार योजन का सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीन महापातालों का भी अन्तर जानना चाहिए।

॥ अष्टपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनषष्टिस्थानक समवाय

३०६—चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे उऊ एगूणसट्ठि राइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

चन्द्रसंवत्सर (चन्द्रमा की गति की अपेक्षा से माने जाने वाले संवत्सर) की एक एक ऋतु रात-दिन की गणना से उनसठ रात्रि-दिन की कही गई है।

३०७—संभवे णं अरहा एगूणसट्ठि पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

संभव अर्हन् उनसठ हजार पूर्व वर्ष अगार के मध्य (गृहस्थावस्था में) रहकर मुंडित हो अगार त्याग कर अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

३०८—मल्लिस्स णं अरहओ एगूणसट्ठि ओहिनाणिसया होत्था।

मल्लि अर्हन् के संघ में उनसठ सौ (५,९००) अवधिज्ञानी थे।

॥ एकोनषष्टिस्थानक सूत्र समाप्त ॥

षष्टिस्थानक समवाय

३०९—एगमेगे णं मंडले सूरिए सट्ठिए सट्ठिए मुहुत्तेहिं संघाएइ।

सूर्य एक एक मण्डल को साठ-साठ मुहूर्तों से पूर्ण करता है।

विवेचन—सूर्य को सुमेरु की एक वार प्रदक्षिणा करने में साठ मुहूर्त या दो दिन-रात लगते हैं। यतः सूर्य के घूमने के मंडल एक सौ चौरासी हैं, अतः उसको दो से गुणित करने पर (१८४×२= ३६८) तीन सौ अड़सठ दिन-रात आते हैं। सूर्य संवत्सर में इतने ही दिन-रात होते हैं।

३१०—लवणस्स णं समुद्दस्स सट्ठि नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारंति ।

लवण समुद्र के अग्रोदक (सोलह हजार ऊंची वेला के ऊपर वाले जल) को साठ हजार नागराज धारण करते हैं ।

३११—विमले णं अरहा सट्ठि धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

विमल अर्हन् साठ धनुष ऊंचे थे ।

३१२—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । बंभस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

बलि वैरोचनेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं । ब्रह्म देवेन्द्र देवराज के साठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं ।

३१३—सोहम्मीसाणेसु दोसु कप्पेसु सट्ठि विमाणा वाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में साठ (३२+२८=६०) लाख विमानावास कहे गये हैं ।

।। षष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकषष्टिस्थानक समवाय

३१४—पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स रिउमासेणं मिज्जमाणस्स इगसट्ठि उउमासा पण्णत्ता ।

पंचसंवत्सर वाले युग के ऋतु-मासों से गिनने पर इकसठ ऋतु मास होते हैं ।

३१५ – मंदरस्स णं पव्वयस्स पढमे कंडे एगसट्ठिजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते ।

मन्दर पर्वत का प्रथम काण्ड इकसठ हजार योजन ऊंचा कहा गया है ।

३१६—चंदमंडले णं एगसट्ठिविभागविभाइए समंसे पण्णत्ते । एवं सूरस्स वि ।

चन्द्रमंडल विमान एक योजन के इकसठ भागों से विभाजित करने पर पूरे छप्पन भाग प्रमाण सम-अंश कहा गया है । इसी प्रकार सूर्य भी एक योजन के इकसठ भागों से विभाजित करने पर पूरे अड़तालीस भाग प्रमाण सम-अंश कहा गया है । अर्थात् इन दोनों के विस्तार का प्रमाण ५६ और ४८ इस सम संख्या रूप ही है, विषम संख्या रूप नहीं है और न एक भाग के भी अन्य कुछ अंश अधिक या हीन भाग प्रमाण ही उनका विस्तार है ।

।। एकषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्विषष्टिस्थानक समवाय

३१७—पंच संवच्छरिए णं जुगे वासट्ठिं पुन्निमाओ वावट्ठिं अमावसाओ पण्णत्ताओ।

पंचसांवत्सरिक युग में बासठ पूर्णिमाएं और बासठ अमावस्याएं कही गई हैं।

विवेचन—चन्द्रमास के अनुसार पाँच वर्ष के काल को युग कहते हैं। इस एक युग में दो मास अधिक होते हैं। इसलिए दो पूर्णिमा और दो अमावस्या भी अधिक होती हैं। इसे ही ध्यान में रखकर एक युग में बासठ पूर्णिमाएं और बासठ अमावस्याएं कही गई हैं।

३१८—वासुपुज्जस्स णं अरहओ वासट्ठिं गणा, वासट्ठिं गणहरा होत्था।

वासुपूज्य अर्हन् के बासठ गण और बासठ गणधर कहे गये हैं।

३१९—सुक्कपक्खस्स णं चंदे वासट्ठिं भागे दिवसे दिवसे परिवड्ढइ। ते चेव बहुलपक्खे दिवसे-दिवसे परिहायइ।

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा दिवस-दिवस (प्रतिदिन) बासठवें भाग प्रमाण एक-एक कला से बढ़ता और कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन इतना ही घटता है।

३२०—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए वासट्ठिं विमाणा पण्णत्ता। सव्वे वेमाणियाणं वासट्ठिं विमाणपत्थडा पत्थडग्गेणं पण्णत्ता।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में पहले प्रस्तट में पहली आवलिका (श्रेणी) में एक एक दिशा में बासठ-बासठ विमानावास कहे गये हैं। सभी वैमानिक विमान-प्रस्तट प्रस्तटों की गणना से बासठ कहे गये हैं।

॥ द्विषष्टि-स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिषष्टिस्थानक समवाय

३२१—उसभे णं अरहा कोसलिए तेसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

कौशलिक ऋषभ अर्हन् तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष तक महाराज के मध्य में रहकर अर्थात् राजा के पद पर आसीन रहकर फिर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

३२२—हरिवास-रम्मयवासेसु मणुस्सा तेवट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति।

हरिवर्ष और रम्यक वर्ष में मनुष्य तिरेसठ रात-दिनों में पूर्ण यौवन को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् उन्हें माता-पिता द्वारा पालन की अपेक्षा नहीं रहती।

३२३—निसढे णं पव्वए तेवट्ठिं सूरोदया पण्णत्ता। एवं नीलवंते वि।

निषध पर्वत पर तिरेसठ सूर्योदय कहे गये हैं। इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत पर भी तिरेसठ सूर्योदय कहे गये हैं।

विवेचन—सूर्य जब उत्तरायण होता है, तब उसका उदय तिरेसठ वार निषधपर्वत के ऊपर से होता है और भरत क्षेत्र में दिन होता है। पुन: दक्षिणायन होते हुए जम्बूद्वीप की वेदिका के ऊपर से उदय होता है। तत्पश्चात् उसका उदय लवण समुद्र के ऊपर से होता है। इसी प्रकार परिभ्रमण करते हुए जब वह नीलवन्त पर्वत पर से उदित होता है, तब ऐरवत क्षेत्र में दिन होता है। वहाँ भी तिरेसठ वार नीलवन्त पर्वत के ऊपर से उदय होता है, पुन: जम्बूद्वीप की वेदिका के ऊपर से उदय होता है और अन्त में लवण समुद्र के ऊपर से उदय होता है। यत: एक सूर्य दो दिन में मेरु की एक प्रदक्षिणा करता है, अत: तिरेसठ वार निषधपर्वत से उदय होकर भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है। और इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत से तिरेसठ वार उदय होकर ऐरवत क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

।। त्रिषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतु:षष्टिस्थानक समवाय

३२४—अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव [अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालित्ता] भवइ।

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चौसठ रात-दिनों में, दो सौ अठासी भिक्षाओं से सूत्रानुसार, यथातथ्य, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर, पाल कर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर, आज्ञा के अनुसार अनुपालन कर आराधित होती है।

विवेचन—जिस अभिग्रह-विशेष की आराधना में आठ आठ दिन के आठ दिनाष्टक लगते हैं, उसे अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा कहते हैं। इसकी आराधना करते हुए प्रथम के आठ दिनों में एक-एक भिक्षा ग्रहण की जाती है। पुन: दूसरे आठ दिनों में दो-दो भिक्षाएं ग्रहण की जाती हैं। इसी प्रकार तीसरे आदि आठ-आठ दिनों में एक-एक भिक्षा बढ़ाते हुए अन्तिम आठ दिनों में प्रतिदिन आठ-आठ भिक्षाएं ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार चौसठ दिनों में सर्व भिक्षाएं दो सौ अठासी (८+१६+२४+३२+४०+४८+५६+६४=२८८) हो जाती हैं।

३२५—चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। चमरस्स णं रन्नो चउसट्ठिं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

असुरकुमार देवों के चौसठ लाख आवास (भवन) कहे गये हैं। चमरराज के चौंसठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं।

३२६—सव्वे वि दधिमुहा पव्वया पल्लासंठाणसंठिया सव्वत्थ समा विक्खंभमुस्सेहेणं चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं पण्णत्ता।

सभी दधिमुख पर्वत पल्य (ढोल) के आकार से अवस्थित हैं, नीचे ऊपर सर्वत्र समान विस्तार वाले हैं और चौंसठ हजार योजन ऊंचे हैं।

३२७—सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य तिसु कप्पेसु चउसट्ठिं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्म, ईशान और ब्रह्मकल्प इन तीनों कल्पों में चौसठ (३२+२८+४=६४) लाख विमानावास हैं।

३२८—सव्वस्स वि य णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउसट्ठिलट्ठीए महग्घे मुत्तामणिहारे पण्णत्ते।

सभी चातुरन्त चक्रवर्ती राजाओं के चौसठ लड़ी वाला बहुमूल्य मुक्ता-मणियों का हार कहा गया है।

।। चतुःषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चषष्टिस्थानक समवाय

३२९—जंबूद्दीवे णं दीवे पणसट्ठिं सूरमंडला पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में पैंसठ सूर्यमण्डल (सूर्य के परिभ्रमण के मार्ग) कहे गये हैं।

३३०—थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष अगारवास में रहकर मुंडित हो अगार त्याग कर अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

३३१—सोहम्मवडिंसियस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठिं पणसट्ठिं भोमा पण्णत्ता।

सौधर्मावतंसक विमान की एक-एक दिशा में पैंसठ-पैंसठ भवन कहे गये हैं।

।। पञ्चषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

षट्षष्टिस्थानक समवाय

३३२—दाहिणड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा। छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा। उत्तरड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा, छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा।

दक्षिणार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे। इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। उत्तरार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ

चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे। इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।

विवेचन—जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य हैं, लवण समुद्र में चार-चार चन्द्र और चार सूर्य हैं, धातकीखण्ड में बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य हैं। पुष्करार्ध में बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं। उक्त दो समुद्रों तथा आधे पुष्करद्वीप को अढ़ाई द्वीप कहा जाता है। क्योंकि पुष्करवर द्वीप के ठीक मध्य भाग में गोलाकार मानुषोत्तर पर्वत है, जिससे उस द्वीप के दो भाग हो जाते हैं। इस द्वीप के भीतरी भाग तक का क्षेत्र मानुष क्षेत्र कहलाता हैं, क्योंकि मनुष्यों की उत्पत्ति यहीं तक होती है। इस पुष्कर द्वीपार्ध में भी पूर्व तथा पश्चिम दिशा में एक एक इषुकार पर्वत के होने से दो भाग हो जाते हैं। उनमें से दक्षिणी भाग दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र कहलाता है और उत्तरी भाग उत्तरार्ध मनुष्य क्षेत्र कहा जाता है। यतः मनुष्य क्षेत्र के भीतर ऊपर बताई गई गणना के अनुसार (२+४+१२+४२+७२=१३२) सर्व चन्द्र और सूर्य एक सौ बत्तीस होते हैं। उनके आधे छियासठ चन्द्र और सूर्य दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र में प्रकाश करते हैं और छियासठ चन्द्र-सूर्य उत्तरार्धमनुष्य क्षेत्र में प्रकाश करते हैं। जब उत्तर दिशा की पंक्ति के चन्द्र-सूर्य परिभ्रमण करते हुए पूर्व दिशा में जाते हैं, तब दक्षिण दिशा की पंक्ति के चन्द्र-सूर्य पश्चिम दिशा में परिभ्रमण करने लगते हैं। इस प्रकार छियासठ चन्द्र-सूर्य दक्षिणी पुष्करार्ध में तथा छियासठ चन्द्र-सूर्य उत्तरी पुष्करार्ध में परिभ्रमण करते हुए अपने-अपने क्षेत्र को प्रकाशित करते रहते हैं। यह व्यवस्था सनातन है, अतः भूतकाल में ये प्रकाश करते रहे हैं, वर्तमानकाल में प्रकाश कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी प्रकाश करते रहेंगे।

३३३—सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठि गणा छावट्ठि गणहरा होत्था।

श्रेयांस अर्हत् के छयासठ गण और छयासठ गणधर थे।

३३४—आभिणिबोहियणाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागरोपम कही गई है। (जो तीन वार अच्युत स्वर्ग में या दो वार विजयादि अनुत्तर विमानों में जाने पर प्राप्त होती है।)

॥ षट्षष्टिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तषष्टिस्थानक समवाय

३३५—पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स नक्खत्तमासेणं मिज्जमाणस्स सत्तसट्ठि नक्खत्तमासा पण्णत्ता।

पंचसांवत्सरिक युग में नक्षत्र मास से गिनने पर सड़सठ नक्षत्रमास कहे गये हैं।

३३६—हेमवय-एरन्नवयाओ णं बाहाओ सत्तसट्ठिं सत्तसट्ठि जोयणसयाइं पणपन्नाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

हैमवत और एरवत क्षेत्र की भुजाएं सड़सठ-सड़सठ सौ पचपन योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से तीन भाग प्रमाण कही गई हैं।

३३७—मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तसट्ठिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्तभाग से गौतम द्वीप के पूर्वी चरमान्तभाग का सड़सठ हजार योजन बिना किसी व्यवधान के अन्तर कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप-सम्बन्धी मेरुपर्वत के पूर्वी भाग से जम्बूद्वीप का पश्चिमी भाग पचपन हजार योजन दूर है। तथा वहाँ से बारह हजार योजन पश्चिम में लवणसमुद्र के भीतर जाकर गौतम द्वीप अवस्थित है। अतः मेरु के पूर्वीभाग से गौतम द्वीप का पूर्वी भाग (५५+१२=६७) सड़सठ हजार योजन पर अवस्थित होने से उक्त अन्तर सिद्ध होता है।

३३८—सव्वेसिं पि णं णक्खत्ताणं सीमाविक्खंभेणं सत्तट्ठि भागं भइए समंसे पण्णत्ते।

सभी नक्षत्रों का सीमा-विष्कम्भ [दिन-रात में चन्द्र-द्वारा भोगने योग्य क्षेत्र] सड़सठ भागों से विभाजित करने पर सम अंशवाला कहा गया है।

॥ सप्तषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टषष्टिस्थानक समवाय

३३९—धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठिं चक्कवट्टिविजया, अडसट्ठिं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंता समुप्पज्जिसु वा, समुप्पज्जंति वा, समुप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

धातकीखण्ड द्वीप में अड़सठ चक्रवर्त्तियों के अड़सठ विजय (प्रदेश) और अड़सठ राजधानियां कही गई हैं। उत्कृष्ट पद की अपेक्षा धातकीखण्ड में सड़सठ अरहंत उत्पन्न होते रहे हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए।

३४०—पुक्खरवरदीवड्ढे णं अडसट्ठिं विजया, अडसट्ठिं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंतास मुप्पज्जिसु वा, समुप्पज्जंति वा, समुप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

पुष्करवर द्वीपार्ध में अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियां कही गई हैं। वहाँ उत्कृष्ट रूप से अड़सठ अरहन्त उत्पन्न होते रहे हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए।

विवेचन—मेरुपर्वत मध्य में अवस्थित होने से जम्बूद्वीप का महाविदेह क्षेत्र दो भागों में बँट जाता है—पूर्वी महाविदेह और पश्चिमी महाविदेह। फिर पूर्व में सीता नदी के बहने से तथा पश्चिम में सीतोदा नदी के बहने से उनके भी दो-दो भाग हो जाते हैं। साधारण रूप से उक्त चारों क्षेत्रों में

एक-एक तीर्थंकर चक्रवर्त्ती, बलदेव और वासुदेव उत्पन्न होते हैं। अतः एक समय में चार ही तीर्थंकर, चार ही चक्रवर्ती, चार ही बलदेव और चार ही वासुदेव उत्पन्न होते हैं। उक्त चारों खण्डों के तीन तीन अन्तर्नदियों और चार चार पर्वतों से विभाजित होने पर बत्तीस खण्ड हो जाते हैं। इनको चक्रवर्तीविजय करता है, अतः वे विजयदेश कहलाते हैं और उनमें चक्रवर्ती रहता है, अतः उन्हें राजधानी कहते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप के महाविदेह में सर्व मिला कर बत्तीस विजयक्षेत्र और राजधानियाँ होती हैं। भरत और ऐरवत क्षेत्र ये दो विजय और दो राजधानियों के मिलाने से उनकी संख्या चौतीस हो जाती है। जम्बूद्वीप से दूनी रचना धातकीखंडद्वीप में और पुष्करवरद्वीपार्ध में है, अतः (३४×२=६८) उनकी संख्या अड़सठ हो जाती है। इसी बात को ध्यान में रखकर उक्त सूत्र में अड़सठ विजय, अड़सठ राजधानी, अड़सठ तीर्थंकर, अड़सठ चक्रवर्ती, अड़सठ बलदेव और अड़सठ वासुदेवों के होने का निरूपण किया गया है। पाँचों महाविदेह क्षेत्रों में कम से कम बीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं और अधिक से अधिक एक सौ साठ तक तीर्थंकर उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपने अपने क्षेत्र में ही विहार करते हैं। यही बात चक्रवर्ती आदि के विषय में भी जानना चाहिए। उक्त संख्या में पांचों मेरु सम्बन्धी दो दो भरत और दो दो ऐवरत क्षेत्रों के मिलाने से (१६०+१०=१७०) एक सौ सत्तर तीर्थंकरादि एक साथ उत्पन्न हो सकते हैं। यह विशेष जानना चहिए।

३४१—विमलस्स णं अरहओ अडसट्ठि समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समयसंपया होत्था।

विमलनाथ अर्हन् के संघ में श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमणसम्पदा अड़सठ हजार थी।

॥ अष्टषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनसप्ततिस्थानक समवाय

३४२—समयखित्ते णं मंदरवज्जा एगूणसत्तरिं वासा वासधरपव्वया पण्णत्ता। तं जहा—पणतीसं वासा, तीसं वासहरा, चत्तारि उसुयारा।

समयक्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र या अढ़ाई द्वीप) में मन्दर पर्वत को छोड़कर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—पैंतीस वर्ष (क्षेत्र), तीस वर्षधर (पर्वत) और चार इषुकार पर्वत।

विवेचन—एक मेरुसम्बन्धी भरत आदि सात क्षेत्र होते हैं। अतः अढ़ाई द्वीपों के पाँचों मेरु सम्बन्धी पैंतीस क्षेत्र हो जाते हैं। इसी प्रकार एक मेरुसम्बन्धी हिमवन्त आदि छह-छह वर्षधर या कुलाचल पर्वत होते हैं, अतः पाँचों मेरुसम्बन्धी तीस वर्षधर पर्वत हो जाते हैं। तथा धातकीखण्ड के दो और पुष्करवर द्वीपार्ध के दो इस प्रकार चार इषुकार पर्वत हैं। इन सबको मिलाने पर (३५+३०+४=६९) उनहत्तर वर्ष और वर्षधर हो जाते हैं।

३४३—मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं एगूणसत्तरिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गौतम द्वीप का पश्चिम चरमान्त भाग उनहत्तर हजार योजन अन्तरवाला विना किसी व्यवधान के कहा गया है।

३४४—मोहणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं कम्मपगडीणं एगूणसत्तरि उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ उनहत्तर (५+९+२+४+४२+२+५=६९) कही गई हैं।

॥ एकोनसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्ततिस्थानक समवाय

३४५—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसराईए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।

श्रमण भगवान् महावीर चतुर्मास प्रमाण वर्षाकाल के वीस दिन अधिक एक मास (पचास दिन) व्यतीत हो जाने पर और सत्तर दिनों के शेष रहने पर वर्षावास करते थे।

विवेचन—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से लेकर पचास दिन वीतने पर भाद्रपद शुक्ला पंचमी को वर्षावास नियम से एक स्थान पर स्थापित करते थे। उसके पूर्व वसति आदि योग्य आवास के अभाव में दूसरे स्थान का भी आश्रय ले लेते थे।

३४६—पासे णं अरहा पुरिसादाणीए सत्तरिं वासाइं वहुपडिपुन्नाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् परिपूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्वदुःखों से रहित हुए।

३४७—वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

वासुपूज्य अर्हत् सत्तर धनुष ऊंचे थे।

३४८—मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ अवाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगे पण्णत्ते।

मोहनीय कर्म की अवाधाकाल से रहित सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम-प्रमाण कर्मस्थिति और कर्म-निषेक कहे गये हैं।

विवेचन—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का वन्ध सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपमों का होता है। जब तक बंधा हुआ कर्म उदय में आकर बाधा न देवे, उसे अवाधाकाल कहते हैं। अवाधाकाल का सामान्य नियम यह है कि एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम स्थिति के बंधनेवाले कर्म का अवाधाकाल एक सौ वर्ष का होता है। इस नियम के अनुसार सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम स्थिति का बन्ध होने पर उसका अवाधाकाल सत्तर सौ अर्थात् सात हजार वर्ष का होता है। इतने अवाधाकाल को छोड़ कर शेष रही स्थिति में कर्मपरमाणुओं की फल देने के योग्य निषेक-रचना होती है। उसका क्रम यह है कि अवाधाकाल पूर्ण होने के अनन्तर प्रथम समय में वहुत कर्म-दलिक निषिक्त होते हैं, दूसरे समय में उससे कम, तीसरे समय में उससे कम निषिक्त होते हैं। इस प्रकार से उत्तरोत्तर कम-कम होते हुए

स्थिति के अन्तिम समय में सबसे कम कर्म-दलिक निषिक्त होते हैं। ये निषिक्त कर्म-दलिक अपना-अपना समय आने पर फल देते हुए झड़ जाते हैं। यह व्यवस्था कर्मशास्त्रों के अनुसार है। किन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि जिस कर्म की जितनी स्थिति बंधती है, उसका अवाधाकाल उससे अतिरिक्त होता है, अतः बंधी हुई पूरी स्थिति के समयों में कर्म-दलिकों का निषेक होता है।

३४९—माहिंदस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सत्तरि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र के सामानिक देव सत्तर हजार कहे गये हैं।

॥ सप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकसप्ततिस्थानक समवाय

३५०—चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्व-बाहिराओ मंडलाओ सूरिए आउट्टिं करेइ।

[पंच सांवत्सरिक युग के] चतुर्थ चन्द्र संवत्सर की हेमन्त ऋतु के इकहत्तर रात्रि-दिन व्यतीत होने पर सूर्य सबसे बाहरी मंडल (चार क्षेत्र) से आवृत्ति करता है। अर्थात् दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर गमन करना प्रारम्भ करता है।

३५१—वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स एक्कसत्तरिं पाहुडा पण्णत्ता।

वीर्यप्रवाद पूर्व के इकहत्तर प्राभृत (अधिकार) कहे गये हैं।

३५२—अजिते णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। एवं सगरो वि राया चाउरंतचक्कवट्टी एक्कसत्तरिं पुव्व [सयसहस्साइं] जाव [अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता] पव्वइए।

अजित अर्हन् इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास में रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए। इसी प्रकार चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा भी इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

॥ एकसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विसप्ततिस्थानक समवाय

३५३—बावत्तरिं सुवन्नकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
लवणस्स समुद्दस्स बावत्तरिं नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति।

सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये हैं।
लवण समुद्र की बाहरी वेला को बहत्तर हजार नाग धारण करते हैं।

३५४—समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे। थेरे णं अयलभाया बावत्तरिं वासाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परि-निर्वाण को प्राप्त हो कर सर्व दुःखों से रहित हुए।

३५५—अब्भितरपुक्खरद्धे णं बावत्तरिं चंदा पभासिसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा। [एवं] बावत्तरिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा। एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स बावत्तरिपुरवरसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

आभ्यन्तर पुष्करार्ध द्वीप में बहत्तर चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और आगे प्रकाश करेंगे। इसी प्रकार बहत्तर सूर्य तपते थे, तपते हैं और आगे तपेंगे। प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के बहत्तर हजार उत्तम पुर (नगर) कहे गये हैं।

३५६—बावत्तरि कलाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—लेहं १, गणियं २, रूवं ३, नट्टं ४, गीयं ५, वाइयं ६, सरगयं ७, पुक्खरगयं ८, समतालं ९, जूयं १०, जणवायं ११, पोरेकच्चं १, अट्ठावयं १३, दगमट्टियं १४, अन्नविही १५, पाणविही १६, वत्थविही १७, सयणविही १८, अज्जं १९, पहेलियं २०, मागहियं २१, गाहं २२, सिलोगं २३, गंधजुत्ति २४, मधुसित्थं २५, आभरणविही २६, तरुणीपडिकम्मं २७, इत्थीलक्खणं २८, पुरिसलक्खणं २९, हयलक्खणं ३०, गयलक्खणं ३१, गोणलक्खणं ३२, कुक्कुड-लक्खणं ३३, मिंढयलक्खणं ३४, चक्कलक्खणं ३५, छत्तलक्खणं ३६, दंडलक्खणं ३७, असिलक्खणं ३८, मणिलक्खणं ३९, कागणिलक्खणं ४०, चम्मलक्खणं ४१, चंदचरियं ४२, सूरचरियं ४३, राहुचरियं ४४, गहचरियं ४५, सोभागकरं ४६, दोभागकरं ४७, विज्जागयं ४८, मंतगयं ४९, रहस्सगयं ५०, सभासं ५१, चारं ५२, पडिचारं ५३, वूहं ५४, पडिवूहं ५५, खंधावारमाणं ५६, नगरमाणं ५७, वत्थुमाणं ५८, खंधावारनिवेसं ५९, वत्थुनिवेसं ६०, नगरनिवेसं ६१, ईसत्थं ६२, छरुप्पवायं ६३, आससिक्खं ६४, हत्थिसिक्खं ६५, धणुव्वेयं ६६, हिरण्णपागं सुवण्णपागं मणिपागं धातुपागं ६७, बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइजुद्धं ६८, सुत्तखेडं नालियाखेडं वट्टखेडं धम्मखेडं चम्मखेडं ६९, पत्तछेज्जं कडगच्छेज्जं ७०, सजीवं निज्जीवं ७१, सउणिरुयं ७२।

बहत्तर कलाएं कही गई हैं। जैसे—

१. लेखकला—लिखने की कला, ब्राह्मी आदि अट्ठारह प्रकार की लिपियों के लिखने का विज्ञान।
२. गणितकला—गणना, संख्या जोड़ बाकी आदि का ज्ञान।
३. रूपकला—वस्त्र, भित्ति, रजत, सुवर्णपट्टादि पर रूप (चित्र) निर्माण का ज्ञान।
४. नाट्यकला—नाचने और अभिनय करने का ज्ञान।
५. गीतकला—गाने का चातुर्य।
६. वाद्यकला—अनेक प्रकार के बाजे बजाने की कला।
७. स्वरगतकला—अनेक प्रकार के राग-रागिनियों में स्वर निकालने की कला।
८. पुष्करगतकला—पुष्कर नामक वाद्य-विशेष का ज्ञान।
९. समतालकला—समान ताल से बजाने की कला।

१०. द्यूतकला—जुआ खेलने की कला ।
११. जनवादकला—जनश्रुति और किंवदन्तियों को जानना ।
१२. पुष्करगतकला—वाद्य-विशेष का ज्ञान ।
१३. अष्टापदकला—शतरंज, चौसर आदि खेलने की कला ।
१४. दकमृत्तिकाकला—जल के संयोग से मिट्टी के खिलौने आदि बनाने की कला ।
१५. अन्नविधिकला—अनेक प्रकार के भोजन बनाने की कला ।
१६. पानविधिकला—अनेक प्रकार के पेय पदार्थ बनाने की कला ।
१७. वस्त्रविधिकला—अनेक प्रकार के वस्त्र-निर्माण की कला ।
१८. शयनविधि—सोने की कला ।
अथवा सदनविधि—गृह-निर्माण की कला ।
१९. आर्याविधि—आर्या छन्द बनाने की कला ।
२०. प्रहेलिका—पहेलियों को जानने की कला । गूढ अर्थ वाली कविता करना ।
२१. मागधिका—स्तुति-पाठ करने वाले चारण-भाटों की कला ।
२२. गाथाकला—प्राकृत आदि भाषाओं में गाथाएं रचने की कला ।
२३. श्लोककला—संस्कृतभाषा में श्लोक रचने की कला ।
२४. गन्धयुति—अनेक प्रकार के गन्धों और द्रव्यों को मिला कर सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला ।
२५. मधुसिक्थ—स्त्रियों के पैरों में लगाया जाने वाला माहुर बनाने की कला ।
२६. आभरणविधि—आभूषण बनाने की कला ।
२७. तरुणीप्रतिकर्म—युवती स्त्रियों के अनुरंजन की कला ।
२८. स्त्रीलक्षण—स्त्रियों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानने की कला ।
२९. पुरुषलक्षण—पुरुषों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानने की कला ।
३०. हयलक्षण—घोड़ों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानने की कला ।
३१. गजलक्षण—हाथियों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३२. गोणलक्षण—बैलों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३३. कुक्कुटलक्षण—मुर्गों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३४. मेढलक्षण—मेषों-मेढ़ों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३५. चक्रलक्षण—चक्र आयुध के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३६. छत्रलक्षण—छत्र के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३७. दंडलक्षण—हाथ में लेने के दंडे, लकड़ी आदि के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३८. असिलक्षण—खड्ग, तलवार, बर्छी आदि के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
३९. मणिलक्षण—मणियों के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
४०. काकणीलक्षण—काकणी नामक रत्न के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।
४१. चर्मलक्षण—चमड़े की परीक्षा करने की कला ।
अथवा चर्मरत्न के शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना ।

४२. चन्द्रचर्या—चन्द्र के संचार और समकोण, वक्रकोण आदि से उदय हुए चन्द्र के निमित्त से शुभ-अशुभ लक्षणों को जानना।
४३. सूर्यचर्या—सूर्य संचार-जनित उपरागों के शुभ-अशुभ फल को जानना।
४४. राहुचर्या—राहु की गति और उसके द्वारा चन्द्र आदि ग्रहण का फल जानना।
४५. ग्रहचर्या—ग्रहों के संचार के शुभ-अशुभ फलों को जानना।
४६. सौभाग्यकर—सौभाग्य बढ़ाने वाले उपायों को जानना।
४७. दौर्भाग्यकर—दौर्भाग्य बढ़ाने वाले उपायों को जानना।
४८. विद्यागत—अनेक प्रकार की मंत्र-विद्याओं को जानना।
४९. मन्त्रगत—अनेक प्रकार के मन्त्रों को जानना।
५०. रहस्यगत—अनेक प्रकार के गुप्त रहस्यों को जानना।
५१. सभास—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान।
५२. चारकला—गुप्तचर, जासूसी की कला।
५३. प्रतिचारकला—ग्रह आदि के संचार का ज्ञान। रोगी आदि की सेवा शुश्रूषा का ज्ञान।
५४. व्यूहकला—युद्ध में सेना की गरुड आदि आकार की रचना करने का ज्ञान।
५५. प्रतिव्यूहकला—शत्रु की सेना के प्रतिपक्ष रूप में सेना की रचना करने का ज्ञान।
५६. स्कन्धावारमान—सेना के शिविर, पड़ाव आदि के प्रमाण का जानना।
५७. नगरमान—नगर की रचना का जानना।
५८. वास्तुमान—मकानों के मान-प्रमाण का जानना।
५९. स्कन्धावारनिवेश—सेना को युद्ध के योग्य खड़े करने या पड़ाव का ज्ञान।
६०. वस्तुनिवेश—वस्तुओं को यथोचित स्थान पर रखने की कला।
६१. नगरनिवेश—नगर को यथोचित स्थान पर बसाने की कला।
६२. इष्वस्त्रकला—बाण चलाने की कला।
६३. छरुप्रवाद कला—तलवार की मूठ आदि बनाना।
६४. अश्वशिक्षा—घोड़ों के वाहनों में जोतने और युद्ध में लड़ने की शिक्षा देने का ज्ञान।
६५. हस्तिशिक्षा—हाथियों के संचालन करने की शिक्षा देने का ज्ञान।
६६. धनुर्वेद—शब्दवेधी आदि धनुर्विद्या का विशिष्ट ज्ञान होना।
६७. हिरण्यपाक—सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक—चांदी, सोना, मणि और लोह आदि धातुओं को गलाने, पकाने और उनकी भस्म आदि बनाने की विधि जानना।
६८. बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, मुष्टि युद्ध, यष्टियुद्ध, सामान्य युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध आदि नाना प्रकार के युद्धों का जानना।
६९. सूत्रखेड, नालिकाखेड, वर्त्तखेड, धर्मखेड, चर्मखेड आदि अनेक प्रकार के खेलों का जानना।
७०. पत्रच्छेद्य, कटकछेद्य—पत्रों और काष्ठों के छेदन-भेदन की कला जानना।
७१. सजीव-निर्जीव—सजीव को निर्जीव और निर्जीव को सजीव जैसा दिखाना।
७२. शकुनिरुत—पक्षियों की बोली जानना।

७२ कलाओं के नामों और अर्थों में भिन्नता पाई जाती है। टीकाकार के समक्ष भी यह भिन्नता थी। अतएव उन्होंने लौकिक शास्त्रों से जान लेने का निर्देश किया है। किसी कला में किसी का अन्तर्भाव भी हो जाता है। सर्वत्र एकरूपता नहीं है।

३५७—संमुच्छिम-खहयरपंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्ष की कही गई है।

॥ द्विसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिसप्ततिस्थानक समवाय

३५८—हरिवास-रम्मयवासयाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं तेवत्तरिं जोयणसहस्साइं नव य एगुत्तरे जोयणसए सत्तरसय-एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ताओ।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाएं तेहत्तर-तेहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से साढ़े सत्तरह भाग प्रमाण ($७३९०१\frac{१७\frac{१}{२}}{१९}$) लम्बी कही गई है।

३५९—विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

विजय बलदेव तेहत्तर लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

॥ त्रिसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुःसप्ततिस्थानक समवाय

३६०—थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

स्थविर अग्निभूति गणधर चौहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

३६१—निसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिञ्छिदहाओ सीतोया महानदी चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहिमुही पवहित्ता वइरामयाए जिब्भियाए चउजोयणायामाए पन्नास-जोयणविक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठाणसंठिएणं पवाहेणं महया सद्देणं पवडइ। एवं सीता वि दक्खिणाहिमुही भाणियव्वा।

निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछ द्रह से सीतोदा महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ (७४००) योजन उत्तराभिमुखी वह कर महान् घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी, चार योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी जिह्विका से निकल कर मुक्तावलिहार के आकारवाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुंड में गिरती है।

इसी प्रकार सीता नदी भी नीलवन्त वर्षधर पर्वत के केशरी द्रह से कुछ अधिक चौहत्तर सौ (७४००) योजन दक्षिणाभिमुखी वह कर महान् घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी चार योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी जिह्विका से निकल कर मुक्तावलि हार के आकारवाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुंड में गिरती है।

३६२—चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

चौथी को छोड़कर शेष छह पृथिवियों में चौहत्तर (३०+२५+१५+३+१=७४) लाख नारकावास कहे गये हैं।

॥ चतु:सप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चसप्ततिस्थानक-समवाय

३६३—सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पन्नत्तरि जिणसया होत्था।

सीतले णं अरहा पन्नत्तरि पुव्वसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

संती णं अरहा पन्नत्तरिवाससहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हन् के संघ में पचहत्तर सौ (७५००) केवलिजिन थे।

शीतल अर्हन् पचहत्तर हजार पूर्व वर्ष अगारवास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

शान्ति अर्हन् पचहत्तर हजार वर्ष अगारवास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

॥ पञ्चसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्सप्ततिस्थानक समवाय

३६४—छावत्तरिं विज्जुकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। एवं दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणियमग्गीणं, छण्हं पि जुगलयाणं छावत्तरिं सयसहस्साइं।

विद्युत्कुमार देवों के छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये हैं। इसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, और अग्निकुमार, इन दक्षिण-उत्तर दोनों युगलवाले छहों देवों के भी छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये हैं।

॥ षट्सप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तसप्ततिस्थानक समवाय

३६५—भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तहत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारावासमज्झे वसित्ता महारायाभिसेयं संपत्ते।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा सतहत्तर लाख पूर्व कोटि वर्ष कुमार अवस्था में रह कर महाराजपद को प्राप्त हुए—राजा हुए।

३६६—अंगवंसाओ णं सत्तहत्तरि रायाणो मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया।

अंगवंश की परम्परा में उत्पन्न हुए सतहत्तर राजा मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

३६७—गद्दतोय-तुसियाणं देवाणं सत्तहत्तरिं देवसहस्सपरिवारा पण्णत्ता।

गर्दतोय और तुषित लोकान्तिक देवों का परिवार सतहत्तर हजार (७७०००) देवोंवाला कहा गया है।

३६८—एगमेगे णं मुहुत्ते सत्तहत्तरिं लवे लवग्गेणं पण्णत्ते।

प्रत्येक मुहूर्त में लवों की गणना से सतहत्तर लव कहे गये हैं।

विवेचन—काल के मान-विशेष को लव कहते हैं। एक हृष्ट-पुष्ट नीरोग और संक्लेश-रहित मनुष्य के एक बार श्वास-उच्छ्वास लेने को एक प्राण कहते हैं। सात प्राणों का एक स्तोक होता है। सात स्तोकों का एक लव होता है और सतहत्तर लवों का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तेहत्तर (७ × ७ × ७७ = ३७७३) श्वासोच्छ्वास या प्राण होते हैं।

॥ सप्तसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टसप्ततिस्थानक समवाय

३६९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वेसमणे महाराया अट्ठहत्तरीए सुवन्नकुमार-दीवकुमारा-वाससयसहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महारायत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

देवेन्द्र देवराज शक्र का वैश्रमण नामक चौथा लोकपाल सुपर्णकुमारों और द्वीपकुमारों के (३८+४०=७८) अठहत्तर लाख आवासों (भवनों) का आधिपत्य, अग्रस्वामित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व (पोषकत्व) महाराजत्व, सेनानायकत्व करता और उनका शासन एवं प्रतिपालन करता है। भवनों से अभिप्राय उनमें रहने वाले देव-देवियों से भी है। वैश्रमण उन सब का लोकपाल है।)

३७०—थेरे णं अकंपिए अट्ठहत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे

स्थविर अकम्पित अठहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए।

३७१—उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए पढमाओ मंडलाओ एगूणचत्तालीसइमे मंडले अट्ठहत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता णं चारं चरइ। एवं दक्खिणायण-नियट्टे वि।

उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मंडल से उनचालीसवें मण्डल तक एक मुहूर्त के इकसठिए अठहत्तर भाग प्रमाण दिन को कम करके और रजनी क्षेत्र (रात्रि) को बढ़ा कर संचार करता है। इसी प्रकार दक्षिणायन से लौटता हुआ भी रात्रि और दिन के प्रमाण को घटाता और बढ़ाता हुआ संचार करता है।

॥ अष्टसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनाशीतिस्थानक समवाय

३७२—वलयामुहस्स णं पायालस्स हिट्ठिल्लाओ चरमंताओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं केउस्स वि, जूयस्स वि, ईसरस्स वि।

बड़वामुख नामक महापातालकलश के अधस्तन चरमान्त भाग से इस रत्नप्रभा पृथिवी का निचला चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार केतुक, यूपक और ईश्वर नामक महापातलों का अन्तर भी जानना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। उसमें लवण समुद्र एक हजार योजन गहरा है। उस गहराई से एक लाख योजन गहरा बड़वामुख पाताल कलश है। उसके

अन्तिम भाग से रत्नप्रभा पृथिवी का अन्तिम भाग उन्यासी हजार योजन है। क्योंकि रत्नप्रभा पृथिवी की एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई में से एक लाख एक हजार योजन घटाने पर (१८००००—१०१०००=७९०००) उन्यासी हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीनों पाताल कलशों का भी अन्तर उनके अधस्तन अन्तिम भाग से रत्नप्रभा पृथिवी के अधस्तन अन्तिम भाग का उन्यासी-उन्यासी हजार योजन जानना चाहिए।

३७३—छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीति जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

छठी पृथिवी के बहुमध्यदेशभाग से छठे घनोदधिवात का अधस्तल चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन के अन्तर-व्यवधान वाला कहा गया है।

विवेचन—छठी तमःप्रभा पृथिवी की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन है। उसके नीचे घनोदधिवात को यदि इस ग्रन्थ के मत से इक्कीस हजार योजन मोटा माना जावे तो उक्त पृथिवी की मध्यभाग रूप आधी मोटाई अठावन हजार और घनोदधिवात की मोटाई इक्कीस हजार इन दोनों को जोड़ने पर (५८०००+२१०००=७९०००) उन्यासी हजार योजन का अन्तर सिद्ध होता है। परन्तु अन्य ग्रन्थों के मत से सभी पृथिवियों के नीचे के घनोदधिवात की मोटाई बीस-बीस हजार योजन ही कही गई है, अतः उनके अनुसार उक्त अन्तर पाँचवी पृथिवी के मध्यभाग से वहाँ के घनोदधिवात के अन्त तक का जानना चाहिए। क्योंकि पाँचवी पृथिवी एक लाख अठारह हजार योजन मोटी है। उसका मध्यभाग उनसठ हजार और घनोदधि की मोटाई बीस हजार ये दोनों मिल कर उन्यासी हजार योजन हो जाते हैं। संस्कृतटीकाकार ने यह भी संभावना व्यक्त की है कि 'बहु' शब्द से एक हजार अधिक अर्थात् उनसठ हजार योजन प्रमाण मध्यभाग लेना चाहिए।

३७४—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बारस्स य बारस्स य एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक उन्यासी हजार योजन कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप की पूर्व आदि चारों दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के चार द्वार हैं। जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष और १३½ अंगुल प्रमाण है। प्रत्येक द्वार की चौड़ाई चार-चार योजन है। चारों की चौड़ाई सोलह योजनों को उक्त परिधि के प्रमाण में से घटा देने और शेष में चार का भाग देने पर एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक उन्यासी हजार योजन सिद्ध हो जाता है।

॥ एकोनाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अशीतिस्थानक समवाय

३७५—सेज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइ वाससयसहस्साइं महाराया होत्था।

श्रेयान्स अर्हन् अस्सी धनुष ऊंचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी धनुष ऊंचे थे। अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊंचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी लाख वर्ष महाराज पद पर आसीन रहे।

३७६—आउबहुले णं कंडे असीइ जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

रत्नप्रभा पृथिवी का तीसरा अब्बहुल कांड (भाग) अस्सी हजार योजन मोटा कहा गया है।

३७७—ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो असीई सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज ईशान के अस्सी हजार सामानिक देव कहे गये हैं।

३७८—जंबुद्दीवे णं दीवे असीउत्तरं जोयणसयं ओगाहेत्ता सूरिए उत्तरकट्ठोवगए पढमं उदयं करेइ।

जम्बूद्वीप के भीतर एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश कर सूर्य उत्तर दिशा को प्राप्त हो प्रथम बार (प्रथम मंडल में) उदित होता है।

विवेचन—सूर्य का सर्व संचारक्षेत्र पांच सौ दश योजन है। इसमें से तीन सौ तीस योजन लवण समुद्र के ऊपर है और शेष एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीप के भीतर है, जहाँ वह उत्तर दिशा की ओर से उदित होता है।

॥ अशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकाशीतिस्थानक समवाय

३७९—नवनवमिया भिक्खुपडिमा एक्कासीइ राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं [भिक्खासएहिं] अहासुत्तं जाव आराहिया [भवइ]।

नवनवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा इक्यासी रात-दिनों में चार सौ पाँच भिक्षादत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्त्व स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्त्तित और आराधित होती है।

विवेचन—इस भिक्षुप्रतिमा के पालन करने में नौ-नौ दिन के नव-नवक अर्थात् इक्यासी दिन लगते हैं। प्रथम नौ दिनों में प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति ग्रहण की जाती है। दूसरे नौ दिनों में प्रतिदिन दो-दो भिक्षादत्तियां ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक नौ-नौ दिनों में एक-एक भिक्षा-दत्ति को बढ़ाते हुए नवें नौ दिनों में प्रतिदिन नौ-नौ भिक्षादत्तियाँ ग्रहण की जाती हैं। उन सब का

योग (९+१८+२७+३६+४५+५४+६३+७२+८१=४०५) चार सौ पाँच होता है। गोचरी-काल के सिवाय शेष समय मौनपूर्वक आगम की आज्ञानुसार आत्माराधन में व्यतीत किया जाता है।

३८०—कुंथुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणपज्जवनाणिसया होत्था। विवाह-पन्नत्तीए एकासीति महाजुम्मसया पण्णत्ता।

कुन्थु अर्हत् के संघ में इक्यासी सौ (८१००) मनःपर्यय ज्ञानी थे। व्याख्या-प्रज्ञप्ति में इक्यासी महायुग्मशत कहे गये हैं।

विवेचन—यहाँ 'शत' शब्द से अध्ययन का ग्रहण करना चाहिए। वे कृत युग्म, द्वापरयुग्म आदि अनेक राशि के विचार रूप अन्तराध्ययनरूप आगम से जानना चाहिए।

॥ एकाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

द्वि-अशीतिस्थानक समवाय

३८१—जंबुद्दीवे [णं] दीवे वासीयं मंडलसयं जं सूरिए दुक्खुत्तो संकमित्ता णं चारं चरइ। तं जहा—निक्खममाणे य पविसमाणे य।

इस जम्बूद्वीप में सूर्य एक सौ व्यासीवें मंडल को दो वार संक्रमण कर संचार करता है। जैसे—एक वार निकलते समय और दूसरी वार प्रवेश करते समय।

विवेचन—सूर्य के संचार करने के मंडल (१८४) एक सौ चौरासी हैं। इनमें से सबसे भीतरी जम्बूद्वीप वाले मंडल पर और सबसे बाहरी लवणसमुद्र के मंडल पर तो वह एक-एक वार ही संचार करता है। शेष सभी मंडलों पर दो-दो वार संचार करता है—एक वार उत्तरायण के समय प्रवेश करते हुए और दूसरी वार दक्षिणायन के समय निष्क्रमण करते हुए। इस सूत्र में व्यासीवें स्थानक की अपेक्षा इसका निरूपण किया गया है। दूसरी वात यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि जम्बूद्वीप के ऊपर सूर्य के केवल पैंसठ ही मंडल होते हैं, फिर भी यहाँ धातकीखंड आदि के निराकरण करने के लिए तथा इसी द्वीप-सम्बन्धी सूर्य के संचार-क्षेत्र की विवक्षा से उन सभी मंडलों को 'जम्बूद्वीप' पद से उपलक्षित किया गया है।

३८२—समणे णं भगवं महावीरे वासीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए।

श्रमण भगवान् महावीर व्यासी रात-दिन वीतने के पश्चात् देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में संहृत किये गये।

३८३—महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं वासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं रुप्पिस्स वि।

महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपरी चरमान्त भाग से सौगन्धिक कांड का अधस्तन चरमान्त भाग व्यासी सौ (८२००) योजन के अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार रुक्मी का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के तीन काण्ड या विभाग हैं—खरकांड, पंककांड और अब्बहुल काण्ड। इनमें से खरकांड के सोलह भाग हैं—१ रत्नकांड, २ वज्रकांड, ३ वैडूर्यकांड, ४ लोहिताक्ष कांड, ५ मसारगल्ल, ६ हंसगर्भ, ७ पुलक, ८ सौगन्धिक, ९ ज्योतीरस, १० अंजन, ११ अंजनपुलक, १२ रजत, १३ जातरूप, १४ अंक, १५ स्फटिक और १६ रिष्टकांड। ये प्रत्येक कांड एक एक हजार योजन मोटे हैं। प्रकृत में आठवें सौगन्धिक कांड का अधस्तन तलभाग विवक्षित है, जो रत्नप्रभा पृथिवी के उपरिम तल से आठ हजार योजन है। तथा रत्नप्रभापृथिवी के उपरिमतल से महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत का उपरिमतल भाग दो सौ योजन है। इस प्रकार दोनों को मिलाकर (८००० +२००—८२००) ब्यासी सौ या आठ हजार दो सौ योजन का अन्तर महाहिमवन्त के ऊपरी भाग से सौगन्धिक कांड के अधस्तन तल भाग का सिद्ध हो जाता है।

रुक्मी वर्षधर पर्वत भी दो सौ योजन ऊंचा है, उसके ऊपरी भाग से उक्त सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन तल भी ब्यासी सौ (८२००) योजन के अन्तरवाला है।

।। द्व्यशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रि-अशीतिस्थानक समवाय

३८४—समणे [णं] भगवं महावीरं वासीइ राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वट्टमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए।

श्रमण भगवान् महावीर ब्यासी रात-दिनों के वीत जानेपर तियासीवें रात-दिन के वर्तमान होने पर देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में संहृत हुए।

३८५—सीयलस्स णं अरहओ तेसीई गणा, तेसीई गणहरा होत्था। थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

शीतल अर्हत् के संघ में तियासी गण और तियासी गणधर थे। स्थविर मंडितपुत्र तियासी वर्ष की सर्व आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए।

३८६—उसभे णं अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास में रह कर सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी केवली जिन हुए।

।। त्र्यशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुरशीतिस्थानक समवाय

३८७—चउरासीइ निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

चौरासी लाख नारकावास कहे गये हैं।

३८८—उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। एवं भरहो बाहुबली बंभी सुंदरी।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् चौरासी लाख पूर्व वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त होकर सर्व दुःखों से रहित हुए। इसी प्रकार भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी भी चौरासी-चौरासी लाख पूर्व वर्ष की पूरी आयु पाल कर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

३८९—सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रेयान्स अर्हत् चौरासी लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

३९०—तिविट्ठे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववन्ने।

त्रिपृष्ट वासुदेव चौरासी लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सातवीं पृथिवी के अप्रतिष्ठान नामक नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुए।

३९१—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो चउरासीई सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र, देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव हैं।

३९२—सव्वे वि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं अंजणगपव्वया चउरासीइं चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप से बाहर के सभी (चारों) मन्दराचल चौरासी चौरासी हजार योजन ऊंचे कहे गये हैं। नन्दीश्वर द्वीप के सभी (चारों) अंजनक पर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊंचे कहे गये हैं।

३९३—हरिवास-रम्मयवासियाणं जीवाणं धणुपिट्ठा चउरासीइं जोयणसहस्साइं सोलस जोयणाइं चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाओं के धनुःपृष्ठ का परिक्षेप (परिधि) चौरासी हजार सोलह योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से चार भाग प्रमाण (८४०१६$\frac{४}{१९}$) हैं।

३९४—पंकबहुलस्स णं कण्डस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं चोरासीइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

पंकबहुल भाग के ऊपरी चरमान्त भाग से उसी का अधस्तन—नीचे का चरमान्त भाग चौरासी लाख योजन के अन्तर वाला कहा गया है।

भावार्थ—रत्नप्रभा पृथिवी का दूसरा पंकबहुल कांड चौरासी लाख योजन मोटा है।

३९५—विवाहपन्नत्तीए णं भगवतीए चउरासीइं पयसहस्सा पदग्गेणं पण्णत्ता।

व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक भगवती सूत्र के पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद (अवान्तर अध्ययन) कहे गये हैं।

विवेचन—आचारांग के १८ हजार पद हैं और अगले-अगले अंगों के इससे दुगुने पद होने से भगवती के दो लाख अठासी हजार पद मतान्तर से सिद्ध होते हैं।

३९६—चोरासीइं नागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
चोरासीइं पइन्नगसहस्साइं पण्णत्ता।
चोरासीइं जोणिप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

नागकुमार देवों के चौरासी लाख आवास (भवन) हैं।
चौरासी हजार प्रकीर्णक कहे गये हैं।
चौरासी लाख जीव-योनियां कही गई हैं।

विवेचन—जीवों की उत्पत्ति-स्थान को योनि कहते हैं। इसी को जन्म का आधार कहा जाता है। वे चौरासी लाख होती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चारों की सात-सात लाख योनियाँ	(२८०००००)
(२) प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय की क्रमशः दश और चौदह लाख योनियां	(२४०००००)
(३) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों में प्रत्येक की दो-दो लाख योनियाँ	(६०००००)
(४) देवों की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(५) नारकों की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(६) तिर्यंच पंचेन्द्रियों की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(७) मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ	(१४०००००)
सर्वयोग	८४०००००

यद्यपि जीवों के उत्पत्ति स्थान असंख्यात प्रकार के होते हैं, तथापि जिन योनियों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श समान गुणवाले होते हैं, उनको समानता की विवक्षा से यहाँ एक योनि कहा गया है।

३९७—पुव्वाइयाणं सीसपहेलियापज्जवसाणाणं सट्ठाणट्ठाणंतराणं चोरासीए गुणकारे पण्णत्ते।

पूर्व की संख्या से लेकर शीर्षप्रहेलिका नाम की अन्तिम महासंख्या तक स्वस्थान और स्थानान्तर चौरासी (लाख) के गुणकार वाले कहे गये हैं।

विवेचन—जैनशास्त्रों के अनुसार संख्या के शत (सौ) सहस्र (हजार) शतसहस्र (लाख) आदि से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक जो संख्या-स्थान होते हैं, उनमें जहाँ से प्रथम वार चौरासी से गुणाकार प्रारम्भ होता है, उसे स्वस्थान और उससे आगे के स्थान को स्थानान्तर कहा गया है। जैसे—चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। यह स्वस्थान है और इसे चौरासी लाख से गुणाकार करने पर जो पूर्व नाम का दूसरा स्थान होता है, वह स्थानान्तर है। इसी प्रकार आगे पूर्व की संख्या को चौरासी लाख से गुणा करने पर त्रुटिताङ्ग नाम का जो स्थान प्राप्त होता है, वह स्वस्थान है और उसे चौरासी लाख से गुणा करने पर त्रुटित नाम का जो स्थान आता है, वह स्थानान्तर है। इस प्रकार पूर्व से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक चौदह स्वस्थान और चौदह ही स्थानान्तर चौरासी-चौरासी लाख के गुणाकारवाले जानना चाहिए।

३९८—उसभस्स णं अरहओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ होत्था।

ऋषभ अर्हत् के संघ में चौरासी हजार श्रमण (साधु) थे।

३९९—सव्वे वि चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खायं।

सभी वैमानिक देवों के विमानावास चौरासी लाख, सत्तानवे हजार और तेईस विमान होते हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है।

॥ चतुरशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चाशीतिस्थानक समवाय

४००—आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पंचासीइं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

चूलिका सहित भगवद् आचाराङ्ग सूत्र के पचासी उद्देशन काल कहे गये हैं।

विवेचन—आचाराङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। उनमें से प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन में सात, दूसरे में छह, तीसरे में चार, चौथे में चार, पाँचवें में छह, छठे में पाँच, सातवें में आठ, आठवें में चार और नवें अध्ययन में सात उद्देश हैं। दूसरे श्रुतस्कन्ध में चूलिका नामक पाँच अधिकार हैं, उनमें पाँचवीं निशीथ नाम की चूलिका प्रायश्चित्त रूप है, अतः उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है। सात अध्ययनों में से प्रथम में शेष चार चूलिकाओं में से प्रथम चूलिका में सात अध्ययन हैं, उनमें क्रम से ग्यारह, तीन, तीन, दो, दो, दो, और दो उद्देश हैं। दूसरी चूलिका में सात उद्देश हैं। तीसरी और चौथी चूलिका में एक-एक उद्देश है। इन सब का योग (७+६+४+४+६+५+८+४+७+ ११+३+३+२+२+२+२+७+१+१=८५) पचासी होता है। एक उद्देश का पठन-पाठन-काल एक ही माना गया है और एक पठन-पाठन-काल को एक उद्देशन-काल कहा जाता है। इस प्रकार चूलिका सहित आचाराङ्ग सूत्र के पचासी उद्देशन-काल कहे गये हैं।

४०१—धायइसण्डस्स णं मंदरा पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता। रुयए णं मंडलियपव्वए पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

धातकीखंड के [दोनों] मन्दराचल भूमिगत अवगाढ तल से लेकर सर्वाग्र भाग (अंतिम ऊंचाई) तक पचासी हजार योजन कहे गये हैं। [इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के दोनों मन्दराचल भी जानना चाहिए।] रुचक नामक तेरहवें द्वीप का अन्तर्वर्ती गोलाकार मंडलिक पर्वत भूमिगत अवगाढ तल से लेकर सर्वाग्र भाग तक पचासी हजार योजन कहा गया है। अर्थात् इन सब पर्वतों की ऊंचाई पचासी हजार योजन की है।

४०२—नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं पंचासीइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

नन्दनवन के अधस्तन चरमान्त भाग से लेकर सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन चरमान्त भाग पचासी सौ (८५००) योजन अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—मेरु पर्वत के भूमितल से नीचे सौगन्धिक काण्ड का तलभाग आठ हजार योजन है और नन्दनवन मेरु के भूमितल से पांच सौ योजन की ऊंचाई पर अवस्थित है। अतः उसके अधस्तन तल से सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन तल भाग (८०००+५००=८५००) पचासी सौ योजन के अन्तरवाला सिद्ध हो जाता है।

॥ पञ्चाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षडशीतिस्थानक समवाय

४०३—सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ छलसीई गणा छलसीइ गणहरा होत्था। सुपासस्स णं अरहओ छलसीई वाइसया होत्था।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् के छयासी गण और छयासी गणधर थे।
सुपार्श्व अर्हत् के छयासी सौ (८६००) वादी मुनि थे।

४०४—दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं छलसीई जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

दूसरी पृथिवी के मध्य भाग से दूसरे घनोदधिवात का अधस्तन चरमान्त भाग छयासी हजार योजन के अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—दूसरी शर्करा पृथिवी एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है, उसका आधा भाग छयासठ हजार योजन-प्रमाण है। तथा उसी पृथिवी के नीचे का घनोदधिवात बीस हजार योजन मोटा है। इसलिए दूसरी पृथिवी के ठीक मध्य भाग से दूसरे घनोदधिवात का अन्तिम भाग (६६+२०=८६) छयासी हजार योजन के अन्तरवाला सिद्ध हो जाता है।

॥ षडशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्ताशीतिस्थानक समवाय

४०५—मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयण-सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं मंदरस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्सावासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते। एवं चेव मंदरस्स उत्तरिल्लाओ चरमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साहिं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तूप आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है। मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त भाग से दकभास आवास पर्वत का उत्तरी चरमान्त सतासी हजार योजन के अन्तरवाला है। इसी प्रकार मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है। और इसी प्रकार मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—मन्दर पर्वत जम्बूद्वीप के ठीक मध्य भाग में अवस्थित है और वह भूमितल पर दश हजार योजन विस्तार वाला है। मेरु या मन्दर पर्वत के इस विस्तार को जम्बूद्वीप के एक लाख योजन में से घटा देने पर नव्वै हजार योजन शेष रहते हैं। उसके आधे पैंतालीस हजार योजन पर जम्बूद्वीप का पूर्वी भाग, दक्षिणी भाग, पश्चिमी भाग और उत्तरी भाग प्राप्त होता है। इस से आगे लवण समुद्र के भीतर बियालीस हजार योजन की दूरी पर वेलन्धर नागराज का पूर्व में गोस्तूप आवास पर्वत अवस्थित है। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी भाग से उतनी ही दूरी पर दकभास आवास पर्वत है, पश्चिमी भाग से उतनी ही दूरी पर शंख आवास पर्वत है और उत्तरी भाग से उतनी ही दूरी पर दकसीम नाम का आवास पर्वत अवस्थित है। अतः मन्दर पर्वत के पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और उत्तरी अन्तिम भाग से उपर्युक्त दोनों दूरियों को जोड़ने पर (४५+४२=८७) सतासी हजार योजन का सूत्रोक्त चारों अन्तर सिद्ध हो जाते हैं।

४०६—छण्हं कम्मपगडीणं आइम-उवरिल्लवज्जाणं सत्तासीई उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

आद्य ज्ञानावरण और अन्तिम (अन्तराय) कर्म को छोड़ कर शेष छहों कर्म प्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ (९+२+२८+४+४२+२=८७) सतासी कही गई हैं।

४०७—महाहिमवंत कूडस्स णं उवरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसयाइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं रुप्पिकूडस्स वि।

महाहिमवन्त कूट के उपरिम अन्त भाग से सौगन्धिक कांड का अधस्तन चरमान्त भाग सतासी सौ (८७००) योजन अन्तरवाला है। इसी प्रकार रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक कांड के अधोभाग का अन्तर भी सतासी सौ योजन है।

विवेचन—पहले बताया जा चुका है कि रत्नप्रभा के समतल भाग से सौगन्धिक कांड आठ हजार योजन नीचे है। तथा रत्नप्रभा के समतल से दो सौ योजन ऊंचा महाहिमवन्त वर्ष धर पर्वत है, उसके ऊपर महाहिमवन्त कूट है, उसकी ऊंचाई पाँच सौ योजन है। इन तीनों को जोड़ने पर (८०००+२००+५००=८७००) सूत्रोक्त सतासी सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत दो सौ योजन और उसके ऊपर का रुक्मी कूट पाँच सौ योजन ऊंचे हैं। अतः रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक कांड के नीचे तक का सतासी सौ योजन का अन्तर भी सिद्ध है।

।। सप्ताशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

अष्टाशीतिस्थानक समवाय

४०८—एगमेगस्स णं चंदिम-सूरियस्स अट्ठासीइं अट्ठासीइं महग्गहा परिवारो पण्णत्तो।

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के परिवार में अठासी-अठासी महाग्रह कहे गये है।

४०९—दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइं सुत्ताइं पण्णत्ताइं। तं जहा—उज्जसुयं परिणयापरिणयं एवं अट्ठासीइं सुत्ताणि भाणियव्वाणि जहा नंदीए।

दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के सूत्रनामक दूसरे भेद में अठासी सूत्र कहे गये हैं। जैसे ऋजुसूत्र, परिणता-परिणत सूत्र, इस प्रकार नन्दी सूत्र के अनुसार अठासी सूत्र कहना चाहिए। (इनका विशेष वर्णन आगे १४७ वें स्थानक में किया गया है)।

४१०—मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउसु वि दिसासु नेयव्वं।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तूप आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग अठासी सौ (८८००) योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में आवास पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—सतासीवें स्थानक में आवास पर्वतों का मेरु पर्वत से सतासी हजार योजन का अन्तर बताया गया है, उसमें गोस्तूप आदि चारों आवास पर्वतों के एक-एक हजार योजन विस्तार को जोड़ देने पर अठासी हजार योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४११—बाहिराओ उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मंडलगते अट्ठासीति इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ। दक्खिणकट्ठाओ णं सूरिए दोच्च छम्मासं अयमाणे चोयालीसतिमे मंडलगते अट्ठासीई इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणीखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ।

बाहरी उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा को जाता हुआ सूर्य प्रथम छह मास में चवालीसवें मण्डल में पहुँचने पर मुहूर्त के इकसठिये अठासी भाग दिवस क्षेत्र (दिन) को घटाकर और रजनीक्षेत्र (रात) को बढ़ा कर संचार करता है। [इसी प्रकार] दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा को जाता हुआ सूर्य दूसरे छह मास पूरे करके चवालीसवें मण्डल में पहुंचने पर मुहूर्त के इकसठिये अठासी भाग रजनी क्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढ़ा कर संचार करता है।

विवेचन—सूर्य छह मास दक्षिणायन और छह मास उत्तरायण रहता है। जब वह उत्तर दिशा के सबसे बाहरी मंडल से लौटता हुआ दक्षिणायन होता है उस समय वह प्रतिमंडल पर एक मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग प्रमाण ($\frac{२}{६१}$) दिन का प्रमाण घटाता हुआ और इतना ही ($\frac{२}{६१}$) रात का प्रमाण बढ़ाता हुआ परिभ्रमण करता है। इस प्रकार जब वह चवालीसवें मंडल पर परिभ्रमण करता है, तब वह ($\frac{२}{६१} \times ४४ = \frac{८८}{६१}$) मुहूर्त के अठासी इकसठ भाग प्रमाण दिन को घटा देता है और रात को उतना ही बढ़ा देता है। इसी प्रकार दक्षिणायन से उत्तरायण जाने पर चवालीसवें मंडल में अठासी इकसठ भाग रात को घटा कर और उतना ही दिन को बढ़ाकर परिभ्रमण करता है। इस प्रकार वर्तमान मिनिट सेकिण्ड के अनुसार सूर्य अपने दक्षिणायन काल में प्रतिदिन १ मिनिट $५\frac{१२०}{१८४}$ सेकिण्ड दिन की हानि और रात की वृद्धि करता है। तथा उत्तरायण काल में प्रतिदिन १ मि० $५\frac{१२}{१८४}$ से० दिन की वृद्धि और रात की हानि करता हुआ परिभ्रमण करता है। उक्त व्यवस्था के अनुसार दक्षिणायन के अन्तिम मंडल में परिभ्रमण करने पर दिन १२ मुहूर्त का होता है और रात १८ मुहूर्त की होती है। तथा उत्तरायण के अन्तिम मंडल में परिभ्रमण करने पर दिन १८ मुहूर्त का होता है और रात १२ मुहूर्त की होती है।

॥ अष्टाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोननवतिस्थानक समवाय

४१२—उसभे णं अरहा कोसलिए इमीसे ओसप्पिणीए ततियाए सुसमदूसमाए पच्छिमे भागे एगूणणउइए अद्धमासेहिं [सेसेहिं] कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। समणे णं भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थाए दूसमसुसमाए समाए पच्छिमे भागे एगूणनउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् इसी अवसर्पिणी के तीसरे सुषमदुषमा आरे के पश्चिम भाग में नवासी अर्धमासों (३ वर्ष, ८ मास १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

श्रमण भगवान् महावीर इसी अवसर्पिणी के चौथे दुःषमसुषमा काल के अन्तिम भाग में नवासी अर्धमासों (३ वर्ष ८ मास १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

४१३—हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एगूणनउइं वाससयाइं महाराया होत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती हरिषेणराजा नवासी सौ (८९००) वर्ष महासाम्राज्य पद पर आसीन रहे।

४१४—संतिस्स णं अरहओ एगूणनउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।

शान्तिनाथ अर्हत् के संघ में नवासी हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिकासम्पदा थी।

॥ एकोननवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

नवतिस्थानक समवाय

४१५—सीयले णं अरहा नउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।
अजियस्स णं अरहओ नउई गणा नउई गणहरा होत्था। एवं संतिस्स वि।

शीतल अर्हत् नव्वै धनुष ऊंचे थे।

अजित अर्हत् के नव्वै गण और नव्वै गणधर थे। इसी प्रकार शान्ति जिन के नव्वै गण और नव्वै गणधर थे।

४१६—सयंभुस्स णं वासुदेवस्स णउइवासाइं विजए होत्था।

स्वयम्भू वासुदेव ने नव्वै वर्ष में पृथिवी को विजय किया था।

४१७—सव्वेसिं णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकण्डस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं नउइजोयणसयाइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वतों के ऊपरी शिखर से सौगन्धिककाण्ड का नीचे का चरमान्त भाग नव्वै सौ (६०००) योजन अन्तरवाला है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के समतल से सौगन्धिककांड आठ हजार योजन है और सभी वृत्त-वैताढ्य पर्वत एक हजार योजन ऊंचे हैं। अतः दोनों का अन्तर नव्वै सौ (८०००+१०००=६०००) योजन सिद्ध है।

॥ नवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकनवतिस्थानक समवाय

४१८—एकाणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ।

पर-वैयावृत्त्यकर्म प्रतिमाएं इक्यानवै कही गई हैं।

विवेचन—दूसरे रोगी साधु और आचार्य आदि का भक्त-पान, सेवा-शुश्रूषा एवं विनयादि करने के अभिग्रह विशेष को यहाँ प्रतिमा पद से कहा गया है।

वैयावृत्य के उन इक्कानवै प्रकारों का विवरण इस प्रकार है—

१ दर्शन, ज्ञान चारित्रादि से गुणाधिक पुरुषों का सत्कार करना, २ उनके आने पर खड़ा होना, ३ वस्त्रादि देकर सन्मान करना, ४ उन के बैठते हुए आसन लाकर बैठने के लिए प्रार्थना करना ५ आसनानुप्रदान करना—उन के आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, ६ कृतिकर्म करना, ७ अंजली करना, ८ गुरुजनों के आने पर आगे जाकर उनका स्वागत करना, ९ गुरुजनों के गमन करने पर उनके पीछे चलना, १० उन के बैठने पर बैठना। यह दश प्रकार का शुश्रूषा-विनय है।

तथा १ तीर्थंकर, २ केवलिप्रज्ञप्त धर्म, ३ आचार्य, ४ वाचक (उपाध्याय) ५ स्थविर, ६ कुल, ७ गण, ८ संघ, ९ साम्भोगिक, १० क्रिया (आचार) विशिष्ट, ११ विशिष्ट मतिज्ञानी, १२ श्रुतज्ञानी, १३ अवधिज्ञानी, १४ मनःपर्यवज्ञानी और १५ केवलज्ञानी इन पन्द्रह विशिष्ट पुरुषों की १ आशातना नहीं करना, २ भक्ति करना, ३ बहुमान करना, और ४ वर्णवाद (गुण-गान) करना, ये चार कर्तव्य उक्त पन्द्रह पदवालों के करने पर (१५×४=६०) साठ भेद हो जाते हैं।

सात प्रकार का औपचारिक विनय कहा गया है—१ अभ्यासन – वैयावृत्त्य के योग्य व्यक्ति के पास बैठना, २ छन्दोऽनुवर्तन—उसके अभिप्राय के अनुकूल कार्य करना, ३ कृतप्रतिकृति—'प्रसन्न हुए आचार्य हमें सूत्रादि देंगे' इस भाव से उनको आहारादि देना, ४ कारितनिमित्तकरण—पढ़े हुए शास्त्र-पदों का विशेष रूप से विनय करना और उनके अर्थ का अनुष्ठान करना, ५ दुःख से पीड़ित की गवेषणा करना, ६ देश-काल को जान कर तदनुकूल वैयावृत्त्य करना, ७ रोगी के स्वास्थ्य के अनुकूल अनुमति देना।

पाँच प्रकार के आचारों के आचरण कराने वाले आचार्य पाँच प्रकार के होते हैं। उनके सिवाय उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्त्य करने से वैयावृत्त के १४ भेद होते हैं।

इस प्रकार शुश्रूषा विनय के १० भेद, तीर्थंकरादि के अनाशातनादि ६० भेद, औपचारिक विनय के ७ भेद और आचार्य आदि के वैयावृत्य के १४ भेद मिलाने पर (१०+६०+७+१४=९१) इक्यानवें भेद हो जाते हैं।

४१९—कालोए णं समुद्दे एकाणउई जोयणसयसहस्साइं साहियाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

कालोद समुद्र परिक्षेप (परिधि) की अपेक्षा कुछ अधिक इक्यानवे लाख योजन कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है, लवण समुद्र दो लाख योजन विस्तृत है, धातकीखण्ड चार लाख योजन विस्तृत है और उसे सर्व ओर से घेरने वाला कालोद समुद्र आठ योजन विस्तृत है। इन सबकी विष्कम्भ सूची २९ लाख योजन होती है। इतनी विष्कम्भ सूची वाले कालोद समुद्र की सूक्ष्म परिधि करणसूत्र के अनुसार ९१७७६०५ योजन, ७१५ धनुष, और कुछ अधिक ८७ अंगुल सिद्ध होती है। उसे स्थूल रूप से सूत्र में कुछ अधिक इक्यानवें लाख योजन कहा गया है।

४२०—कुंथुस्स णं अरहओ एकाणउई आहोहियसया होत्था।

कुन्थु अर्हत् के संघ में इक्कानवें सौ (९१००) नियत क्षेत्र को विषय करने वाले अवधिज्ञानी थे।

४२१—आउय-गोयवज्जाणं छण्हं कम्मपगडीणं एकाणउई उत्तरपडीओ पण्णत्ताओ।

आयु और गोत्र कर्म को छोड़ कर शेष छह कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ (५+९+२+२८+४२+५=९१) इक्यानवें कही गई हैं।

॥ एकनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विनवतिस्थानक समवाय

४२२—बाणउई पडिमाओ पण्णत्ताओ।

प्रतिमाएं बानवें कही गई हैं।

विवेचन—मूलसूत्र में इन प्रतिमाओं के नाम-निर्देश नहीं है, अतः दशाश्रुतस्कन्ध-निर्युक्ति के अनुसार उनका कुछ विवरण किया जाता है—मूल में प्रतिमाएं पाँच कही गई हैं—समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, प्रतिसंलीनताप्रतिमा और एकाकीविहारप्रतिमा। इनमें समाधिप्रतिमा दो प्रकार की है—श्रुतसमाधिप्रतिमा और चारित्रसमाधिप्रतिमा। दर्शनप्रतिमा को भिन्न नहीं कहा, क्योंकि उसका ज्ञान में अन्तर्भाव हो जाता है। श्रुतसमाधिप्रतिमा के बासठ भेद हैं—आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध-गत पाँच, द्वितीय श्रुतस्कन्धगत सैंतीस, स्थानाङ्गसूत्र-गत सोलह और व्यवहारसूत्र-गत चार। ये सब मिलकर (५+३७+१६+४=६२) बासठ हैं। यद्यपि ये सभी प्रतिमाएं चारित्र-स्वरूपात्मक हैं, तथापि ये विशिष्ट श्रुतशालियों के ही होती हैं, अतः श्रुत की प्रधानता से इन्हें श्रुत समाधिप्रतिमा के रूप में कहा गया है।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र की अपेक्षा चारित्रसमाधिप्रतिमा के पाँच भेद हैं।

उपधानप्रतिमा के दो भेद हैं—भिक्षुप्रतिमा और उपासकप्रतिमा। इनमें भिक्षुप्रतिमा के मासिकी भिक्षुप्रतिमा आदि बारह भेद हैं और उपासकप्रतिमा के दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा आदि ग्यारह भेद हैं। इस प्रकार उपधान प्रतिमा के (१२+११=२३) तेईस भेद होते हैं।

विवेकप्रतिमा के क्रोधादि भीतरी विकारों और उपधि, भक्त-पानादि बाहरी वस्तुओं के त्याग की अपेक्षा अनेक भेद संभव होने पर भी त्याग सामान्य की अपेक्षा विवेकप्रतिमा एक ही कही गई है।

प्रतिसंलीनताप्रतिमा भी एक ही कही गई है, क्योंकि इन्द्रियसंलीनता आदि तीनों प्रकार की संलीनताओं का एक ही में समावेश हो जाता है।

पाँचवीं एकाकीविहारप्रतिमा है, किन्तु उसका भिक्षुप्रतिमाओं में अन्तर्भाव हो जाने से उसे पृथक् नहीं गिना है।

इस प्रकार श्रुतसमाधिप्रतिमा बासठ, चारित्रसमाधिप्रतिमा पाँच, उपधान-प्रतिमा तेईस, विवेकप्रतिमा एक और प्रतिसंलीनताप्रतिमा एक, ये सब मिलाकर प्रतिमा के (६२+५+२३+१+१=९२) बानवै भेद हो जाते हैं।

४२३—थेरे णं इंदभूती वाणउइ वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे [जाव सव्वदुक्खप्पहीणे]।

स्थविर इन्द्रभूति बानवै वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, [कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित] हुए।

४२४—मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं वाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउण्हं पि आवासपव्वयाणं।

मन्दर पर्वत के बहुमध्य देश भाग से गोस्तूप आवासपर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग बानवै हजार योजन के अन्तरवाला है। इसी प्रकार चारों ही आवासपर्वतों का अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—मेरु पर्वत के मध्य भाग से चारों ही दिशाओं में जम्बूद्वीप की सीमा पचास हजार योजन है और वहाँ से चारों ही दिशाओं में लवण समुद्र के भीतर बियालीस हजार योजन की दूरी पर गोस्तूप आदि चारों आवासपर्वत अवस्थित हैं, अतः मेरुमध्य से प्रत्येक आवासपर्वत का अन्तर बानवै हजार योजन सिद्ध हो जाता है।

।। द्विनवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिनवतिस्थानक समवाय

४२५—चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा तेणउइं गणहरा होत्था।
संतिस्स णं अरहओ तेणउई चउद्दस पुव्वसया होत्था।

चन्द्रप्रभ अर्हत् के तेरानवे गण और तेरानवे गणधर थे।
शान्ति अर्हत् के संघ में तेरानवे सौ (९३००) चतुर्दशपूर्वी थे।

४२६—तेणउई मंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ।

दक्षिणायन से उत्तरायण को जाते हुए, अथवा उत्तरायण से दक्षिणायन को लौटते हुए तेरानवे मण्डल पर परिभ्रमण करता हुआ सूर्य सम अहोरात्र को विषम करता है।

विवेचन—सूर्य के परिभ्रमण के संचारमण्डल १८४ हैं। उनमें से जब सूर्य जम्बूद्वीप के ऊपर सबसे भीतरी मण्डल पर संचार करता है, तब दिन अठारह मुहूर्त का होता है और रात बारह मुहूर्त की होती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य लवणसमुद्र के ऊपर सबसे बाहरी मण्डल पर परिभ्रमण करता है, तब दिन बारह मुहूर्त का होता है और रात अठारह मुहूर्त की होती है। इसी प्रकार सूर्य के उत्तरायण को जाते या दक्षिणायन को लौटते हुए तेरानवेंवें मण्डल पर परिभ्रमण करते समय दिन और रात दोनों ही समान अर्थात् पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त के होते हैं। इससे आगे यदि वह उत्तर की ओर संचार करता है तो दिन बढ़ने लगता है और रात घटने लगती है। और यदि वह दक्षिण की ओर संचार करता है तो रात बढ़ने लगती है और दिन घटने लगता है। इसी व्यवस्था को ध्यान में रख कर कहा गया है कि तेरानवेंवें मण्डलगत सूर्य आगे जाता या लौटता हुआ सम अहोरात्र को विषम करता है।

॥ त्रिनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुर्नवतिस्थानक समवाय

४२७—निसह-नीलवंतियाओ णं जीवाओ चउणउइं चउणउइं जोयणसहस्साइं एक्कं छप्पन्नं जोयणसयं दोन्नि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतों की जीवाएं चौरानवै हजार एक सौ छप्पन योजन तथा एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग प्रमाण (९४१५६ $\frac{2}{19}$) लम्बी कही गई है।

४२८—अजियस्स णं अरहओ चउणउई ओहिनाणिसया होत्था।

अजित अर्हत् के संघ में चौरानवै सौ (९४००) अवधिज्ञानी थे।

॥ चतुर्नवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चनवतिस्थानक समवाय

४२९—सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइगणा पंचाणउइं गणहरा होत्था ।

सुपार्श्व अर्हत् के पंचानवे गण और पंचानवै गणधर थे ।

४३०—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चरमंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता चत्तारि महापायालकलसा पण्णत्ता । तं जहा—वलयामुहे केऊए जूयए ईसरे ।

लवणसमुद्दस्स उभओ पासं पि पंचाणउयं पंचाणउयं पदेसाओ उव्वेहुस्सेहपरिहाणीए पण्णत्ता ।

इस जम्बूद्वीप के चरमान्त भाग से चारों दिशाओं में लवण समुद्र के भीतर पंचानवै-पंचानवै हजार योजन अवगाहन करने पर चार महापाताल हैं । जैसे—१. वड़वामुख, २. केतुक, ३. यूपक और ४. ईश्वर ।

लवण समुद्र के उभय पार्श्व पंचानवे-पंचानवे प्रदेश पर उद्वेध (गहराई) और उत्सेध (ऊंचाई) वाले कहे गये हैं ।

विवेचन—लवण समुद्र के मध्य में दश हजार योजन-प्रमाण क्षेत्र समधरणीतल की अपेक्षा एक हजार योजन गहरा है । तदनन्तर जम्बूद्वीप की वेदिका की ओर पंचानवै प्रदेश आगे आने पर गहराई एक प्रदेश कम हो जाती है । उससे भी आगे पंचानवै प्रदेश आने पर गहराई और भी एक प्रदेश कम हो जाती है । इस गणितक्रम के अनुसार पंचानवै हाथ जाने पर एक हाथ, पंचानवै योजन जाने पर एक योजन और पंचानवै हजार योजन जाने पर एक हजार योजन गहराई कम हो जाती है । अर्थात् जम्बूद्वीप की वेदिका के समीप लवणसमुद्र का तलभाग भूमि के समानतल वाला हो जाता है । इस प्रकार लवण समुद्र के मध्य भाग के एक हजार योजन की गहराई की अपेक्षा लवण समुद्र का तट भाग एक हजार योजन ऊंचा है । जब इसी बात को समुद्रतट की ओर से देखते हैं, तब यह अर्थ निकालता है कि तट भाग से लवण समुद्र के भीतर पंचानवै प्रदेश जाने पर तट के जल की ऊंचाई एक प्रदेश कम हो जाती है, आगे पंचानवै प्रदेश जाने पर तट के जल की ऊंचाई एक प्रदेश और कम हो जाती है । इसी गणित के अनुसार पंचानवै हाथ जाने पर एक हाथ, पंचानवै योजन जाने पर एक योजन और पंचानवै हजार योजन आगे जाने पर एक हजार योजन समुद्र तटवर्ती जल की ऊंचाई कम हो जाती है । दोनों प्रकार के कथन का अर्थ एक ही है—समुद्र के मध्य भाग की अपेक्षा जिसे उद्वेध या गहराई कहा गया है उसे ही समुद्र के तट भाग की अपेक्षा उत्सेध या ऊंचाई कहा गया है । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि लवण समुद्र के तट से पंचानवै हजार योजन आगे जाने पर दश हजार योजन के विस्तार वाला मध्यवर्ती भाग सर्वत्र एक हजार योजन गहरा है । और उसके पहिले सर्व ओर का जलभाग समुद्रतट तक उत्तरोत्तर हीन है ।

४३१—कुंथू णं अरहा पंचाणउइं वाससहस्साइं परमाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे । थेरे णं मोरियपुत्ते पंचाणउइवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

कुन्थु अर्हत् पंचानवै हजार वर्ष की परमायु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए। स्थविर मौर्यपुत्र पंचानवै वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

॥ पञ्चनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षण्णवतिस्थानक समवाय

४३२—एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स छण्णउइं छण्णउइं गामकोडीओ होत्था।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के (राज्य में) छयानवे-छयानवे करोड़ ग्राम थे।

४३३—वायुकुमाराणं छण्णउइं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

वायुकुमार देवों के छयानवै लाख आवास (भवन) कहे गये हैं।

४३४—ववहारिए णं दंडे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलमाणेणं। एवं धणू नालिया जुगे अक्खे मुसले वि हु।

व्यावहारिक दण्ड अंगुल के माप से छयानवै अंगुल-प्रमाण होता है। इसी प्रकार धनुष, नालिका, युग, अक्ष और मूशल भी जानना चाहिए।

विवेचन—अंगुल दो प्रकार का है—व्यावहारिक और अव्यावहारिक। जिससे हस्त, धनुष, गव्यूति आदि के नापने का व्यवहार किया जाता है, वह व्यावहारिक अंगुल कहा जाता है। अव्यावहारिक अंगुल प्रत्येक मनुष्य के अंगुल-मान की अपेक्षा छोटा-बड़ा भी होता है। उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की गई है। चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का एक दण्ड होता है। इस प्रकार (२४×४=९६) एक दण्ड छयानवै अंगुल प्रमाण होता है। इसी प्रकार धनुष आदि भी छयानवै-छयानवै अंगुल प्रमाण होते हैं।

४३५—अब्भितरओ आइमुहुत्ते छण्णउइ अंगुलच्छाए पण्णत्ते।

आभ्यन्तर मण्डल पर सूर्य के संचार करते समय आदि (प्रथम) मुहूर्त छयानवै अंगुल की छाया वाला कहा गया है।

॥ षण्णवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तनवतिस्थानक समवाय

४३६—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्ताणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं पि।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से गोस्तुभ आवास-पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सत्तानवै हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना चाहिए।

विवेचन—मेरु पर्वत के पश्चिमी भाग से जम्बूद्वीप का पूर्वी भाग पचवन हजार योजन है और उससे गोस्तुभ पर्वत का पश्चिमी भाग बियालीस हजार योजन दूर है। अतः चारों आवास पर्वतों का सूत्रोक्त सत्तानवै हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४३७—अट्ठण्हं कम्मपगडीणं सत्ताणउइं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

आठों कर्मों की उत्तर प्रकृतियां सत्तानवै (५+९+२+२८+४+४२+२+५=९७) कही गई हैं।

४३८—हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वाससयाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

चातुरन्तचक्रवर्ती हरिषेण राजा कुछ कम सत्तानवै सौ (९७००) वर्ष अगार-वास में रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

॥ सप्तनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टानवतिस्थानक समवाय

४३९—नंदणवणस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ, पंडुयवणस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

नन्दनवन के ऊपरी चरमान्त भाग से पांडुक वन के निचले चरमान्त भाग का अन्तर अट्ठानवे हजार योजन है।

विवेचन—नन्दन वन समभूमि तल से पांच सौ योजन ऊंचाई पर अवस्थित है और उसकी आठों दिशाओं में अवस्थित कूट भी पाँच पाँच सौ योजन ऊंचे हैं, अतः दोनों मिलकर एक हजार योजन ऊंचाई नन्दनवन की हो जाती है। मेरु की ऊंचाई समभूमि भाग से निन्यानवै हजार योजन है, उसमें से उक्त एक हजार के घटा देने पर सूत्रोक्त अट्ठानवै हजार का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४४०—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं पि।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्तभाग से गोस्तुभ आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग अट्ठानवे हजार योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में अवस्थित आवास पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—सत्तानवें वें स्थान के सूत्र में प्रतिपादित अन्तर में गोस्तुभ आवास-पर्वत के एक हजार योजन विष्कम्भ को मिला देने पर अट्ठानवें हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४४१—दाहिणभरहस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइ जोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं पण्णत्ते।

दक्षिण भरतक्षेत्र का धनुःपृष्ठ कुछ कम अट्ठानवें सौ (९८००) योजन आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा कहा गया है।

४४२—उत्तराओ कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासतिमे मंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ। दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासइमे मंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणिखित्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ।

उत्तर दिशा से सूर्य प्रथम छह मास दक्षिण की ओर आता हुआ उनपचासवें मंडल के ऊपर आकर मुहूर्त के इकसठिये अट्ठानवें भाग ($\frac{९८}{६१}$) दिवस क्षेत्र (दिन) के घटाकर और रजनी-क्षेत्र (रात) के बढ़ाकर संचार करता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा से सूर्य दूसरे छह मास उत्तर की ओर जाता हुआ उनपचासवें मंडल के ऊपर आकर मुहूर्त के अट्ठानवें इकसठ भाग ($\frac{९८}{६१}$) रजनी क्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढ़ाकर संचार करता है।

विवेचन—सूर्य के एक एक मंडल में संचार करने पर मुहूर्त के इकसठ भागों में से दो भाग प्रमाण दिन की वृद्धि या रात की हानि होती है। अतः उनपचासवें मंडल में सूर्य के संचार करने पर मुहूर्त के ($४९ \times २ = \frac{९८}{६१}$) अट्ठानवें इकसठ भाग की वृद्धि और हानि सिद्ध हो जाती है। सूर्य चाहे उत्तर से दक्षिण की ओर संचार करे और चाहे दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर संचार करे, परन्तु उनपचासवें मंडल पर परिभ्रमण के समय दिन या रात की उक्त वृद्धि या हानि ही रहेगी।

४४३—रेवई-पढमजेट्ठापज्जवसाणाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताणं अट्ठाणउइ ताराओ तारग्गेणं पण्णत्ताओ।

रेवती से लेकर ज्येष्ठा तक के उन्नीस नक्षत्रों के तारे अट्ठानवें हैं।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रेवती नक्षत्र बत्तीस तारावाला है, अश्विनी तीन तारा वाला है, भरणी तीन तारा वाला है, कृत्तिका छह तारा वाला है, रोहिणी पाँच तारावाला है, मृगशिर तीन तारावाला है, आर्द्रा एक तारावाला है, पुनर्वसु पाँच तारावाला है, पुष्य तीन तारा वाला है, अश्लेषा छह तारावाला है, मघा सात तारावाला है, पूर्वाफाल्गुनी दो तारावाला है, उत्तराफाल्गुनी दो तारा वाला है, हस्त पांच तारावाला है, चित्रा एक तारा वाला है, स्वाति एक तारावाला है, विशाखा एक तारावाला है, अनुराधा चार तारा वाला है, और ज्येष्ठा नक्षत्र

तीन तारावाला है। इन उन्नीसों नक्षत्रों के ताराओं को जोड़ने पर (३२+३+३+६+५+३+१+५+३+६+७+२+२+५+१+१+५+४+३=९७) अन्य ग्रन्थों के अनुसार सत्तानवै संख्या ही होती है। किन्तु प्रस्तुत सूत्र में उन्नीस नक्षत्रों के ताराओं की संख्या अट्ठानवै (९८) बताई गई है, अतः उक्त नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र के ताराओं की संख्या एक अधिक होनी चाहिए। तभी सूत्रोक्त अट्ठानवै संख्या सिद्ध होगी, ऐसा टीकाकार का अभिप्राय है।

॥ अष्टानवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

नवनवतिस्थानक समवाय

४४४—मंदरे णं पव्वए णवणउइ जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। नंदणवणस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ उत्तरिल्ले चरमंते एस णं णवणउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत निन्यानवै हजार योजन ऊंचा कहा गया है। नन्दनवन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार नन्दन वन के दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तर वाला है।

विवेचन—मेरु पर्वत भूतल पर दश हजार योजन विस्तारवाला है और पाँच सौ योजन की ऊंचाई पर अवस्थित नन्दनवन के स्थान पर नौ हजार नौ सौ चौपन योजन, तथा एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग-प्रमाण (९९५४$\frac{६}{११}$) मेरु का बाह्य विस्तार है। और भीतरी विस्तार उन्यासी सौ चौपन योजन और एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग-प्रमाण है (७९५४$\frac{६}{११}$)। पाँच सौ योजन नन्दनवन की चौड़ाई है। इस प्रकार मेरु का आभ्यन्तर विस्तार और दोनों ओर के नन्दनवन का पाँच पाँच सौ योजन का विस्तार ये सब मिलकर (७९५४$\frac{६}{११}$+५००+५००=८९५४$\frac{६}{११}$) प्रायः सूत्रोक्त अन्तर हो जाता है।

४४५—उत्तरे पढमे सूरियमंडले नवनउइ जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। दोच्चे सूरियमंडले नवनउइ जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। तइय-सूरियमंडले नवनउइ जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

उत्तर दिशा में सूर्य का प्रथम मंडल आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है। दूसरा सूर्य-मंडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है। तीसरा सूर्यमंडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है।

विवेचन—सूर्य जिस आकाश-मार्ग से मेरु के चारों ओर परिभ्रमण करता है उसे सूर्य-मंडल कहते हैं। जब वह उत्तर दिशा के सबसे पहिले मंडल पर परिभ्रमण करता है, तब उस मंडल की गोलाकार रूप में लम्बाई निन्यानवै हजार छह सौ चालीस योजन (९९६४०) होती है। जब सूर्य

दूसरे मंडल पर परिभ्रमण करता है, तब उसकी लम्बाई निन्यानवै हजार छह सौ पैंतालीस योजन और एक योजन इकसठ भागों में से पैंतीस भाग-प्रमाण (९९६४५ $\frac{३५}{६१}$) होती है। प्रथम मंडल से इस दूसरे मंडल की पाँच योजन और पैंतीस भाग इकसठ वृद्धि का कारण यह है कि एक मंडल से दूसरे मंडल का अन्तर दो दो योजन का है। तथा सूर्य के विमान का विष्कम्भ एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग-प्रमाण है। इसे (२ $\frac{४८}{६१}$) दुगुना कर देने पर (२ $\frac{४८}{६१}$ × २ = ५ $\frac{३५}{६१}$) पाँच योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतीस भाग-प्रमाण वृद्धि प्रथम मंडल से दूसरे मंडल की सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार दूसरे मंडल के विष्कम्भ में ५ $\frac{३५}{६१}$ के मिला देने पर (९९६४५ $\frac{३५}{६१}$ + ५ $\frac{३५}{६१}$ = ९९६६ $\frac{९}{६१}$) निन्यानवै हजार छह सौ इकावन योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से नौ भाग-प्रमाण विष्कम्भ तीसरे मंडल का निकल आता है। निन्यानवै हजार में ऊपर जो प्रथम मंडल में ६४० योजन की, दूसरे मंडल में ६४५ $\frac{३५}{६१}$ योजन की और तीसरे मंडल में ६५१ $\frac{९}{६१}$ योजन की वृद्धि होती है, उसे सूत्र में 'सातिरेक' और 'साधिक' पद से सूचित किया गया है, जिसका अर्थ निन्यानवै हजार योजन से कुछ अधिक होता है।

४४६—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अंजणस्स कंडस्स हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ वाणमंतर-भोमेज्जविहाराणं उवरिमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के अंजन कांड के अधस्तन चरमान्त भाग से वान-व्यन्तर भौमेयक देवों के विहारों (आवासों) का उपरिम अन्तभाग निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम खरकाण्ड के सोलह कांडों में अंजनकांड दशवां है। उसका अधस्तन भाग यहाँ से दश हजार योजन दूर है। प्रथम रत्न-कांड के प्रथम सौ योजनों के (बाद) व्यन्तर देवों के नगर हैं। इन सौ को दश हजार में से (१०,०००-१०० = ९९००) घटा देने पर सूत्रोक्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

।। नवनवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

शतस्थानक समवाय

४४७—दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं राइंदियसतेणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया यावि भवइ।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एक सौ रात-दिनों में और साढ़े पाँच सौ भिक्षा-दत्तियों से यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्व से स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्तित और आराधित होती है।

विवेचन—इस भिक्षुप्रतिमा की आराधना दश दश दिन के दिनदशक अर्थात् सौ दिनों के द्वारा की जाती है। पूर्व वर्णित भिक्षुप्रतिमाओं के समान इसमें भी प्रथम दश दिनों से लेकर दशवें दिनदशक तक प्रतिदिन एक एक भिक्षादत्ति अधिक ग्रहण की जाती है। तदनुसार सर्व भिक्षा-दत्तियों की संख्या (१०+२०+३०+४०+५०+६०+७०+८०+९०+१०० = ५५०) पाँचसौ पचास हो जाती है। शेष आराधना-विधि पूर्व प्रतिमाओं के समान ही जानना चाहिए।

४४८—सयभिसया नक्खत्ते एक्कसयतारे पण्णत्ते ।

शतभिषक् नक्षत्र के एक सौ तारे होते हैं ।

४४९—सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । एवं थेरे वि अज्जसुहम्मे ।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् सौ धनुष ऊंचे थे ।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए ।

इसी प्रकार स्थविर आर्य सुधर्मा भी सौ वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए ।

४५०—सव्वे वि णं दीहवेयड्ढपव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । सव्वेवि णं चुल्लहिमवंत-सिहरीवासहरपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता । सव्वे वि णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता । एगमेगं जोयणसयं मूले विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत एक-एक सौ गव्यूति (कोश) ऊंचे कहे गये हैं । सभी क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे हैं । तथा ये सभी वर्षधर पर्वत सौ-सौ गव्यूति उद्वेध (भूमि में अवगाह) वाले हैं । सभी कांचनक पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं । तथा वे सौ-सौ गव्यूति उद्वेध वाले और मूल में एक-एक सौ योजन विष्कम्भवाले हैं ।

।। शतस्थानक समवाय समाप्त ।।

अनेकोत्तरिका-वृद्धि-समवाय

[सार्धशत से कोटाकोटि पर्यन्त]

४५१—चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुस्सयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। आरणकप्पे दिवड्ढं विमाणावाससयं पण्णत्तं। एवं अच्चुए वि १५०।

चन्द्रप्रभ अर्हत् डेढ़ सौ धनुष ऊंचे थे। आरण कल्प में डेढ़ सौ विमानावास कहे गये हैं। अच्युत कल्प भी डेढ़ सौ (१५०) विमानावास वाला कहा गया है।

४५२—सुपासे णं अरहा दो धणुसया उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सुपार्श्व अर्हत् दो सौ धनुष ऊंचे थे।

४५३—सव्वे वि णं महाहिमवंत-रुप्पीवासहरपव्वया दो दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दो दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे हैं और वे सभी दो-दो गव्यूति उद्वेध वाले (गहरे) हैं।

४५४—जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचणपव्वयसया पण्णत्ता २००।

इस जम्बूद्वीप में दो सौ कांचनक पर्वत कहे गये हैं २००।

४५५—पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

पद्मप्रभ अर्हत् अढ़ाई सौ धनुष ऊंचे थे।

४५६--असुरकुमाराणं देवाणं पासायवडिंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता २५०।

असुरकुमार देवों के प्रासादावतंसक अढ़ाई सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं २५०।

४५७—सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अरिट्ठनेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

सुमति अर्हत् तीन सौ धनुष ऊंचे थे। अरिष्टनेमि अर्हन् तीन सौ वर्ष कुमारवास में रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

४५८—वेमाणियाणं देवाणं विमाणपागारा तिण्णि तिण्णि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वैमानिक देवों के विमान-प्राकार (परकोटा) तीन-तीन सौ योजन ऊंचे हैं।

४५९—समणस्स [णं] भगवओ महावीरस्स तिन्नि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था।

पंचधणुसइयस्स णं अंतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स सातिरेगाणि तिण्णि-धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा पण्णत्ता ३००।

श्रमण भगवान् महावीर के संघ में तीन सौ चतुर्दशपूर्वी मुनि थे।

पाँच सौ धनुष की अवगाहनावाले चरमशरीरी सिद्धि को प्राप्त पुरुषों (सिद्धों) के जीव-प्रदेशों की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुष की होती है।

४६०—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धट्ठसयाइं चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। अभिनंदणे णं अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ३५०।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हन् के साढ़े तीन सौ चतुर्दशपूर्वियों की सम्पदा थी। अभिनन्दन अर्हन् साढ़े तीन सौ धनुष ऊंचे थे।

४६१—संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

संभव अर्हत् चार सौ धनुष ऊंचे थे।

४६२—सव्वे वि णं निसढनीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं [पण्णत्ता]। चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खारपव्वया 'णिसढ-नीलवंतवासहरपव्वयंतेणं' चत्तारि चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार-चार सौ योजन ऊंचे तथा वे चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध (गहराई) वाले हैं। सभी वक्षार पर्वत निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतों के समीप चार-चार सौ योजन ऊंचे और चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गये हैं।

४६३—आणय-पाणएसु दोसु कप्पेसु चत्तारि विमाणसया पण्णत्ता।

आनत और प्राणत इन दो कल्पों में दोनों के मिलाकर चार सौ विमान कहे गये हैं।

४६४—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेव-मणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ४००।

श्रमण भगवान् महावीर के चार सौ अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी। वे वादी देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे।

४६५—अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।
सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ४५०।

अजित अर्हत् साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे।
चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा भी साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे।

४६६—सव्वे वि णं वक्खारपव्वया सीआ-सीओआओ महानईओ मंदरपव्वयंते णं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच पंच गाउयसयाइं उव्वहेणं पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं वासहरकूडा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। मूले पंच पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी वक्षार पर्वत सीता-सीतोदा महानदियों के और मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और पाँच-पाँच सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गये हैं। सभी वर्षधर कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन विष्कम्भ वाले कहे गये हैं।

४६७—उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् पाँच सौ धनुष ऊंचे थे। चातुरन्तचक्रवर्ती राजा भरत पाँच सौ धनुष ऊंचे थे।

४६८—सोमणस-गंधमादण-विज्जुप्पभ-मालवंताणं वक्खारपव्वयाणं मंदरपव्वयंतेणं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खारपव्वयकूडा हरि-हरिस्सहकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं णंदणकूडा बलकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

सौमनस, गन्धमादन, विद्युत्प्रभ और मालवन्त ये चारों वक्षार पर्वत मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और पाँच-पाँच सौ गव्यूति उद्वेधवाले हैं। हरि और हरिस्सह कूट को छोड़ कर शेष सभी वक्षार पर्वतकूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये हैं। बलकूट को छोड़ कर सभी नन्दनवन के कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये हैं।

४६९—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। ५००।

सौधर्म और ईशान इन दोनों कल्पों में सभी विमान पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं।

४७०—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु विमाणा छज्जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। चुल्लहिमवंतकूडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं छज्जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं सिहरीकूडस्स वि।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में विमान छह सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं। क्षुल्लक हिमवन्त कूट के उपरिम चरमान्त से क्षुल्लक हिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणीतल छह सौ योजन अन्तर वाला है। इसी प्रकार शिखरी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—समभूमि तल से क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत सौ-सौ योजन ऊंचे हैं और उनके हिमकूट और शिखरी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं, अतः उक्त कूटों के ऊपरी भाग से उक्त दोनों ही वर्षधर पर्वतों के समभूमि का सूत्रोक्त छह-छह सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४७१—पासस्स णं अरहओ छसया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था। अभिचंदे णं कुलगरे छधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। वासुपुज्जे णं अरिहा छहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। ६००।

पार्श्व अर्हत् के छह सौ अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी जो देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे। अभिचन्द्र कुलकर छह सौ धनुष ऊंचे थे। वासुपूज्य अर्हत् छह सौ पुरुषों के साथ मुंडित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए थे। ६००।

४७२—बंभ-लंतएसु [दोसु] कप्पेसु विमाणा सत्त सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ब्रह्म और लान्तक इन दो कल्पों में विमान सात-सात सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं।

४७३—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था। अरिट्ठणेमी णं अरहा सत्त वाससयाइं देसूणाइं केवलपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर के संघ में सात सौ वैक्रिय लब्धिधारी साधु थे। अरिष्टनेमि अर्हत् कुछ (५४ दिन) कम सात सौ वर्ष केवलिपर्याय में रह कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

४७४—महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं सत्त जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं रुप्पिकूडस्स वि ७००।

महाहिमवन्त कूट के ऊपरी चरमान्त भाग से महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणी तल सात सौ योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार रुक्मी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—समभूमि तल से महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे हैं और उनके महाहिमवन्तकूट और रुक्मीकूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं। अतः उक्त कूटों के ऊपरी भाग से उक्त दोनों ही वर्षधर पर्वतों के समभूमि का अन्तर सात-सात सौ योजन का सिद्ध हो जाता है।

४७५—महासुक्क-सहस्सारेसु दोसु कप्पेसु विमाणा अट्ठजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार इन दो कल्पों में विमान आठ सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं।

४७६—इमीसे णं रयणप्पभाए [पुढवीए] पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतरभोमेज्ज-विहारा पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम कांड के मध्यवर्ती आठ सौ योजनों में वानव्यन्तर भौमेयक देवों के विहार कहे गये हैं।

विवेचन—वनों में वृक्षादि पर उत्पन्न होने से व्यन्तरों को 'वान' कहा जाता है। तथा उनके विहार, नगर या आवासस्थान भूमिनिर्मित हैं इसलिए उनको 'भौमेयक' कहा जाता है। दशवें अंजनकांड का उपरिम भाग समभूमि भाग से नौ सौ योजन नीचे है। उसमें से प्रथम रत्न कांड के सौ योजन कम कर देने पर वानव्यन्तरों के आवास अंजनकांड के उपरिम भाग तक मध्यवर्ती आठ सौ योजनों में पाये जाते हैं।

४७७—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर के कल्याणमय गति और स्थिति वाले तथा भविष्य में मुक्ति प्राप्त करने वाले अनुत्तरौपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी ।

४७८—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठहिं जोयणसएहिं सूरिए चारं चरति ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से आठ सौ योजन की ऊंचाई पर सूर्य परिभ्रमण करता है ।

४७९—अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठसयाइं वाईणं सदेवमणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाईसंपया होत्था । ८०० ।

अरिष्टनेमि अर्हत् के अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा आठ सौ थी, जो देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे ।

४८०—आणय-पाणय-आरण-अच्चुएसु कप्पेसु विमाणा नव नव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

निसढकूडस्स णं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ णिसढस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं णीलवंतकूडस्स वि ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पों में विमान नौ-नौ सौ योजन ऊंचे हैं ।

निषध कूट के उपरिम शिखरतल से निषध वर्षधर पर्वत का सम धरणीतल नौ सौ योजन अन्तरवाला है । इसी प्रकार नीलवन्त कूट का भी अन्तर जानना चाहिए ।

विवेचन—समभूमि तल से निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार-चार सौ योजन ऊंचे है । और उनके निषध कूट और नीलवन्त कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं। अतः उक्त कूटों के ऊपरी भाग से दोनों ही वर्षधर पर्वतों के समभूमि का सूत्रोक्त नौ-नौ सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है ।

४८१—विमलवाहणे णं कुलगरे णं नव धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

इमीसे णं रयणप्पभाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नवहिं जोयणसएहिं सव्वुवरिमे ताराख्वे चारं चरइ ।

विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसमरमणीय भूमि भाग से नौ सौ योजन की सबसे ऊपरी ऊंचाई पर तारा-मंडल संचार करता है ।

४८२—निसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं नीलवंतस्स वि । ९०० ।

निषध वर्षधर पर्वत के उपरिम शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम कांड के बहुमध्य देश भाग का अन्तर नौ सौ योजन है।

इसी प्रकार कीलवन्त पर्वत का भी अन्तर नौ सौ योजन का समझना चाहिए। वर्षधर पर्वतों में निषध पर्वत तीसरा और नीलवन्त पर्वत चौथा है। दोनों का अन्तर समान है।

४८३—सव्वे वि णं गेवेज्जविमाणे दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

सव्वे वि णं जमगपव्वया दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दस दस गाउय-सयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। मूले दस दस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। एवं चित्त-विचित्त-कडा वि भाणियव्वा।

सभी ग्रैवेयक विमान दश-दश सौ (१०००) योजन ऊंचे कहे गये हैं।

सभी यमक पर्वत दश-दश सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं। तथा वे दश-दश सौ गव्यूति (१००० कोश) उद्वेध वाले कहे गये हैं। वे मूल में दश-दश सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले हैं। इसी प्रकार चित्र-विचित्र कूट भी कहना चाहिए।

विवेचन—नीलवन्त वर्षधर पर्वत के उत्तर में सीता महानदी के दोनों किनारों पर उत्तर-कुरु में यमक नाम के दो पर्वत हैं। इसी प्रकार देवकुरु में सीतोदा नदी के दोनों किनारों पर निषध पर्वत के दक्षिण में चित्र-विचित्र नाम के दो पर्वत हैं। यतः अढ़ाई द्वीप में पाँच-पाँच सीता और सीतोदा नदियां हैं, अतः उनके दश-दश यमक कूटों का निर्देश प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। वे सभी एक-एक हजार योजन ऊंचे, एक-एक हजार कोश भूमि में गहरे और गोलाकार होने से सर्वत्र एक-एक हजार योजन आयाम-विष्कम्भ वाले अर्थात् चौड़े हैं।

४४८— सव्वे वि णं वट्टवेयड्ढपव्वया दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चतेणं पण्णत्ता। दस दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। मूले दस दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वत्थ समा पल्लग-संठाणसंठिया पण्णत्ता।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वत दश-दश सौ योजन ऊंचे हैं। उनका उद्वेध दश-दश सौ गव्यूति है। वे मूल में दश-दश सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं। उनका आकार ऊपर-नीचे सर्वत्र पल्यक (ढोल) के समान गोल है।

४८५—सव्वे वि णं हरि-हरिस्सहकूडा वक्खारकूडवज्जा दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं [पण्णत्ता]। एवं बलकूडा वि नंदणकूडवज्जा।

वक्षार कूट को छोड़ कर सभी हरि और हरिस्सह कूट दश-दश सौ योजन ऊंचे हैं और मूल में दश सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं। इसी प्रकार नन्दन-कूट को छोड़ कर सभी बलकूट भी दश सौ योजन विस्तार वाले जानना चाहिए।

४८६—अरहा णं अरिट्ठनेमी दस वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था। पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासीसयाइं कालगयाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

अरिष्टनेमि अर्हत् दश सौ वर्ष (१०००) की समग्र आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए। पार्श्व अर्हत् के दश सौ अन्तेवासी (शिष्य) काल-गत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

४८७—पउमद्दह-पुंडरीयद्दहा य दस दस जोयणसयाइं आयामेणं पण्णत्ता।१०००।

पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह दश-दश सौ (१०००) योजन लम्बे कहे गये हैं।

४८८—अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

अनुत्तरौपपातिक देवों के विमान ग्यारह सौ (११००) योजन ऊंचे कहे गये हैं।

४८९—पासस्स णं अरहओ इक्कारस सयाइं वेउव्वियाणं होत्था।११००।

पार्श्व अर्हत् के संघ में ग्यारह सौ (११००) वैक्रिय लब्धि से सम्पन्न साधु थे।

४९०—महापउम-महापुंडरीयदहाणं दो-दो जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।२०००।

महापद्म और महापुंडरीक द्रह दो-दो हजार योजन लम्बे हैं।

४९१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ लोहियक्खकंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं तिन्नि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।३०००।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के वज्रकांड के ऊपरी चरमान्त भाग से लोहिताक्ष कांड का निचला चरमान्त भाग तीन हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—क्योंकि वज्रकांड दूसरा और लोहिताक्ष कांड चौथा है, और प्रत्येक कांड एक-एक हजार योजन मोटा है, अतः दूसरे कांड के उपरिम भाग से चौथे कांड का अधस्तन भाग तीन हजार योजन के अन्तरवाला स्वयं सिद्ध है।

४९२—तिगिंछ-केसरिदहा णं चत्तारि-चत्तारि जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।४०००।

तिगिंछ और केशरी द्रह चार-चार हजार योजन लम्बे हैं।

४९३—धरणितले मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए रुयगनाभीओ चउदिसिं पंच-पंच जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे मंदरपव्वए पण्णत्ते। ५०००।

धरणीतल पर मन्दर पर्वत के ठीक बीचों बीच रुचकनाभि से चारों ही दिशाओं में मन्दर पर्वत पाँच-पाँच हजार योजन के अन्तरवाला है। ५०००।

विवेचन—समभूमि भाग पर दश हजार योजन के विस्तार वाले मन्दर पर्वत के ठीक मध्य

भाग में आठ रुचक प्रदेश अवस्थित हैं। उनसे चारों ओर पाँच-पांच हजार योजन तक मन्दर पर्वत की सीमा है। उसी का प्रस्तुत सूत्र में उल्लेख किया गया है।

४६४—सहस्सारे णं कप्पे छविमाणावाससहस्सा पण्णत्ता। ६०००।

सहस्रार कल्प में छह हजार विमानावास कहे गये हैं।

४६५—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। ७०००।

रत्नप्रभा पृथिवी के रत्नकांड के ऊपरी चरमान्त भाग से पुलककांड का निचला चरमान्त भाग सात हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी का रत्नकांड पहला है और पुलककांड सातवाँ है। प्रत्येक कांड एक-एक हजार योजन मोटा है। अतः प्रथम कांड के ऊपरी भाग से सातवें कांड का अधोभाग सात हजार योजन के अन्तर पर सिद्ध हो जाता है।

४६६—हरिवास-रम्मया णं वासा अट्ठ जोयणसहस्साइं साइरेगाइं वित्थरेण पण्णत्ता।८०००।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष कुछ अधिक आठ हजार योजन विस्तारवाले हैं।

४६७—दाहिणड्ढ भरहस्स णं जीवा पाईण-पडीणायया दुहओ समुद्दं पुट्ठा नव जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता। ६०००।

[अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणसहस्साइं होत्था।]

पूर्व और पश्चिम में समुद्र को स्पर्श करने वाली दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की जीवा नौ हजार योजन लम्बी है।

[अजित अर्हत् के संघ में कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे]

४६८—मंदरे णं पव्वए धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। १००००।

मन्दर पर्वत धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है।

४६९—जम्बूदीवे णं दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। १०००००।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है।

५००—लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते। २०००००।

लवण समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ से दो लाख योजन चौड़ा कहा गया है।

विवेचन—जैसे रथ के चक्र के मध्य भाग को छोड़कर उसके आरों की चौड़ाई चारों ओर एक सी होती है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप लवणसमुद्र के मध्य भाग में अवस्थित होने से चक्र के मध्य-भाग जैसा है लवण समुद्र की चौड़ाई सभी ओर दो दो लाख योजन है अतः उसे चक्रवालविष्कम्भ कहा गया है।

५०१—पासस्स अरहओ णं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया सावियासंपया होत्था । ३२७००० ।

पार्श्व अर्हत् के संघ में तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी ।

५०२—धायइखंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ।४०००००।

धातकीखण्ड द्वीप चक्रवालविष्कम्भ की अपेक्षा चार लाख योजन चौड़ा कहा गया है ।

५०३—लवणस्स णं समुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं पंच जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । ५००००० ।

लवणसमुद्र के पूर्वी चरमान्त भाग से पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पाँच लाख योजन है ।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है । उसके सभी ओर लवण समुद्र दो-दो लाख योजन विस्तृत है । अतः जम्बूद्वीप का एक लाख तथा पूर्वी और पश्चिमी लवण समुद्र का विस्तार दो-दो लाख ये सब मिलाकर (१+२+२=५) पाँच लाख योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है ।

५०४—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छपुव्वसयसहस्साइं रायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । ६००००० ।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा साठ लाख पूर्व वर्ष राजपद पर आसीन रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

५०५—जंबूदीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइखंडचक्कवालस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते सत्त जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । ७०००००।

इस जम्बूद्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड के चक्रवाल विष्कम्भ का पश्चिमी चरमान्त भाग सात लाख योजन के अन्तर वाला है ।

विवेचन—जम्बूद्वीप का एक लाख योजन, लवण समुद्र के पश्चिमी चक्रवाल का दो लाख योजन और धातकीखण्ड के पश्चिमी भाग का चक्रवाल विष्कम्भ चार लाख योजन ये सब मिलाकर (१+२+४=७) सात लाख योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है ।

५०६—माहिंदे णं कप्पे अट्ठ विमाणावाससयसहस्साइं पण्णत्ताइं । ८००००० ।

माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमानावास कहे गये हैं ।

५०७—अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणिसहस्साइं होत्था । ९००० ।

अजित अर्हन् के संघ में कुछ अधिकः नौ हजार अवधि ज्ञानी थे ।[1]

---

१. संस्कृत टीकाकार ने इस सूत्र पर आश्चर्य प्रकट किया है कि लाखों की संख्या-वर्णन के मध्य में यह सहस्र संख्या वाला सूत्र कैसे आ गया ! उन्होंने यह भी लिखा है कि यह प्रतिलेखक का भी दोष हो सकता है। अथवा 'सहस्र' शब्द की समानता से यह सूत्र 'शतसहस्र' संख्याओं के मध्य में दे दिया गया हो। वस्तुतः इसका स्थान नौ हजार की संख्या में होना चाहिए। अतएव वहाँ मूल पाठ और उसके अनुवाद को [ ] खड़े कोष्टक के भीतर दे दिया है ।

५०८—पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पंचमाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने । १००००००।

पुरुषसिंह वासुदेव दश लाख वर्ष की कुल आयु को भोग कर पाँचवीं नारकपृथिवी में नारक रूप से उत्पन्न हुए ।

५०९—समणेणं भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाश्रो छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामन्नपरियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववन्ने । १००००००० ।

श्रमण भगवान् महावीर तीर्थंकर भव ग्रहण करने से पूर्व छठे पोट्टिल के भव में एक कोटि वर्ष श्रमण-पर्याय पाल कर सहस्रार कल्प के सर्वार्थ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए थे ।

५१०—उसभसिरिस्स भगवश्रो चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी श्रबाहाए श्रंतरे पण्णत्ते । १०००००००००००००० सा० ।

भगवान् श्री ऋषभदेव का श्रौर श्रन्तिम भगवान् महावीर वर्धमान का श्रन्तर एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा गया है । १०००००००००००००० सा० ।

द्वादशांग गणि-पिटक

५११—दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते । तं जहा—आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवाहपन्नत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुए दिट्ठिवाए ।

गणि-पिटक द्वादश अंगस्वरूप कहा गया है। वे अंग इस प्रकार हैं—१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३. स्थानाङ्ग, ४. समवायाङ्ग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृत् दशा, ९. अनुत्तरोपपातिक दशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकसूत्र और १२. दृष्टिवाद अंग ।

विवेचन—गुणों के गण या समूह के धारक आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ मंजूषा, पेटी या पिटारी है। आचार्यों के सर्वस्वरूप श्रुतरत्नों की मंजूषा को गणि-पिटक कहा है। जैसे मनुष्य के आठ अंग होते हैं, उसी प्रकार श्रुतरूप परमपुरुष के बारह अंग होते हैं, उन्हें ही द्वादशाङ्ग श्रुत कहा जाता है।

५१२—से किं तं आयारे ? आयारे णं समणाणं णिग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-ट्ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोगजुंजण-भासासमिति-गुत्ती- सेज्जो-वहि- भत्त-पाण- उग्गम- उप्पायण- एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-णियम-तवोवहाण-सुप्पसत्थमाहिज्जइ ।

यह आचाराङ्ग क्या है—इसमें क्या वर्णन किया गया है ?

आचाराङ्ग में श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार, गोचरी. विनय, वैनयिक (विनय-फल) स्थान, गमन, चंक्रमण, प्रमाण, योग-योजन, भाषा, समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त, पान, उद्गम, उत्पादन, एषणाविशुद्धि, शुद्ध-ग्रहण, अशुद्ध-ग्रहण, व्रत, नियम और तप उपधान, इन सबका सुप्रशस्त रूप से कथन किया गया है।

विवेचन—जो सर्व प्रकार के आरम्भ और परिग्रह से रहित होकर निरन्तर श्रुत-अभ्यास और संयम-परिपालन करने में श्रम करते रहते हैं, ऐसे श्रमण-निर्ग्रन्थ साधुओं का आचरण कैसा हो, गोचरी कैसी करें, विनय किसका और किस प्रकार करें, कैसे खड़े हों, कैसे गमन करें, कैसे उपाश्रय के भीतर शरीर-श्रम दूर करने के लिए इधर-उधर संचरण करें, उनकी उपधि का क्या प्रमाण हो, स्वाध्याय, प्रतिलेखन आदि में किस प्रकार से अपने को तथा दूसरों को नियुक्त करें, किस प्रकार की भाषा बोलें, पांच समितियों और तीन गुप्तियों का किस प्रकार से पालन करें, शय्या, उपधि, भोजन, पान आदि की उद्गम और उत्पादन आदि दोषों का परिहार करते हुए किस प्रकार से गवेषणा करें, उसमें लगे दोषों की किस प्रकार से शुद्धि करें, कौन-कौन से व्रतों (मूल गुण) नियमों (उत्तरगुण) और तप उपधान (बारह प्रकार के तप) का किस प्रकार से पालन करें, इन सब कर्तव्यों का आचाराङ्ग में उत्तम प्रकार से वर्णन किया गया है।

५१३—से समासओ पंचविहे पण्णत्ते । तं जहा—णाणायारे दंसणायारे चरित्तायारे तवायारे विरियायारे । आयारस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ ।

आचार संक्षेप से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—ज्ञानाचार, दर्शनाचार चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। इस पाँच प्रकार के आचार का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र भी आचार कहलाता है। आचारांग की परिमित सूत्रार्थप्रदान रूप वाचनाएं हैं, संख्यात उपक्रम आदि अनुयोग-द्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, और संख्यात निर्युक्तियाँ हैं।

विवेचन—ज्ञान का विनय करना, स्वाध्याय-काल में पठन-पाठन करना, गुरु का नाम नहीं छिपाना, आदि आठ प्रकार के व्यवहार को ज्ञानाचार कहते हैं। जिन-भाषित तत्त्वों में शंका नहीं करना, सांसारिक सुख-भोगों की आकांक्षा नहीं करना, विचिकित्सा नहीं करना आदि आठ प्रकार के सम्यक्त्वी व्यवहार के पालन करने को दर्शनाचार कहते हैं। पाँच महाव्रतों का, पाँच समितियों आदि-रूप चारित्र का निर्दोष पालन करना चारित्राचार है। वहिरंग और अन्तरंग तपों का सेवन करना तपाचार है। अपने आवश्यक कर्त्तव्यों के पालन करने में शक्ति को नहीं छिपा कर यथाशक्ति उनका भली भांति से पालन करना वीर्याचार है।

उक्त पाँच प्रकार के आचार की वाचनाएं परीत (सीमित) है। आचार्य-द्वारा आगम सूत्र और सूत्रों का अर्थ शिष्य को देना 'वाचना' कहलाती है। आचाराङ्ग की ऐसी वाचनाएं असंख्यात या अनन्त नहीं होती हैं, किन्तु परिगणित ही होती हैं, अतः उन्हें 'परीत' कहा गया है। ये वाचनाएं उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के कर्मभूमि के समय में ही दी जाती हैं, अकर्मभूमि या भोगभूमि के युग में नहीं दी जाती हैं।

उपक्रम, नय, निक्षेप और अनुगम के द्वारा वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है, अत एव उन्हें अनुयोग-द्वार कहते हैं। आचाराङ्ग के ये अनुयोगद्वार भी संख्यात ही हैं। वस्तु-स्वरूप प्रज्ञापक वचनों को प्रतिपत्ति कहते हैं। विभिन्न मत वालों ने पदार्थों का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार से माना है, ऐसे मतान्तर भी संख्यात ही होते हैं। विशेष—एक विशेष प्रकार के छन्द को वेढ या वेष्टक कहते हैं। मतान्तर से एक विषय का प्रतिपादन करनेवाली शव्दसंकलना को वेढ (वेष्टक) कहते हैं। आचाराङ्ग के ऐसे छन्दोविशेष भी संख्यात ही हैं। जिस छन्द के एक चरण या पाद में आठ अक्षर निबद्ध हों, ऐसे चार चरणवाले अनुष्टुप् छन्द को श्लोक कहते हैं। आचाराङ्ग में आचारधर्म के प्रतिपादन करनेवाले श्लोक भी संख्यात ही हैं। सूत्र-प्रतिपादित संक्षिप्त अर्थ को शव्द की व्युत्पत्ति-पूर्वक युक्ति के साथ प्रतिपादन करना निर्युक्ति कहलाती है। ऐसी निर्युक्तियाँ भी अचाराङ्ग की संख्यात ही हैं।

५१४—से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइं उद्देसणकाला, पंचासीइं समुद्देसणकाला, अट्ठारस पदसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, [अणंता गमा] अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा निबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से त्तं आयारे। १।

गणि-पिटक के द्वादशाङ्ग में अंगकी (स्थापना की) अपेक्षा 'आचार' प्रथम अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं, पचासी उद्देशन-काल हैं, पचासी समुद्देशन-काल हैं। पद-गणना की

अपेक्षा इसमें अट्ठारह हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, अतः उनके जानने रूप ज्ञान के द्वार भी अनन्त ही होते हैं। पर्याय भी अनन्त हैं, क्योंकि वस्तु के धर्म अनन्त हैं। त्रस जीव परीत (सीमित) हैं। स्थावर जीव अनन्त हैं। सभी पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत (नित्य) हैं, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कृत (अनित्य) हैं, सर्व पदार्थ सूत्रों में निवद्ध (ग्रथित) हैं और निकाचित हैं अर्थात् निर्युक्ति, संग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि से प्रतिष्ठित हैं। इस आचाराङ्ग में जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रज्ञप्त (उपदिष्ट) भाव सामान्य रूप से कहे जाते हैं, विशेष रूप से प्ररूपण किये जाते हैं, हेतु, दृष्टान्त आदि के द्वारा दर्शाये जाते हैं, विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जाते हैं, और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किये जाते हैं।

आचाराङ्ग के अध्ययन से आत्मा वस्तु-स्वरूप का एवं आचार-धर्म का ज्ञाता होता है, गुण-पर्यायों का विशिष्ट ज्ञाता होता है तथा अन्य मतों का भी विज्ञाता होता है। इस प्रकार आचार-गोचरी आदि चरणधर्मों की, तथा पिण्डशुद्धि आदि करणधर्मों की प्ररूपणा-इसमें संक्षेप से की जाती है, विस्तार से की जाती है, हेतु-दृष्टान्त से उसे दिखाया जाता है, विशेष रूप से निर्दिष्ट किया जाता और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किया जाता है। (१)

५१५—से किं तं सूअगडे? सूयगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जति, ससमय-परसमया सूइज्जंति, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगो सूइज्जति, अलोगो सूइज्जति लोगालोगो सूइज्जति।

सूत्रकृत क्या है—उसमें क्या वर्णन है?

सूत्रकृत के द्वारा स्वसमय सूचित किये जाते हैं, पर-समय सूचित किये जाते हैं, स्वसमय और पर-समय सूचित किये जाते हैं, जीव सूचित किये जाते हैं, अजीव सूचित किये जाते हैं, जीव और अजीव सूचित किये जाते हैं, लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोक-अलोक सूचित किया जाता है।

५१६—सूयगडे णं जीवाजीव-पुण्ण-पावासव-संवर-निज्जरण-बंध-मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति। समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं कुसमयमोह-मोहमइ-मोहियाणं संदेहजायसहजबुद्धि परिणामसंसइयाणं पावकर-मलिनमइ-गुण-विसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स, चउरासीए अकिरियवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं,-वत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जति। णाणादिट्ठंत-वयण-णिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थाराणुगम-परमसब्भावगुणविसिट्ठा मोहपहोयारगा उदारा अण्णाण-तमंधकारदुग्गेसु दीवभूआ सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभ-निप्पकंपा सुत्तत्था।

सूत्रकृत के द्वारा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, वन्ध और मोक्ष तक के सभी पदार्थ सूचित किये जाते हैं। जो श्रमण अल्पकाल से ही प्रव्रजित हैं जिनकी वुद्धि खोटे समयों या सिद्धान्तों के सुनने से मोहित है, जिनके हृदय तत्त्व के विषय में सन्देह के उत्पन्न होने से आन्दोलित हो रहे हैं और सहज वुद्धि का परिणमन संशय को प्राप्त हो रहा है, उनकी पाप उपार्जन करनेवाली मलिन मति के दुर्गुणों के शोधन करने के लिए क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के

चौरासी, अज्ञानवादियों के सड़सठ और विनयवादियों के बत्तीस, इन सब (१८०+८४+६७+३२ =३६३) तीन सौ तिरेसठ अन्य वादियों का व्यूह अर्थात् निराकरण करके स्व-समय (जैन सिद्धान्त) स्थापित किया जाता है। नाना प्रकार के दृष्टान्तपूर्ण युक्ति-युक्त वचनों के द्वारा पर-मत के वचनों की भली भाँति से निःसारता दिखलाते हुए, तथा सत्पद-प्ररूपणा आदि अनेक अनुयोग द्वारों के द्वारा जीवादि तत्त्वों को विविध प्रकार से विस्तारानुगम कर परम सद्भावगुण-विशिष्ट, मोक्षमार्ग के अवतारक, सम्यग्दर्शनादि में प्राणियों के प्रवर्तक, सकलसूत्र-अर्थसम्बन्धी दोषों से रहित, समस्त सद्-गुणों से सहित, उदार, प्रगाढ अन्धकारमयी दुर्गों में दीपकस्वरूप, सिद्धि और सुगति रूपी उत्तम गृह के लिए सोपान के समान, प्रवादियों के विक्षोभ से रहित निष्प्रकम्प सूत्र और अर्थ सूचित किये जाते हैं।

५१७—सूयगडस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

सूत्रकृतांग की वाचनाएँ परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रति-पत्तियां संख्यात हैं, वेढ संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं, और निर्युक्तियां संख्यात हैं।

५१८—से णं अंगट्ठयाए दोच्चे अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तेत्तीसं उद्देसणकाला, तेत्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पदसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से तं सूअगडे २।

अंगों की अपेक्षा यह दूसरा अंग है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, तेईस अध्ययन हैं, तेतीस उद्देशनकाल हैं, तेतीस समुद्देशनकाल हैं, पद-परिमाण से छत्तीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्तगम और अनन्त पर्याय हैं। परिमित त्रस और अनन्त स्थावर जीवों का तथा नित्य, अनित्य सूत्र में साक्षात् कथित एवं निर्युक्ति आदि द्वारा सिद्ध जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित पदार्थों का सामान्य-विशेष रूप में कथन किया गया है; नाम, स्थापना आदि भेद करके प्रज्ञापन किया है, नामादि के स्वरूप का कथन करके प्ररूपण किया गया है, उपमाओं द्वारा दर्शित किया गया है, हेतु दृष्टान्त आदि देकर निदर्शित किया गया है और उपनय-निगमन द्वारा उपदर्शित किए गए हैं।

इस अंग का अध्ययन करके अध्येता ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है। इस अंग में चरण (मूल गुणों) तथा करण (उत्तर गुणों) का कथन किया गया है, प्रज्ञापना और प्ररूपणा की गई है। उनका निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है। यह सूत्रकृतांग का परिचय है।२।

विवेचन—जिन-भाषित सिद्धान्त को स्वससय कहते हैं, कुतीर्थियों के द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त को परसमय कहते हैं। और दोनों के सिद्धान्तों को स्वसमय-परसमय कहा जाता है। दूसरे सूत्रकृत अंग में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। तथा जीव-अजीव, लोक-अलोक, पुण्य-पाप आदि पदार्थों का विशद विवेचन किया है। यद्यपि अपनी-अपनी कल्पनाओं के अनुसार तत्त्वों का निरूपण करने वाले मत-मतान्तर अगणित हैं, फिर भी स्थूल रूप से उनको चार वर्गों में विभाजित किया गया है।

वे हैं—१. क्रियावादी, २. अक्रियावादी, ३. अज्ञानिक और ४. वैनयिक। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. जो पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष को, तथा उनकी साधक-क्रियाओं को मानते हुए भी एकान्त पक्ष को पकड़े हुए हैं, वे क्रियावादी कहलाते हैं। उनकी संख्या एक सौ अस्सी है। वह इस प्रकार है—क्रियावादी जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, पुण्य, पाप और मोक्ष इन नौ पदार्थों को मानते हैं। पुनः प्रत्येक पदार्थ को कोई स्वतः भी मानते हैं और कोई परतः भी मानते हैं। अतः नौ पदार्थों के अट्ठारह भेद हो जाते हैं। पुनः इन अट्ठारहों ही भेदों को कोई नित्यरूप मानते हैं और कोई अनित्य रूप मानते हैं, अतः अट्ठारह को दो से गुणित करने पर छत्तीस भेद हो जाते हैं। पुनः वे इन छत्तीसों भेदों को कोई कालकृत मानता है, कोई ईश्वरकृत मानता है, कोई आत्मकृत मानता है, कोई नियति-कृत मानता है और कोई स्वभावकृत मानता है। इस प्रकार इन पाँच मान्यताओं से उक्त छत्तीस भेदों को गुणित करने पर (३६ × ५ = १८०) एक सौ अस्सी क्रियावादियों के भेद हो जाते हैं।

२. अक्रियावादी पुण्य और पाप को नहीं मानते हैं, केवल जीवादि सात पदार्थों को ही मानते हैं और उन्हें कोई स्वतः मानता है और कोई परतः मानता है। अतः सात को इन दो भेदों से गुणित करने पर चौदह भेद हो जाते हैं। पुनः इन चौदह भेदों को कोई कालकृत मानता है, कोई ईश्वरकृत मानता है, कोई आत्मकृत मानता है, कोई नियतिकृत मानता है, कोई स्वभावकृत मानता है और कोई यदृच्छा-जनित मानता है। इस प्रकार उक्त चौदह-पदार्थों को इन छह मान्यताओं से गुणित करने पर (१४ × ६ = ८४) चौरासी भेद अक्रियावादियों के हो जाते हैं।

३. अज्ञानवादियों की मान्यता है कि कौन जानता है कि जीव है, या नहीं? अजीव है, या नहीं? इत्यादि प्रकार से ये जीवादि पदार्थों को अज्ञान के झमेले में डालते हैं। तथा जिन देव ने इन नौ पदार्थों का '(१) स्यादस्ति, (२) स्यान्नास्ति, (३) स्यादस्तिनास्ति, (४) स्यादवक्तव्य, (५) स्यादस्ति-अवक्तव्य, (६) स्यान्नास्ति-अवक्तव्य और (७) स्यादस्ति-नास्तिअवक्तव्य' इन सात भंगों के द्वारा निरूपण किया है, उनके विषय में भी अज्ञान को प्रकट करते हैं। इस प्रकार जीवादि नौ पदार्थों के विषय में उक्त सात भंग रूप अज्ञानता के कारण (९ × ७ = ६३) तिरेसठ भेद हो जाते हैं। तथा नौ पदार्थों के अतिरिक्त दशवीं उत्पत्ति के विषय में भी उक्त सात भंगों में से आदि के चार भंगों के द्वारा अजानकारी प्रकट करते हैं। इस प्रकार उक्त ६३ में इन चार भेदों को जोड़ देने पर ६७ भेद अज्ञानवादियों के हो जाते हैं।

४. विनयवादी सब का विनय करने को ही धर्म मानते हैं। उनके मतानुसार १. देव, २. नृपति, ३. ज्ञाति, ४. यति, ५. स्थविर (वृद्ध), ६. अधम, ७. माता और ८. पिता इन आठों की मन से, वचन से और काय से विनय करना और इन को दान देना धर्म है। इस प्रकार उक्त आठ को मन, वचन, काय और दान इन चार से गुणित करने पर बत्तीस (८ × ४ = ३२) भेद विनयवादियों के हो जाते हैं।

उक्त चारों प्रकार के एकान्तवादियों के तीन सौ तिरेसठ मतों का स्याद्वाद की दृष्टि से निराकरण कर यथार्थ वस्तु-स्वरूप का निर्णय इस दूसरे सूत्रकृत अंग में किया गया है।

५१९—से किं तं ठाणे ? ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमय-परसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवा-जीवा ठाविज्जंति, लोगे ठाविज्जति, अलोगे ठाविज्जति, लोगालोगे ठाविज्जति ।

ठाणेणं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पयत्थाणं—

सेला सलिला य समुद्दा सूर-भवण-विमाण-आगर-णदीओ ।
णिहिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥१॥

—एक्कविहवत्तव्वयं दुविहवत्तव्वयं जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जति ।

स्थानाङ्ग क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

जिसमें जीवादि पदार्थ प्रतिपाद्य रूप से स्थान प्राप्त करते हैं, वह स्थानाङ्ग है । इस के द्वारा स्वसमय स्थापित-सिद्ध किये जाते हैं, पर-समय स्थापित किये जाते हैं, स्वसमय-परसमय स्थापित किये जाते हैं । जीव स्थापित किये जाते हैं, अजीव स्थापित किये जाते हैं, जीव-अजीव स्थापित किये जाते हैं । लोक स्थापित किया जाता है, अलोक स्थापित किया जाता है, और लोक- अलोक दोनों स्थापित किये जाते हैं ।

स्थानाङ्ग में जीव आदि पदार्थों के द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों का निरूपण किया गया है । तथा शैलों (पर्वतों) का गंगा आदि महानदियों का, समुद्रों, सूर्यों, भवनों, विमानों, आकरों (स्वर्ण आदि की खानों) सामान्य नदियों, चक्रवर्ती की निधियों, एवं पुरुषों की अनेक जातियों का स्वरों के भेदों, गोत्रों और ज्योतिष्क देवों के संचार का वर्णन किया गया है । तथा एक-एक प्रकार के पदार्थों का, दो-दो प्रकार के पदार्थों का यावत् दश-दश प्रकार के पदार्थो का कथन किया गया है । जीवों का, पुद्गलों का तथा लोक में अवस्थित धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का भी प्ररूपण किया गया है ॥ १ ॥

५२०—ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ संगहणीओ ।

स्थानाङ्ग की वाचनाएं परीत (सीमित) हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ (छन्दोविशेष) संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं, और संग्रहणियाँ संख्यात हैं ।

५२१—से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, [एक्कवीसं समुद्देसणकाला] वावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं । संखेज्जा अक्खरा, अणंता [गमा, अणंता] पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति० । से त्तं ठाणे ३ ।

यह स्थानाङ्ग अंग की अपेक्षा तीसरा अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, इक्कीस उद्देशन-काल हैं, [इक्कीस समुद्देशन काल हैं ।] पद-गणना की अपेक्षा इसमें बहत्तर हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) हैं, अनन्त पर्याय हैं परीत त्रस हैं । अनन्त स्थावर हैं ।

द्रव्य-दृष्टि से सर्व भाव शाश्वत हैं, पर्याय-दृष्टि से अनित्य हैं, निबद्ध हैं, निकाचित (दृढ किये गये) हैं, जिन-प्रज्ञप्त हैं। इन सब भावों का इस अंग में कथन किया जाता है, प्रज्ञापन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है, निदर्शन किया जाता है और उपदर्शन किया जाता है। इस अंग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार चरण और करण प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह तीसरे स्थानाङ्ग का परिचय है ॥३॥

५२२—से किं तं समवाए ? समवाए णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमय-परसमया सूइज्जंति। जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगे सूइज्जति, अलोगे सुइज्जति, लोगालोगे सूइज्जति।

समवायाङ्ग क्या है ? इसमें क्या वर्णन है ?

समवायाङ्ग में स्वसमय सूचित किये जाते हैं, पर-समय सूचित किये जाते हैं, और स्वसमय-पर-समय सूचित किये जाते हैं। जीव सूचित किये जाते हैं, अजीव सूचित किये जाते हैं, और जीव-अजीव सूचित किये जाते हैं। लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोक-अलोक सूचित किया जाता है।

५२३—समवाएणं एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढीए दुवालसंगस्स वि गणिपडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति। तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया, वित्थरेण अवरे वि य बहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुअ-सुरगणाणं आहारुस्सास-लेसा-आवास-संख-आययप्पमाण-उववाय-चवण-उग्गहणोवहि-वेयणविहाण-उवओग-जोग-इंदिय-कसाया विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्से-हपरिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगर-तित्थगर-गणहराणं सम्मत्त-भरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहर-हलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति।

समवायाङ्ग के द्वारा एक, दो, तीन को आदि लेकर एक-एक स्थान की परिवृद्धि करते हुए शत, सहस्र और कोटाकोटी तक के कितने ही पदार्थों का और द्वादशाङ्ग गणिपिटक के पल्लवाग्रों (पर्यायों के प्रमाण) का कथन किया जाता है। सौ तक के स्थानों का, तथा बारह अंगरूप में विस्तार को प्राप्त, जगत् के जीवों के हितकारक भगवान् श्रुतज्ञान का संक्षेप से समवतार किया जाता है। इस समवायाङ्ग में नाना प्रकार के भेद-प्रभेद वाले जीव और अजीव पदार्थ वर्णित हैं। तथा विस्तार से अन्य भी बहुत प्रकार के विशेष तत्त्वों का, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गणों के आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास-संख्या, उनके आयाम-विष्कम्भ का प्रमाण उपपात (जन्म) च्यवन (मरण) अवगाहना, उपधि, वेदना, विधान (भेद), उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय, नाना प्रकार की जीव-योनियाँ, पर्वत-कूट आदि के विष्कम्भ (चौड़ाई) उत्सेध (ऊंचाई) परिरय (परिधि) के प्रमाण, मन्दर आदि महीधरों (पर्वतों) के विधि-(भेद) विशेष, कुलकरों, तीर्थंकरों, गणधरों, समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी चक्रवर्तियों का, चक्रधर-वासुदेवों और हलधरों (बलदेवों) का, क्षेत्रों का, निर्गमों का

अर्थात् पूर्व-पूर्व क्षेत्रों से उत्तर के (आगे के) क्षेत्रों के अधिक विस्तार का, तथा इसी प्रकार के अन्य भी पदार्थों का इस समवायाङ्ग में विस्तार से वर्णन किया गया है।

५२४—समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

समवायाङ्ग की वाचनाएं परीत हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं, और निर्युक्तियां संख्यात है।

५२५—से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे अज्झयणे, एगे सुयक्खंधे, एगे उद्देसणकाले [एगे समुद्देसणकाले]। चउयाले पदसयसहस्से पदग्गेणं पण्णत्ते। संखेज्जाणि अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा निबद्धा निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जंति०। से त्तं समवाए ४।

अंग की अपेक्षा यह चौथा अंग है, इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशन काल है, [एक समुद्देशन-काल है,] पद-गणना की अपेक्षा इसके एक लाख चवालीस हजार पद हैं। इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस, अनन्त स्थावर तथा शाश्वत, कृत (अनित्य), निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह चौथा समवायाङ्ग है ४।

५२६—से किं तं विवाहे? विवाहेणं ससमया विआहिज्जंति, परसमया विआहिज्जंति, ससमय-परसमया विआहिज्जंति, जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, लोगे विआहिज्जइ, अलोए विआहिज्जइ, लोगालोगे विआहिज्जइ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

व्याख्याप्रज्ञप्ति के द्वारा स्वसमय का व्याख्यान किया जाता है, पर-समय का व्याख्यान किया जाता है, तथा स्वसमय-परसमय का व्याख्यान किया जाता है। जीव व्याख्यात किये जाते हैं, अजीव व्याख्यात किये जाते हैं, तथा जीव और अजीव व्याख्यात किये जाते हैं। लोक व्याख्यात किया जाता है, अलोक व्याख्यात किया जाता है। तथा लोक और अलोक व्याख्यात किये जाते हैं।

५२७—विवाहे णं नाणाविहसुर-नरिंद-रायरिसि-विविहसंसइअ-पुच्छिआणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पदेस-परिणाम-जहत्थिभाव-अणुगम-निक्खेव-णयप्पमाण-सुनिउणोवक्कम-विविहप्पकार-पगडपयासियाणं लोगालोगपयासियाणं संसारसमुद्द-रुंद-उत्तरण-समत्थाणं सुरवइ-संपूजियाणं भवियजण-पय-हिययाभिनंदियाणं तमरय-विद्धंसणाणं सुदिट्ठदीवभूय-ईहामति-

बुद्धि-वद्धणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में नाना प्रकार के देवों, नरेन्द्रों, राजर्षियों और अनेक प्रकार के संशयों में पड़े हुए जनों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का और जिनेन्द्र देव के द्वारा भाषित उत्तरों का वर्णन किया गया है। तथा द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश-परिमाण, यथास्थित भाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, मुनिपुण-उपक्रमों के विविध प्रकारों के द्वारा प्रकट रूप से प्रकाशित करने वाले, लोकालोक के प्रकाशक, विस्तृत संसार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, इन्द्रों द्वारा संपूजित, भव्य जन प्रजा के, अथवा भव्य जन-पदों के हृदयों को अभिनन्दित करने वाले, तमोरज का विध्वंसन करने वाले, सुदृष्ट (सुनिर्णीत) दीपक स्वरूप, ईहा, मति और बुद्धि को बढ़ाने वाले ऐसे अन्यून (पूरे) छत्तीस हजार व्याकरणों (प्रश्नों के उत्तरों) को दिखाने से यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्रार्थ के अनेक प्रकारों का प्रकाशक है, शिष्यों का हित-कारक है और गुणों से महान् अर्थ से परिपूर्ण है।

५२८—वियाहस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

व्याख्याप्रज्ञति की वाचनाएं परीत हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियां संख्यात हैं, वेढ (छन्दोविशेष) संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं और निर्युक्तियाँ संख्यात हैं।

५२९—से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसते, दस उद्देसग-सहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं चउरासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जाइं अक्खराइं, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जति०। से तं वियाहे ५।

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग रूप से पाँचवाँ अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, सौ से कुछ अधिक अध्ययन हैं, दश हजार उद्देशक हैं, दश हजार समुद्देशक हैं. छत्तीस हजार प्रश्नों के उत्तर हैं। पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त-भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंगके द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह पाँचवें व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग का परिचय हैं ५।

विवेचन—आचारांग से लेकर समवायांग तक पदों का परिमाण दुगुना-दुगुना है किन्तु व्याख्याप्रज्ञप्ति के पदों में द्विगुणता का आश्रय नहीं लिया गया है। किन्तु यहाँ चौरासी हजार पदों का उल्लेख स्पष्ट है।

५३०—से किं तं णायाधम्मकहाओ ! णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो ५, अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइअ-इड्ढीविसेसा १०, भोयपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा १५, संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायायाइं २०, पुणबोहिलाभा अंत-किरियाओ २२ य आघविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

ज्ञाताधर्मकथा क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञात अर्थात् उदाहरणरूप मेघकुमार आदि पुरुषों के १ नगर, २ उद्यान, ३ चैत्य, ४ वनखंड, ५ राजा, ६ माता-पिता, ७ समवसरण, ८ धर्माचार्य, ९ धर्मकथा, १० इहलौ-किक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, ११ भोग-परित्याग, १२ प्रव्रज्या, १३ श्रुतपरिग्रह, १४ तप-उपधान, १५ दीक्षापर्याय, १६ संलेखना, १७ भक्तप्रत्याख्यान, १८ पादपोपगमन १९ देवलोक-गमन, २० सुकुल में पुनर्जन्म, २१ पुनः बोधिलाभ और २२ अन्तक्रियाएं कही जाती हैं । इनकी प्ररूपणा की गई हैं, दर्शायी गई हैं, निदर्शित की गई है और उपदर्शित की गई है ।

५३१—नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणय-करण-जिणसामिसासणवरे संजमपइण्णपालण-धिइ-मइ-ववसायदुब्बलाणं १, तवनियम-तवोवहाण-रण-दुद्धर-भर-भग्गा-णिसहय-णिसिट्ठाणं २, घोर-परीसह-पराजियाणंऽसहपारद्ध-रुद्धसिद्धालय-महग्ग-निग्गयाणं ३, विसयसुह-तुच्छ-आसावस-दोसमुच्छि-याणं ४, विराहिय-चरित्त-नाण-दंसण-अइगुण-विविहप्पयार-निस्सारसुन्नयाणं ५, संसार-अपार-दुक्ख-दुग्गइ-भवविविह-परंपरापवंचा ६, धीराण य जियपरिसह-कसाय-सेण्ण-धिइ-धणिय-संजम-उच्छाह-निच्छियाणं ७, आराहियनाण-दंसण-चरित्तजोग-निस्सल्ल-सुद्धसिद्धालय-मग्गमभिमुहाणं सुरभवण-विमाणसुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि । ततो य कालक्कमचुयाण जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया । चलियाण य सदेव-माणुस्सधीर-करण-कारणाणि बोधण-अणुसासणाणि गुण-दोस दरिसणाणि । दिट्ठंते पच्चये य सोऊण लोगमुणिणो जह य ठियासासणम्मि जर-मरण-नासणकरे आराहिअसंजमा य सुरलोगपडिनियत्ता ओवेन्ति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं, एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य ।

ज्ञाताधर्मकथा में प्रव्रजित पुरुषों के विनय-करण-प्रधान, प्रवर जिन-भगवान् के शासन की संयम-प्रतिज्ञा के पालन करने में जिनकी धृति (धीरता) मति (बुद्धि) और व्यवसाय (पुरुषार्थ) दुर्बल है, तपश्चरण का नियम और तप का परिपालन करनेरूप रण (युद्ध) के दुर्धर भार को वहन करने से भग्न हैं—पराङ्मुख हो गये हैं, अत एव अत्यन्त अशक्त होकर संयम-पालन करने का संकल्प छोड़कर बैठ गये हैं, घोर परीषहों से पराजित हो चुके हैं इसलिए संयम के साथ प्रारम्भ किये गये मोक्ष-मार्ग के अवरुद्ध हो जाने से जो सिद्धालय के कारणभूत महामूल्य ज्ञानादि से पतित हैं, जो इन्द्रियों के तुच्छ विषय-सुखों की आशा के वश होकर रागादि दोषों से मूर्च्छित हो रहे हैं, चारित्र, ज्ञान, दर्शन स्वरूप यति-गुणों से और उनके विविध प्रकारों के अभाव से जो सर्वथा निःसार और शून्य हैं, जो संसार के अपार दुःखों की और नरक, तिर्यंचादि नाना दुर्गतियों की भव-परम्परा से प्रपंच में पड़े हुए हैं, ऐसे पतित पुरुषों की कथाएं हैं । तथा जो धीर वीर हैं, परीषहों और कषायों की सेना को जीतने वाले हैं, धैर्य के धनी हैं, संयम में उत्साह रखने और वल-वीर्य के प्रकट करने में

दृढ़ निश्चय वाले हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और समाधि-योग की जो आराधना करने वाले हैं, मिथ्यादर्शन, माया और निदानादि शल्यों से रहित होकर शुद्ध निर्दोष सिद्धालय के मार्ग की ओर अभिमुख हैं, ऐसे महापुरुषों की कथाएं इस अंग में कही गई हैं। तथा जो संयम-परिपालन कर देवलोक में उत्पन्न हो देव-भवनों और देव-विमानों के अनुपम सुखों को और दिव्य, महामूल्य, उत्तम भोग-उपभोगों को चिर-काल तक भोग कर कालक्रम के अनुसार वहाँ से च्युत हो पुनः यथायोग्य मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर अन्तक्रिया से समाधिमरण के समय कर्म-वश विचलित हो गये हैं, उनको देवों और मनुष्यों के द्वारा धैर्य धारण कराने में कारणभूत, संवोधनों और अनुशासनों को, संयम के गुण और संयम से पतित होने के दोष-दर्शक दृष्टान्तों को, तथा प्रत्ययों को, अर्थात् वोधि के कारण-भूत वाक्यों को सुनकर शुकपरिव्राजक आदि लौकिक मुनि जन भी जरा-मरण का नाश करने वाले जिन-शासन में जिस प्रकार से स्थित हुए, उन्होंने जिस प्रकार से संयम की आराधना की, पुनः देव-लोक में उत्पन्न हुए, वहाँ से आकर मनुष्य हो जिस प्रकार शाश्वत सुख को और सर्वदुःख-विमोक्ष को प्राप्त किया, उनकी, तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक महापुरुषों की कथाएं इस अंग में विस्तार से कही गई हैं।

५३२—णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

ज्ञाताधर्मकथा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियां हैं।

५३३—से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुअक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा। ते समासओ दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चरिता य कप्पिया य। दस धम्मकहाणं वग्गा। तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइय-उवक्खाइयासयाइं, एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ।

यह ज्ञाताधर्मकथा अंगरूप से छठा अंग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं और उन्नीस अध्ययन हैं। वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं—चरित और कल्पित।

धर्मकथाओं के दश वर्ग हैं। उनमें से एक-एक धर्मकथा में पांच-पांच सौ आख्यायिकाएं हैं, एक-एक आख्यायिका में पांच-पांच सौ उपाख्यायिकाएं हैं, एक-एक उपाख्यायिका में पांच-पांच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाएं हैं। इस प्रकार ये सब पूर्वापर से गुणित होकर[(५०० × ५०० × ५०० = १२१५००००००) एक सौ इक्कीस करोड़, पचास लाख होती हैं। धर्मकथा विभाग के दश वर्ग कहे गये हैं। अतः उक्त राशि को दश से गुणित करने पर (१२५०००००० × १० = १२५००००००००) एक सौ पच्चीस करोड़ संख्या होती है। उसमें समान लक्षणवाली ऊपर कही पुनरुक्त कथाओं को घटा देने पर (१२५००००००० – १२५०००००० = ३५००००००) साढ़े तीन करोड़ अपुनरुक्त कथाएं हैं।

५३४—एगूणतीसं उद्देसणकाला, एगूणतीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा

निबद्धा निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं णायाधम्मकहाओ ६।

ज्ञाताधर्मकथा में उनतीस उद्देशन काल हैं, उनतीस समुद्देशन-काल हैं, पद-गणना की अपेक्षा संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस ज्ञाताधर्मकथा में कहे गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, निर्दशित किये गए हैं, और उपर्शित किये गए हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा (कथाओं के माध्यम से) वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह छठे ज्ञाताधर्मकथा अंग का परिचय है ६।

५३५—से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु उवासयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइय-इड्डि-विसेसा, उवासयाणं सीलव्वय-वेरमण-गुण-पच्चक्खाण-पोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुपरिग्गहा तवो-वहाणा पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुल-पच्चायाई पुणो बोहिलाभा अंतकिरियाओ आघविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

उपासकदशा क्या है—उसमें क्या वर्णन है ?

उपासकदशा में उपासकों के १ नगर, २ उद्यान, ३ चैत्य, ४ वनखंड, ५ राजा, ६ माता-पिता ७ समवसरण, ८ धर्माचार्य, ९ धर्मकथाएं, १० इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, ११ उपासकों के शीलव्रत, पाप-विरमण, गुण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास-प्रतिपत्ति, १२ श्रुत-परिग्रह, १३ तप-उपधान, १४ ग्यारह प्रतिमा, १५ उपसर्ग, १६ संलेखना, १७ भक्तप्रत्याख्यान, १८ पादपोपगमन, १९ देवलोक-गमन २० सुकुल-प्रत्यागमन, २१ पुनः बोधिलाभ, और २२ अन्तक्रिया का कथन किया गया है, प्ररू-पणा की गई है, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

५३६—उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ-अभिगम-सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण-उत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासा अपच्छिममारणंतियाऽऽ य संलेहणा-झोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवर-विमाणवर-पोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं, तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं। एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य।

उपासकदशांग में उपासकों (श्रावकों) की ऋद्धि-विशेष, परिषद् (परिवार), विस्तृत धर्म-श्रवण, बोधिलाभ, धर्माचार्य के समीप अभिगमन, सम्यक्त्व की विशुद्धता, व्रत की स्थिरता, मूलगुण और उत्तर

गुणों का धारण, उनके अतिचार, स्थिति-विशेष (उपासक-पर्याय का काल-प्रमाण), प्रतिमाओं का ग्रहण, उनका पालन, उपसर्गो का सहन, या निरुपसर्ग-परिपालन, अनेक प्रकार के तप, शील, व्रत, गुण, वेरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास और अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना जोषमणा (सेवना) से आत्मा को यथाविधि भावित कर, बहुत से भक्तों (भोजनों) को अनशन तप से छेदन कर, उत्तम श्रेष्ठ देव-विमानों में उत्पन्न होकर, जिस प्रकार वे उन उत्तम विमानों में अनुपम उत्तम सुखों का अनुभव करते हैं, उन्हें भोग कर फिर आयु का क्षय होने पर च्युत हो कर (मनुष्यों में उत्पन्न होकर) और जिनमत में बोधि को प्राप्त कर तथा उत्तम संयम धारण कर तमोरज (अज्ञान-अन्धकार रूप पाप-धूलि) के समूह से विप्रमुक्त होकर जिस प्रकार अक्षय शिव-सुख को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित होते हैं, इन सबका और इसी प्रकार के अन्य भी अर्थों का इस उपासकदशा में विस्तार से वर्णन किया गया है।

५३७—उवासगदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

उपासकदशा अंग में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं और संख्यात संग्रहणियां हैं।

५३८—से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा. दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जाइं अक्खराइं, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जंति०। से त्तं उवासगदसाओ ७।

यह उपासकदशा अंग की अपेक्षा सातवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल हैं। पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत, अशाश्वत, निबद्ध निकाचित जिनप्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, प्ररूपित किये गए हैं, निदर्शित और उपदर्शित किये गए हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह सातवें उपासकदशा अंग का विवरण है।

५३९—से किं तं अंतगडदसाओ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणाइं (वणखंडा) राया अम्मा-पियरो समोसरणा धम्मायरिया धम्मकहा इहलोइअ-परलोइअ-इड्ढि-विसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ बहुविहाओ खमा अज्जवं मद्दवं च सोअं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमो उत्तमं च बंभं आकिंचणया तवो चियाओ समिइ-गुत्तीओ चेव। तह अप्पमायजोगो सज्झायज्झाणाण य उत्तमाणं दोण्हं पि लक्खणाइं। पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगयो य, जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघ-

विप्पमुक्को मोक्खसुहमणुत्तरं पत्ता । एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेणं परूवेई ।

अन्तकृद्दशा क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

अन्तकृत्दशाओं में कर्मों का अन्त करने वाले महापुरुशों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, अनेक प्रकार की प्रतिमाएं, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, सत्तरह प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, आकिंचन्य, तप, त्याग का तथा समितियों और गुप्तियों का वर्णन है। अप्रमाद-योग और स्वाध्याय-ध्यान योग, इन दोनों उत्तम मुक्ति-साधनों का स्वरूप,उत्तम संयम को प्राप्त करके परीषहों को सहन करने वालों को चार प्रकार के घातिकर्मों के क्षय होने पर जिस प्रकार केवलज्ञान का लाभ हुआ, जितने काल तक श्रमण-पर्याय और केवलि-पर्याय का पालन किया, जिन मुनियों ने जहाँ पादपोपगमसंन्यास किया, जो जहाँ जितने भक्तों का छेदन कर अन्तकृत मुनिवर अज्ञानान्धकार रूप रज के पुंज से विप्रमुक्त हो अनुत्तर मोक्ष-सुख को प्राप्त हुए, उनका और इसी प्रकार के अन्य अनेक अर्थों का इस अंग में विस्तार से प्ररूपण किया गया है ।

५४०—अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ ।

अन्तकृत्दशा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात वेढ और श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ है, ।

५४१—से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, सत्त वग्गा, दस उद्देसण-काला, दस समुद्देसणकाल, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं । संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिवद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति । से त्तं अंतगडदसाओ ८ ।

अंग की अपेक्षा यह आठवां अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है । दश अध्ययन हैं, सात वर्ग हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल हैं, पदगणना की अपेक्षा संख्यात हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सभी शाश्वत, अशाश्वत निवद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग के द्वारा कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । यह आठवें अन्तकृत्दशा अंग का परिचय है ।

५४२—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोग-परलोग-इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागो

पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाई, पुणो बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

अनुत्तरोपपातिकदशा क्या है ? इसमें क्या वर्णन है ?

अनुत्तरोपपातिकदशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले महा अनगारों के नगर, उद्यान चैत्य, वनखंड, राजगण, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक पारलौकिक विशिष्ट ऋद्धियां, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत का परिग्रहण, तप-उपधान, पर्याय, प्रतिमा, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अनुत्तर विमानों में उत्पाद, फिर सुकुल में जन्म, पुनः बोधि-लाभ और अन्तक्रियाएं कही गई हैं, उनकी प्ररूपणा की गई है, उनका दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है।

५४३—अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परममंगल्ल-जगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगण-पवर-गंधहत्थीणं थिरजसाणं परीसहसेण्ण-रिउवल-पमद्दणाणं तव दित्त-चरित्त-णाण-सम्मत्तसार-विविहप्पगार-वित्थर-पसत्थगुणसंजुयाणं अणगारमहरिणीणं अणगार-गुणाण वण्णओ, उत्तमवरतव-विसिट्ठणाण-जोगजुत्ताणं, जह य जगहियं भगवओ जारिसा इड्ढिविसेसा देवासुर-माणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं, जह य उवासंति, जिणवरं जह य परिकहंति धम्मं लोगगुरू अमर-नर-सुर-गणाणं सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाण-दंसण-चरित्त-जोगा जिणवयणमणुगयमहियं भासिया जिणवराण हिययेणमणुण्णेत्ता जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं। तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परम मंगलकारी, जगत्-हितकारी तीर्थंकरों के समवसरण और बहुत प्रकार के जिन-अतिशयों का वर्णन है। तथा जो श्रमणजनों में प्रवरगन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ हैं, स्थिर यशवाले हैं, परीषह-सेना रूपी शत्रु-बल के मर्दन करने वाले हैं, तप से दीप्त हैं, जो चारित्र, ज्ञान, सम्यक्त्वरूप सारवाले अनेक प्रकार के विशाल प्रशस्त गुणों से संयुक्त हैं, ऐसे अनगार महर्षियों के अनगार-गुणों का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन है। अतीव, श्रेष्ठ तपोविशेषसे और विशिष्ट ज्ञान-योग से युक्त हैं, जिन्होंने जगत् हितकारी भगवान् तीर्थंकरों की जैसी परम आश्चर्यकारिणी ऋद्धियों की विशेषताओं को और देव, असुर, मनुष्यों की सभाओं के प्रादुर्भाव को देखा है, वे महा-पुरुष जिस प्रकार जिनवर के समीप जाकर उनकी जिस प्रकार से उपासना करते हैं, तथा अमर, नर, सुरगणों के लोकगुरु वे जिनवर जिस प्रकार से उनको धर्म का उपदेश देते हैं, वे क्षीणकर्मा महापुरुष उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर के अपने समस्त काम-भोगों से और इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर जिस प्रकार से उदार धर्म को और विविध प्रकार से संयम और तप को स्वीकार करते हैं, तथा जिस प्रकार से बहुत वर्षों तक उनका आचरण करके, ज्ञान, दर्शन, चारित्र योग की आराधना कर जिन-वचन के अनुगत (अनुकूल) पूजित धर्म का दूसरे भव्य जीवों को उपदेश देकर और अपने शिष्यों को अध्ययन करवा तथा जिनवरों को हृदय से आराधना कर वे उत्तम मुनिवर जहां पर जितने भक्तों का अनशन के द्वारा छेदन कर, समाधि को प्राप्त कर और उत्तम ध्यान-योग से युक्त होते

हुए जिस प्रकार से अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं और वहां जैसे अनुपम विपय-सौख्य को भोगते हैं, उस सब का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् वहां से च्युत होकर वे जिस प्रकार से संयम को धारण कर अन्तक्रिया करेंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे, इन सब का, तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों का विस्तार से इस अंग में वर्णन किया गया है।

५४४—अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं और संख्यात संग्रहणियां हैं।

५४५—से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, तिन्नि वग्गा, दस उद्देसण-काला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं, पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जाणि अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिवद्धा णिकाइया जिण-पण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं अणुत्तरोववाइय-दसाओ ९।

यह अनुत्तरोपपातिकदशा अंगरूप से नौवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, तीन वर्ग हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल हैं, तथा पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गये हैं।[1] इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परिमित त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत कृत, निवद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह नवें अनुत्तरोपपातिकदशा अंग का परिचय है।

५४६—से किं तं पण्हावागरणाणि ? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं विज्जाइसया नाग-सुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

प्रश्नव्याकरण अंग क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

प्रश्नव्याकरण अंग में एक सौ आठ प्रश्नों, एक सौ आठ अप्रश्नों और एक सौ आठ प्रश्ना-प्रश्नों को, विद्याओं के अतिशयों को तथा नागों-सुपर्णों के साथ दिव्य संवादों को कहा गया है।

विवेचन—अंगुष्ठप्रश्न आदि मंत्रविद्याएं प्रश्न कहलाती हैं। जो विद्याएं जिज्ञासु के द्वारा पूछे

---

१. टीकाकार का कथन है—वर्ग अध्ययनों का समूह कहलाता है। वर्ग में अध्ययन दस हैं और एक वर्ग का उद्देशन एक साथ होता है। अतएव इसके उद्देशनकाल तीन ही होने चाहिए। नन्दीसूत्र में भी तीन का ही उल्लेख है। किन्तु यहाँ दश उद्देशनकाल कहने का अभिप्राय क्या है, समझ में नहीं आता।—सम्पादक

जाने पर शुभाशुभ फल बतलाती हैं, वे प्रश्न-विद्याएं कहलाती हैं। जो विद्याएं मंत्र-विधि से जाप किये जाने पर विना पूछे ही शुभाशुभ फल को कहती हैं, वे अप्रश्न-विद्याएं कहलाती हैं। तथा जो विद्याएं कुछ प्रश्नों के पूछे जाने पर और कुछ के नहीं पूछे जाने पर भी शुभाशुभ फल को कहती हैं, वे प्रश्नाप्रश्न विद्याएं कहलाती हैं। इन तीनों प्रकार की विद्याओं का प्रश्नव्याकरण अंग में वर्णन किया गया है। तथा स्तंभन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विद्याएं विद्यातिशय कहलाती हैं। एवं विद्याओं के साधनकाल में नागकुमार, सुपर्णकुमार तथा यक्षादिकों के साथ साधक का जो दिव्य तात्त्विक वार्तालाप होता है वह दिव्यसंवाद कहा गया है। इन सब का इस अंग में निरूपण किया गया है।

५४७—पण्हावागरणदसासु णं ससमय-परसमय पण्णवय-पत्तेअबुद्ध-विविहत्थभासाभासियाणं अइसयगुण-उवसम-णाणप्पगार-आयरियभासियाणं वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठ-बाहु-असि-मणि-खोम-आइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जा-मणपसिण-विज्जा-देवयपयोग-पहाण-गुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभाव-नरगणमइविम्हयकराणं अइसयमईयकाल-समय-दम-सम-तित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगम-दुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मअस्स अबुह-जण-विबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति।

प्रश्नव्याकरणदशा में स्वसमय-परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येकबुद्धों के विविध अर्थों वाली भाषाओं द्वारा कथित वचनों का आमर्पौषधि आदि अतिशयों, ज्ञानादि गुणों और उपशम भाव के प्रतिपादक नाना प्रकार के आचार्यभाषितों का, विस्तार से कहे गये वीर महर्षियों के जगत् हितकारी अनेक प्रकार के विस्तृत सुभाषितों का, आदर्श (दर्पण) अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षौम (वस्त्र) और सूर्य आदि के आश्रय से दिये गये विद्या-देवताओं के उत्तरों का इस अंग में वर्णन है। अनेक महाप्रश्न-विद्याएं वचन से ही प्रश्न करने पर उत्तर देती हैं, अनेक विद्याएं मन से चिन्तित प्रश्नों का उत्तर देती हैं, अनेक विद्याएं अनेक अधिष्ठाता देवताओं के प्रयोग-विशेष की प्रधानता से अनेक अर्थों के संवादक गुणों को प्रकाशित करती हैं, और अपने सद्भूत (वास्तविक) द्विगुण प्रभावक उत्तरों के द्वारा जन समुदाय को विस्मित करती हैं। उन विद्याओं के चमत्कारों और सत्य वचनों से लोगों के हृदयों में यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है कि अतीत काल के समय में दम और शम के धारक, अन्य मतों के शास्ताओं से विशिष्ट जिन तीर्थंकर हुए हैं और वे यथार्थवादी थे, अन्यथा इस प्रकार के सत्य विद्या-मंत्र संभव नहीं थे, इस प्रकार संशयशील मनुष्यों के स्थिरीकरण के कारणभूत दुरभिगम (गम्भीर) और दुरवगाह (कठिनता से अवगाहन-करने के योग्य) सभी सर्वज्ञों के द्वारा सम्मत, अबुध (अज्ञ) जनों को प्रबोध करने वाले, प्रत्यक्ष प्रतीति-कारक प्रश्नों के विविध गुण और महान् अर्थ वाले जिन-वर-प्रणीत उत्तर इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, और उपदर्शित किये जाते हैं।

५४८—पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

प्रश्नव्याकरण अंग में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं और संख्यात संग्रहणियां हैं।

५४९—से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं पण्हावागरणाइं १०।

प्रश्नव्याकरण अंगरूप से दशवां अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, पैंतालीस उद्देशन-काल हैं, पैंतालीस समुद्देशन-काल हैं। पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गये हैं। इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं, इसमें शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह दशवें प्रश्नव्याकरण अंग का परिचय है १०।

५५०—से किं तं विवागसुयं? विवागसुए णं सुक्कड-दुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जति। से समासओ दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—दुहविवागे चेव, सुहविवागे चेव, तत्थ णं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागाणि।

विपाकसूत्र क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

विपाकसूत्र में सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) कर्मों का फल-विपाक कहा गया है। यह विपाक संक्षेप से दो प्रकार का है—दुःख-विपाक और सुख-विपाक। इनमें दुःख-विपाक में दश अध्ययन हैं और सुख-विपाक में भी दश अध्ययन हैं।

५५१—से किं तं दुहविवागाणि? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ नगरगमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ य आघविज्जंति। से त्तं दुहविवागाणि।

यह दुःख विपाक क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

दुःख-विपाक में दुष्कृतों के दुःखरूप फलों को भोगनेवालों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, (गौतम स्वामी का भिक्षा के लिए) नगर-गमन, (पाप के फल से) संसार-प्रबन्ध में पड़ कर दुःख परम्पराओं को भोगने का वर्णन किया जाता है। यह दुःख-विपाक है।

५५२—से किं तं सुहविवागाणि? सुहविवागेसु सुहविवागाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइय-इड्ढि-विसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाई पुणबोहिलाहा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

सुख-विपाक क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

सुख-विपाक में सुकृतों के सुखरूप फलों को भोगनेवालों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय, प्रतिमाएं, संलेखनाएं, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, सुकुल-प्रत्यागमन, पुनः वोधिलाभ, और उनकी अन्तक्रियाएं कही गई हैं।

५५३—दुहविवागेसु णं पाणाइवाय-अलियवयण-चोरिक्करण-परदारमेहुण-ससंगयाए महतिव्वकसाय-इंदियप्पमाय-पावप्पओय-असुहज्झवसाणसंचियाणं कम्माणं पावगाणं पाव-अणुभागफल-विवागा णिरयगति-तिरिक्खजोणि-बहुविहवसण-सय-परंपरापवद्धाणं मणुयत्ते वि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा वह-वसण-विणास-नासा-कन्नुट्ठंगुट्ठ-कर-चरण-नहच्छेयण-जिब्भच्छेअण-अंजणकडग्गिदाह-गयचलण-मलण-फालण-उल्लंवण-सूललया-लउड-लट्ठि-भंजण-तउसीसग-तत्ततेल्ल-कलकल-अहिसिंचण-कुंभिपाग-कंपण-थिरवंधण-वेह-वज्झ-कत्तण-पतिभय-कर-करपलीवणादि-दारुणाणि दुक्खाणि अणोवमाणि वहुविविहपरंपराणुवद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए। अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धिइधणियवद्धकच्छेण सोहणं तस्स वावि हुज्जा।

दुःख-विपाक के प्राणातिपात, असत्य वचन, स्तेय, पर-दार-मैथुन, ससंगता (परिग्रह-संचय) महातीव्र कषाय, इन्द्रिय-विषय-सेवन, प्रमाद, पाप-प्रयोग और अशुभ अध्यवसानों (परिणामों) से संचित पापकर्मों के उन पापरूप अनुभाग—फल-विपाकों का वर्णन किया गया है जिन्हें नरकगति, और तिर्यग्-योनि में वहुत प्रकार के सैकड़ों संकटों की परम्परा में पड़कर भोगना पड़ता है। वहाँ से निकल कर मनुष्य भव में आने पर भी जीवों को पाप-कर्मों के शेष रहने से अनेक पापरूप अशुभफल-विपाक भोगने पड़ते हैं, जैसे—वध (दण्ड आदि से ताड़न, वृषण-विनाश (नपुंसकीकरण), नासा-कर्तन, कर्ण-कर्त्तन, ओष्ठ-छेदन, अंगुष्ठ-छेदन, हस्त-कर्तन, चरण-छेदन, नख-छेदन, जिह्वा-छेदन, अंजन-दाह (उष्ण लोहशलाका से आंखों को आंजना-फोड़ना), कटाग्निदाह (वांस से वनी चटाई से शरीर को सर्व ओर से लपेट कर जलाना), हाथी के पैरों के नीचे डालकर शरीर को कुचलवाना, फरसे आदि से शरीर को फाड़ना, रस्सियों से वाँधकर वृक्षों पर लटकाना, त्रिशूल-लता, लकुट (मूंठ वाला डंडा) और लकड़ी से शरीर को भग्न करना, तपे हुए कड़कडाते रांगा, सीसा एवं तेल से शरीर का अभिसिंचन करना, कुम्भी (लोह-भट्टी) में पकाना, शीतकाल में शरीर पर कंपकंपी पैदा करने वाला अतिशीतल जल डालना, काष्ठ आदि में पैर फंसाकर स्थिर (दृढ़) वाँधना, भाले आदि शस्त्रों से छेदन-भेदन करना, वर्द्धकर्तन (शरीर की खाल उधेड़ना) अति भय-कारक कर-प्रदीपन (वस्त्र लपेटकर और शरीर पर तेल डालकर दोनों हाथों में अग्नि लगाना) आदि अति दारुण, अनुपम दुःख भोगने पड़ते हैं। अनेक भव-परम्परा में वंधे हुए पापी जीव पाप कर्मरूपी वल्ली के दुःख-रूप फलों को भोगे विना नहीं छूटते हैं। क्योंकि कर्मों के फलों को भोगे विना उनसे छुटकारा नहीं मिलता। हाँ, चित्त-समाधिरूप धैर्य के साथ जिन्होंने अपनी कमर कस ली है उनके तप-द्वारा उन पाप-कर्मों का भी शोधन हो जाता है।

५५४—एत्तो य सुहविवागेसु णं सील-संजम-नियम-गुण-तवोवहाणेसु साहूसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओग-तिकालमइविसुद्ध-भत्त-पाणाइं पययमणसा हिय-सुह-नीसेस-तिव्वपरिणाम-निच्छिय-

मई पयच्छिऊणं पश्रोगसुद्धाइं जह य निव्वत्तिति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति नर-नरय-तिरिय-सुरगमण-विपुलपरियट्ट-अरति-भय-विसाय-सोग-मिच्छत्तसेलसंकडं अण्णाणतमंधकार-चिक्खिल्लसुदुत्तारं जर-मरण-जोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसाय-सावय-पयंडचंडं अणाइअं अणवदग्गं संसारसागरमिणं जह अ णिबंधंति आउगं सुरगणेसु, जह ग अणुभवंति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि। ततो य कालंतरे चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउ-वपु-पुण्ण-रूव-जाति-कुल-जम्म-आरोग्ग-वुद्धि-मेहाविसेसा मित्त-जण-सयण-धण-धण्ण-विभव-समिद्धसार-समुदयविसेसा वहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुह-विवागोत्तमेसु अणुवरय-परंपराणुबद्धा।

असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासिआ वहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था, अन्ने वि य एवमाइया वहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जंति।

अब सुख-विपाकों का वर्णन किया जाता है—जो शील, (ब्रह्मचर्य या समाधि) संयम, नियम (अभिग्रह-विशेष), गुण (मूल गुण और उत्तर गुण) और तप (अन्तरंग-वहिरंग) के अनुष्ठान में संलग्न हैं, जो अपने आचार का भली भांति से पालन करते हैं, ऐसे साधुजनों में अनेक प्रकार की अनुकम्पा का प्रयोग करते हैं, उनके प्रति तीनों ही कालों में विशुद्ध वुद्धि रखते हैं अर्थात् यतिजनों को आहार दूंगा, यह विचार करके जो हर्षानुभव करते हैं, देते समय और देने के पश्चात् भी हर्ष मानते हैं, उनको अति सावधान मन से हितकारक, सुखकारक, निःश्रेयसकारक उत्तम शुभ परिणामों से प्रयोग-शुद्ध (उद्गमादि दोषों से रहित) भक्त-पान देते हैं, वे मनुष्य जिस प्रकार पुण्य कर्म का उपार्जन करते हैं, वोधि-लाभ को प्राप्त होते हैं और नर, नारक, तिर्यंच एवं देवगति-गमन सम्वन्धी अनेक परावर्त्तनों को परीत (सीमित—अल्प) करते हैं, तथा जो अरति, भय, विस्मय, शोक और मिथ्यात्वरूप शैल (पर्वत) से संकट (संकीर्ण) है, गहन अज्ञान-अन्धकार रूप कीचड़ से परिपूर्ण होने से जिसका पार उतरना अति कठिन है, जिसका चक्रवाल (जल-परिमंडल) जरा, मरण योनिरूप मगर-मच्छों से क्षोभित हो रहा है, जो अनन्तानुवन्धी आदि सोलह कषायरूप श्वापदों (खूंखार हिंसक प्राणियों) से अति प्रचण्ड अतएव भयंकर है, ऐसे अनादि अनन्त इस संसार-सागर को वे जिस प्रकार पार करते हैं, और जिस प्रकार देव-गणों में आयु वांधते—देवायु का वंध करते हैं, तथा जिस प्रकार सुर-गणों के अनुपम विमानोत्पन्न सुखों का अनुभव करते हैं, तत्पश्चात् कालान्तर में वहाँ से च्युत होकर इसी मनुष्यलोक में आकर दीर्घ आयु, परिपूर्ण शरीर, उत्तम रूप, जाति कुल में जन्म लेकर आरोग्य, बुद्धि, मेधा-विशेष से सम्पन्न होते हैं, मित्रजन, स्वजन, धन, धान्य और वैभव से समृद्ध, एवं सारभूत सुख-सम्पदा के समूह से संयुक्त होकर वहुत प्रकार के काम-भोग-जनित, सुख-विपाक से प्राप्त उत्तम सुखों की अनुपरत (अविच्छिन्न) परम्परा से परिपूर्ण रहते हुए सुखों को भोगते हैं, ऐसे पुण्यशाली जीवों का इस सुख-विपाक में वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों के वहुत प्रकार के विपाक (फल) इस विपाकसूत्र में भगवान् जिनेन्द्र देव ने संसारी जनों को संवेग उत्पन्न करने के लिए कहे हैं। इसी प्रकार से अन्य भी वहुत प्रकार की अर्थ-प्ररूपणा विस्तार से इस अंग में की गई है।

५५५—विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

विपाकसूत्र की परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात नियुक्तियाँ हैं, और संख्यात संग्रहणियाँ हैं।

५५६—से णं अंगट्ठयाए एक्कारसमे अंगे, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जाणि, अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं विवायसुए ११।

यह विपाकसूत्र अंगरूप से ग्यारहवां अंग है। बीस अध्ययन हैं, बीस उद्देशन-काल हैं, बीस समुद्देशन-काल हैं, पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं। संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तुस्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह ग्यारहवें विपाक सूत्र अंग का परिचय है ११।

५५७—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जति। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया।

यह दृष्टिवाद अंग क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

दृष्टिवाद अंग में सर्व भावों की प्ररूपणा की जाती है। वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—१. परिकर्म, २. सूत्र, ३ पूर्वगत, ४. अनुयोग और ५ चूलिका।

५५८—से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—सिद्धसेणियापरिकम्मे मणुस्ससेणियापरिकम्मे पुट्ठसेणियापरिकम्मे ओगाहणसेणियापरिकम्मे उवसंपज्जसेणियापरिकम्मे विप्पजहसेणियापरिकम्मे चुआचुअसेणियापरिकम्मे।

परिकर्म क्या है? परिकर्म सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ सिद्धश्रेणिका-परिकर्म, २ मनुष्यश्रेणिका परिकर्म, ३ पृष्टश्रेणिका परिकर्म, ४ अवगाहनश्रेणिका परिकर्म, ५ उपसंपद्यश्रेणिका परिकर्म, ६ विप्रजहतश्रेणिका परिकर्म और ७ च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्म।

५५९—से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे? सिद्धसेणिआपरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते। तं जहा—माउयापयाणि एगट्ठियपयाणि पाढोट्ठपयाणि आगासपयाणि केउभूयं रासिबद्धं एगगुणं दुगुणं तिगुणं केउभूयपडिग्गहो संसारपडिग्गहो नंदावत्तं सिद्धवद्धं। से त्तं सिद्धसेणियापरिकम्मे।

सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ मातृकापद, २ एकार्थकपद, ३ अर्थपद, ४ पाठ, ५ आकाशपद, ६ केतुभूत, ७ राशिबद्ध, ८ एकगुण, ९ द्विगुण, १० त्रिगुण, ११ केतुभूतप्रतिग्रह, १२ संसार-प्रतिग्रह, १३ नन्द्यावर्त, और सिद्धवद्ध। यह सब सिद्ध श्रेणिका परिकर्म हैं।

५६०—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते । तं जहा—ताइं चेव माउआपयाणि जाव नंदावत्तं मणुस्सबद्धं । से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ।

मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म क्या है ? मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है । जैसे—मातृकापद से लेकर वे ही पूर्वोक्त नन्द्यावर्त तक और मनुष्यबद्ध । यह सब मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म है ।

५६१—अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पन्नत्ताइं । इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं, छ चउक्कणइयाइं, सत्त तेरासियाइं । एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीति भवंतीतिमक्खायाइं । से त्तं परिकम्माइं ।

पृष्ठश्रेणिका परिकर्म से लेकर शेष परिकर्म ग्यारह-ग्यारह प्रकार के कहे गये हैं । पूर्वोक्त सातों परिकर्म स्वसामयिक (जैनमतानुसारी) हैं, सात आजीविकमतानुसारी हैं, छह परिकर्म चतुष्कनय वालों के मतानुसारी हैं और सात त्रैराशिक मतानुसारी हैं । इस प्रकार ये सातों परिकर्म पूर्वापर भेदों की अपेक्षा तिरासी होते हैं, यह सब परिकर्म हैं ।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार लिखते हैं कि परिकर्म सूत्र और अर्थ से विच्छिन्न हो गये हैं । इन सातों परिकर्मों में से आदि के छह परिकर्म स्वसामयिक हैं । तथा गोशालक-द्वारा प्रवर्त्तित आजीविकपाखण्डिक मत के साथ परिकर्म में सात भेद कहे जाते हैं ।

दिगम्बर-परम्परा के शास्त्रों के अनुसार परिकर्म में गणित के करणसूत्रों का वर्णन किया गया है । इसके वहाँ पाँच भेद बतलाये गये हैं—चन्द्र-प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति । चन्द्र-प्रज्ञप्ति में चन्द्रमा-सम्बन्धी विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि-वृद्धि, पूर्ण ग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांश ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है । सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य-सम्बन्धी आयु, परिवार, ऋद्धि-गमन, ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है । जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप-सम्बन्धी मेरु, कुलाचल, महाह्रद, क्षेत्र, कुंड, वेदिका, वन आदि का वर्णन किया गया है । द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप और समुद्रों का स्वरूप, नन्दीश्वर द्वीपादि का विशिष्ट वर्णन किया गया है । व्याख्या-प्रज्ञप्ति में भव्य, अभव्य जीवों के भेद, प्रमाण, लक्षण, रूपी, अरूपी, जीव-अजीव द्रव्यादिकों की विस्तृत व्याख्या की गई है ।

५६२—से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइं । तं जहा—उजुगं परिणया-परिणयं बहुभंगियं विप्पच्चइयं [विन (ज) यचरियं] अणंतरं परंपरं समाणं संजूहं [मासाणं] संभिन्नं आहच्चायं [अहव्वायं]सोवत्थि(वत्त) यं णंदावत्तं बहुलं पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवंभूयं दुआवत्तं वत्तमाणप्पयं समभिरूढं सव्वओ भद्दं पणासं [पण्णासं] दुपडिग्गहं इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमय-सुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं अछिन्नछेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं वावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए । एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठासीति सुत्ताइं भवंतीतिमक्खयाइं । से त्तं सुत्ताइं ।

सूत्र का स्वरूप क्या है ? सूत्र अठासी होते हैं, ऐसा कहा गया है । जैसे—१ ऋजुक, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभंगिक, ४ विजयचर्या ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ समान (समानस),

८ संजूह—संयूथ (जूह), ९ संभिन्न, १० अहाच्चय, ११ सौवस्तिक, १२ नन्द्यावर्त, १३ बहुल, १४ पृष्टापृष्ट १५ व्यावृत्त, १६ एवंभूत, १७ द्व्यावर्त्त, १८ वर्तमानात्मक, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ पणाम (पण्णास) और २२ दुष्प्रतिग्रह। ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्र परिपाटी से छिन्नच्छेद-नयिक हैं। ये ही बाईस सूत्र आजीविकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्नच्छेदनयिक हैं। ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से त्रिकनयिक हैं और ये ही बाईस सूत्र स्वसमय सूत्रपरिपाटी से चतुष्कनयिक हैं। इस प्रकार ये सब पूर्वापर भेद मिलकर अठासी सूत्र होते हैं, ऐसा कहा गया है। यह सूत्र नाम का दूसरा भेद है।

विवेचन—जो नय सूत्र को छिन्न अर्थात् भेद से स्वीकार करे, वह छिन्नच्छेदनय कहलाता है। जैसे—'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि श्लोक सूत्र और अर्थ की अपेक्षा अपने अर्थ के प्रतिपादन करने में किसी दूसरे श्लोक की अपेक्षा नहीं रखता है। किन्तु जो श्लोक अपने अर्थ के प्रतिपादन में आगे या पीछे के श्लोक की अपेक्षा रखता है, वह अच्छिन्नच्छेदनयिक कहलाता है। गोशालक आदि द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और उभयार्थिक इन तीन नयों को मानते हैं, अतः उन्हें त्रिकनयिक कहा गया है। किन्तु जो संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द नय इन चार नयों को मानते हैं, उन्हें चतुष्कनयिक कहते हैं। त्रिक नयिक वाले सभी पदार्थों का निरूपण-सत्, असत् और उभयात्मक रूप से करते हैं। किन्तु चतुष्कनयिक वाले उक्त चार नयों से सर्व पदार्थों का निरूपण करते हैं।

५६३—से किं तं पुव्वगयं? पुव्वगयं चउद्दसविहं पन्नत्तं। तं जहा—उप्पायपुव्वं अग्गेणीयं वीरियं अत्थिनत्थिप्पवायं नाणप्पवायं सच्चप्पवायं आयप्पवायं कम्मप्पवायं पच्चक्खाणप्पवायं विज्जाणुप्पवायं अवंझं पाणाऊ किरियाविसालं लोगबिन्दुसारं १४।

यह पूर्वगत क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

पूर्वगत चौदह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयपूर्व, ३ वीर्यप्रवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ सत्यप्रवादपूर्व, ७ आत्मप्रवादपूर्व, ८ कर्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, १० विद्यानुप्रवादपूर्व, ११ अवन्ध्यपूर्व, १२ प्राणायुपूर्व, १३ क्रियाविशाल पूर्व और १४ लोकबिन्दुसारपूर्व।

५६४—उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता। चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता। अग्गेणियस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू, बारस चूलियावत्थू पण्णत्ता। वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू अट्ठ चुलियावत्थू पण्णत्ता। अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू दस चूलियावत्थू पण्णत्ता। नाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू पण्णत्ता। आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता। कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता। विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पन्नरस वत्थू पण्णत्ता। अवंझस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता। किरिया-विसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता। लोगबिन्दुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता।

उत्पादपूर्व की दश वस्तु (अधिकार) हैं और चार चूलिकावस्तु है। अग्रायणीय पूर्व की चौदह वस्तु और बारह चूलिकावस्तु हैं। वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु है।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की अठारह वस्तु और दश चूलिकावस्तु हैं। ज्ञानप्रवाद पूर्व की बारह वस्तु हैं। सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु हैं। आत्मप्रवाद पूर्व की सोलह वस्तु हैं। कर्मप्रवाद पूर्व की तीस वस्तु हैं। प्रख्याख्यान पूर्व की बीस वस्तु हैं। विद्यानुप्रवादपूर्व की पन्द्रह वस्तु हैं। अवन्ध्यपूर्व की बारह वस्तु हैं। प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तु हैं। क्रियाविशाल पूर्व की तीस वस्तु हैं। लोकविन्दुसार पूर्व की पच्चीस वस्तु कही गई हैं।

५६५— **दस चोद्दस अट्ठट्ठारसे व बारस दुवे य वत्थूणि।**
सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायंमि॥ १॥
बारस एक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पन्नवीसाओ॥ २॥
चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि।
आइल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया णत्थि॥ ३॥
से त्तं पुव्वगयं।

उपर्युक्त वस्तुओं की संख्या-प्रतिपादक संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार हैं—

प्रथम पूर्व में दश, दूसरे में चौदह, तीसरे में आठ, चौथे में अठारह, पाँचवें में बारह, छठे में दो, सातवें में सोलह, आठवें में तीस, नवें में बीस, दशवें विद्यानुप्रवाद में पन्द्रह, ग्यारहवें में बारह, बारहवें में तेरह, तेरहवें में तीस और चौदहवें में पच्चीस वस्तु नामक महाधिकार हैं। आदि के चार पूर्वों में क्रम से चार, बारह, आठ और दश चूलिकावस्तु नामक अधिकार हैं। शेष दश पूर्वों में चूलिका नामक अधिकार नहीं हैं। यह पूर्वगत है।

विवेचन—दिगम्बर ग्रन्थों में पूर्वगत वस्तुओं की संख्या में कुछ अन्तर है। जो इस प्रकार है—प्रथम पूर्व में दश, दूसरे में चौदह, तीसरे में आठ, चौथे में अठारह पांचवें में बारह, छठे में बारह, सातवें में सोलह, आठवें में वीस, नवमें में तीस, दशवें के पन्द्रह, ग्यारहवें में दश, बारहवें में दश, तेरहवें में दश और चौदहवें पूर्व में दश वस्तुनामक अधिकार बताये गये हैं। दि० शास्त्रों में आदि के चार पूर्वों की चूलिकाओं का कोई उल्लेख नहीं है।

५६६—से किं तं अणुओगे? अणुओगे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य। से किं तं मूलपढमाणुओगे? एत्थ णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा देवलोगगमणाणि आउं चवणाणि जम्मणाणि अ अभिसेया रायवरसिरीओ सीयाओ पव्वज्जाओ तवा य भत्ता केवलणाणुप्पाया अ तित्थपवत्तणाणि अ संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउं वन्नविभागो सीसा गणा गणहरा य अज्जा पवत्तणीओ संघस्स चउव्विहस्स जं वावि परिणामं जिण-मणपज्जव-ओहिनाण-सम्मत्तसुयनाणिणो य वाई अणुत्तरगई य जत्तिया सिद्धा पाओवगआ य जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेअइत्ता अंतगडा मुणिवरुत्तमा तम-रओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता, एए अन्ने य एवमाइया भावा मूलपढमाणुओगे कहिआ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से त्तं मूलपढमाणुओगे।

वह अनुयोग क्या है—उसमें क्या वर्णन है?

अनुयोग दो प्रकार का कहा गया है। जैसे—मूलप्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग।

मूलप्रथमानुयोग में क्या है?

मूलप्रथमानुयोग में अरहन्त भगवन्तों के पूर्वभव, देवलोक-गमन, देवभव सम्बन्धी आयु, च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, राज्यवरश्री, शिविका, प्रव्रज्या, तप, भक्त (आहार) केवलज्ञानोत्पत्ति, वर्ण, तीर्थ-प्रवर्तन, संहनन, संस्थान, शरीर-उच्चता, आयु, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, केवलि-जिन, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी सम्यक् मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले साधु, सिद्ध, पादपोपगत, जो जहाँ जितने भक्तों का छेदन कर उत्तम मुनिवर अन्तकृत हुए, तमोरज-समूह से विप्रमुक्त हुए, अनुत्तर सिद्धिपथ को प्राप्त हुए, इन महापुरुषों का, तथा इसी प्रकार के अन्य भाव मूलप्रथमानुयोग में कहे गये हैं, वर्णित किए गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, प्ररूपित किये गए हैं, निर्दशित किये गए हैं और उपदर्शित किये गए हैं। यह मूलप्रथमानुयोग है।

५६७—से किं तं गंडियाणुओगे? [गंडियाणुओगे] अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—कुलगरगंडियाओ तित्थगरगंडियाओ गणहरगंडियाओ चक्कहरगंडियाओ दसारगंडियाओ बलदेवगंडियाओ वासुदेवगंडियाओ हरिवंसगंडियाओ भद्दबाहुगंडियाओ तवोकम्मगंडियाओ चित्तंतरगंडियाओ उस्सप्पिणीगंडियाओ ओसप्पिणीगंडियाओ अमर-नर-तिरिय-निरयगइगमण-विविहपरियट्टणाणुओगे, एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से त्तं गंडियाणुओगे।

गंडिकानुयोग में क्या है?

गंडिकानुयोग अनेक प्रकार का है। जैसे—कुलकरगंडिका, तीर्थंकरगंडिका, गणधरगंडिका, चक्रवर्तीगंडिका, दशारगंडिका, बलदेवगंडिका, वासुदेवगंडिका, हरिवंशगंडिका, भद्रबाहुगंडिका, तपःकर्मगंडिका, चित्रान्तरगंडिका, उत्सर्पिणीगंडिका, अवसर्पिणी गंडिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियों में गमन, तथा विविध योनियों में परिवर्तनानुयोग, इत्यादि गंडिकाएँ इस गंडिकानुयोग में कही जाती हैं, प्रज्ञापित की जाती हैं, प्ररूपित की जाती हैं, निर्दशित की जाती हैं और उपदर्शित की जाती हैं। यह गंडिकानुयोग है।

५६८—से किं तं चूलियाओ? जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं। से त्तं चूलियाओ।

यह चूलिका क्या है?

आदि के चार पूर्वों में चूलिका नामक अधिकार है। शेष दश पूर्वों में चूलिकाएँ नहीं है। यह चूलिका है।

विवेचन—दि० शास्त्रों में दृष्टिवाद का चूलिका नामक पाँचवाँ भेद कहा गया है और उसके पाँच भेद बतलाए गए हैं—जलगता चूलिका, स्थलगता चूलिका, मायागता चूलिका, आकाशगता चूलिका और रूपगता चूलिका। जलगता में जल-गमन, अग्निस्तम्भन, अग्निभक्षण अग्नि-प्रवेश और अग्निपर बैठने आदि के मन्त्र-तन्त्र और तपश्चरण आदि का वर्णन है। स्थलगता में मेरु, कुलाचल,

भूमि आदि में प्रवेश करने आदि के मन्त्र-तन्त्रादि का वर्णन है। मायागता में इन्द्रजाल-सम्बन्धी मन्त्रादि का वर्णन है। आकाशगता में आकाश-गमन के कारणभूत मन्त्रादि का वर्णन है। रूपगता में सिंह आदि के अनेक प्रकार रूपादि वनाने के कारणभूत मन्त्रादि का वर्णन है।

५६९—दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ संगहणीओ।

दृष्टिवाद की परीत वाचनाएँ है, संख्यात अनुयोगद्वार हैं। संख्यात प्रतिपत्तियां हैं, संख्यात निर्युक्तियां है, संख्यात श्लोक हैं, और संख्यात संग्रहणियां हैं।

५७०—से णं अंगट्ठयाए वारसमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, चउद्दस पुव्वाइं संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुड-पाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुड-पाहुडियाओ, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिवद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति। से त्तं दिट्ठिवाएं। से त्तं दुवालसंगे गणिपिडगे।

यह दृष्टिवाद अंगरूप से वारहवां अंग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, चौदह पूर्व हैं, संख्यात वस्तु हैं, संख्यात चूलिका वस्तु हैं, संख्यात प्राभृत हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृत हैं, संख्यात प्राभृतिकाएं हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृतिकाएं हैं। पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गये हैं। संख्यात अक्षर हैं। अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सव शाश्वत, कृत, निवद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस दृष्टिवाद में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निर्दशित किये जाते और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह वारहवां दृष्टिवाद अंग है। यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक का वर्णन है १२।

५७१—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंत-संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टंति। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र रूप, अर्थरूप और उभय रूप आज्ञा का विराधन करके अर्थात् दुराग्रह के वशीभूत होकर अन्यथा सूत्रपाठ करके, अन्यथा अर्थकथन करके और अन्यथा सूत्रार्थ—उभय की प्ररूपणा करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार (गहन वन) में परिभ्रमण किया है, इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का विराधन करके वर्तमान काल में परीत (परिमित) जीव चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार में परिभ्रमण कर रहे हैं और इसी द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का विराधन कर भविष्यकाल में अनन्त जीव चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार में परिभ्रमण करेंगे।

५७२—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंत-संसारकंतारं वीईवइंसु। एवं पडुप्पण्णेऽवि [परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं वीईवंति] एवं अणागए वि [अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं वीईवइस्संति]।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का आराधन करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गति रूप संसार-कान्तार को पार किया है (मुक्ति को प्राप्त किया है)। वर्तमान काल में भी (परिमित) जीव इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनन्त जीव इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार करेंगे।

५७३—दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयाइ णासी, ण कयाचि णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सति य। धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। से जहा णामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्संति। भुविं च, भवति य, भविस्संति य, धुवा णितिया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा। एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सइ य। धुवे जाव अवट्ठिए णिच्चे।

यह द्वादशाङ्ग गणि-पटिक भूतकाल में कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा, ऐसा, भी नहीं है। किन्तु भूतकाल में भी यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक था, वर्तमान काल में भी है और भविष्यकाल में भी रहेगा। क्योंकि यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना देने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण अक्षय है, गंगा-सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है, जम्बूद्वीपादि के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है। जिस प्रकार पाँच अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में कभी नहीं थे, ऐसा नहीं, वर्तमान काल में कभी नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है और भविष्य काल में कभी नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है। किन्तु ये पाँचों अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में भी थे, वर्तमानकाल में भी हैं और भविष्य काल में भी रहेंगे। अतएव ये ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं, और नित्य हैं। इसी प्रकार यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक भूत काल में कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा, ऐसा भी नहीं है। किन्तु भूतकाल में भी यह था, वर्तमान काल में भी यह है और भविष्य काल में भी रहेगा। अतएव यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

५७४—एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

एवं दुवालसंगं गणिपिडगं त्ति।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक में अनन्त भाव (जीवादि स्वरूप से सत् पदार्थ) और अनन्त अभाव (पररूप से असत् जीवादि वही पदार्थ) अनन्त हेतु, उनके प्रतिपक्षी अनन्त अहेतु; इसी प्रकार अनन्त कारण, अनन्त अकारण; अनन्त जीव, अनन्त अजीव; अनन्त भव्यसिद्धिक, अनन्त अभव्यसिद्धिक; अनन्त सिद्ध तथा अनन्त असिद्ध कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते है, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं।

विवेचन—जैन सिद्धान्त में प्रत्येक वस्तु में जिस प्रकार अनन्त धर्म स्वरूप की अपेक्षा सत्तारूप में पाये जाते हैं, उसी प्रकार पर रूप की अपेक्षा अनन्त अभावात्मक धर्म भी पाये जाते हैं। इसी कारण सूत्र में स्वरूप की अपेक्षा भावात्मक धर्मों का और पररूप की अपेक्षा अभावात्मक धर्मों का निरूपण किया गया है। पदार्थ के धर्म-विशेषों को सिद्ध करने वाली युक्तियों को हेतु कहते हैं। पदार्थों के उपादान और निमित्त कारणों को कारण कहते हैं। जिनमें चेतना पाई जाती है, वे जीव और जिनमें चेतना नहीं पाई जाती है, वे अजीव कहलाते हैं। जिनमें मुक्ति जाने की योग्यता है वे भव्यसिद्धिक और जिनमें वह योग्यता नहीं पाई जाती उन्हें अभव्यसिद्धिक कहते हैं। कर्म-मुक्त जीवों को सिद्ध और कर्म-वद्ध संसारी जीवों को असिद्ध कहते हैं। इस प्रकार से यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक संसार में विद्यमान सभी तत्त्वों, भावों और पदार्थों का वर्णन करता है।

इस प्रकार द्वादशाङ्ग गणि-पिटक का वर्णन समाप्त हुआ।

उपसंहार—द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान का विषय वहुत विशाल है। श्रुतज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यों ने 'भेदः साक्षादसाक्षाच्च श्रुत-केवलयोर्मतः' कह कर श्रुतज्ञान की महत्ता प्रकट की है, अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष का भेद कहा है। जहाँ केवलज्ञान त्रैलोक्य-त्रिकालवर्ती, द्रव्यों, उनके गुणों और पर्यायों को साक्षात् हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानता है, वहां श्रुतज्ञान उन सवको परोक्ष रूप से जानता है। अतः संसार का कोई भी तत्त्व द्वादशाङ्ग श्रुत से वाहर नहीं है। सभी तत्त्व इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक में समाहित हैं। आचाराङ्ग आदि ग्यारह अंगों में आचार आदि प्रधान रूप से एक-एक विषय का वर्णन किया गया है किन्तु वारहवें दृष्टिवाद अंग में तो संसार के सभी तत्त्वों का वर्णन किया गया है। उसके पूर्वगत भेद में से जहां प्रारम्भ के उत्पादपूर्व आदि अनेक पूर्व वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक स्वरूप का वर्णन करते हैं, वहां वीर्य प्रवादपूर्व द्रव्य की शक्तियों का, अस्तिनास्ति-प्रवाद पूर्व अनेक धर्मात्मकता का, ज्ञानप्रवाद और आत्मप्रवाद पूर्व आत्मस्वरूप का, कर्मप्रवाद पूर्व कर्मों की दशाओं का निरूपण करते हैं। प्रत्याख्यानपूर्व अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का, विद्यानुवाद पूर्व मंत्र-तंत्रों का, प्राणावाय पूर्व आयुर्वेद के अष्टाङ्गों का, अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और छिन्न इन आठ महानिमित्तों का एवं ज्योतिषशास्त्र के रहस्यों का वर्णन करता है। अवन्ध्य पूर्व कभी निष्फल नहीं जाने वाली कल्याणकारिणी क्रियाओं का वर्णन करता है। क्रियाविशालपूर्व क्रियाओं का, स्त्रियों की चौसठ और पुरुषों की वहत्तर कलाओं का, तथा काव्य-रचना, छन्द, अलंकार आदि का वर्णन करता है। लोकविन्दुसार पूर्व अवशिष्ट सर्वश्रुत सम्पदा का वर्णन करता है। इस प्रकार ऐसा कोई भी जीवनोपयोगी एवं आत्मोपयोगी विषय नहीं है, जिसका वर्णन इन चौदह पूर्वों में न किया गया हो। कथानुयोग, गणित आदि विषयों का वर्णन दृष्टिवाद के शेष चार भेदों में किया गया है। इस प्रकार द्वादशाङ्ग श्रुत का विषय वहुत विशाल है।

विविधविषयनिरूपण

५७६—दुवे रासी पन्नत्ता। तं जहा—जीवरासी अजीवरासी य। अजीवरासी दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—रूवी अजीवरासी अरूवी अजीवरासी य।

दो राशियां कही गई हैं—जीवराशि और अजीव राशि। अजीवराशि दो प्रकार की कही गई है—रूपी अजीवराशि और अरूपी अजीवराशि।

५७७—से किं तं अरूवी अजीवरासी? अरूवी अजीवरासी दसविहा पन्नत्ता। तं जहा—धम्मत्थिकाए जाव [धम्मत्थिकायदेसा, धम्मत्थिकायपदेसा, अधम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकायदेसा, अधम्मत्थिकायपदेसा, आगासत्थिकाए, आगासत्थिकायदेसा, आगासत्थिकायपदेसा] अद्धासमए।

अरूपी अजीवराशि क्या है?

अरूपी अजीवराशि दश प्रकार की कही गई है। जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् (धर्मास्तिकाय देश, धर्मास्तिकायप्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय देश, अधर्मास्तिकाय प्रदेश, आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकाय देश, आकाशस्तिकायप्रदेश) और अद्धासमय।

५७८—रूवी अजीवरासी अणेगविहा पन्नत्ता जाव..................

[रूपी अजीवराशि क्या है?]

रूपी अजीवराशि अनेक प्रकार की कही गई है....यावत्

विवेचन—रूपी अजीवराशि का तथा जीवराशि का विवरण यहाँ नहीं दिया गया है, केवल जाव शब्द का प्रयोग करके यह सूचित कर दिया गया है कि प्रज्ञापनासूत्र के पहले प्रज्ञापना नामक पद के अनुसार इसका निरूपण समझ लेना चाहिए। दोनों स्थलों में अन्तर, मात्र एक शब्द का है। प्रज्ञापनासूत्र में जहाँ 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग है, वहां इस स्थान पर राशि शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शेष कथन दोनों जगह समान हैं। टीका के अनुसार संक्षिप्त कथन इस प्रकार है—

रूपी अजीवरूप अर्थात् पुद्गल राशि चार प्रकार की है—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। अनन्त परमाणुओं के सम्पूर्ण पिंड को स्कन्ध कहते हैं। स्कन्ध के उसमें मिले हुए भाग को देश कहते हैं और स्कन्ध के साथ जुड़े अविभागी अंश को प्रदेश कहते हैं। पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी अंश को, जो पृथक् है, परमाणु कहते हैं।[1] पुनः यह पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के भेद से पांच प्रकार का है। पुनः संस्थान भी पुद्गल-परमाणुओं के संयोग से अनेक प्रकार का होता है। यह पुद्गल शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, तम (अन्धकार) छाया, उद्योत (चन्द्र-प्रकाश) और आतप (सूर्य-प्रकाश) आदि के भेद से भी अनेक प्रकार का है।

---

१. पंचास्तिकाय में देश और प्रदेश का स्वरूप भिन्न प्रकार से बतलाया गया है—

खंधं सयलसमत्थं, तस्स य अद्धं भणंति देसोत्ति।
तस्स य अद्ध पदेसं जं अविभागी वियाण परमाणु त्ति॥ —पंचास्तिकाय, गाथा ९५

५७९—[जीवरासी दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य। तत्थ असंसारसमावन्नगा दुविहा पण्णत्ता ……जाव……]

जीव-राशि क्या है ?

[जीव-राशि दो प्रकार की कही गई है—संसारसमापन्नक (संसारी जीव) और असंसार समापन्नक (मुक्त जीव)। इस प्रकार दोनों राशियों के भेद-प्रभेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार अनुत्तरोपपातिक सूत्र तक जानना चाहिए।

५८०—से किं तं अणुत्तरोववाइया ? अणुत्तरोववाइआ पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धिआ। से त्तं अणुत्तरोववाइया। से त्तं पंचिंदियसंसारसमावण्ण-जीवरासी।

वे अनुत्तरोपपातिक देव क्या हैं ?

अनुत्तरोपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—विजय-अनुत्तरोपपातिक, वैजयन्त-अनुत्तरोपपातिक, जयन्त-अनुत्तरोपपातिक, अपराजित-अनुत्तरोपपातिक और सर्वार्थसिद्धिक अनुत्तरोपपातिक। ये सब अनुत्तरोपपातिक संसार-समापन्नक जीवराशि है।

यह सब पंचेन्द्रियसंसार-समापन्न-जीवराशि है।

५८१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणिय त्ति।

नारक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। यहां पर भी [प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार] वैमानिक देवों तक अर्थात् नारक, असुरकुमार, स्थावरकाय, द्वीन्द्रिय आदि, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक का सूत्र-दंडक कहना चाहिए, अर्थात् वर्णन समझ लेना चाहिए।

५८२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए केवइयं खेत्तं ओगाहेत्ता केवइया णिरयावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स-बाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं तीसं णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया। ते णं णिरयावासा अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा जाव असुभा णिरया, असुभाओ णिरएसु वेयणाओ। एवं सत्त वि भाणियव्वाओ जं जासु जुज्जइ—

[भगवन्] इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास कहे गये हैं ?]

गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथिवी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर, तथा सबसे नीचे के एक हजार योजन क्षेत्र को छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख अठहत्तर हजार योजन वाले रत्नप्रभा पृथिवी के भाग में तीस लाख नारकावास हैं। वे नारकावास भीतर की ओर गोल और बाहर की ओर चौकोर हैं यावत् वे नरक अशुभ हैं और उन नरकों में अशुभ वेदनाएं हैं। इसी प्रकार सातों ही पृथिवियों का वर्णन जिनमें जो युक्त हो, करना चाहिए।

विवेचन—आगे दी गई गाथा संख्या एक के अनुसार दूसरी पृथिवी एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है। उसके एक हजार योजन ऊपर का और एक हजार नीचे का भाग छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख तीस हजार योजन भू-भाग में पच्चीस लाख नारकावास हैं। तीसरी पृथिवी एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। उसके एक हजार योजन ऊपर का और एक हजार योजन नीचे का भाग छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख छब्बीस हजार योजन भू-भाग में पन्द्रह लाख नारकावास हैं। चौथी पृथिवी एक लाख बीस हजार योजन मोटी है। उसके ऊपर तथा नीचे की एक एक हजार योजन भूमि को छोड़कर शेष एक लाख अठारह हजार योजन भू-भाग में दश लाख नारकावास हैं। पांचवीं पृथिवी एक लाख अठारह हजार योजन मोटी है। उसके एक एक हजार योजन ऊपरी वा नीचे का भाग छोड़कर शेष मध्यवर्ती एक लाख सोलह हजार योजन भू-भाग में तीन लाख नारकावास हैं। छठी पृथिवी एक लाख सोलह हजार योजन मोटी है, उसके एक-एक योजन ऊपरी और नीचे का भाग छोड़कर मध्यवर्त्ती एक लाख चौदह हजार योजन भू-भाग में पांच कम एक लाख (९९९९५) नारकावास हैं। सातवीं पृथिवी एक लाख आठ हजार योजन मोटी है। उसके एक एक हजार योजन ऊपरी तथा नीचे के भाग को छोड़कर मध्य में पांच नारकावास हैं। उसमें अप्रतिष्ठान नाम का नारकावास ठीक चारों नारकावासों के मध्य में है और शेष काल, महाकाल, रौरुक और महारौरुक नारकावास उसकी चारों दिशाओं में अवस्थित हैं।

सभी पृथिवियों में नारकावास तीन प्रकार के हैं—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध (आवलिकाप्रविष्ट) और पुष्पप्रकीर्णक (आवलिकाबाह्य)। इन्द्रक नारकावास सबके बीच में होता है और श्रेणीबद्ध नारकावास उसकी आठों दिशाओं में अवस्थित हैं। पुष्पप्रकीर्णक या आवलिकाबाह्य नारकावास श्रेणीबद्ध नारकावासों के मध्य में अवस्थित हैं। इन्द्रक नारकावास गोल होते हैं और शेष नारकावास त्रिकोण चतुष्कोण आदि नाना आकार वाले कहे गये हैं। तथा नीचे की ओर सभी नारकावास क्षुरप्र (खुरपा) के आकार वाले हैं।

५८३—आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च।
अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव बाहल्लं ॥१॥
तीसा य पण्णवीसा पन्नरस दसेव सयसहस्साइं।
तिण्णेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा नरगा ॥२॥

चउसट्ठी असुराणं चउरासीइं च होइ नागाणं।
बावत्तरि सुवन्नाणं वाउकुमाराण छण्णउई ॥३॥
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणियमग्गीणं।
छण्हं पि जुवलयाणं बावत्तरिमो य सयसहस्सा ॥४॥

बत्तीसट्ठावीसा बारस अड चउरो य सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा छच्च सया सहस्सारे ॥५॥
आणय-पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥६॥
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तर विमाणा ॥७॥

रत्नप्रभा पृथिवी का बाहल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है। शर्करा पृथिवी का बाहल्य एक लाख बत्तीस हजार योजन है। वालुका पृथिवी का बाहल्य एक लाख अट्ठाईस हजार योजन है। पंकप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख वीस हजार योजन है। धूमप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख अट्ठारह हजार योजन है। तमःप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख सोलह हजार योजन है और महातमःप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख आठ हजार योजन है ॥१॥

रत्नप्रभा पृथिवी में तीस लाख नारकावास हैं। शर्करा पृथिवी में पच्चीस लाख नारकावास हैं। वालुका पृथिवी में पन्द्रह लाख नारकावास हैं। पंकप्रभा पृथिवी में दश लाख नारकावास हैं। धूमप्रभा पृथिवी में तीन लाख नारकावास हैं। तमःप्रभा पृथिवी में पांच कम एक लाख नारकावास हैं। महातमः पृथिवी में (केवल) पांच अनुत्तर नारकावास हैं ॥२॥

असुरकुमारों के चौसठ लाख भवन हैं। नागकुमारों के चौरासी लाख भवन हैं। सुपर्णकुमारों के बहत्तर लाख भवन हैं। वायुकुमारों के छयानवै लाख भवन हैं ॥३॥

द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, अग्निकुमार इन छहों युगलों के बहत्तर लाख भवन हैं ॥४॥

सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं। ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमान हैं। सनत्कुमार कल्प में बारह लाख विमान हैं। माहेन्द्रकल्प में आठ लाख विमान हैं। ब्रह्मकल्प में चार लाख विमान हैं। लान्तक कल्प में पचास हजार विमान हैं। महाशुक्र विमान में चालीस हजार विमान हैं। सहस्रारकल्प में छह हजार विमान हैं ॥५॥

आनत, प्राणत कल्प में चार सौ विमान हैं। आरण और अच्युत कल्प में तीन सौ विमान हैं। इस प्रकार इन चारों ही कल्पों में विमानों की संख्या सात सौ जानना चाहिए ॥६॥

अधस्तन—नीचे के तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह विमान हैं। मध्यम तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ सात विमान हैं। उपरिम तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ विमान हैं। अनुत्तर विमान पांच ही हैं ॥७॥

५८४—दोच्चाए णं पुढवीए, तच्चाए णं पुढवीए, चउत्थीए पुढवीए, पंचमीए पुढवीए, छट्ठीए पुढवीए, सत्तमीए पुढवीए गाहाहिं भाणियव्वा। [..............]

इसी प्रकार ऊपर की गाथाओं के अनुसार दूसरी पृथिवी में, तीसरी पृथिवी में, चौथी पृथिवी में, पांचवीं पृथिवी में, छठी पृथिवी में और सातवीं पृथिवी में नरक बिलों—नारकावासों—की संख्या कहना चाहिए।

[इसी प्रकार उक्त गाथाओं के अनुसार दशों प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों की, बारह कल्पवासी देवों के विमानों की, तथा ग्रैवेयक और अनुत्तर देवों के विमानों की भी संख्या जानना चाहिए।

५८५—सत्तमाए पुढवीए पुच्छा। गोयमा! सत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्साइं बाहल्लाए उवरि अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठा वि अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं सत्तमाए पुढवीए नेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया

पण्णत्ता। तं जहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपइट्ठाणे नामं पंचमे। ते णं निरया वट्टे य तंसा य। अहे खुरप्पसंठाणसंठिया जाव असुभा नरगा, असुभाओ नरएसु वेयणाओ।

सातवीं पृथिवी में पृच्छा—[भगवन्! सातवीं पृथिवी में कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास हैं?]

गौतम! एक लाख आठ हजार योजन बाहल्यवाली सातवीं पृथिवी में ऊपर से साढ़े बावन हजार योजन अवगाहन कर और नीचे भी साढ़े बावन हजार योजन छोड़कर मध्यवर्ती तीन हजार योजनों में सातवीं पृथिवी के नारकियों के पांच अनुत्तर, बहुत विशाल महानरक कहे गये हैं। जैसे—काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक और पांचवां अप्रतिष्ठान नाम का नरक हैं। ये नरक वृत्त (गोल) और त्र्यस्र हैं, अर्थात् मध्यवर्ती अप्रतिष्ठान नरक गोल आकार वाला है और शेष चारों दिशावर्ती चारों नरक त्रिकोण आकार वाले हैं। नीचे तल भाग में वे नरक क्षुरप्र (खुरपा) के आकार वाले हैं।........यावत् ये नरक अशुभ हैं और इन नरकों में अशुभ वेदनाएं हैं।

५८६—केवइया णं भंते! असुरकुमारावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्स-बाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, अहे पोक्खरकण्णिआ-संठाणसंठिया उक्किण्णंतर विउल-गंभीर-खाय-फलिहा अट्टालय-चरिय-दार-गोउर-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा जंत-मुसल-भुसंढि-सयग्घि-परिवारिया अउज्झा अडयालकोट्ठरइया अडयालकय-वणमाला लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिण्णपंचंगुलितला कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कउज्झंत-धूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्ठा नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। एवं जं जस्स कमती तं तस्स, जं जं गाहाहिं भणियं तह चेव वण्णओ।

भगवन्! असुरकुमारों के आवास (भवन) कितने कहे गये हैं?

गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन बाहल्यवाली रत्नप्रभा पृथिवी में ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर और नीचे एक हजार योजन छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख अठहत्तर हजार योजन में रत्नप्रभा पृथिवी के भीतर असुरकुमारों के चौसठ लाख भवनावास कहे गये हैं। वे भवन बाहर गोल हैं, भीतर चौकोण हैं और नीचे कमल की कर्णिका के आकार से स्थित हैं। उनके चारों ओर खाई और परिखा[1] खुदी हुई हैं जो बहुत गहरी हैं। खाई और परिखा के मध्य में पाल बंधी हुई है। तथा वे भवन अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर, कपाट, तोरण, प्रतिद्वार, देश रूप भाग वाले हैं, यंत्र, मूसल, भुसुंढी, शतघ्नी, इन शस्त्रों से संयुक्त हैं। शत्रुओं की सेनाओं से अजेय हैं। अड़तालीस कोठों से रचित, अड़तालीस वन-मालाओं से शोभित हैं। उनके भूमिभाग और भित्तियाँ उत्तम लेपों से लिपी और चिकनी हैं, गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के सरस सुगन्धित लेप से उन भवनों की भित्तियों पर पांचों अंगुलियों युक्त हस्ततल (हाथ) अंकित हैं। इसी

---

१. जो ऊपर-नीचे समान विस्तार वाली हो वह खाई, जो ऊपर चौड़ी और नीचे संकुड़ी हो वह परिखा।

प्रकार भवनों की सीढ़ियों पर भी गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के रस से पांचों अंगुलियों के हस्ततल अंकित हैं। वे भवन कालागुरु, प्रधान कुन्दरु और तुरुष्क (लोभान) युक्त धूप के जलते रहने से मघमघायमान, सुगन्धित और सुन्दरता से अभिराम (मनोहर) हैं। वहां सुगन्धित अगर-वत्तियां जल रही हैं। वे भवन आकाश के समान स्वच्छ हैं, स्फटिक के समान कान्तियुक्त हैं, अत्यन्त चिकने हैं, घिसे हुए हैं, पालिश किये हुए हैं, नीरज (रज-धूलि से रहित) हैं, निर्मल हैं, अन्धकार-रहित हैं विशुद्ध (निष्कलंक) हैं, प्रभा-युक्त हैं, मरीचियों (किरणों) से युक्त हैं, उद्योत (शीतल प्रकाश) से युक्त हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं। दर्शनीय (देखने के योग्य) हैं, अभिरूप (कान्त, सुन्दर) हैं और प्रतिरूप (रमणीय) हैं।

जिस प्रकार से असुरकुमारों के भवनों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार नागकुमार आदि शेष भवनवासी देवों के भवनों का भी वर्णन जहां जैसा घटित और उपयुक्त हो, वैसा करना चाहिए। तथा ऊपर कही गई गाथाओं से जिसके जितने भवन बताये गये हैं, उनका वैसा ही वर्णन करना चाहिए।

५८७—केवइया णं भंते ! पुढविकाइयावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा पुढविकाइयावासा पण्णत्ता। एवं जाव मणुस्स त्ति।

भगवन् ! पृथिवीकायिक जीवों के आवास कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! पृथिवीकायिक जीवों के असंख्यात आवास कहे गये हैं। इसी प्रकार जलकायिक जीवों से लेकर यावत् मनुष्यों तक के जानना चाहिए।

विवेचन—गर्भज मनुष्यों के आवास तो संख्यात ही होते हैं। तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के आवास नहीं होते हैं किन्तु प्रत्येक शरीर में एक एक जीव होने से वे असंख्यात हैं, इतना विशेष जानना चाहिए।

५८८—केवइया णं भंते वाणमंतरावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स-जोयणसहस्स-बाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा नगरावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा। एवं जहा भवणवासीणं तहेव णेयव्वा। णवरं पडागमालाउला सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

भगवन् ! वानव्यन्तरों के आवास कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथिवी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय कांड के एक सौ योजन ऊपर से अवगाहन कर और एक सौ योजन नीचे के भाग को छोड़ कर मध्यके आठ सौ योजनों में वानव्यन्तर देवों के तिरछे फैले हुए असंख्यात लाख भौमेयक नगरावास कहे गये हैं। वे भौमेयक नगर बाहर गोल और भीतर चौकोर हैं। इस प्रकार जैसा भवनवासी देवों के भवनों का वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन वानव्यन्तर देवों के भवनों का जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि ये पताका-मालाओं से व्याप्त हैं। यावत् सुरम्य हैं, मनः को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

५८९—केवइया णं भंते! जोइसियाणं विमाणावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तनउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियं जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसियविमाणावासा पण्णत्ता। ते णं जोइसियविमाणावासा अब्भुग्गयमूसियपहसिया विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहंतसिहरा जालंतर-रयणपंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियागा वियसिय-सयपत्त-पुण्डरीय-तिलय-रयणद्धचंदचित्ता अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्ज-वालुआ पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा।

भगवन्! ज्योतिष्क देवों के विमानावास कितने कहे गये हैं?

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से सात सौ नव्वै योजन ऊपर जाकर एक सौ दश योजन बाहल्य वाले तिरछे ज्योतिष्क-विषयक आकाशभाग में ज्योतिष्क देवों के असंख्यात विमानावास कहे गये हैं। वे अपने में से निकलती हुई और सर्व दिशाओं में फैलती हुई प्रभा से उज्ज्वल हैं, अनेक प्रकार के मणि और रत्नों की चित्रकारी से युक्त हैं, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयन्ती पताकाओं से और छत्रातिछत्रों से युक्त हैं, गगनतल को स्पर्श करने वाले ऊंचे शिखर वाले हैं, उनकी जालियों के भीतर रत्न लगे हुए हैं। जैसे पंजर (प्रच्छादन) से तत्काल निकाली वस्तु सश्रीक—चमचमाती है वैसे ही वे सश्रीक हैं। मणि और सुवर्ण की स्तूपिकाओं से युक्त हैं, विकसित शतपत्रों एवं पुण्डरीकों (श्वेत कमलों) से, तिलकों से, रत्नों के अर्धचन्द्राकार चित्रों से व्याप्त हैं, भीतर और बाहर अत्यन्त चिकने हैं, तपाये हुए सुवर्ण के समान वालुकामयी प्रस्तटों या प्रस्तारों वाले हैं। सुखद स्पर्श वाले हैं, शोभायुक्त हैं, मन को प्रसन्न करने वाले और दर्शनीय हैं।

५९०—केवइया णं भंते! वेमाणियावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं वीइवइत्ता बहूणि जोयणाणि बहूणि जोयणसयाणि बहूणि जोयणसहस्साणि [बहूणि जोयणसयसहस्साणि] बहूइंओ जोयणकोडीओ बहूइओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुएसु गेवेज्जमणुत्तरेसु य चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खाया।

भगवन्! वैमानिक देवों के कितने आवास कहे गये हैं?

गौतम! इसी रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारकाओं को उल्लंघन कर, अनेक योजन, अनेक शत योजन, अनेक सहस्र योजन [अनेक शत-सहस्र योजन] अनेक कोटि योजन, अनेक कोटाकोटी योजन, और असंख्यात कोटा-कोटी योजन ऊपर बहुत दूर तक आकाश का उल्लंघन कर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत कल्पों में, ग्रैवेयकों में और अनुत्तरों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवै हजार और तेईस विमान हैं, ऐसा कहा गया है।

५९१—ते णं विमाणा अच्चिमालिप्पभा भासरासिवण्णाभा अरया निरया णिम्मला

वितिमिरा विसुद्धा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा घट्ठा मट्ठा णिप्पंका णिक्कंक-डच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

वे विमान सूर्य की प्रभा के समान प्रभावाले हैं, प्रकाशों की राशियों (पुंजों) के समान भासुर हैं, अरज (स्वाभाविक रज से रहित) हैं, नीरज (आगन्तुक रज से विहीन) हैं, निर्मल हैं, अन्धकाररहित हैं, विशुद्ध हैं, मरीचि-युक्त हैं, उद्योत-सहित हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

५९२—सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। एवं ईसाणाइसु अट्ठावीस बारस अट्ठ चत्तारि एयाइं सयसहस्साइं पण्णासं चत्तालीसं छ-एयाइं सहस्साइं आणए पाणए चत्तारि आरणच्चुए तिन्नि एयाणि सयाणि एवं गाहाहिं भाणियव्वं।

भगवन् ! सौधर्म कल्प में कितने विमानावास कहे गये हैं।

गौतम ! सौधर्म कल्प में बत्तीस लाख विमानावास कहे गये हैं। इसी प्रकार ईशानादि शेष कल्पों में सहस्रार तक क्रमशः पूर्वोक्त गाथाओं के अनुसार अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार, छह सौ, तथा आनत प्राणत कल्प में चार सौ और आरण-अच्युत कल्प में तीन सौ विमान कहना चाहिए। [ग्रैवेयक और अनुत्तर देवों के विमान भी पूर्वोक्त गाथाङ्क ७ पृष्ठ २०१ के अनुसार जानना चाहिए।]

५९३—नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। अपज्जत्तगाणं नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तगाणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए एवं जाव।

भगवन् ! नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

गौतम ! जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है।

भगवन् ! अपर्याप्तक नारकों की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[गौतम !] जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पर्याप्तक नारकियों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है। इसी प्रकार इस रत्नप्रभा पृथिवी से लेकर महातमःप्रभा पृथिवी तक अपर्याप्तक नारकियों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की तथा पर्याप्तकों की स्थिति वहाँ की सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति से अन्तर्मुहूर्त्त अन्तर्मुहूर्त्त कम जानना चाहिए।

[इसी प्रकार भवनवासियों, वानव्यन्तरों, ज्योतिष्कों, कल्पवासियों और ग्रैवेयक वासी देवों की पर्याप्तक-अपर्याप्तक काल-भावी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानना चाहिए ।]

५६४—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं वत्तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं । सव्वट्ठे अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल कही गई है ?

गौतम ! जघन्य स्थिति वत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है ।

सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में अजघन्य-अनुत्कृष्ट (उत्कृष्ट और जघन्य के भेद से रहित] सव देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

विवेचन—पांचों अनुत्तर विमानों में भी वहाँ की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त्त कम पर्याप्तक देवों की स्थिति जानना चाहिए । तथा सभी देवों की अपर्याप्त काल सम्वन्धी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त जाननी चाहिए ।

५६५—कति णं भंते ! सरीरा पन्नत्ता ? गोयमा ! पंच सरीरा पन्नत्ता । तं जहा—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए ।

भगवन् ! शरीर कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! शरीर पांच कहे गये हैं—औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर ।

५६६—ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते । तं जहा—एगिंदिय-ओरालियसरीरे जाव गब्भवक्कंतिय मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीरे य ।

भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं ।

गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—एकेन्द्रिय औदारिक शरीर, यावत् [द्वीन्द्रिय औदारिकशरीर, त्रीन्द्रिय औदारिकशरीर, चतुरिन्द्रिय औदारिकशरीर और पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर । इत्यादि प्रज्ञापनोक्त] गर्भजमनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर तक जानना चाहिए ।

५६७—ओरालियसरीरस्स णं भंते ? केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं एवं जहा ओगाहण-संठाणे ओरालिय-पमाणं तह निरवसेसं [भाणियव्वं] । एवं जाव मणुस्से त्ति उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं ।

भगवन् ! औदारिकशरीर वाले जीव की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना कितनी कही गई है ?

गौतम ! [पृथिवीकायिक आदि की अपेक्षा] जघन्य शरीर-अवगाहना अंगुल के असंयातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना [वादर वनस्पतिकायिक की अपेक्षा] कुछ अधिक एक हजार योजन कही गई है।

इस प्रकार जैसे अवगाहना संस्थान नामक प्रज्ञपना-पद में औदारिकशरीर की अवगाहना का प्रमाण कहा गया है, वैसा ही यहां सम्पूर्ण रूप से कहना चाहिए। इस प्रकार यावत् मनुष्य की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना तीन गव्यूति (कोश) कही गई है।

५९८—कइविहे णं भंते ! वेउव्वियसरीरे पन्नत्ते ? गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते—एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे य पंचिंदिय-वेउव्वियसरीरे अ। एवं जाव सणंकुमारे आढत्तं जाव अनुत्तराणं भवधार-णिज्जा जाव तेसिं रयणी रयणी परिहायइ।

भगवन् ! वैक्रियिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! वैक्रियिकशरीर दो प्रकार का कहा गया है—एकेन्द्रिय वैक्रियिक शरीर और पंचेन्द्रिय वैक्रियिकशरीर।

इस प्रकार यावत् सनत्कुमार-कल्प से लेकर अनुत्तर विमानों तक के देवों का वैक्रियिक भवधारणीय शरीर कहना। वह क्रमशः एक-एक रत्नि कम होता है।

विवेचन—वैक्रियिकशरीर एकेन्द्रियों में केवल वायुकायिक जीवों के ही होता है। विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम तिर्यंचों के वह नहीं होता है। नारकों में, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देवों में, सौधर्म ईशान कल्पों के देवों में और सनत्कुमारकल्प से लेकर अनुत्तर विमानवासी देवों तक वैक्रियिक शरीर होता है। नारकों का भवधारणीय शरीर सातवें नरक में पाँच सौ धनुष से लेकर घटता हुआ प्रथम नरक में सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल होता है। भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवों का भवधारणीय शरीर सात रत्नि या हाथ होता है। सनत्कुमार-माहेन्द्र देवों का भवधारणीय शरीर छह हाथ होता है। ब्रह्म-लान्तक देवों का पाँच हाथ, महाशुक्र-सहस्रार देवों का चार हाथ, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत देवों का तीन हाथ, ग्रैवेयक देवों का दो हाथ और अनुत्तर विमानवासी देवों का भवधारणीय शरीर एक हाथ होता है। जो तिर्यंच गर्भज हैं, और जो मनुष्य गर्भज हैं, उनके भवधारणीय वैक्रियिक शरीर नहीं होता है, किन्तु लब्धिप्रत्यय-जनित वैक्रियिक शरीर ही किसी-किसी के होता है। सबके नहीं। उनमें भी वह कर्म-भूमिज, संख्यातवर्षायुक्त और पर्याप्तक जीवों के ही होता है। उत्तर-वैक्रियिक शरीर मनुष्य के उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन की अवगाहनावाला होता है और देवों के एक लाख योजन अवगाहना वाला। तिर्यंचों के उत्कृष्ट सौ पृथक्त्व योजन अवगाहना वाला हो सकता है।

५९९—आहारयसरीरे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! एगाकारे पन्नत्ते।
जइ एगाकारे पन्नत्ते, किं मणुस्स-आहारयसरीरे अमणुस्स-आहारयसरीरे ?
गोयमा ! मणुस्स-आहारगसरीरे, णो अमणुस्स-आहारगसरीरे।

एवं जइ मणुस्स-आहारगसरीरे, किं गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारगसरीरे, संमुच्छिममणुस्स-आहारगसरीरे ?

गोयमा ! गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे ।
जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे, किं कम्मभूमिग० अकम्मभूमिग० ?
गोयमा ! कम्मभूमिग०, नो अकम्मभूमिग० ।
जइ कम्मभूमिग०, किं संखेज्जवासाउय० असंखेज्जवासाउय० ?
गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, नो असंखेज्जवासाउय० ।
जइ संखेज्जवासाउय०, किं पज्जत्तय० अपज्जत्तय० ?
गोयमा ! पज्जत्तय०, नो अपज्जत्तय० ।
जइ पज्जत्तय० किं सम्मद्दिट्ठी० मिच्छदिट्ठी० सम्मामिच्छदिट्ठी० ?
गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी० । नो मिच्छदिट्ठी नो सम्मामिच्छदिट्ठी ।
जइ सम्मदिट्ठी० किं संजय० असंजय० संजयासंजय० ?
गोयमा ! संजय०, नो असंजय० नो असंजयासंजय० ।
जइ संजय० किं पमत्तसंजय०, अप्पमत्तसंजय० ?
गोयमा ! पमत्तसंजय०, नो अपमत्तसंजय० ।
जइ पमत्तसंजय०, किं इड्ढिपत्त० अणिड्ढिपत्त० ?
गोयमा ! इड्ढिपत्त०, नो अणिड्ढिपत्त० ।
वयणा वि भाणियव्वा ।

भगवन् ! आहारकशरीर कितने प्रकार का होता है ?

गौतम ! आहारक शरीर एक ही प्रकार का कहा गया है ।

भगवन् ! यदि एक ही प्रकार का कहा गया है तो क्या वह मनुष्य आहारकशरीर है, अथवा अमनुष्य-आहारक शरीर है ?

गौतम ! मनुष्य-आहारकशरीर है, अमनुष्य-आहारक शरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह मनुष्य-आहारक शरीर है तो क्या वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ।

भगवन् ! यदि वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, तो क्या वह कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अकर्मभूमिज-गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अकर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ?

गौतम ! संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर हैं, तो क्या वह पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारक शरीर है, तो क्या वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर है, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, न मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ।

भगवन् ! यदि वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा संयतासंयत पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर है, न असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है और न संयतासंयत पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ।

भगवन् ! यदि वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या प्रमत्तसंयत सम्यदृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारक-शरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अथवा अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! यह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर नहीं है ।

उपसंहार—यह आहारकशरीर ऋद्धिप्राप्त छठे गुणस्थानवर्त्ती प्रमत्तसंयत मुनि को होता है । इस स्थल पर मूलसूत्र में 'वयणा वि भाणियव्वा' पाठ है, उसका अभिप्राय यह है कि मूल पाठ में आहारकशरीर किसके होता है ? इस से संबद्ध गौतम स्वामी द्वारा किये गये प्रश्नों के भ० महावीर ने जो उत्तर दिये हैं उन्हें मूल में 'कम्मभूमिग०' आदि पदों के आगे गोल विन्दु (०) दिये गये हैं, उनसे सूचित वचनों को कहने के लिए संकेत किया गया है, जिसे ऊपर अनुवाद में पूरा दिया ही गया है ।

६००—आहारयसरीरे समचउरंससंठाणसंठिए ।

यह आहारक शरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला होता है ।

विवेचन—जब किसी चतुर्दश पूर्वधर अप्रमत्त संयत ऋद्धिप्राप्त मुनि को ध्यानावस्था में किसी गहन सूक्ष्म तत्त्व के विषय में कोई शंका हो और उस समय उस क्षेत्र में केवली भगवान् का अभाव हो तब वे आहारकशरीर नामकर्म का उपार्जन करते हैं और प्रमत्तसंयत होते ही उनके मस्तक से रक्त-मांस, हड्डी आदि से रहित एक हाथ का धवल वर्ण वाला मनुष्य के आकार का सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण पुतला निकलता है और जहां भी केवली भगवान् विराजते हों, वहां जाकर उनके चरण-कमलों का स्पर्श करता है । और स्पर्श करते ही वह वहां से वापिस आकर महामुनि के मस्तक में प्रवेश करता है और उनकी शंका का समाधान हो जाता है । इस आहारकशरीर के अर्जन, निर्गमन और प्रवेश की क्रिया एक अन्तमुहूर्त में सम्पन्न हो जाती है । विशेषता यही है कि इसका बन्ध या उपार्जन तो सातवें गुणस्थान में होता है और उदय या निर्गमन और प्रवेश आदि की क्रिया छठे गुणस्थान में होती है ।

६०१—आहारयसरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं देसूणा रयणी, उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी ।

भगवन् ! आहारकशरीर की कितनी बड़ी शरीर-अवगाहना कही गई है ?
गौतम ! जघन्य अवगाहना कुछ कम एक रत्नि (हाथ) और उत्कृष्ट अवगाहना परिपूर्ण एक रत्नि कही गई है ।

६०२—तेआसरीरे णं भंते कतिविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते—
एगिंदिय तेयसरीरे, बि-ति-चउ-पंच० । एवं जाव० ।

भगवन् ! तैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है—एकेन्द्रियतैजस शरीर, द्वीन्द्रियतैजसशरीर, त्रीन्द्रिय तैजसशरीर, चतुरिन्द्रितैजसशरीर और पंचेन्द्रियतैजसशरीर । इस प्रकार आरण-अच्युत कल्प तक जानना चाहिए ।

विवेचन—इस सूत्र में एकेन्द्रियादि की अपेक्षा तैजसशरीर के पांच भेद कहकर शेष तैजस शरीर की वक्तव्यता को प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानने की सूचना की है, उसके अनुसार यहां दी जाती है—

[भगवन् ! एकेन्द्रियतैजस शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे-पृथ्वीकाय एकेन्द्रियतैजसशरीर, अप्कायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर, तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर, वायुकायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर और वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक देवों के मारणान्तिक समुद्घातगत अवगाहना तक जानना चाहिए।]

यहां सूत्रकार ने शेष जीवों के तैजसशरीर का वर्णन न करके यावत् पद से प्रज्ञापना सूत्र में प्ररूपित जीवराशि की प्ररूपणा के अनुसार सूत्रार्थ को जानने की सूचना की है। प्रकृत में यह अभिप्राय है कि जिस जीव के शरीर की स्वाभाविक दशा में या समुद्घात आदि विशिष्ट अवस्था में जितनी अवगाहना होती है, उतनी ही तैजस शरीर की तथा कार्मणशरीर की अवगाहना जानना चाहिए। किस किस गति के जीव की शारीरिक अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट कितनी होती है, तथा कौन कौन से जीव समुद्घात दशा में कितने आयाम-विस्तार को धारण करते हैं, यह प्रज्ञापना सूत्र से जानना चाहिए।

६०३—गेवेज्जस्स णं भंते ! देवस्स णं मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स समाणस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ? गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभवाहल्लेणं, आयामेणं जहन्नेणं अहे जाव विज्जाहरसेढीओ। उक्कोसेणं जाव अहोलोइयग्गामाओ। उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं, तिरियं जाव मणुस्सखेत्तं। एवं जाव अणुत्तरोववाइया। एवं कम्मयसरीरं भाणियव्वं।

भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए ग्रैवेयक देव की शरीर-अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

गौतम ! विष्कम्भ-बाहल्य की अपेक्षा शरीर-प्रमाणमात्र कही गई है और आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा नीचे जघन्य यावत् विद्याधर-श्रेणी तक उत्कृष्ट यावत् अधोलोक के ग्रामों तक, तथा ऊपर अपने विमानों तक और तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक कही गई है।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों की जानना चाहिए। इसी प्रकार कार्मण शरीर का भी वर्णन कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में मारणान्तिक समुद्घातगत ग्रैवेयक देव की शारीरिक अवगाहना का वर्णन कर अनुत्तर विमानवासी देवों की शरीर-अवगाहना और कार्मणशरीर-अवगाहना को जानने की सूचना की गई है। यह सूत्र मध्यदीपक है, अतः एकेन्द्रियों से लेकर पंचेन्द्रियों तक के तिर्यग्गति के तथा नारक, मनुष्य और देवगति के ग्रैवेयक देवों के पूर्ववर्ती सभी जीवों की स्वाभाविक शरीर-अवगाहना, तथा मारणान्तिक समुद्घातगत-अवगाहना का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानना चाहिए। यहां संक्षेप से कुछ लिखा जाता है—

पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के शरीरों की जो जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना

बताई गई है, उतनी ही उनके तैजस और कार्मण शरीर की अवगाहना होती है। किन्तु मारणान्तिक समुद्‌घात या मरकर उत्पत्ति की अपेक्षा एकेन्द्रियों के प्रदेशों की लम्बाई जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कर्ष से ऊपर और नीचे लोकान्त तक होती है, क्योंकि एकेन्द्रिय पृथिवी-कायिक आदि जीव मर कर नीचे सातवीं पृथिवी में और ऊपर ईषत्प्राग्भार नामक पृथिवी में उत्पन्न हो सकते हैं। द्वीन्द्रियादि जीव उत्कर्ष से तिर्यग्लोक के अन्त तक मर कर उत्पन्न हो सकते हैं, अतः उनके तैजस-कार्मण शरीर की अवगाहना उतनी ही जाननी चाहिए। नारक की मरण की अपेक्षा जघन्य अवगाहना एक हजार योजन कही गई है, क्योंकि प्रथम नरक का नारकी मरकर हजार योजन विस्तृत पाताल कलश की भित्ति को भेदकर उसमें मत्स्यरूप से उत्पन्न हो जाता है। उत्कर्ष से सातवें नरक का नारकी मरकर ऊपर लवण समुद्रादि में मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकता है। तिर्यक् स्वयम्भूरमण समुद्र तक, तथा ऊपर पंडक वन की पुष्करिणी में भी मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकता है। मनुष्य मरकर सर्व ओर लोकान्त तक उत्पन्न हो सकता है, अतः उसके तैजस और कार्मणशरीर की अवगाहना उतनी लम्बी जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ईशान कल्प के देवों के दोनों शरीरों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि ये देव मर कर अपने ही विमानों में वहीं के वहीं एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक जीवों में उत्पन्न हो सकते हैं। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना नीचे तीसरी पृथिवी तक, तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र की बाहिरी वेदिका के अन्त तक और ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी के अन्त तक लम्बी जानना चाहिए। सनत्कुमार कल्प से लेकर सहस्रार कल्प तक के देवों के तैजस-कार्मण शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण कही गई है, क्योंकि ये देव पंडक वनादि की पुष्करिणियों में स्नान करते समय मरण हो जाने से वहीं मत्स्य रूप से उत्पन्न हो जाते हैं। उत्कृष्ट अवगाहना नीचे महापाताल कलशों के द्वितीय त्रिभाग तक जानना चाहिए, क्योंकि वहां जल का सद्‌भाव होने से वे मरकर मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकते हैं। तिरछे स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्त तक अवगाहना जाननी चाहिए। ऊपर अच्युत स्वर्ग तक अवगाहना कही गई है, क्योंकि सनत्कुमारादि स्वर्गों के देव किसी सांगतिक देव के आश्रय से अच्युत स्वर्ग तक जा सकते हैं, और आयु पूर्ण हो जाने पर वहां से मरकर यहां मध्य लोक में उत्पन्न हो सकते हैं। आनत आदि चार स्वर्गों के देवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग कही गई है, क्योंकि वहां का देव यदि यहां मध्य लोक में आया हो और यहीं मरण हो जाय तो वह यहीं किसी मनुष्यनी के गर्भ में उत्पन्न हो सकता है। उक्त देवों की उत्कृष्ट अवगाहना नीचे मनुष्यलोक तक जानना चाहिए, क्योंकि अन्तिम चार स्वर्गों के देव मरकर मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देवों की जघन्य अवगाहना विजयार्ध पर्वत की विद्याधर श्रेणी तक जानना चाहिए। उत्कृष्ट अवगाहना नीचे अधोलोक के ग्रामों तक, तिरछी मनुष्य लोक और ऊपर अपने-अपने विमानों तक कही गई है।

६०४—कइविहे णं भंते! ओही पन्नत्ता?

गोयमा! दुविहा पन्नत्ता—भवपच्चइए य खओवसमिए य। एवं सव्वं ओहिपदं भाणियव्वं।

भगवन्! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है?

गौतम! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—भवप्रत्यय अवधिज्ञान और क्षायोपशमिक अवधिज्ञान। इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण अवधिज्ञान पद कह लेना चाहिए।

विवेचन—सूत्रकार ने जिस अवधिज्ञान-पद के जानने की सूचना की है, वह इस प्रकार है—अवधिज्ञान का भेद, विषय, संस्थान, आभ्यन्तर, बाह्य, देशावधि, वृद्धि, हानि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति इन दश द्वारों से वर्णन किया गया है। सूत्रकार ने अवधिज्ञान के दो भेद कहे हैं, उनमें से भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों और नारकों को होता है, तथा क्षायोपशमिक—गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंचों को होता है।

अवधिज्ञान का विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है। इनमें से द्रव्य की अपेक्षा अवधिज्ञान जघन्यरूप से तैजस वर्गणा और भाषा वर्गणा के अग्रहण-प्रायोग्य (दोनों के बीच के) द्रव्यों को जानता है, तथा उत्कृष्ट रूप से सर्व रूपी द्रव्यों को जानता है। क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र को (क्षेत्र में स्थित रूपी द्रव्यों को) जानता है और उत्कृष्ट लोकप्रमाण अलोक के असंख्यात खंडों को जानता है) काल की अपेक्षा आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण अतीत और अनागत काल को (कालवर्त्ती रूपी द्रव्यों को) जानता है। तथा उत्कृष्ट रूप से असंख्यात उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत अनागत काल को जानता है। भाव की अपेक्षा जघन्यरूप से प्रत्येक पुद्‌गल द्रव्य के रूपादि चार गुणों को जानता है और उत्कृष्ट रूप से प्रत्येक रूपी द्रव्य के असंख्यात गुणों को, तथा सर्वरूपी द्रव्यों की अपेक्षा अनन्त गुणों को जानता है।

संस्थान की अपेक्षा नारकों के अवधिज्ञान का आकार तप्र (डोंगी) के समान आकार वाला, भवनवासी देवों का पल्य के आकार का, व्यन्तर देवों का पटह के आकार का, ज्योतिष्क देवों का झालर के आकार, कल्पोपन्न देवों का मृदंग के आकार, ग्रैवेयक देवों का पुष्पावली-रचित शिखर वाली चंगेरी के समान, तथा अनुत्तर देवों का कन्याचोलक के समान होता है। तिर्यंचों और मनुष्यों के अवधिज्ञान का आकार अनेक प्रकार का होता है।

आभ्यन्तर द्वार की अपेक्षा कौन-कौन से जीव अपने अवधिज्ञान से प्रकाशित क्षेत्र के भीतर रहते हैं, इसका विचार किया जाता है।

बाह्य द्वार की अपेक्षा कौन-कौन से जीव अवधिज्ञान से प्रकाशित क्षेत्र के बाहर रहते हैं, इसका विचार किया जाता है। जैसे—नारक देव और तीर्थंकर अवधिज्ञान के द्वारा प्रकाशित क्षेत्र भीतर होते हैं। शेष जीव बाह्य अवधिज्ञानवाले भी होते हैं और आभ्यन्तर अवधिज्ञान वाले भी होते हैं।

देशावधि द्वार की अपेक्षा देवों, नारकों और तिर्यंचों को देशावधिज्ञान ही होता हैं, क्योंकि वे अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्यों के एक देश को ही जानते हैं। किन्तु मनुष्यों को देशावधि भी होता और सर्वावधिज्ञान भी होता है। यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि सर्वावधिज्ञान तद्‌भव मोक्षगामी परम संयत के ही होता है, अन्य के नहीं।

वृद्धि-हानि द्वार की अपेक्षा मनुष्यों और तिर्यंचों का अवधिज्ञान परिणामों की विशुद्धि के समय बढ़ता है और संक्लेश के समय घटता भी है। वृद्धिरूप अवधिज्ञान अंगुल के असंख्यातवें भाग से बढ़कर लोकाकाशप्रमित क्षेत्र तक बढ़ता जाता है। इसी प्रकार संक्लेश की वृद्धि होने पर उत्तरोत्तर घटता जाता है। किन्तु देवों और नारकों का अवधिज्ञान जिस परिमाण में उत्पन्न होता है, उतने ही परिमाण में अवस्थित रहता है, घटता-बढ़ता नहीं है।

प्रतिपाति-अप्रतिपाति द्वार की अपेक्षा देशावधिज्ञान प्रतिपाति है और सर्वावधिज्ञान अप्रतिपाति है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान भव-पर्यन्त अप्रतिपाति है और भव छूटने के साथ प्रतिपाति है। क्षायोपशमिक गुणप्रत्यय अवधिज्ञान प्रतिपाति भी होता है और अप्रतिपाति भी होता है।

६०५ सीया य दव्व सारीर साया तह वेयणा भवे दुक्खा।
अब्भुवगमुवक्कमिया णीयाए चेव अणियाए ॥१॥

वेदना के विषय में शीत, द्रव्य, शारीर, साता, दुःखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा और अनिदा इतने द्वार ज्ञातव्य हैं ॥१॥

६०६—नेरइया णं भंते ! किं सीतं वेयणं वेयंति, उसिणं वेयणं वेयंति, सीतोसिणं वेयणं वेयंति ? गोयमा ! नेरइया० एवं चेव वेयणापदं भाणियव्वं।

भगवन् ! नारकी क्या शीत वेदना वेदन करते हैं, उष्णवेदना वेदन करते हैं, अथवा शीतोष्ण वेदना वेदन करते हैं ?

गौतम ! नारकी शीत वेदना वेदन करते हैं०, इस प्रकार से वेदना पद कहना चाहिए।

विवेचन—वेदना के विषय में शीत आदि द्वार जानने के योग्य हैं। मूल में शीत पद के आगे पठित 'च' शब्द से नहीं कही गई प्रतिपक्षी वेदनाओं की सूचना दी गई है। तदनुसार वेदना तीन प्रकार की है—शीत वेदना, उष्ण वेदना और शीतोष्ण वेदना। नीचे की पृथिवियों के नारकी केवल शीत वेदना का ही अनुभव करते हैं और ऊपर की पृथिवियों के नारकी केवल उष्ण वेदना का ही अनुभव करते हैं। शेष तीन गति के जीव शीत वेदना का भी, उष्ण वेदना का भी, और शीतोष्ण वेदना का भी वेदन करते हैं।

'द्रव्य' द्वार में द्रव्य पद से साथ, क्षेत्र, काल और भाव भी सूचित किये गये हैं। अर्थात् वेदना चार प्रकार की है—द्रव्यवेदना—जो पुद्गल द्रव्य के सम्बन्ध से वेदन की जाती है, क्षेत्रवेदना—जो नारक आदि उपपात क्षेत्र के सम्बन्ध से वेदन की जाती है, कालवेदना—जो नारक आदि के आयु-काल के सम्बन्ध से नियत काल तक भोगी जाती है। जो वेदनीय कर्म के उदय से वेदना भोगी जाती है, उसे भाव-वेदना कहते हैं। नारकों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी जीव चारों प्रकार की वेदनाओं को वेदन करते हैं।

'शारीर' द्वार की अपेक्षा वेदना तीन प्रकार की कही गई हैं—शारीरी, मानसी और शारीरमानसी। कोई वेदना केवल शारीरिक होती है, कोई केवल मानसिक होती है और कोई दोनों से सम्बद्ध होती है। सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय चारों गति के जीव तीनों ही प्रकार की वेदनाओं को भोगते हैं। किन्तु एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव केवल शारीरी वेदना को ही भोगते हैं।

'साता' द्वार की अपेक्षा वेदना तीन प्रकार की है—साता वेदना, असाता वेदना और साता-असाता वेदना। सभी संसारी जीव तीनों ही प्रकार की वेदनाओं को भोगते हैं।

'दुःख' पद से तीन प्रकार की वेदना सूचित की गई है—सुखवेदना, दुःखवेदना और सुख-दुःख वेदना। सभी चतुर्गति के जीव इन तीनों ही प्रकार की वेदनाओं का अनुभव करते हैं।

प्रश्न—पूर्व द्वार में कही सातासात वेदना और इस द्वार में कही सुख-दुःख वेदना में क्या अन्तर है ?

उत्तर—साता-असाता वेदनाएं तो साता-असाता वेदनीय कर्म के उदय होने पर होती हैं। किन्तु सुख-दुःख वेदनाएं वेदनीय कर्म की दूसरे के द्वारा उदीरणा कराये जाने पर होती हैं। अतः इन दोनों में उदय और उदीरणा जनित होने के कारण अन्तर है।

जो वेदना स्वयं स्वीकार की जाती है, उसे आभ्युपगमिकी वेदना कहते हैं। जैसे—स्वयं केश-लुंचन करना, आतापना लेना, उपवास करना आदि।

जो वेदना वेदनीय कर्म के स्वयं उदय आने पर या उदीरणाकरण के द्वारा प्राप्त होने पर भोगी जाती है, उसे औपक्रमिकी वेदना कहते हैं। इन दोनों ही वेदनाओं को पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य भोगते हैं। किन्तु देव, नारक और एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव केवल औपक्रमिकी वेदना को ही भोगते हैं।

बुद्धिपूर्वक स्वेच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को निदा वेदना कहते हैं और अबुद्धिपूर्वक या अनिच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को अनिदा वेदना कहते हैं। संज्ञी जीव इन दोनों ही प्रकार की वेदनाओं को भोगते हैं। किन्तु असंज्ञी जीव केवल अनिदा वेदना को ही भोगते हैं।

इस विषय में प्रज्ञापना सूत्र के पैंतीसवें वेदना पद का अध्ययन करना चाहिए।

६०७—कइ णं भंते ! लेसाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छ लेसाओ पन्नत्ताओ। तं जहा—किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा सुक्का। लेसापयं भाणियव्वं।

भगवन् ! लेश्याएं कितनी कही गई हैं ?

गौतम ! लेश्याएं छह कही गई हैं। जैसे—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, और शुक्ललेश्या। इस प्रकार लेश्यापद कहना चाहिए।

विवेचन—इस स्थल पर संस्कृतटीकाकार ने प्रज्ञापना सूत्र के सत्तरहवें लेश्या पद को जानने की सूचना की है। अतिविस्तृत होने से यहाँ उसका निरूपण नहीं किया गया है।

६०८—अणंतरा य आहारे आहाराभोगणा इ य।
पोग्गला नेव जाणंति अज्झवसाणे य सम्मत्ते ॥१॥

आहार के विषय में अनन्तर-आहारी, आभोग-आहारी, अनाभोग-आहारी, आहार-पुद्गलों के नहीं जानने-देखने वाले और जानने-देखने वाले आदि चतुर्भंगी, प्रशस्त-अप्रशस्त, अध्यवसान वाले और अप्रशस्त अध्यवसान वाले तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व को प्राप्त जीव ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

विवेचन—उपपात क्षेत्र में उत्पन्न होने के साथ ही शरीर के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को अनन्तराहार कहते हैं। सभी जीव उत्पन्न होते ही अपने शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। बुद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करने को आभोग निर्वर्तित और अबुद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करने को अनाभोगनिर्वर्तित कहते हैं। नारकी दोनों प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार सभी जीवों का जानना चाहिए। केवल एकेन्द्रिय जीव अनाभोगनिर्वर्तित आहार करते हैं। नारकी जीव जिन

पुद्गलों को आहार रूप से ग्रहण करते हैं, उन्हें अपने अवधिज्ञान से भी नहीं जानते हैं और न देखते हैं, इसी प्रकार असुरों से लेकर त्रीन्द्रिय तक के जीव भी अपने ग्रहण किये गये आहारपुद्गलों को नहीं जानते-देखते हैं। चतुरिन्द्रिय जीव आंख के होने पर भी मत्यज्ञानी होने से नहीं देखते और और जानते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जो अवधिज्ञानी हैं, वे आहारपुद्गलों को जानते और देखते हैं। शेष जीव प्रक्षेपाहार को जानते हैं, लोमाहार को नहीं जानते देखते हैं। व्यन्तर और ज्योतिष्क देव अपने ग्रहण किये गये आहार-पुद्गलों को न जानते हैं और न देखते हैं। वैमानिक देवों में जो सम्यग्दृष्टि हैं वे अपने-अपने विशिष्टज्ञान से आहार-पुद्गलों को जानते और देखते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि वैमानिक देव नहीं जानते-देखते हैं।

अध्यवसान द्वार की अपेक्षा नारक आदि जीवों के प्रशस्त और अप्रशस्त अध्यवसायस्थान असंख्यात होते हैं।

सम्यक्त्व-मिथ्यात्व द्वार की अपेक्षा एकेन्द्रियों से लगाकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव मिथ्यात्वी ही होते हैं, शेष जीवों में कितने ही सम्यक्त्वी होते हैं, कितने ही मिथ्यात्वी होते हैं और कितने ही सम्यग्मिथ्यात्वी भी होते हैं।

यह सब जानने की सूचना सूत्रकार ने गाथा संख्या एक से की है।

६०९—नेरइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विकुव्वणया ? हंता गोयमा ! एवं। आहारपदं भाणियव्वं।

भगवन् ! नारक अनन्तराहारी हैं ? (उपपात क्षेत्र में उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही क्या अपने शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं ?) तत्पश्चात् निर्वर्तनता (शरीर की रचना) करते हैं ? तत्पश्चात् पर्यादानता (अंग-प्रत्यंगों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण) करते हैं ? तत्पश्चात् परिणामनता (गृहीत पुद्गलों का शब्दादि विषय के रूप में उपभोग) करते हैं ? तत्पश्चात् परिचारणा (प्रवीचार) करते हैं ? और तत्पश्चात् विकुर्वणा (नाना प्रकार की विक्रिया) करते हैं ? (क्या यह सत्य है ?)

हां गौतम ! ऐसा ही है। (यह कथन सत्य है।)

यहां पर (प्रज्ञापना सूत्रोक्त) आहार पद कह लेना चाहिए।

६१०—कइविहे णं भंते ! आउगबंधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउगबंधे पन्नत्ते। तं जहा—जाइनामनिहत्ताउए गतिनामनिहत्ताउए ठिइनामनिहत्ताउए पएसनामनिहत्ताउए अणुभागनामनिहत्ताउए ओगाहणानामनिहत्ताउए।

भगवन् ! आयुकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे-जातिनामनिधत्तायुष्क, गतिनामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनामनिधत्तायुष्क और अवगाहनानामनिधत्तायुष्क।

विवेचन—प्रत्येक प्राणी जिस समय आगामी भव की आयु का बन्ध करता है, उसी समय उस

गति के योग्य जातिनाम कर्म का वन्ध करता है, गतिनाम कर्म का भी वन्ध करता है, इसी प्रकार उसके योग्य स्थिति, प्रदेश, अनुभाग और अवगाहना (शरीर नामकर्म) का भी वन्ध करता है। जैसे—कोई जीव इस समय देवायु का वन्ध कर रहा है तो वह इसी समय उसके साथ पंचेन्द्रिय जातिनामकर्म का भी बन्ध कर रहा है, देवगति नामकर्म का भी वन्ध कर रहा है, आयु की नियत काल-वाली स्थिति का भी बन्ध कर रहा है, उसके नियत परिमाण वाले कर्मप्रदेशों का भी वन्ध कर रहा है, नियत रस-विपाक या तीव्र-मन्द फल देने वाले अनुभाग का भी वन्ध कर रहा है और देवगति में होने वाले वैक्रियिक अवगाहना अर्थात् शरीर का भी वन्ध कर रहा है। इन सव अपेक्षाओं से आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है।

६११—नेरइयाणं भंते ! कइविहे आउगवंधे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे पन्नत्ते। तं जहा—जातिनाम० गइनाम० ठिइनाम० पएसनाम० अणुभागनाम० ओगाहणानाम०। एवं जाव वेमाणियाणं।

भगवन् ! नारकों का आयुवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—जातिनामनिधत्तायुष्क, गतिनामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनामनिधत्तायुष्क और अवगाहनानामधित्ता-युष्क।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी दंडकों में छह-छह प्रकार का आयुवन्ध जानना चाहिए।

६१२—निरयगई णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं वारस मुहुत्ते।

भगवन् ! नरकगति में कितने विरह-(अन्तर-) काल के पश्चात् नारकों का उपपात (जन्म) कहा गया है ?

गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वारह मुहूर्त्त नारकों का विरहकाल कहा गया है।

विवेचन—जितने समय तक विवक्षित गति में किसी भी जीव का जन्म न हो, उतने समय को विरह या अन्तरकाल कहते हैं। यदि नरक में कोई जीव उत्पन्न न हो, तो कम से कम एक समय तक नहीं उत्पन्न होगा। यह जघन्य विरहकाल है। अधिक से अधिक वारह मुहूर्त्त तक नरक में कोई जीव उत्पन्न नहीं होगा, यह उत्कृष्टकाल है। (वारह मुहूर्त्त के वाद कोई न कोई जीव नरक में उत्पन्न होता ही है।)

६१३—एवं तिरियगई मणुस्सगई देवगई।

इसी प्रकार तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति का भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए।

विवेचन—ऊपर जो उत्कृष्ट अन्तर या विरहकाल वारह मुहूर्त्त प्रतिपादन किया गया है, वह

सामान्य कथन है। विशेष कथन की अपेक्षा आगम में नरक की सातों ही पृथिवियों में नारकों का विरहकाल भिन्न-भिन्न बताया गया है। जैसा कि टीका में उद्‌धृत निम्न गाथा से स्पष्ट है—

चउवीसई मुहुत्ता सत्त अहोरत्त तह य पन्नरसा।
मासो य दो य चउरो छम्मासा विरहकालो त्ति ॥१॥

अर्थात्—उत्कृष्ट विरहकाल पहिली पृथिवी में चौवीस मुहूर्त्त, दूसरी में सात अहोरात्र, तीसरी में पन्द्रह अहोरात्र, चौथी में एक मास, पांचवीं में दो मास, छठी में चार मास और सातवीं पृथिवी में छह मास का होता है।

इसी प्रकार सभी भवनवासियों का उत्कृष्ट विरहकाल चौवीस मुहूर्त्त का है। पृथिवीकायिक आदि पांचों स्थावरकायिक जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है, अतः उनकी उत्पत्ति का विरहकाल नहीं है। द्वीन्द्रिय जीवों का विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का भी विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। गर्भज तिर्यंचों और मनुष्यों का विरहकाल बारह मुहूर्त्त है। सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का विरहकाल चौवीस मुहूर्त्त है। व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान कल्प के देवों का विरहकाल भी चौवीस मुहूर्त्त है। सनत्कुमार कल्प में देवों का विरहकाल नौ दिन और वीस मुहूर्त्त है। माहेन्द्रकल्प में देवों का विरहकाल बारह दिन और दश मुहूर्त्त हैं। ब्रह्मलोक में देवों का विरहकाल साढ़े बाईस रात-दिन है। लान्तक कल्प में देवों का विरहकाल पैंतालीस दिन-रात अर्थात् डेढ़ मास है। महाशुक्रकल्प में देवों का विरहकाल अस्सी दिन (दो मास बीस दिन) है। सहस्रारकल्प में देवों का विरहकाल सौ दिन (तीन माह दश दिन) है। आनत-प्राणत कल्प में देवों का विरहकाल संख्यात मास है। आरण-अच्युत कल्प में देवों का विरहकाल संख्यात वर्ष है। अधस्तन तीनों ग्रैवेयकों में विरहकाल संख्यात शत वर्ष है। मध्यम तीनों ग्रैवेयकों में विरहकाल संख्यात सहस्र वर्ष है। उपरिम तीनों ग्रैवेयकों में विरह काल संख्यात शत-सहस्र (लाख) वर्ष है। विजयादि चार अनुत्तर विमानों में विरहकाल असंख्यात वर्ष है और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान में विरहकाल पल्योपम के असंख्यातवें भाग-प्रमाण है।

६१४—सिद्धगई णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणयाए पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासे। एवं सिद्धिवज्जा उव्वट्टणा।

भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक विरहित रहती है ? अर्थात् कितने समय तक कोई भी जीव सिद्ध नहीं होता ?

गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से छह मास सिद्धि प्राप्त करने वालों से विरहित रहती है। अर्थात् सिद्धगति का विरहकाल छह मास है।

इसी प्रकार सिद्धगति को छोड़कर शेष सब जीवों की उद्वर्तना (मरण) का विरह भी जानना चाहिए।

विवेचन—विवक्षित गति को छोड़कर उससे बाहर निकलने को उद्वर्तना कहते हैं। सिद्धगति को प्राप्त जीव वहाँ से कभी भी नहीं निकलते हैं, अतः उनकी उद्वर्तना का निषेध किया गया है। शेष चारों ही गतियों से जीव अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर निकलते हैं और नवीन पर्याय को धारण करते हैं, अतः उन सबकी उद्वर्तना आगम में कही गई है। उसे आगम से जानना चाहिए।

६१५—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पन्नत्ता ? एवं उववायदंडओ भाणियव्वो उव्वट्टणादंडओ य ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथिवी के नारक कितने विरह-काल के बाद उपपात वाले कहे गये हैं ?

उक्त प्रश्न के उत्तर में यहाँ पर (प्रज्ञापनासूत्रोक्त) उपपात-दंडक कहना चाहिए । इसी प्रकार उद्वर्तना-दंडक भी कहना चाहिए ।

विवेचन—सूत्र में जिस उपपात-दण्डक के जानने की सूचना की है, वह इस प्रकार है—रत्नप्रभा पृथिवी के नारकी जीवों का उपपात-विरहकाल जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से चौवीस मुहूर्त्त है । शर्करा पृथिवी के नारकों का उत्कृष्ट उपपात-विरहकाल सात रात-दिन है । वालुका पृथिवी में नारकों का उत्कृष्ट विरहकाल अर्ध मास (१५ रात-दिन) है । पंकप्रभा पृथिवी में नारकों का उत्कृष्ट विरहकाल एक मास है । धूमप्रभा पृथिवी में नारकों का उत्कृष्ट विरहकाल दो मास है । तमःप्रभा पृथिवी में नारकों का उत्कृष्ट विरहकाल चार मास है । महातमःप्रभा पृथिवी में नारकों का उत्कृष्ट विरहकाल छह मास है ।

असुर कुमारों का उत्कृष्ट उपपात-विरहकाल चौवीस मुहूर्त्त है । इसी प्रकार शेप सभी भवनवासियों का जानना चाहिए । पृथिवीकायिक आदि पांचों एकेन्द्रिय जीवों का विरहकाल नहीं है, क्योंकि वे सदा ही उत्पन्न होते रहते हैं । द्वीन्द्रिय जीवों का विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का विरहकाल जानना चाहिए । गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों का विरहकाल वारह मुहूर्त्त है । सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का विरहकाल चौवीस मुहुर्त्त है । व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशानकल्प के देवों का विरहकाल भी चौवीस-चौवीस मुहूर्त्त है । सनत्कुमार देवों का विरहकाल नौ दिन और बीस मुहूर्त्त है । माहेन्द्र देवों का विरहकाल वारह दिन और दश मुहूर्त्त है । ब्रह्मलोक के देवों का विरहकाल साढ़े बाईस दिन-रात है । लान्तक देवों का विरहकाल पैंतालीस रात-दिन है । महाशुक्र देवों का विरहकाल अस्सी दिन है । सहस्रार देवों का विरह काल एक सौ दिन है । आनत देवों का विरहकाल संख्यात मास है । इसी प्रकार प्राणत देवों का भी जानना चाहिए । आरण और अच्युत देवों का विरह काल संख्यात वर्प है । अधस्तन ग्रैवेयक त्रिक के देवों का विरहकाल संख्यात शत वर्ष है । मध्यम ग्रैवेयक त्रिक के देवों का विरहकाल संख्यात सहस्र वर्ष है । उपरितन ग्रैवेयक त्रिक के देवों का विरहकाल संख्यात शतसहस्र वर्ष है । विजयादि चार अनुत्तर विमानों के देवों का विरहकाल असंख्यात वर्ष है और सर्वार्थसिद्ध देवों का विरहकाल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है । यह सब उपपात के विरह का काल है ।

विवक्षित नरक, स्वर्ग आदि से निकलने को अर्थात् उस पर्याय को छोड़कर अन्य पर्याय में जन्म लेने को उद्वर्तना कहते हैं । जिस गति का जितना विरहकाल बताया गया है, उस का उतना ही उद्वर्तनाकाल जानना चाहिए ।

६१६—नेरइया णं भंते ! जातिनामनिहत्ताउगं कति आगरिसेहिं पगरंति ? गोयमा ! सिय एक्केणं, सिय दोहिं, सिय तीहिं, सिय चउहिं, सिय पंचहिं, सिय छहिं, सिय सत्तहिं, सिय अट्ठहिं [आगरिसेहिं पगरंति] नो चेव णं नवहिं ।

एवं सेसाण वि आउगाणि जाव वेमाणिय त्ति।

भगवन् ! नारक जीव जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का कितने आकर्षों से बन्ध करते हैं ?

गौतम ! स्यात् (कदाचित्) एक आकर्ष से, स्यात् दो आकर्षों से, स्यात् तीन आकर्षों से, स्यात् चार आकर्षों से, स्यात् पांच आकर्षों से, स्यात् छह आकर्षों से, स्यात् सात आकर्षों से और स्यात् आठ आकर्षों से जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का बन्ध करते हैं। किन्तु नौ आकर्षों से बन्ध नहीं करते हैं।

इसी प्रकार शेष आयुष्क कर्मों का बन्ध जानना चाहिए। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिक कल्प तक सभी दंडकों में आयुबन्ध के आकर्ष जानना चाहिए।

विवेचन—सामान्यतया आकर्ष का अर्थ है—कर्मपुद्गलों का ग्रहण। किन्तु यहाँ जीव के आगामी भव की आयु के बंधने के अवसरों को आकर्षकाल कहा है। यह आकर्ष जीव के अध्यवसायों की तीव्रता और मन्दता पर निर्भर हैं। तीव्र अध्यवसाय हों तो एक ही बार में जीव आयु के दलिकों को ग्रहण कर लेता है। अध्यवसाय मन्द हों तो दो आकर्षों से, मन्दतर हों तो तीन से और मन्दतम अध्यवसाय हों तो चार-पांच-छह-सात या आठ आकर्षों से आयु का बन्ध होता है। इससे अधिक आकर्ष कदापि नहीं होते।

६१७—कइविहे णं भंते ! संघयणे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे संघयणे पन्नत्ते। तं जहा—वइरोसभनारायसंघयणे १, रिसभनारायसंघयणे २, नारायसंघयणे ३, अद्धनारायसंघयणे ४, कीलिया-संघयणे ५, छेवट्टसंघयणे ६।

भगवन् ! संहनन कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! संहनन छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—१. वज्रर्षभ नाराच संहनन, २. ऋषभ-नाराच संहनन, ३. नाराच संहनन, ४. अर्ध नाराच संहनन, ५. कीलिका संहनन और ६. सेवार्त संहनन।

विवेचन—शरीर के भीतर हड्डियों के बन्धन विशेष को संहनन कहते हैं। उसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र में बताये गये हैं। वज्र का अर्थ कीलिका है, ऋषभ का अर्थ पट्ट है और मर्कट स्थानीय दोनों पार्श्वों की हड्डी को नाराच कहते हैं। जिस शरीर की दोनों पार्श्ववर्ती हड्डियाँ पट्ट से बंधी हों और बीच में कीली लगी हुई हो, उसे वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं। जिस शरीर की हड्डियों में कीली न लगी हों, किन्तु दोनों पार्श्वों की हड्डियाँ पट्टे से बंधी हों, उसे ऋषभनाराच संहनन कहते हैं। जिस शरीर की हड्डियों पर पट्ट भी न हो उसे नाराच संहनन कहते हैं। जिस शरीर की हड्डियाँ एक ओर ही मर्कट बन्ध से युक्त हों, दूसरी ओर की नहीं हों, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं। जिस शरीर की हड्डियों में केवल कीली लगी हो उसे कीलिका संहनन कहते हैं। जिस शरीर की हड्डियाँ परस्पर मिली और चर्म से लिपटी हुई हों उसे सेवार्त संहनन कहते हैं। देवों और नारकी जीवों के शरीरों में हड्डियाँ नहीं होती हैं, अतः उनके संहनन का अभाव बताया गया है। मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव छहों संहनन वाले होते हैं। एकेन्द्रियादि शेष तिर्यंचों के संहननों का वर्णन आगे के सूत्र में किया है।

६१८—नेरइया णं भंते ! किंसंघयणी [पन्नत्ता] ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी । णेव अट्ठी णेव सिरा णेव ण्हारू । जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया अणाएज्जा असुभा अमणुण्णा अमणामा अमणाभिरामा, ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति ।

भगवन् ! नारक किस संहनन वाले कहे गये हैं ?

गौतम ! नारकों के छहों संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है । वे असंहननी होते हैं, क्योंकि उनके शरीर में हड्डी नहीं है, नहीं शिराएं (धमनियां) हैं और नहीं स्नायु (आंतें) हैं । वहाँ जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अनादेय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम और अमनोभिराम हैं, उनसे नारकों का शरीर संहनन-रहित ही वनता है ।

६१९—असुरकुमारा णं भंते ! किंसंघयणा पन्नत्ता ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी । णेवट्ठी नेव छिरा णेव ण्हारू । जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया [आएज्जा] मणुण्णा [सुभा] मणामा मणाभिरामा, ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति । एवं जाव थणियकुमाराणं ।

भगवन् ! असुरकुमार देव किस संहनन वाले कहे गये हैं ?

गौतम ! असुरकुमार देवों के छहों संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है । वे असंहननी होते हैं, क्योंकि उनके शरीर में हड्डी नहीं होती है, नहीं शिराएं होती हैं, और नहीं स्नायु होती हैं । जो पुगद्ल इष्ट, कान्त, प्रिय, [आदेय, शुभ] मनोज्ञ, मनाम, और मनोभिराम होते हैं, उनसे उनका शरीर संहनन-रहित ही परिणत होता है ।

इस प्रकार नागकुमारों से लेकर स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिए । अर्थात् उनके कोई संहनन नहीं होता ।

६२० - पुढवीकाइया णं भंते ! किंसंघयणी पन्नत्ता ? गोयमा ! छेवट्टसंघयणी पन्नत्ता । एवं जाव संमुच्छिम-पंचिंदियतिरिक्खजोणिय त्ति । गब्भवक्कंतिया छव्विहसंघयणी । संमुच्छिममणुस्सा छेवट्टसंघयणी । गब्भवक्कंतियमणुस्सा छव्विहसंघयणी । जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया य ।

भगवन् ! पृथिवीकायिक जीव किस संहनन वाले कहे गये हैं ?

गौतम ! पृथिवीकायिक जीव सेवार्तसंहनन वाले कहे गये हैं ।

इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक तक के सब जीव सेवार्त संहननवाले होते हैं । गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहों प्रकार के संहननवाले होते हैं । सम्मूर्च्छिम मनुष्य सेवार्त संहनन वाले होते हैं । गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहों प्रकार के संहननवाले होते हैं ।

जिस प्रकार असुरकुमार देव संहनन-रहित हैं, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी संहनन-रहित होते हैं ।

६२१—कइविहे णं भंते ! संठाणे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे संठाणे पन्नत्ते । तं जहा— समचउरंसे १, णिग्गोहपरिमंडले २, साइए ३, वामणे ४, खुज्जे ५, हुंडे ६ ।

भगवन् ! संस्थान कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! संस्थान छह प्रकार का है—१. समचतुरस्रसंस्थान, २. न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, ३. सादि या स्वातिसंस्थान, ४. वामनसंस्थान, ५. कुब्जकसंस्थान, ६. हुंडकसंस्थान ।

विवेचन—शरीर के आकार को संस्थान कहते हैं । जिस शरीर के अंग और उपांग न्यूनता और अधिकता से रहित शास्त्रोक्त मान-उन्मान-प्रमाण वाले होते हैं, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं । जिस शरीर में नाभि से ऊपर के अवयव तो शरीर-शास्त्र के अनुसार ठीक ठीक प्रमाणवाले हों किन्तु नाभि से नीचे के अवयव हीन प्रमाण वाले हों, उसे न्यग्रोधसंस्थान कहते हैं । जिस शरीर में नाभि से नीचे के अवयव तो शरीर-शास्त्र के अनुरूप हों, किन्तु नाभि से ऊपर के अवयव उसके प्रतिकूल हों, उसे सादिसंस्थान कहते हैं । जिस शरीर के अवयव लक्षणयुक्त होते हुए भी विकृत और छोटे हों, तथा मध्यभाग में पीठ या छाती की ओर कूबड़ निकली हो, उसे कुब्जकसंस्थान कहते हैं । जिस शरीर में सभी अंग लक्षणशास्त्र के अनुरूप हों, पर शरीर बौना हो, उसे वामनसंस्थान कहते हैं । जिस शरीर में हाथ पैर आदि सभी अवयव शरीर-शास्त्र के प्रमाण से विपरीत हों उसे हुण्डसंस्थान कहते हैं । सभी नारकी जीव हुण्डसंस्थान वाले और सभी देव समचतुरस्र संस्थानवाले कहे गये हैं । शेष मनुष्य और तिर्यंच छहों संस्थान वाले होते हैं ।

६२२—णेरइया णं भंते ! किंसंठाणी पन्नत्ता । गोयमा ! हुंडसंठाणी पन्नत्ता । असुरकुमारा किंसंठाणी पन्नत्ता ? गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिया पन्नत्ता । एवं जाव थणियकुमारा ।

भगवन् ! नारकी जीव किस संस्थानवाले कहे गये हैं ?
गौतम ! नारक जीव हुंडकसंस्थान वाले कहे गये हैं ।
भगवन् ! असुरकुमार देव किस संस्थानवाले होते हैं ?
गौतम ! असुरकमार देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं ।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं ।

६२३—पुढवी मसूरसंठाणा पन्नत्ता । आऊ थिबुयसंठाणा पन्नत्ता । तेऊ सूईकलावसंठाणा पण्णत्ता । वाऊ पडागासंठाणा पन्नत्ता । वणस्सई नाणासंठाणसंठिया पन्नत्ता ।

पृथिवीकायिक जीव मसूरसंस्थान वाले कहे गये हैं । अप्कायिक जीव स्तिबुक (विन्दु) संस्थानवाले कहे गये हैं । तेजस्कायिक जीव सूचीकलाप संस्थानवाले (सुइयों के पुंज के समान आकार वाले) कहे गये हैं । वायुकायिक जीव पताका-(ध्वजा-) संस्थानवाले कहे गये हैं । वनस्पति कायिक जीव नाना प्रकार के संस्थानवाले कहे गये हैं ।

६२४—बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-सम्मुच्छिम-पंचेंदियतिरिक्खा हुंडसंठाणा पन्नत्ता । गब्भवक्कंतिया छव्विहसंठाणा [पन्नत्ता] । संमुच्छिममणुस्सा हुंडसंठाणसंठिया पन्नत्ता । गब्भवक्कंतियाणं मणुस्साणं छव्विहा संठाणा पन्नत्ता । जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया वि ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यंच जीव हुंडक संस्थानवाले और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहों संस्थानवाले कहे गये हैं । सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुंडक संस्थानवाले तथा गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहों संस्थानवाले कहे गये हैं ।

जिस प्रकार असुरकुमार देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी समचतुरस्र संस्थानवाले होते हैं।

६२५—कइविहे णं भंते ! वेए पन्नत्ते ? गोयमा ! तिविहे वेए पन्नत्ते। तं जहा—इत्थीवेए पुरिसवेए नपुंसवेए।

भगवन् ! वेद कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! वेद तीन हैं—स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद।

६२६—नेरइया णं भंते ! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया पन्नत्ता ? गोयमा ! णो इत्थीवेया, णो पुंवेया, णपुंसगवेया पण्णत्ता।

भगवन् ! नारक जीव क्या स्त्री वेदवाले हैं, अथवा नपुंसक वेदवाले हैं ?

गौतम ! नारक जीव न स्त्री वेदवाले हैं, न पुरुपवेद वाले हैं, किन्तु नपुंसक वेदवाले होते हैं।

६२७—असुरकुमारा णं भंते ! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया ? गोयमा ! इत्थीवेया, पुरिसवेया। णो णपुंसगवेया। जाव थणियकुमारा।

भगवन् ! असुरकुमार देव स्त्रीवेदवाले हैं, पुरुपवेद वाले हैं, अथवा नपुंसक वेदवाले हैं ?

गौतम ! असुरकुमार देव स्त्री वेदवाले हैं, पुरुप वेद वाले हैं, किन्तु नपुंसक वेदवाले नहीं होते हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिए।

६२८—पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सई वि-ति-चउरिंदिय-संमुच्छिमपंचिदियतिरिक्ख-संमुच्छिममणुस्सा णपुंसगवेया। गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचिंदियतिरिया य तिवेया। जहा असुर-कुमारा, तहा वाणमंतरा जोइसिय-वेमाणिया वि।

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रिय तिर्यच और सम्मूर्च्छिम मनुष्य नपुंसक वेदवाले होते हैं। गर्भोप-क्रान्तिक मनुष्य और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच तीनों वेदों वाले होते हैं।

जैसे—असुकुमार देव स्त्री वेद और पुरुष वेदवाले होते हैं, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क वैमानिक देव भी स्त्रीवेद और पुरुष वेद वाले होते हैं।

[विशेष बात यह है कि ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देव, तथा लौकान्तिक देव केवल पुरुष वेदी होते हैं।]

अतीत-अनागतकालिक महापुरुष

६२९—तेणं कालेणं तेणं समएणं कप्पस्स समोसरणं णेयव्वं जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा।

उस दुःषम-सुषमा काल में और उस विशिष्ट समय में [जब भगवान् महावीर धर्मोपदेश करते हुए विहार कर रहे थे, तब] कल्पभाष्य के अनुसार समवसरण का वर्णन वहाँ तक करना चाहिए, जब तक कि सापत्य (शिष्य-सन्तान-युक्त) सुधर्मास्वामी और निरपत्य (शिष्य-सन्तान-रहित शेष सभी) गणधर देव व्युच्छिन्न हो गये, अर्थात् सिद्ध हो गये।

६३०—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था। तं जहा—

मित्तदामे सुदामे य सुपासे य सयंपभे।
विमलघोसे सुघोसे य महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अतीतकाल की उत्सर्पिणी में सात कुलकर उत्पन्न हुए थे। जैसे—

१. मित्रदाम, २. सुदाम, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयम्प्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष और ७. महाघोष ॥ १ ॥

६३१—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए ओसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था। तं जहा—

सयंजले सयाऊ य अजियसेणे अणंतसेणे य।
कज्जसेणे भीमसेणे महाभीमसेणे य सत्तमे ॥२॥
दढरहे दसरहे सयरहे।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अतीतकाल की अवसर्पिणी में दश कुलकर हुए थे। जैसे—

१. शतंजल, २, शतायु, ३. अजितसेन, ४. अनन्तसेन, ५. कार्यसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढ़रथ, ९. दशरथ और १०. शतरथ ॥ २ ॥

६३२—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए सत्त कुलगरा होत्था। तं जहा—

पढमेत्थ विमलवाहण [चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे।
तत्तो पसेणइए मरुदेवे चेव नाभी य ॥३॥]

एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराण सत्त भारिआ होत्था। तं जहा—

चंदजसा चंदकंता [सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य।
सिरिकंता मरुदेवी कुलगरपत्तीण णामाइं ॥४॥]

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल में सात कुलकर हुए । जैसे—

१. विमलवाहन, २. चक्षुष्मान्, ३. यशष्मान्, ४. अभिचन्द्र, ५. प्रसेनजित, ६. मरुदेव ७. नाभिराय ।। ३ ।।

इन सातों ही कुलकरों की सात भार्याएं थीं । जैसे—

१. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकान्ता, ३. सुरूपा, ४, प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्कान्ता, ६. श्रीकान्ता और मरुदेवी । ये कुलकरों की पत्नियों के नाम हैं ।। ४ ।।

६३३—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं पियरो होत्था । तं जहा—

णाभी य जियसत्तू य [जियारी संवरे इय ।
मेहे धरे पइट्ठे य महसेणे य खत्तिए ।।५।।
सुग्गीवे दढरहे विण्हू वसुपुज्जे य खत्तिए ।
कयवम्मा सीहसेणे भाणू विस्ससणे इय ।।६।।
सूरे सुदंसणे कुंभे सुमित्तविजए समुद्दविजये य ।
राया य आससेणे य सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए ।।७।।]
उदितोदिय कुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं एए पियरो जिणवराणं ।।८।।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस पिता हुए । जैसे—

१. नाभिराय, २. जितशत्रु, ३. जितारि, ४. संवर, ५. मेघ, ६. धर, ७. प्रतिष्ठ, ८. महासेन ९. सुग्रीव, १०. दृढ़रथ, ११. विष्णु, १२. वसुपूज्य, १३. कृतवर्मा, १४. सिंहसेन, १५. भानु, १६. विश्वसेन, १७. सूरसेन, १८. सुदर्शन, १९. कुम्भराज, २०. सुमित्र, २१. विजय, २२. समुद्रविजय, २३. अश्वसेन और २४ सिद्धार्थ क्षत्रिय ।।५-७।। तीर्थ के प्रवर्तक जिनवरों के ये पिता उच्च कुल और उच्च विशुद्ध वंश वाले तथा उत्तम गुणों से संयुक्त थे ।।८।।

६३४—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं मायरो होत्था । तं जहा—

मरुदेवी विजया सेणा [सिद्धत्था मंगला सुसीमा य ।
पुहवी लक्खणा रामा नंदा विण्हू जया सामा ।।९।।
सुजसा सुव्वय अइरा सिरिया देवी पभावई पउमा ।
वप्पा सिवा य वामा य तिसलादेवी य जिणमाया ।।१०।।]

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस माताएं हुई हैं । जैसे—

१. मरुदेवी, २. विजया, ३. सेना, ४. सिद्धार्था, ५, मंगला, ६. सुसीमा, ७. पृथिवी, ८. लक्ष्मणा, ९. रामा, १०, नन्दा, ११. विष्णु, १२. जया, १३. श्यामा, १४. सुयशा, १५. सुव्रता,

१६. अचिरा, १७. श्री, १८. देवी १९. प्रभावती, २०. पद्मा, २१. वप्रा, २२. शिवा, २३. वामा और २४. त्रिशला देवी । ये चौवीस जिन-माताएं हैं ।। ९-१० ।।

६३५—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था । तं जहा—उसभे १, अजिये २, संभवे ३, अभिणंदणे ४, सुमई ५, पउमप्पहे ६, सुपासे ७, चंदप्पभे ८, सुविहि-पुप्फदंते ९, सीयले १०, सिज्जंसे ११, वासुपुज्जे १२, विमले १३, अणंते १४, धम्मे १५, संती १६, कुंथू १७, अरे १८, मल्ली १९, मुणिसुव्वए २०, णमी २१, णेमी २२, पासे २३, वड्ढमाणो २४ य ।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकर हुए । जैसे—१. ऋषभ, २. अजित, ३. संभव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि-पुष्पदन्त, १०. शीतल, ११. श्रेयान्स, १२ वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शान्ति, १७. कुन्थु, १८ अर, १९. मल्ली, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. नेमि २३. पार्श्व और २४. वर्धमान ।

६३६—एएसिं चउवीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पुव्वभवया णामधेया होत्था । तं जहा—

पढमेत्थ वइरणाभे विमले तह विमलवाहणे चेव ।
तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह धम्ममित्ते य ।।११।।
सुंदरबाहु तह दीहबाहु जुगबाहू लट्ठबाहू य ।
दिण्णे य इंददत्ते सुंदर माहिंदरे चेव ।।१२।।
सीहरहे मेहरहे रुप्पी अ सुदंसणे य बोद्धव्वे ।
तत्तो य णंदणे खलु सीहगिरी चेव वीसइमे ।।१३।।
अदीणसत्तु संखे सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे ।
[इमीसे] ओसप्पिणीए एए तित्थकराणं तु पुव्वभवा ।।१४।।

इन चौवीस तीर्थंकरों के पूर्वभव के चौवीस नाम थे । जैसे—

१. उनमें प्रथम नाम वज्रनाभ, २. विमल, ३. विमलवाहन, ४. धर्मसिंह, ५. सुमित्र, ६. धर्ममित्र, ७. सुन्दरबाहु, ८. दीर्घबाहु, ९. युगबाहु, १०. लष्ठबाहु, ११. दत्त, १२. इन्द्रदत्त, १३. सुन्दर, १४. माहेन्द्र, १५. सिंहरथ, १६. मेघरथ, १७. रुक्मी, १८. सुदर्शन, १९. नन्दन २०. सिंहगिरि, २१. अदीनशत्रु, २२. शंख, २३. सुदर्शन और २४ नन्दन । ये इसी अवसर्पिणी के तीर्थंकरों के पूर्वभव के नाम जानना चाहिए ।। ११-१४ ।।

६३७—एएसिं चउव्वीसाए तित्थकराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था । तं जहा—

सीया सुदंसणा[1] सुप्पभा[2] य सिद्धाथ[3] सुप्पसिद्धा[4] य ।
विजया[5] य वेजयंती[6] जयंती[7] अपराजिआ[8] चेव ।।१५।।
अरुणप्पभ[9] चंदप्पभ[10] सूरप्पह[11] अग्गि[12] सुप्पभा[13] चेव ।
विमला[14] य पंचवण्णा[15] सागरदत्ता[16] णागदत्ता[17] य ।।१६।।
अभयकर[18] णिव्वुइकरा[19] मणोरमा[20] तह मणोहरा[21] चेव ।
देवकुरू[22] उत्तरकुरा[23] विसाल चंदप्पभा[24] सीया ।।१७।।

एयाओ सीआओ सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं।
सव्वजगवच्छलाणं सव्वोउयसुभाए छायाए ॥१८॥

इन चौबीस तीर्थंकरों की चौवीस शिविकाएं (पालकियां) थीं। (जिन पर विराजमान होकर तीर्थंकर प्रव्रज्या के लिए वन में गए।) जैसे—

१. सुदर्शना शिविका, २. सुप्रभा, ३. सिद्धार्था, ४. सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९. अरुणप्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्निप्रभा, १३. सुप्रभा, १४. विमला, १५. पंचवर्णा, १६. सागरदत्ता, १७. नागदत्ता, १८. अभयकरा, १९. निर्वृतिकरा, २०. मनोरमा, २१. मनोहरा, २२. देवकुरा, २३. उत्तरकुरा और २४. चन्द्रप्रभा। ये सभी शिविकाएं विशाल थीं ॥ १५-१७ ॥ सर्वजगत्-वत्सल सभी जिनवरेन्द्रों की ये शिविकाएं सर्व ऋतुओं में सुख-दायिनी उत्तम और शुभ कान्ति से युक्त होती हैं ॥ १८ ॥

६३८—पुव्विं ओक्खित्ता माणुसेहिं सा हट्टु (ट्ठ) रोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं असुरिंद-सुरिंद-नागिंदा ॥१९॥
चल-चवल-कुंडलधरा सच्छंदविउव्वियाभरणधारी।
सुर-असुर-वंदिआणं वहंति सीअं जिणिंदाणं ॥२०॥
पुरओ वहंति देवा नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि।
पच्चच्छिमेण असुरा गरुला पुण उत्तरे पासे ॥२१॥

जिन-दीक्षा-ग्रहण करने के लिए जाते समय तीर्थंकरों की इन शिविकाओं को सबसे पहिले हर्ष से रोमाञ्चित मनुष्य अपने कन्धों पर उठाकर ले जाते हैं। पीछे असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उन शिविकाओं को लेकर चलते हैं ॥ १९ ॥ चंचल चपल कुण्डलों के धारक और अपनी इच्छानुसार विक्रियामय आभूषणों को धारण करनेवाले वे देवगण सुर-असुरों से वन्दित जिनेन्द्रों की शिविकाओं को वहन करते हैं ॥ २० ॥ इन शिविकाओं को पूर्व की ओर [वैमानिक] देव, दक्षिण पार्श्व में नागकुमार, पश्चिम पार्श्व में असुरकुमार और उत्तर पार्श्व में गरुड़कुमार देव वहन करते हैं ॥ २१ ॥

६३९—उसभो य विणीयाए बारवईए अरिट्ठवरणेमी।
अवसेसा तित्थयरा निक्खंता जम्मभूमीसु ॥२२॥

ऋषभदेव विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि द्वारावती से और शेष सर्व तीर्थंकर अपनी-अपनी जन्मभूमियों से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए निकले थे ॥ २२ ॥

६४०—सव्वे वि एगदूसेण [णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं।
ण य णाम अण्णलिंगे ण य गिहिलिंगे कुलिंगे व ॥२३॥]

सभी चौबीसों जिनवर एक दूष्य (इन्द्र-समर्पित दिव्य वस्त्र) से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए निकले थे। न कोई अन्य पाखंडी लिंग से दीक्षित हुआ, न गृहिलिंग से और न कुलिंग से दीक्षित हुआ। (किन्तु सभी जिन-लिंग से ही दीक्षित हुए थे।)

६४१—एक्को भगवं वीरो [पासो मल्ली य तिहि तिहि सएहिं ।
भगवं पि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ॥२४॥]
उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं [च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो सेसा उ सहस्स-परिवारा ॥२५॥]

दीक्षा-ग्रहण करने के लिए भगवान् महावीर अकेले ही घर से निकले थे । पार्श्वनाथ और मल्ली जिन तीन-तीन सौ पुरुषों के साथ निकले । तथा भगवान् वासुपूज्य छह सौ पुरुषों के साथ निकले थे ॥२४॥ भगवान् ऋषभदेव चार हजार उग्र, भोग राजन्य और क्षत्रिय जनों के परिवार के साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिए घर से निकले थे । शेष उन्नीस तीर्थंकर एक-एक हजार पुरुषों के साथ निकले थे ॥२५॥

६४२—सुमइत्थ णिच्चभत्तेण [णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं ।
पासो मल्ली य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥२६॥]

सुमति देव नित्य भक्त के साथ, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त के साथ, पार्श्व और मल्ली अष्टमभक्त के साथ और शेष बीस तीर्थंकर षष्ठभक्त के नियम के साथ दीक्षित हुए थे ॥२६॥

६४३—एएसि णं चउवीसाए तित्थगराण चउव्वीसं पढमभिक्खादायारो होत्था । तं जहा—
सिज्जंस बंभदत्ते सुरिंददत्ते य इंददत्ते य ।
पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह य सोमदत्ते य ॥२७॥
पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद सुणंदे जये य विजये य ।
तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे अ ॥२८॥
अवराजिय विस्ससेणे वीसइमे होइ उसभसेणे य ।
दिण्णे वरदत्ते धणे बहुले य आणुपुव्वीए ॥२९॥
एए विसुद्धलेसा जिणवरभत्तीइ पंजलिउडा उ ।
तं कालं तं समयं पडिलाभेई जिणवरिंदे ॥३०॥

इन चौबीसों तीर्थंकरों को प्रथम बार भिक्षा देने वाले चौबीस महापुरुष हुए हैं । जैसे—

१ श्रेयान्स, २ ब्रह्मदत्त, ३ सुरेन्द्रदत्त, ४ इन्द्रदत्त, ५ पद्म, ६ सोमदेव, ७ माहेन्द्र, ८ सोमदत्त, ९ पुष्य, १० पुनर्वसु, ११ पूर्णनन्द, १२ सुनन्द, १३ जय, १४ विजय, १५ धर्मसिंह, १६ सुमित्र, १७ वर्ग (वग्ग)सिंह, १८ अपराजित, १९ विश्वसेन, २० वृषभसेन, २१ दत्त, २२ वरदत्त, २१ धनदत्त और २४ बहुल, ये क्रम से चौबीस तीर्थंकरों के पहिली बार आहारदान करने वाले जानना चाहिए । इन सभी विशुद्ध लेश्यावाले और जिनवरों की भक्ति से प्रेरित होकर अंजलिपुट से उस काल और उस समय में जिनवरेन्द्र तीर्थंकरों को आहार का प्रतिलाभ कराया ॥२७-३०॥

६४४—संवच्छरेण भिक्खा [लद्धा उसभेण लोगणाहेण ।
सेसेहि बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥३१॥]

लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव को एक वर्ष के बाद प्रथम भिक्षा प्राप्त हुई । शेष सब तीर्थंकरों को प्रथम भिक्षा दूसरे दिन प्राप्त हुई ॥३१॥

विवेचन—शेष तीर्थंकरों के दूसरे दिन भिक्षा-प्राप्त करने के उल्लेख का यह अर्थ है कि जो जितने भक्त के नियम के साथ दीक्षित हुए, उसके दूसरे दिन उन्हें भिक्षा प्राप्त हुई ।

६४५—उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगणाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं अमियरसरसोवमं आसि ।।३२।।]
सव्वेसिं पि जिणाणं जहियं लद्धाउ पढमभिक्खाउ ।
तहियं वसुधाराओ सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ।।३३।।

लोकनाथ ऋषभदेव को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस प्राप्त हुआ । शेष सभी तीर्थंकरों को प्रथम भिक्षा में अमृत-रस के समान परम-अन्न (खीर) प्राप्त हुआ ।।३२।। सभी तीर्थंकर जिनों ने जहाँ जहाँ प्रथम भिक्षा प्राप्त की, वहाँ वहाँ शरीरप्रमाण ऊंची वसुधारा की वर्षा हुई ।।३३।।

६४६—एएसिं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था । तं जहा—
णग्गोह सत्तिवण्णे साले पियए पियंगु छत्ताहे ।
सिरिसे य णागरुक्खे साली य पिलंखुरुक्खे य ।।३४।।
तिंदुग पाडल जंबू आसत्थे खलु तहेव दहिवण्णे ।
णंदीरुक्खे तिलए अंबयरुक्खे य असोगे य ।।३५।।
चंपय वउले य तहा वेडसरुक्खे य धायईरुक्खे ।
साले य वद्धमाणस्स चेइयरुक्खा जिणवराणं ।।३६।।

इन चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस चैत्यवृक्ष थे । जैसे—

१. न्यग्रोध (वट) २. सप्तपर्ण, ३. शाल, ४. प्रियाल, ५. प्रियंगु, ६. छत्राह, ७. शिरीष, ८. नागवृक्ष, ९. साली, १०. पिलंखुवृक्ष, ११. तिन्दुक, १२, पाटल, १३. जम्बु १४. अश्वत्थ (पीपल) १५. दधिपर्ण, १६. नन्दीवृक्ष, १७. तिलक, १८. आम्रवृक्ष, १९. अशोक, २०. चम्पक. २१. वकुल, २२. वेत्रसवृक्ष, २३. धातकीवृक्ष और २४ वर्धमान का शालवृक्ष । ये चौवीस तीर्थकरों के चैत्यवृक्ष हैं ।।३४-३६।।

६४७—बत्तीसं धणुयाइं चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स ।
णिच्चोउगो असोगे ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ।।३७।।
तिण्णेव गाउआइं चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा सरीरओ वारसगुणा उ ।।३८।।
सच्छत्ता सपडागा सवेइया तोरणेहिं उववेया ।
सुर-असुर-गरुलमहिआ चेइयरुक्खा जिणवराणं ।।३९।।

वर्धमान भगवान् का चैत्यवृक्ष वत्तीस धनुष ऊंचा था, वह नित्य-ऋतुक था अर्थात् प्रत्येक ऋतु में उसमें पत्र-पुष्प आदि समृद्धि विद्यमान रहती थी । अशोकवृक्ष सालवृक्ष से आच्छन्न (ढंका हुआ) था, ।।३७।। ऋषभ जिन का चैत्यवृक्ष तीन गव्यूति (कोश) ऊंचा था । शेष तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष उनके शरीर की ऊंचाई से बारह गुणे ऊंचे थे ।।३८।। जिनवरों के ये सभी चैत्यवृक्ष छत्र-युक्त, ध्वजा-

पताका-सहित, वेदिका-सहित. तोरणों से सुशोभित तथा सुरों, असुरों और गरुडदेवों से पूजित थे ॥३९॥

विवेचन—जिस वृक्ष के नीचे तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसे चैत्यवृक्ष कहते हैं। कुछ के मतानुसार तीर्थंकर जिस वृक्ष के नीचे जिन-दीक्षा-ग्रहण करते हैं, उसे चैत्यवृक्ष कहा जाता है। कुबेर समवसरण में तीर्थंकर के बैठने के स्थान पर उसी वृक्ष की स्थापना करता है और उसे ध्वजा-पताका, वेदिका और तोरण द्वारों से सुसज्जित करता है। समवसरण-स्थित इन वट, शाल आदि सभी वृक्षों को 'अशोकवृक्ष' कहा जाता है, क्योंकि इनकी छाया में पहुंचते ही शोक-सन्तप्त प्राणी का भी शोक दूर हो जाता है और वह अशोक (शोक-रहित) हो जाता है।

६४८—एएसि चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पढमसीसा होत्था। जहा—

पढमेत्थ उसभसेणे बीइए पुण होइ सीहसेणे य।
चारू य वज्जणाभे चमरे तह सुव्वय विदब्भे ॥४०॥
दिण्णे य वराहे पुण आणंदे गोथुभे सुहम्मे य।
मंदर जसे अरिट्ठे चक्काह सयंभु कुंभे य ॥४१॥
इंदे कुंभे य सुभे वरदत्ते दिण्ण इंदभूई य।
उदितोदित-कुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया ॥४२॥
तित्थप्पवत्तयाणं पढमा सिस्सा जिणवराणं।

इन चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस प्रथम शिष्य थे। जैसे—

१. ऋषभदेव के प्रथम शिष्य ऋषभसेन, और दूसरे अजित जिनके प्रथम शिष्य सिंहसेन थे। पुनः क्रम से ३. चारु, ४. वज्रनाभ, ५. चमर, ६. सुव्रत, ७. विदर्भ, ८. दत्त, ९. वराह, १०. आनन्द, ११. गोस्तुभ, १२. सुधर्म, १३. मन्दर, १४. यश, १५. अरिष्ट, १६. चक्ररथ, १७. स्वयम्भू, १८. कुम्भ १९. इन्द्र, २०. कुम्भ, २१. शुभ, २२. वरदत्त, २३. दत्त और २४ इन्द्रभूति प्रथम शिष्य हुए। ये सभी उत्तम उच्चकुल वाले, विशुद्धवंश वाले और गुणों से संयुक्त थे और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों के प्रथम शिष्य थे ॥४०-४२३॥

६४९—एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसिस्सणी होत्था। तं जहा—

बंभी य फग्गु सामा अजिया कासवी रई सोमा।
सुमणा वारुणि सुलसा धारणि धरणी य धरणिधरा ॥४३॥
पउमा सिवा सुई तह अंजुया भावियप्पा य।
रक्खी य बंधुवती पुप्फवती अज्जा अमिला य अहिया ॥४४॥
जक्खिणी पुप्फचूला य चंदणज्जा आहिया उ।
उदितोदियकुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया ॥४५॥
तित्थप्पवत्तयाणं पढमा सिस्सी जिणवराणं।

इन चौवीस तीर्थंकरों की चौवीस प्रथम शिष्याएं थीं। जैसे—

१. ब्राह्मी, २. फल्गु, ३. श्यामा, ४. अजिता, ५. काश्यपी, ६. रति, ७. सोमा, ८. सुमना,

९. वारुणी, १०. सुलसा, ११. धारिणी, १२. धरणी, १३. धरणिधरा, १४. पद्मा, १५. शिवा, १६. शुचि, १७. अंजुका, १८. भावितात्मा, १९. बन्धुमती, २०. पुष्पवती, २१. आर्या अमिला, २२. यशस्विनी, २३. पुष्पचूला और २४ आर्या चन्दना। ये सब उत्तम उन्नत कुलवाली, विशुद्धवाली, गुणों से संयुक्त थीं और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों की प्रथम शिष्याएं हुईं ॥४३-४५३॥

६५०—जंबुद्दीवे णं [दीवे] भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिपियरो होत्था। तं जहा—

उसभे सुमित्ते विजए समुद्दविजए य आससेणे य।
विस्ससेणे य सूरे सुदंसणे कत्तवीरिए चेव ॥४६॥
पउमुत्तरे महाहरी विजए राया तहेव य।
बंभे बारसमें उत्ते पिउनामा चक्कवट्टीणं ॥४७॥

इस जम्बूद्वीप के इसी भारत वर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में उत्पन्न हुए चक्रवर्तियों के बारह पिता थे। जैसे—

१. ऋषभजिन, २. सुमित्र, ३. विजय, ४. समुद्रविजय, ५. अश्वसेन, ६. विश्वसेन, ७. सूरसेन, ८. कार्तवीर्य, ९. पद्मोत्तर, १०. महाहरि, ११. विजय और १२. ब्रह्म। ये बारह चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम हैं ॥४६-४७॥

६५१—जंबुद्दीवे [णं दीवे] भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कट्टिमायरो होत्था। तं जहा—सुमंगला जसवती भद्दा सहदेवी अइरा सिरिदेवी तारा जाला मेरा वप्पा चुल्लिणि अपच्छिमा।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्तियों की बारह माताएं हुईं। जैसे—

१. सुमंगला, २. यशस्वती, ३. भद्रा, ४. सहदेवी, ५. अचिरा, ६. श्री, ७. देवी, ८. तारा, ९. ज्वाला, १०. मेरा, ११. वप्रा, और १२ बारहवी चुल्लिनी।

६५२—जंबुद्दीवे [णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] बारस चक्कवट्टी होत्था। तं जहा—

भरहो सगरो मघवं [सणंकुमारो य रायसद्दूलो।
संती कुंथू य अरो हवइ सुभूमो य कोरव्वो ॥४८॥
नवमो य महापउमो हरिसेणो चेव रायसद्दूलो।
जयनामो य नरवई बारसमो बंभदत्तो य ॥४९॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हुए। जैसे—

१. भरत, २. सगर, ३. मघवा ४. राजशार्दूल सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. कौरव-वंशी सुभूम, ९. महापद्म, १०. राजशार्दूल हरिषेण, ११. जय और १२. बारहवां नरपति ब्रह्मदत्त ॥ ४८-४९ ॥

६५३—एएसि बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस इत्थिरयणा होत्था । तं जहा—

पढमा होइ सुभद्दा भद्द सुणंदा जया य विजया य ।
किण्हसिरी सूरसिरी पउमसिरी वसुंधरा देवी ॥५०॥
लच्छिमई कुरुमई इत्थीरयणाण नामाइं ।

इन बारह चक्रवर्तियों के बारह स्त्रीरत्न थे । जैसे—

१. प्रथम सुभद्रा, २. भद्रा, ३. सुनन्दा, ४. जया, ५. विजया, ६. कृष्णश्री, ७. सूर्यश्री, ८. पद्मश्री, ९. वसुन्धरा, १०. देवी, ११. लक्ष्मीमती और १२. कुरुमती । ये स्त्रीरत्नों के नाम हैं ॥ (५०-५०½) ॥

६५४—जंबुद्दीवे [णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] नवबलदेव-नववासुदेव-पितरो होत्था । तं जहा—

पयावई य बंभो [सोमो रुद्दो सिवो महसिवो य ।
अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वसुदेवो ॥५१॥]

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के नौ पिता हुए । जैसे—

१. प्रजापति, २. ब्रह्म, ३. सोम, ४. रुद्र, ५. शिव, ६. महाशिव, ७. अग्निशिख, ८. दशरथ और ९. वसुदेव ॥ ५० ॥

६५५—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] णव वासुदेवमायरो होत्था । तं जहा—

मियावई उमा चेव पुहवी सीया य अम्मया ।
लच्छिमई सेसमई केकई देवई तहा ॥५२॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी-काल में नौ वासुदेवों की नौ माताएं हुईं । जैसे—

१. मृगावती, २. उमा, ३. पृथिवी, ४. सीता, ५. अमृता, ६. लक्ष्मीमती, ७. शेषमती, ८. केकयी और ९. देवकी ॥ ५२ ॥

६५६—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] णव बलदेवमायरो होत्था । तं जहा—

भद्दा तह सुभद्दा य सुप्पभा य सुदंसणा ।
विजया वेजयंती य जयंती अपराजिया ॥५३॥
णवमीया रोहिणी य बलदेवाण मायरो ।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में नौ बलदेवों की नौ माताएं हुईं । जैसे—

१. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता और ९. रोहिणी । ये नौ बलदेवों की माताएं थीं ॥ ५३ ॥

६५७—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] नव दसारमंडला होत्था। तं जहा—उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी छायंसी कंता सोमा सुभगा पियदंसणा सुरूवा सुहसीला सुहाभिगमा सव्वजणणयणकंता ओहबला अतिबला महाबला अनिहता अपराइया सत्तुमद्दणा रिपुसहस्समाणमहणा साणुक्कोसा अमच्छरा अचवला अचंडा मियमंजुलपलावहसिया गंभीरमधुर-पडिपुण्णसच्चवयणा अब्भुवगयवच्छला सरण्णा लक्खण-वंजणगुणोववेआ माणुम्माणपमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागार-कंत-पियदंसणा अमरिसणा पयंडदंडप्पभारा गंभीरदरिसणिज्जा तालद्धओव्विद्ध-गरुलकेऊ, महाधणुविकड्ढया महासत्तसाअरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा जुद्धकित्तिपुरिसा विउलकुलसमुब्भवा महारयणविहाडगा अद्धभरहसामी सोमा रायकुलवंसतिलया अजिया अजियरहा हल-मुसल-कणक-पाणी संख-चक्क-गय-सत्ति-नंदगधरा पवरुज्जल-सुक्कंत-विमल-गोत्थुभ-तिरीडधारी कुंडल-उज्जोइयाणणा पुंडरीयणयणा एकावलि-कण्ठलइयवच्छा सिरिवच्छ-सुलंछणा वरजसा सव्वोउयसुरभि-कुसुम-रचित-पलंब-सोभंत-कंत-विकसंत-विचित्तवर-मालरइय-वच्छा अट्ठसय-विभत्त-लक्खण-पसत्थ-सुंदर-विरइयंगमंगा मत्तगयवरिंद-ललिय-विक्कम-विलसियगई सारय-नवथणिय-महुर-गंभीर-कोंच-निग्घोस-दुंदुभिसरा कडिसुत्तग-नील-पीय-कोसेज्जवाससा पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसहा मरुयवसभकप्पा अब्भहियरायतेय-लच्छीए दिप्पमाणा नीलग-पीयगवसणा दुवे दुवे राम-केसवा भायरो होत्था। तं जहा—

इस जम्बूद्वीप में इस भारतवर्ष के इस अवसर्पिणीकाल में नौ दशारमंडल (बलदेव और वासुदेव समुदाय) हुए हैं। सूत्रकार उनका वर्णन करते हैं—

वे सभी बलदेव और वासुदेव उत्तम कुल में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ पुरुष थे, तीर्थंकरादि शलाका-पुरुषों के मध्यवर्ती होने से मध्यम पुरुष थे, अथवा तीर्थकरों के बल की अपेक्षा कम और सामान्य जनों के बल की अपेक्षा अधिक बलशाली होने से वे मध्यम पुरुष थे। अपने समय के पुरुषों के शौर्यादि गुणों की प्रधानता की अपेक्षा वे प्रधान पुरुष थे। मानसिक बल से सम्पन्न होने के कारण ओजस्वी थे। देदीप्यमान शरीरों के धारक होने से तेजस्वी थे। शारीरिक बल से संयुक्त होने के कारण वर्चस्वी थे, पराक्रम के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त करने से यशस्वी थे। शरीर की छाया (प्रभा) से युक्त होने के कारण वे छायावन्त थे। शरीर की कान्ति से युक्त होने से कान्त थे, चन्द्र के समान सौम्य मुद्रा के धारक थे, सर्वजनों के वल्लभ होने से वे सुभग या सौभाग्यशाली थे। नेत्रों को अति-प्रिय होने से वे प्रियदर्शन थे। समचतुरस्र संस्थान के धारक होने से वे सुरूप थे। शुभ स्वभाव होने से वे शुभशील थे। सुखपूर्वक सरलता से प्रत्येक जन उनसे मिल सकता था, अतः वे सुखाभिगम्य थे। सर्व जनों के नयनों के प्यारे थे। कभी नहीं थकनेवाले अविच्छिन्न प्रवाहयुक्त बलशाली होने से वे ओघबली थे, अपने समय के सभी पुरुषों के बल का अतिक्रमण करने से अतिबली थे, और महान् प्रशस्त या श्रेष्ठ बलशाली होने से वे महाबली थे। निरुपक्रम आयुष्य के धारक होने से अनिहत अर्थात् दूसरे के द्वारा होने वाले घात या मरण से रहित थे, अथवा मल्ल-युद्ध में कोई उनको पराजित नहीं कर सकता था, इसी कारण वे अपराजित थे। बड़े-बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने से वे शत्रु-मर्दन थे, सहस्रों शत्रुओं के मान का मथन करने वाले थे। आज्ञा या सेवा स्वीकार करने वालों पर द्रोह छोड़कर कृपा करने वाले थे। वे मात्सर्य-रहित थे, क्योंकि दूसरों के लेश मात्र भी गुणों के ग्राहक थे। मन वचन काय की स्थिर प्रवृत्ति के कारण वे अचपल (चपलता-रहित) थे। निष्कारण

प्रचण्ड क्रोध से रहित थे, परिमित मंजुल वचनालाप और मृदु हास्य से युक्त थे। गम्भीर, मधुर और परिपूर्ण सत्य वचन वोलते थे। अधीनता स्वीकार करने वालों पर वात्सल्य भाव रखते थे। शरण में आनेवाले के रक्षक थे। वज्र, स्वस्तिक, चक्र आदि लक्षणों से और तिल, मशा आदि व्यंजनों के गुणों से संयुक्त थे। शरीर के[1] मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थे, वे जन्म-जात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर के धारक थे। चन्द्र के सौम्य आकार वाले, कान्त और प्रियदर्शन थे। 'अमसृण' अर्थात् कर्त्तव्य-पालन में आलस्य-रहित थे अथवा 'अमर्षण' अर्थात् अपराध करनेवालों पर भी क्षमाशील थे। उद्दंड पुरुषों पर प्रचंड दंडनीति के धारक थे। गम्भीर और दर्शनीय थे। वलदेव ताल वृक्ष के चिह्नवाली ध्वजा के और वासुदेव गरुड के चिह्नवाली ध्वजा के धारक थे। वे दशार-मंडल कर्ण-पर्यन्त महाधनुषों को खींचनेवाले, महासत्त्व (वल) के सागर थे। रण-भूमि में उनके प्रहार का सामना करना अशक्य था। वे महान् धनुषों के धारक थे, पुरुषों में धीर-वीर थे, युद्धों में प्राप्त कीर्त्ति के धारक पुरुष थे, विशाल कुलों में उत्पन्न हुए थे, महारत्न वज्र (हीरा) को भी अंगूठे और तर्जनी दो अंगुलियों से चूर्ण कर देते थे। आधे भरत क्षेत्र के अर्थात् तीन खंड के स्वामी थे। सौम्यस्वभावी थे। राज-कुलों और राजवंशों के तिलक थे। अजित थे, (किसी से भी नहीं जीते जाते थे) और अजितरथ (अजेय रथ वाले) थे। वलदेव हल और मूशल रूप शस्त्रों के धारक थे, तथा वासुदेव शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शक्ति और नन्दकनामा खड्ग के धारक थे। प्रवर, उज्ज्वल, सुकान्त, विमल कौस्तुभ मणि युक्त मुकुट के धारी थे। उनका मुख कुण्डलों में लगे मणियों के प्रकाश से युक्त रहता था। कमल के समान नेत्र वाले थे। एकावली हार कंठ से लेकर वक्षःस्थल तक शोभित रहता था। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स के सुलक्षण से चिह्नित था। वे विश्व-विख्यात यश वाले थे। सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले, सुगन्धित पुष्पों से रची गई, लंवी, शोभायुक्त, कान्त, विकसित, पंचवर्णी श्रेष्ठ माला से उनका वक्षःस्थल सदा शोभायमान रहता था। उनके सुन्दर अंग-प्रत्यंग एक सौ आठ प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न थे। वे मद-मत्त गजराज के समान ललित, विक्रम और विलास-युक्त गति वाले थे। शरद ऋतु के नव-उदित मेघ के समान मधुर, गंभीर, क्रौंच पक्षी के निर्घोष और दुन्दुभि के समान स्वर वाले थे। वलदेव कटिसूत्र वाले नील कौशेयक वस्त्र से तथा वासुदेव कटिसूत्र वाले पीत कौशेयक वस्त्र से युक्त रहते थे (वलदेवों की कमर पर नीले रंग का और वासुदेवों की कमर पर पीले रंग का दुपट्टा वंधा रहता था)। वे प्रकृष्ट दीप्ति और तेज से युक्त थे, प्रवल वलशाली होने से वे मनुष्यों में सिंह के समान होने से नरसिंह, मनुष्यों के पति होने से नरपति, परम ऐश्वर्यशाली होने से नरेन्द्र, तथा सर्वश्रेष्ठ होने से नर-वृषभ कहलाते थे। अपने कार्य-भार का पूर्ण रूप से निर्वाह करने से वे मरुद्-वृषभकल्प अर्थात् देवराज की उपमा को धारण करते थे। अन्य राजा-महाराजाओं से अधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान थे। इस प्रकार नील-वसनवाले नौ राम (वलदेव) और नव पीत-वसनवाले केशव (वासुदेव) दोनों भाई-भाई हुए हैं।

---

१. जल से भरी द्रोणी (नाव) में बैठने पर उससे बाहर निकला जल यदि द्रोण (माप-विशेष) प्रमाण हो तो वह पुरुष 'मान-प्राप्त' कहलाता है। तुला (तराजू) पर बैठे पुरुष का वजन यदि अर्धभार प्रमाण हो तो वह उन्मान-प्राप्त कहलाता है। शरीर की ऊंचाई उसके अंगुल से यदि एक सौ आठ अंगुल हो तो वह प्रमाण-प्राप्त कहलाता है।

६५८—तिविट्ठे य [दुविट्ठे य सयंभू पुरिसुत्तमे पुरिससीहे ।
तह पुरिसपुंडरीए दत्ते नारायणे कण्हे ॥५४॥
अयले विजये भद्दे सुप्पभे य सुदंसणे ।
आनंदे नंदणे पउमे रामे यावि] अपच्छिमे ॥५५॥

उनमें वासुदेवों के नाम इस प्रकार हैं—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुषपुंडरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण) और ९ कृष्ण ॥५४॥

बलदेवों के नाम इस प्रकार हैं—१ अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ, ५ सुदर्शन, ६ आनन्द, ७ नन्दन, ८ पद्म और अन्तिम बलदेव राम ॥५५॥

६५९—एएसि णं णवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया नव नामधेज्जा होत्था । तं जहा—
विस्सभूई पव्वयए धणदत्त समुद्दत्त इसिवाले ।
पियमित्त ललियमित्ते पुणव्वसू गंगदत्ते य ॥५६॥
एयाइं नामाइं पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं ।
एत्तो बलदेवाणं जहक्कमं कित्तइस्सामि ॥५७॥
विसनन्दी य सुबन्धू सागरदत्ते असोगललिए य ।
वाराह धम्मसेणे अपराइय रायललिए य ॥५८॥

इन नव बलदेवों और वासुदेवों के पूर्व भव के नौ नाम इस प्रकार थे—

१ विश्वभूति, २ पर्वत, ३ धनदत्त, ४ समुद्रदत्त, ५ ऋषिपाल, ६ प्रियमित्र, ७ ललितमित्र, ८ पुनर्वसु ९ और गंगदत्त । ये वासुदेवों के पूर्व भव में नाम थे ।

इससे आगे यथाक्रम से बलदेवों के नाम कहूंगा ॥५६-५७॥

१ विश्वनन्दी, २ सुबन्धु, ३ सागरदत्त, ४ अशोक ५ ललित, ६ वाराह, ७ धर्मसेन, ८ अपराजित, और ९ राजललित ॥५८॥

६६०—एएसि नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया नव धम्मायरिया होत्था । तं जहा—
संभूय सुभद्द सुदंसणे य सेयंस कण्ह गंगदत्ते य ।
सागर समुद्दनामे दुमसेणे य णवमए ॥५९॥
एए धम्मायरिया कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे एयासि जत्थ नियाणाइं कासी य ॥६०॥

इन नव बलदेवों और वासुदेवों के पूर्वभव में नौ धर्माचार्य थे—

१ संभूत, २ सुभद्र, ३ सुदर्शन, ४ श्रेयान्स, ५ कृष्ण, ६ गंगदत्त, ७ सागर, ८ समुद्र और ९ द्रुमसेन ॥५९॥ ये नवों ही आचार्य कीर्त्तिपुरुष वासुदेवों के पूर्व भव में धर्माचार्य थे। जहाँ वासुदेवों ने पूर्व भव में निदान किया था उन नगरों के नाम आगे कहते हैं— ॥६०॥

६६१—एएसि नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव नियाणभूमीओ होत्था । तं जहा—
महुरा य [कणगवत्थू सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कायंदी कोसम्बी मिहिलपुरी] हत्थिणाउरं च ॥६१॥

इन नवों वासुदेवों की पूर्व भव में नौ निदान-भूमियाँ थीं। (जहाँ पर उन्होंने निदान (नियाणा) किया था।) जैसे—

१ मथुरा २ कनकवस्तु ३ श्रावस्ती, ४ पोदनपुर, ५ राजगृह, ६ काकन्दी, ७ कौशाम्वी, ८ मिथिलापुरी और ९ हस्तिनापुर ॥६१॥

६६२—एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव नियाणकारणा होत्था। तं जहा—

गावि जुवे [संगामे तह इत्थी पराइओ रंगे।
भज्जाणुराग गोट्ठी परइड्ढी माउआ इय ॥६२॥]

इन नवों वासुदेवों के निदान करने के नौ कारण थे—

१ गावी (गाय), २ यूपस्तम्भ ३ संग्राम, ४ स्त्री, ५ युद्ध में पराजय, ६ स्त्री-अनुराग ७ गोष्ठी, ८ पर-ऋद्धि और ९ मातृका (माता) ॥६३॥

६६३—एएसिं नवण्हं वासुदेवाणं नव पडिसत्तू होत्था। तं जहा—

अस्सग्गीवे [तारए मेरए महुकेढवे निसुंभे य।
वलिपहराए तह रावणे य नवमे] जरासंधे ॥६३॥
एए खलु पडिसत्तू [कित्ती पुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही सव्वे वि हया] सचक्केहिं ॥६४॥
एक्को य सत्तमीए पंच य छट्ठीए पंचमी एक्को।
एक्को य चउत्थीए कण्हो पुण तच्च पुढवीए ॥६५॥
अणिदाणकडा रामा [सव्वे वि य केसवा नियाणकडा।
उड्ढंगामी रामा केसव सव्वे अहोगामी ॥६६॥
अट्ठंतकडा रामा एगो पुण बंभलोयकप्पंमि।
एक्कस्स गब्भवसही सिज्झिस्सइ आगमिस्सेणं ॥६७॥

इन नवों वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) थे। जैसे—

१ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक, ४ मधु-कैटभ, निशुम्भ ६ वलि, ७ प्रभराज (प्रह्लाद), ८ रावण और ९ जरासन्ध ॥ ६३ ये कीर्त्तिपुरुष वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु थे। ये सभी चक्रयोधी थे और सभी अपने ही चक्रों से युद्ध में मारे गये ॥६४॥

उक्त नौ वासुदेवों में से एक मर कर सातवीं पृथिवी में, पांच वासुदेव छठी पृथिवी में, एक पांचवीं में, एक चौथी में और कृष्ण तीसरी पृथिवी में गये ॥६५॥

सभी राम (वलदेव) अनिदानकृत होते हैं और सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान करते हैं। सभी राम मरण कर ऊर्ध्वगामी होते हैं और सभी वासुदेव अधोगामी होते हैं ॥ ६६ ॥

आठ राम (वलदेव) अन्तकृत् अर्थात् कर्मों का क्षय करके संसार का अन्त करने वाले हुए। एक अन्तिम वलदेव ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए। जो आगामी भव में एक गर्भ-वास लेकर सिद्ध होंगे ॥ ६७ ॥

६६४—जंवुद्दीवे [णं दीवे] एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था। तं जहा—

चंदाणणं सुचंदं अग्गीसेणं च नंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं वयहारिं वंदिमो सोमचंदं च ।।६८।।
वंदामि जुत्तिसेणं अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं सययं निक्खित्तसत्थं च ।।६९।।
असंजलं जिणवसहं वंदे य अणंतयं अमियणाणि ।
उवसंतं च धुयरयं वंदे खलु गुत्तिसेणं च ।।७०।।
अतिपासं च सुपासं देवेसरवंदियं च मरुदेवं ।
निव्वाणगयं च धरं खीणदुहं सामकोट्ठं च ।।७१।।
जियरागमग्गिसेणं वंदे खीणरयमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसियपिज्जदोसं वारिसेणं गयं सिद्धिं ।।७२।।

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकर हुए हैं—

१. चन्द्र के समान मुख वाले सुचन्द्र, २. अग्निसेन, ३. नन्दिसेन, ४. व्रतधारी ऋषिदत्त और ५. सोमचन्द्र की मैं वन्दना करता हूं ।। ६७ ।। ८. युक्तिसेन, ७. अजितसेन, ८. शिवसेन, ९. वुद्ध, १०. देवशर्म, ११. निक्षिप्तशस्त्र (श्रेयान्स) की मैं सदा वन्दना करता हूं ।। ६९ ।। १२. असंज्वल, १३. जिनवृषभ और १३. अमितज्ञानी अनन्त जिन की मैं वन्दना करता हूँ । १५. कर्मरज-रहित उपशान्त और १६. गुप्तिसेन की भी मैं वन्दना करता हूं ।। ७० ।। १७. अति-पार्श्व, १८. सुपार्श्व, तथा १९. देवेश्वरों से वन्दित मरुदेव, २०. निर्वाण को प्राप्त धर और २१. प्रक्षीण दुःख वाले श्यामकोष्ठ, २२. रागविजेता अग्निसेन, २३. क्षीणरागी अग्निपुत्र और राग-द्वेष का क्षय करने वाले, सिद्धि को प्राप्त चौवीसवें वारिषेण की मैं वन्दना करता हूं (कहीं-कहीं नामों के क्रम में भिन्नता भी देखी जाती है ।) ।। ७१-७२ ।।

६६५—जंबुद्दीवे [णं दीवे] आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भारहे वासे सत्त कुलगरा भविस्संति । तं जहा—

मियवाहणे सुभूमे य सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य आगमिस्साण होक्खति ।।७३।।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर होंगे । जैसे—

१. मितवाहन, २. सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयम्प्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म और ७. सुवन्धु, ये आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे ।। ७३ ।।

६६६—जंबुद्दीवे णं दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए एरवए वासे दस कुलगरा भविस्संति । तं जहा—विमलवाहणे सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे दढधणू दसधणू सयधणू पडिसूई सुमइ त्ति ।

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में दश कुलकर होंगे १. विमल-वाहन, २. सीमंकर, ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढधनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति और १०. सुमति ।

६६७—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा भविस्संति। तं जहा—

महापउमे सूरदेवे सुपासे य सयंपभे।
सव्वाणुभूई अरहा देवस्सुए य होक्खइ ॥७४॥
उदए पेढालपुत्ते य पोट्टिले सत्तकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा सव्वभावविऊ जिणे ॥७५॥
अममे णिक्कसाए य निप्पुलाए य निम्ममे।
चित्तउत्ते समाही य आगमिस्सेण होक्खइ ॥७६॥
संवरे अणियट्टी य विजए विमले ति य।
देवोववाए अरहा अणंतविजए इ य ॥७७॥
एए वुत्ता चउव्वीसं भरहे वासम्मि केवली।
आगमिस्सेण होक्खंति धम्मतित्थस्स देसगा ॥७८॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकर होंगे। जैसे—
१. महापद्म, २. सूरदेव, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयम्प्रभ, ५. सर्वानुभूति, ६. देवश्रुत ७. उदय, ८. पेढालपुत्र, ९. प्रोष्ठिल, १०. शतकीर्त्ति, ११. मुनिसुव्रत, १२. सर्वभाववित्, १३. अमम, १४. निष्कषाय, १५. निष्पुलाक, १६. निर्मम, १७. चित्रगुप्त, १८. समाधिगुप्त, १९. संवर, २०. अनिवृत्ति, २१. विजय, २२. विमल, २३. देवोपपात और २४. अनन्तविजय। ये चौवीस तीर्थंकर भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में धर्मतीर्थ की देशना करने वाले होंगे ॥ ७४-७८ ॥

६६८—एएसि णं चउव्वीसाए तित्थकराणं पुव्वभविया चउव्वीसं नामधेज्जा भविस्संति (?) (होत्था।)

सेणिय सुपास उदए पोट्टिल्ल अणगार तह दढाऊ य।
कत्तिय संखे य तहा नंद सुनन्दे य सतए य ॥७९॥
बोधव्वा देवई य सच्चइ तह वासुदेव बलदेवे।
रोहिणि सुलसा चेव तत्तो खलु रेवई चेव ॥८०॥
तत्तो हवइ सयाली बोधव्वे खलु तहा भयाली य।
दीवायणे य कण्हे तत्तो खलु नारए चेव ॥८१॥
अंबड दारुमडे य साई बुद्धे य होइ बोद्धव्वे।
भावी तित्थगराणं णामाइं पुव्वभवियाइं ॥८२॥

इन भविष्यकालीन चौवीस तीर्थंकरों के पूर्व भव के चौवीस नाम इस प्रकार हैं—

१. श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदय, ४. प्रोष्ठिल अनगार, ५. दृढायु, ६. कार्तिक, ७. शंख, ८. नन्द, ९. सुनन्द, १०. शतक, ११. देवकी, १२. सात्यकि, १३. वासुदेव, १४. बलदेव, १५. रोहिणी, १६. सुलसा १७. रेवती, १८. शताली, १९. भयाली, २०. द्वीपायन, २१. नारद २२. अंबड, २३. स्वाति, २४. बुद्ध। ये भावी तीर्थंकरों के पूर्व भव के नाम जानना चाहिए ॥ ७९-८२ ॥

६६९—एएसि णं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पियरो भविस्संति, चउव्वीसं मायरो भविस्संति, चउव्वीसं पढमसीसा भविस्संति, चउव्वीसं पढमसिस्सणीओ भविस्संति, चउव्वीसं पढमभिक्खादायगा भविस्संति, चउव्वीसं चेइयरुक्खा भविस्संति।

उक्त चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस पिता होंगे, चौवीस माताएं होंगी, चौवीस प्रथम शिष्य होंगे, चौवीस प्रथम शिष्याएं होंगी, चौवीस प्रथम भिक्षा-दाता होंगे और चौवीस चैत्य वृक्ष होंगे।

६७०—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति। तं जहा—

भरहे य दीहदंते गूढदंते य सुद्धदंते य।
सिरिउत्ते सिरिभूई सिरिसोमे य सत्तमे ॥८३॥
पउमे य महापउमे विमलवाहणे [लेतह] विपुलवाहणे चेव।
रिट्ठे बारसमे वुत्ते आगमिस्सा भरहाहिवा ॥८४॥

इसी जम्वूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे। जैसे—

१. भरत, २. दीर्घदन्त, ३. गूढदन्त, ४. शुद्धदन्त, ५. श्रीपुत्र, ६. श्रीभूति, ७. श्रीसोम, ८. पद्म, ९. महापद्म, १०. विमलवाहन, ११. विपुलवाहन और बारहवाँ रिष्ट, ये बारह चक्रवर्ती आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के स्वामी होंगे ॥ ८३-८४ ॥

६७१—एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति।

इन बारह चक्रवर्त्तियों के बारह पिता, बारह माता और बारह स्त्रीरत्न होंगे।

६७२—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेव-पियरो भविस्संति, नव वासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति, नव दसारमंडला भविस्संति। तं जहा—उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी। एवं सो चेव वण्णओ भाणियव्वो जाव नीलगपीतगवसणा दुवे दुवे राम-केसवा भायरो भविस्संति। तं जहा—

नंदे य नंदमित्ते दीहबाहू तहा महाबाहू।
अइबले महाबले बलभद्दे य सत्तमे ॥८५॥
दुविट्ठू य तिवट्ठू य आगमिस्साण वण्हिणो।
जयंते विजए भद्दे सुप्पभे य सुदंसणे ॥८६॥
आणंदे नंदणे पउमे संकरिसणे अ अपच्छिमे।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के पिता होंगे, नौ वासुदेवों की माताएं होंगी, नौ बलदेवों की माताएं होंगी, नौ दशार-मंडल होंगे। वे उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष, ओजस्वी तेजस्वी आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त होंगे। पूर्व में जो दशार-मंडल का विस्तृत वर्णन किया है, वह सब यहाँ पर भी यावत् बलदेव नील वसनवाले और वासुदेव पीत वसनवाले होंगे, यहाँ तक ज्यों का त्यों कहना चाहिए। इस प्रकार भविष्यकाल में दो-दो राम और केशव भाई होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे—

१. नन्द, २. नन्दमित्र, ३. दीर्घबाहु, ४. महाबाहु, ५. अतिबल, ६. महाबल, ७. बलभद्र, ८. द्विपृष्ठ और ९. त्रिपृष्ठ ये नौ आगामी उत्सर्पिणी काल में नौ वृष्णी या वासुदेव होंगे। तथा १. जयन्त, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म, और अन्तिम संकर्षण ये ९ नौ बलदेव होंगे ॥ ८५-८६ ॥

६७३—एएसि णं नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया णव नामधेज्जा भविस्संति, णव धम्मायरिया भविस्संति, नव नियाणभूमीओ भविस्संति, नव नियाणकारणा भविस्संति, नव पडिसत्त भविस्संति। तं जहा—

तिलए य लोहजंघे वइरजंघे य केसरी पहराए।
अपराइए य भीमे महाभीमे य सुग्गीवे ॥८७॥
एए खलु पडिसत्तू कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही हम्मीहिंति सचक्केहिं ॥८८॥

इन नवों बलदेवों और वासुदेवों के पूर्वभव के नौ नाम होंगे, नौ धर्माचार्य होंगे, नौ निदान-भूमियाँ होंगी, नौ निदान-कारण होंगे और नौ प्रतिशत्रु होंगे। जैसे—

१. तिलक, २. लोहजंघ, ३. वज्रजंघ, ४. केशरी, ५. प्रभराज, ६. अपराजित, ७. भीम, ८. महाभीम, और ९. सुग्रीव। कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये नौ प्रतिशत्रु होंगे। सभी चक्रयोधी होंगे और युद्ध में अपने चक्रों से मारे जायेंगे ॥ ८७-८८ ॥

६७४—जंबुद्दीवे [णं दीवे] एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थकरा भविस्संति। तं जहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे णिव्वाणे य महाजसे।
धम्मज्झए य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥८९॥
सिरिचंदे पुप्फकेऊ महाचंदे य केवली।
सुयसागरे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९०॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य महाघोसे य केवली।
सच्चसेणे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९१॥
सूरसेणे य अरहा महासेणे य केवली।
सव्वाणंदे य अरहा देवउत्ते य होक्खई ॥९२॥
सुपासे सुव्वए अरहा अरहे य सुकोसले।
अरहा अणंतविजए आगमिस्साण होक्खइ ॥९३॥
विमले उत्तरे अरहा अरहा य महाबले।
देवाणंदे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९४॥
एए वुत्ता चउव्वीसं एरवयम्मि केवली।
आगमिस्साण होक्खंति धम्मतित्थस्स देसगा ॥९५॥

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकर होंगे। जैसे—

१. सुमंगल, २. सिद्धार्थ, ३. निर्वाण, ४. महायश, ५. धर्मध्वज, ये अरहन्त भगवन्त

आगामी काल में होंगे ।। ८९ ।। पुनः ६. श्रीचन्द्र, ७. पुष्पकेतु, ८. महाचन्द्र केवली और ९. श्रुतसागर अर्हन् होंगे ।। ९० ।। पुनः १०. सिद्धार्थ ११. पूर्णघोष, १२. महाघोष केवली और १३. सत्यसेन अर्हन् होंगे ।। ९१ ।। तत्पश्चात् १४. सूरसेन अर्हन् १५. महासेन केवली, १६. सर्वानन्द और १७. देवपुत्र अर्हन् होंगे ।। ९२ ।। तदनन्तर, १८. सुपार्श्व, १९. सुव्रत अर्हन्, २०. सुकोशल अर्हन्, और २१. अनन्तविजय अर्हन् आगामी काल में होंगे ।। ९३ ।। तदनन्तर, २२. विमल अर्हन्, उनके पश्चात् २३. महाबल अर्हन् और फिर २४. देवानन्द अर्हन् आगामी काल में होंगे ।। ९४ ।। ये ऊपर कहे हुए चौवीस तीर्थंकर केवली ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में धर्म-तीर्थ की देशना करने वाले होंगे ।। ९५ ।।

६७५—[जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए] बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, बारस चक्कवट्टिपियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति। नव बलदेव-वासुदेवपियरो भविस्संति, नव वासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति। नव दसारमंडला भविस्संति, उत्तिमा पुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा जाव दुवे दुवे राम-केसवा मायरो, भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, नव पुव्वभवनामधेज्जा, णव धम्मायरिया, णव णियाणभूमीओ, णव णियाणकारणा आयाए एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा।

[इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में] बारह चक्रवर्ती होंगे, बारह चक्रवर्तियों के पिता होंगे, उनकी बारह माताएं होंगी, उनके बारह स्त्रीरत्न होंगे। नौ बलदेव और वासुदेवों के पिता होंगे, नौ वासुदेवों की माताएं होंगी, नौ बलदेवों की माताएं होंगी। नौ दशार मंडल होंगे, जो उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष यावत् सर्वाधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान दो-दो राम-केशव (बलदेव-वासुदेव) भाई-भाई होंगे। उनके नौ प्रतिशत्रु होंगे, उनके नौ पूर्व भव के नाम होंगे, उनके नौ धर्माचार्य होंगे, उनकी नौ निदान-भूमियां होंगी, निदान के नौ कारण होंगे। इसी प्रकार से आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले बलदेवादि का मुक्ति-गमन, स्वर्ग से आगमन, मनुष्यों में उत्पत्ति और मुक्ति का भी कथन करना चाहिए।

६७६—एवं दोसु वि आगमिस्साए भाणियव्वा।

इसी प्रकार भरत और ऐरवत इन दोनों क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले वासुदेव आदि का कथन करना चाहिए।

६७७—इच्चेयं एवमाहिज्जति। तं जहा—कुलगरवंसेइ य, एवं तित्थगरवंसेइ य, चक्कवट्टि-वंसेइ य दसारवंसेइ वा गणधरवंसेइ य, इसिवंसेइ य, जइवंसेइ य, मुणिवंसेइ य, सुएइ वा, सुअंगेइ वा सुयसमासेइ वा, सुयखंधेइ वा समवाएइ वा, संखेइ वा समत्तमंगमक्खायं अज्झयणं ति बेमि।

इस प्रकार यह अधिकृत समवायाङ्ग सूत्र अनेक प्रकार के भावों और पदार्थों को वर्णन करने के रूप से कहा गया है। जैसे—इसमें कुलकरों के वंशों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार तीर्थंकरों के वंशों का, चक्रवर्तियों के वंशों का, दशार-मंडलों का, गणधरों के वंशों का, ऋषियों के वंशों का यतियों के वंशों का और मुनियों के वंशों का भी वर्णन किया गया है। परोक्षरूप से त्रिकालवर्ती समस्त अर्थों का परिज्ञान कराने से यह श्रुतज्ञान है, श्रुतरूप प्रवचन-पुरुष का अंग होने से यह

श्रुताङ्ग है, इसमें समस्त सूत्रों का अर्थ संक्षेप से कहा गया है, अतः यह श्रुतसमास है, श्रुत का समुदाय रूप वर्णन करने से यह 'श्रुतस्कन्ध' है, समस्त जीवादि पदार्थो का समुदायरूप कथन करने से यह 'समवाय' कहलाता है, एक दो तीन आदि की संख्या के रूप से संख्यान का वर्णन करने से यह 'संख्या' नाम से भी कहा जाता है। इसमें आचारादि अंगों के समान श्रुतस्कन्ध आदि का विभाग न होने से यह अंग 'समस्त' अर्थात् परिपूर्ण अंग कहलाता है। तथा इसमें उद्देश आदि का विभाग न होने से इसे 'अध्ययन' भी कहते हैं। इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को लक्ष्य करके कहते हैं कि इस अंग को भगवान् महावीर के समीप जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार से मैंने तुम्हें कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त तीर्थंकरादि के वंश से अभिप्राय उनकी परम्परा से है। ऋषि, यति आदि शब्द साधारणतः साधुओं के वाचक हैं, तो भी ऋद्धि-धारक साधुओं को ऋषि, उपशम या क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वालों को यति, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान वालों को मुनि और गृह-त्यागी सामान्य साधुओं को अनगार कहते हैं। संस्कृत टीका में गणधरों के सिवाय जिनेन्द्र के शेष शिष्यों को ऋषि कहा है। निरुक्ति के अनुसार कर्म-क्लेशों के निवारण करने वाले को ऋषि, आत्म-विद्या में मान्य ज्ञानियों को मुनि, पापों के नाश करने को उद्यत साधुओं को यति और देह में भी निःस्पृह को अनगार कहते हैं।[1]

यह समवायाङ्ग यद्यपि द्वादशाङ्गों में चौथा है, तथापि इसमें संक्षेप में सभी अंगों का वर्णन किया गया है, अतः इसका महत्त्व विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है।

॥ समवायाङ्ग सूत्र समाप्त ॥

---

१. रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।
मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ॥ ८२९ ॥
यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत्।
योऽनीहो देह-गेहेऽपि सोऽनगारः सतां मतः ॥ ८३० ॥ —(यशस्तिलकचम्पू)

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जितें, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहि महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. **गर्जित**—बादलों के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. **विद्युत**—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—विना वादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या वादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में विजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जव तक यक्षाकार दीखता रहे तव तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जव तक यह धुंध पड़ती रहे, तव तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जव तक यह गिरती रहे, तव तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जव तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्वन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्वन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पंचेद्रिय तिर्यंच की हड्डी मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जव तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तव तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्वन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। वालक एवं वालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि —मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ,मध्यम वारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, वारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

आगम प्रकाशन समिति, व्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, वैंगलोर
४. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
५. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री कंवरलालजी वेताला, गोहाटी
७. श्री पुखराजजी शिशोदिया, व्यावर
८. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
९. श्री गुलावचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दरावाद

स्तम्भ

१. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
२. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
३. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, वालाघाट
४. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
५. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
६. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१०. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री एस. वादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रिखवचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री आर. परसनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१५. श्री दीपचन्दजी वोकड़िया, मद्रास
१६. श्री मिश्रीलालजी तिलोकचन्दजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, व्यावर
२. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४. श्री खूबचन्दजी गादिया, व्यावर
५. श्री रतनचंदजी उत्तमचंदजी मोदी, व्यावर
६. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी वोथरा, चांगाटोला
७. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, व्यावर
८. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता
९. श्री जड़ावमलजी माणकचन्दजी वेताला, वागलकोट
१०. श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी वोहरा (K.G.F.) एवं जाड़न
११. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तालेरा, पाली
१२. श्री नेमीचंदली मोहनलालजी ललवाणी, चांगाटोला
१३. श्री विरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तालेरा, पाली
१४. श्री सिरेकँवर वाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचंदजी झामड़, मदुरान्तकम
१५. श्री थानचंदजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचंदजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८. श्री भेरुदानजी लाभचंदजी सुराणा, धोवड़ी तथा नागौर
१९. श्री रावतमलजी भीकमचंदजी पगारिया, वालाघाट
२०. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२१. श्री धर्मीचंदजी भागचंदजी वोहरा, झूंठा

२२. श्री मोहनराजजी बालिया, अहमदाबाद
२३. श्री चेनमलजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मीचंदजी कांकरिया, नागौर
२५. श्री बादलचंदजी मेहता, इन्दौर
२६ श्री हरकचंदजी सागरमली बेताला, इन्दौर
२७. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
२८. श्री इन्दरचंदजी बैद, राजनांदगांव
२९. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ा, चांगाटोला
३०. श्री भंवरलालजी मूलचंदजी सुराणा मद्रास
३१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला
३२. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३३. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, अजमेर
३५. श्री घेवरचंदजी पुखराज जी, गोहाटी
३६. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, आगरा
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री गुणचंदजी दल्लीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
३९. श्री अमरचंदजी बोथरा, मद्रास
४०. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
४१. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
४२. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४३. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४४. श्री जबरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल
४६. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास

सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
२, श्री अमरचंदजी बालचंदजी मोदी, ब्यावर
३. श्री चम्पालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
५. श्री भंवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
८. श्री मोहनलालजी गुलावचन्दजी चतर, ब्यावर
९. श्री बादरमलजी पुखराजजी वंट, कानपुर
१०. श्री के. पुखराजजी बाफना, मद्रास
११ श्री पुखराजजी वोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलाल लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मांगीलाल प्रकाशचन्दजी रुणवाल, वर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
१९. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेडतासिटी
२३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
२४. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सलेम
२५. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
२६. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
२९. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३०. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
३१. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२. श्री मोहनलालजी चम्पालाल गोठी, जोधपुर
३३. श्री जसराजजी जंवरीलाल धारीवाल, जोधपुर
३४. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
३५. श्री आसुमल एण्ड कं०, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तियां, जोधपुर

३७. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
३९. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
४१. श्री मिश्रीलालजी लिखमीचंदजी सांड, जोधपुर
४२. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
४३. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
४४. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
४५. श्री सरदारमल एन्ड कं., जोधपुर
४६. श्री रायचंदजी मोहनलालजी, जोधपुर
४७. श्री नेमीचंदजी डाकलिया, जोधपुर
४८. श्री घेवरचंदजी रूपराजजी, जोधपुर
४९. श्री मुन्नीलालजी, मूलचंदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५०. श्री सुन्दरबाई गोठी, महामन्दिर
५१. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा
५२. श्री पुखराजजी लोढ़ा, महामंदिर
५३. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
५४. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
५५. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५६. श्री भीकचंदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५७. श्री सुगनचंदजी संचेती, राजनांदगाँव
५८. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गोलेच्छा, राजनांदगाँव
५९. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
६०. श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
६१. श्री ओखचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
६२. श्री भंवरलालजी मूथा, जयपुर
६३. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६४. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई नं. ३
६५. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई नं. ३
६६. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई नं. ३
६७. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई नं. ३
६८. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुलि
६९. श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चांवडिया
७०. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
७१. श्री भंवरलालजी नवरतनमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
७२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७३. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७४. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
७५. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
७६. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७७. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७८. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढ़ा, ब्यावर
७९. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
८०. श्री बालचंदजी थानमलजी भुरट (कुचेरा), कलकत्ता
८१. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
८२. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८३. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
८४. श्री जीवराजजी भंवरलालजी, चोरड़िया भैंरुदा
८५. श्री मांगीलालजी मदनलालजी, चोरड़िया भैंरुदा
८६. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
८७. श्री भींवराजजी बागमार, कुचेरा
८८. श्री गंगारामजी इन्दरचंदजी बोहरा, कुचेरा
८९. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९०. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९१. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर (भरतपुर)
९२. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
९३. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
९४. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
९५. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
९६. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
९७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया

९८. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
९९. श्री जंवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, वुलारम
१००. श्री फतेराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०२. श्री जुगराजजी वरमेचा, मद्रास
१०३. श्री कुशालचंदजी रिखवचंदजी सुराणा, वुलारम
१०४. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०५. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०६. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी, बैंगलोर
१०७. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०८. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
१०९. श्री ग्रमरचंदजी चम्पालालजी छाजेड़, पादु वड़ी
११०. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
१११. श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११२. श्री लक्ष्मीचंदजी ग्रशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११३. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी वेताला, डेह
११४. श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११५. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११६. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, ग्रजमेर
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८. श्री इन्दरचंदजी जुगराजजी बाफणा, बैंगलोर
११९. श्री चम्पालालजी माणकचंदजी सिंघी, कुचेरा
१२०. श्री संचालालजी बाफना, ग्रौरंगाबाद
१२१. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता सिटी
१२२. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२३. श्रीमती रामकुंवर धर्मपत्नी श्रीचांदमलजी लोढ़ा, बम्बई
१२४. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२५. श्री जीतमलजी भंडारी, कलकत्ता
१२६. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़
१२७. श्री. टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२७. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२८. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२९. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१३०. श्री वर्द्धमान स्था, जैन श्रावक संघ बगड़ीनगर

ग्रन्थगतगाथानुक्रमणिका

परिशिष्ट (२)

व्यक्तिनामानुक्रम